बी.ए./बी.एस.सी./बी.कॉम, तृतीय वर्ष

आधार पाठ्यक्रम, प्रथम प्रश्नपत्र

# हिन्दी भाषा और नैतिक मूल्य


मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

***Reviewer Committee***

1. Dr Dharmendra Pare
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

2. Dr Anjali Singh
   Professor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open)
   University, Bhopal

3. Dr Rachna Tailang
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

***Advisory Committee***

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open)
   University, Bhopal

2. Dr L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open)
   University, Bhopal

3. Dr Anjali Singh
   Professor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open)
   University, Bhopal

4. Dr Dharmendra Pare
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

5. Dr Rajkumar Bhimtae
   Professor
   Govt Hamidia College Bhopal

**COURSE WRITERS**

**Yatindra Nath Gaur,** Freelance Author
(Units: (1.0-1.1, 1.2, 1.3-1.9, 2.3, 5.0-5.2, 5.3, 5.4-5.8)

**Dr Seema Sharma,** Lecturer, Department of Hindi, Ginni Modi Girls (PG) College, Modinagar
(Units: 2.0-2.1, 2.2-2.2.3, 2.4, 2.5-2.9, 3.0-3.1, 3.2, 3.3, 3.4, 3.5-3.9, 4.0-4.1, 4.2, 4.3, 4.4, 4.5-4.10)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

# SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

## हिन्दी भाषा और नैतिक मूल्य

| Syllabi | Mapping in Book |
|---|---|
| **इकाई–1 : हिन्दी भाषा**<br>1. मेरे सहयात्री (यात्रा–वृत्तांत) – अमृतलाल वेगड़<br>2. मध्य प्रदेश की लोककलाएं (संकलित)<br>3. लोकोक्तियां एवं मुहावरे (संकलित) | **इकाई 1** : हिन्दी भाषा<br>**(पृष्ठ 3–69)** |
| **इकाई–2 : हिन्दी भाषा**<br>1. जनसंचार माध्यम (प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक एवं सोशल मीडिया)<br>2. टूटते हुए (एकांकी) – सुरेश शुक्ल चंद्र<br>3. संक्षिप्तियां | **इकाई 2** : हिन्दी भाषा<br>**(पृष्ठ 71–128)** |
| **इकाई–3 : हिन्दी भाषा**<br>1. पत्रकारिता के विभिन्न आयाम (संकलित)<br>2. मध्य प्रदेश का लोक साहित्य (संकलित)<br>3. पत्र–लेखन – आवेदन, प्रारूपण, आदेश परिपत्र, ज्ञापन, अनुस्मारक (संकलित) | **इकाई 3** : हिन्दी भाषा<br>**(पृष्ठ 129–206)** |
| **इकाई–4 : हिन्दी भाषा**<br>1. राजभाषा हिन्दी (संकलित), हिन्दी की संवैधानिक एवं व्यावहारिक स्थिति<br>2. दूरभाष और मोबाइल (संकलित)<br>3. हिन्दी की शब्द सम्पदा (संकलित)<br>4. अनुवाद : अर्थ, प्रकार एवं अभ्यास | **इकाई 4** : हिन्दी भाषा<br>**(पृष्ठ 207–254)** |
| **इकाई–5 : नैतिक मूल्य**<br>1. विश्व के प्रमुख धर्म एवं महत्वपूर्ण विशेषताएं (हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिक्ख धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म)<br>2. सत्य के साथ मेरे प्रयोग (महात्मा गांधी की आत्मकथा का संक्षिप्त संस्करण) | **इकाई 5** : नैतिक मूल्य<br>**(पृष्ठ 255–320)** |

# विषय–सूची


**परिचय** **1–2**

**इकाई 1 हिन्दी भाषा** **3–69**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 मेरे सहयात्री (यात्रा–वृत्तांत)
1.2.1 अमृतलाल वेगड़ : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
1.2.2 मूल पाठ
1.3 मेरे सहयात्री (यात्रा–वृत्तांत) का समीक्षात्मक विश्लेषण
1.4 मध्य प्रदेश की लोककलाएं
1.4.1 लोक और शास्त्रीय कला : परिभाषा एवं अन्तर्सम्बंध
1.4.2 मध्य प्रदेश का प्रागैतिहासिक कला परिदृश्य
1.4.3 मध्य प्रदेश का हस्तशिल्प
1.4.4 मध्य प्रदेश की प्रमुख लोक गायनशैलियां
1.4.5 मध्य प्रदेश के प्रमुख लोकनृत्य
1.4.6 मध्य प्रदेश के प्रमुख लोकनाट्य
1.5 लोकोक्तियां एवं मुहावरे
1.5.1 लोकोक्ति
1.5.2 मुहावरे
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 2 हिन्दी भाषा** **71–128**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 जनसंचार माध्यम (प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक एवं सोशल मीडिया)
2.2.1 जनसंचार माध्यम : स्वरूप एवं उपयोगिता
2.2.2 प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया
2.2.3 सोशल मीडिया : अर्थ, महत्व, उपयोगिता और भाषायी प्रभाव
2.3 टूटते हुए (एंकाकी संग्रह) : सुरेश शुक्ल चन्द्र
2.3.1 सुरेश शुक्ल चन्द्र का परिचय एवं कृतित्व
2.3.2 नाट्य साहित्य और सुरेश शुक्ल चन्द्र की नाट्य अभिव्यंजना
2.3.3 'टूटते हुए' का विवेचनात्मक अध्ययन
2.4 संक्षिप्तियां (संक्षेपण)
2.4.1 संक्षेपण की विधि
2.4.2 संक्षेपण : वैशिष्ट्य एवं प्रयोगात्मक स्वरूप
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 3 हिन्दी भाषा** **129–206**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 पत्रकारिता के विभिन्न आयाम
3.2.1 पत्रकारिता के प्रकार
3.2.2 पत्रकारिता की भाषा–शैली
3.3 मध्य प्रदेश का लोक साहित्य
3.3.1 लोक साहित्य : परिभाषा, क्षेत्र, वैशिष्ट्य एवं महत्व
3.3.2 मध्य प्रदेश के लोक साहित्य के विविध रंग एवं लोक कवि
3.3.3 बुंदेलखंड अथवा बुंदेली का लोक साहित्य
3.3.4 बघेलखंड अथवा बघेली का लोकसाहित्य
3.3.5 निमाड़ अथवा निमाड़ी का लोक साहित्य
3.3.6 मालवा अथवा मालवी का लोक साहित्य
3.4 पत्र लेखन
3.4.1 पत्र–लेखन : गुण, वैशिष्ट्य एवं प्रकार
3.4.2 आवेदन एवं प्रारूपण
3.4.3 आदेश परिपत्र, ज्ञापन एवं अनुस्मारक
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 4 हिन्दी भाषा** **207–254**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक एवं व्यावहारिक स्थिति
4.2.1 संघ की राजभाषा
4.2.2 न्यायालयों की भाषा
4.2.3 हिंदी के व्यावहारिक विकास के लिए निर्देश
4.2.4 राजभाषा अधिनियम 1963, 1967 एवं 1976
4.3 दूरभाष और मोबाईल
4.3.1 दूरभाष : अर्थ, प्रकार, लाभ और नुकसान
4.3.2 मोबाइल फोन : अर्थ–महत्व, लाभ एवं नुकसान
4.4 हिन्दी की शब्द–संपदा
4.4.1 शब्दों के प्रकार एवं शब्द–भंडार की संपन्नता
4.4.2 शब्द संपदा के प्रमुख स्रोत
4.5 अनुवाद : अर्थ, प्रकार एवं अभ्यास
4.5.1 अनुवाद : सिद्धांत एवं व्यवहार
4.5.2 अनुवाद : प्रकार एवं प्रक्रिया
4.5.3 अनुवाद के अभ्यास एवं जटिलताएं
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश

4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 5 नैतिक मूल्य** **255–320**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 विश्व के प्रमुख धर्म (हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई एवं इस्लाम)
5.2.1 हिन्दू धर्म
5.2.2 जैन धर्म
5.2.3 बौद्ध धर्म
5.2.4 सिख धर्म
5.2.5 ईसाई धर्म
5.2.6 इस्लाम धर्म
5.3 सत्य के साथ मेरे प्रयोग : महात्मा गांधी
5.3.1 जीवन वृत्तांत की आरंभिक पृष्ठभूमि
5.3.2 स्कूली जीवन एवं विवाह
5.3.3 आहार–विचार विषयक दृष्टिकोण एवं विलायती जीवन
5.3.4 सत्याग्रह आश्रम की स्थापना, बिहार यात्रा एवं कांग्रेस में प्रवेश
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

# परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'हिन्दी भाषा और नैतिक मूल्य' विश्वविद्यालय द्वारा बी.ए. तृतीय वर्ष के लिये निर्धारित आधार पाठ्यक्रम के अनुरूप तैयार की गयी है। प्रख्यात लेखक, चित्रकार और यात्री अमृतलाल वेगड़ अपनी अंतिम सांस तक यानि नब्बे साल की उम्र तक नर्मदा के हर कण को समझने, सहेजने और संवारने के लिये तत्पर रहे। उन्होंने अपनी यात्रा के सम्पूर्ण वृत्तांत को तीन पुस्तकों में लिखा है। उनकी पहली पुस्तक 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' 1992 में आयी थी, जिसके प्रारम्भ में वे लिखते हैं– "कभी–कभी मैं अपने–आप से पूछता हूं, यह जोखिम भरी यात्रा मैंने क्यों की? और हर बार मेरा उत्तर होता, अगर मैं यात्रा न करता, तो मेरा जीवन व्यर्थ जाता। जो जिस काम के लिये बना हो, उसे वह काम करना ही चाहिये और मैं नर्मदा की पदयात्रा के लिये बना हूं।'' वेगड़ जी ने अपनी पहली यात्रा सन 1977 में शुरू की थी, जब वे कोई 50 साल के थे और अन्तिम यात्रा 1987 में 82 साल की उम्र में। कोई चार हजार किलोमीटर से अधिक वे इस नदी के तट पर पैदल चलते रहे। इन ग्यारह सालों की दस यात्राओं का विवरण इन पुस्तकों में है। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद न केवल नर्मदा को समझने की नयी दृष्टि मिलती है, बल्कि सभ्यता की दौड़ में नदियों एवं जलस्रोतों के प्रति अपने बर्ताव का भी हम आत्मावलोकन कर पाते हैं।

लोक परम्पराओं का विकसित रूप ही अपनी प्रामाणिक अवस्था में शास्त्रीय स्वरूप धारण करता है। लोक की छोटी–छोटी परम्पराएं, अवधारणाएं, कथाएं, मिल कर शास्त्रीय पद्धति रूपी अथाह समुद्र का स्वरूप धारण कर लेती हैं और आने वाली पीढ़ी के लिए यही पद्धतियां जीवन पथ का प्रदर्शन करने वाला प्रामाणिक साधन बन जाती हैं। समाज की शायद ही ऐसी कोई घटना हो जो लोककलाओं के रूप में विकसित न हुई हो। इन कलाओं में अनुभव का सादापन तथा सच्चाई बोलती है। लोकगीत, लोकोक्ति, कहावतें, लोकनृत्य, लोकगाथाएं, लोक साहित्य जीवन के प्रत्येक रहस्य को उद्घटित करते हैं, और इन्हीं लोककलाओं का विकसित स्वरूप शास्त्रीयता का भव्य रूप ले लेता है, जिसकी जड़ में अवश्य ही लोक की मिट्टी होती है। मध्य प्रदेश की लोककलाओं एवं लोक साहित्य के अवलोकन से भी उपर्युक्त तथ्य की स्थापना होती है।

भारतीय एवं वैश्विक स्तर पर पत्रकारिता एवं जनसंचार के क्षेत्र में तेजी से बदलाव हो रहा है। आज के सूचना युग में जनमाध्यमों की नयी सैद्धांतिकी भी विकसित हो रही है। इसीलिये इसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य के अनुरूप समझने की आवश्यकता है। लोकसम्पर्क या जनसम्पर्क या जनसंचार से तात्पर्य उन सभी साधनों के अध्ययन एवं विश्लेषण से है, जो एक साथ बहुत बड़ी जनसंख्या के साथ संचार सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते हैं। प्रायः इसका अर्थ सम्मिलित रूप से समाचार पत्र, पत्रिकाएं, रेडियो, दूरदर्शन, चलचित्र से लिया जाता है, जो समाचार एवं विज्ञापन दोनों के प्रसारण के लिये प्रयुक्त होते हैं। जब संचार की बात चलती है, तो निःसन्देह जनसंचार की धारणा आज के युग में दिन–ब–दिन लोकप्रियता हासिल कर रहा है। यह मीडिया का कोई चैनल हो सकता है, या इंटरनेट या फिर कोई और अनुरूप माध्यम ।

**टिप्पणी**

इस पुस्तक को तीन इकाइयों में समायोजित किया गया है, जिनमें हिन्दी साहित्य, भाषा और व्याकरण तथा जनसंचार के लिये निर्धारित मूल पाठों अथवा विधाओं के बारे में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही पुस्तक में मध्य प्रदेश के लोक साहित्य एवं लोककलाओं के समूचे परिदृश्य को भी यथास्थान समेटने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक में स्वाध्याय प्रणाली का प्रयोग किया गया है, जिसमें प्रत्येक इकाई का आरंभ उस इकाई के परिचय से होता है, तत्पश्चात इकाई के उद्देश्य आते हैं। पाठ के बीच–बीच में अपनी प्रगति जांचिए के प्रश्न समाविष्ट किये गये हैं। प्रभावी पुनर्कथन के लिये प्रत्येक पाठ के अंत में सारांश, मुख्य शब्दावली और स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास दिये गये हैं।

इकाइयों का विवरण निम्न प्रकार है–

पहली इकाई में साहित्य के अंतर्गत अमृतलाल वेगड़ का परिचय देते हुए उनके प्रसिद्ध यात्रा–वृत्तांत 'मेरे सहयात्री' के मूल पाठ का समीक्षात्मक विश्लेषण दिया गया है। साथ ही इस इकाई में मध्य प्रदेश की लोककलाओं के परिदृश्य का अवलोकन करते हुए भाषा के गठन में लोकोक्तियों एवं मुहावरों की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है।

दूसरी इकाई में जनसंचार माध्यम के अंतर्गत प्रिन्ट, इलेक्ट्रॉनिक एवं सोशल मीडिया की विशिष्टता, प्रासंगिकता एवं महत्व का आकलन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इसमें मूल पाठ के तौर पर सुरेश शुक्ल चन्द्र की एकांकी 'टूटते हुए' की समीक्षा और विधाओं के अंतर्गत 'संक्षिप्तियां' की जानकारी उपलब्ध करायी गयी है।

तीसरी इकाई में पत्रकारिता के विभिन्न आयामों की विस्तृत चर्चा करते हुए मध्य प्रदेश के लोक साहित्य के परिदृश्य एवं पत्र–लेखन कला का विस्तार से परिचय दिया गया है।

हमें विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिये अध्ययन में उपयोगी साबित होगी।

# इकाई 1 हिन्दी भाषा

टिप्पणी

## संरचना


1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 मेरे सहयात्री (यात्रा–वृत्तांत)
 1.2.1 अमृतलाल वेगड़ : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
 1.2.2 मूल पाठ
1.3 मेरे सहयात्री (यात्रा–वृत्तांत) का समीक्षात्मक विश्लेषण
1.4 मध्य प्रदेश की लोककलाएं
 1.4.1 लोक और शास्त्रीय कला : परिभाषा एवं अन्तर्सम्बंध
 1.4.2 मध्य प्रदेश का प्रागैतिहासिक कला परिदृश्य
 1.4.3 मध्य प्रदेश का हस्तशिल्प
 1.4.4 मध्य प्रदेश की प्रमुख लोक गायनशैलियां
 1.4.5 मध्य प्रदेश के प्रमुख लोकनृत्य
 1.4.6 मध्य प्रदेश के प्रमुख लोकनाट्य
1.5 लोकोक्तियां एवं मुहावरे
 1.5.1 लोकोक्ति
 1.5.2 मुहावरे
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री


## 1.0 परिचय

अमृतलाल वेगड़ का जीवन एक चित्रकार, लेखक और यायावर सभी रूपों में अतुलनीय रहा। उन्होंने नर्मदा नदी के किनारे–किनारे पूरे चार हजार किलोमीटर की यात्रा पैदल कर डाली। अपनी अंतिम सांस तक यानी नब्बे साल की उम्र तक नर्मदा के हर कण को समझने, सहेजने और संवारने में तल्लीन रहे। उन्होंने अपनी यात्रा के सम्पूर्ण वृत्तांत को तीन पुस्तकों में लिखा। उनकी ग्यारह सालों की दस यात्राओं का विवरण उनकी पुस्तकों में है। लेखक अपनी यात्रा में केवल लोक या नदी के बहाव का सौन्दर्य ही नहीं देखते, बरगी बांध, इंदिरा सागर बांध, सरदार सरोवर आदि के कारण आ रहे बदलाव, विस्थापन की भी चर्चा करते हैं। उनके यात्रा–वृत्तांतों की सबसे बड़ी बात यह है कि वे महज जलधारा की बात नहीं करते, उसके साथ जीवन पाते जीव, वनस्पति, प्रकृति, खेत, पक्षी, इन्सान सभी को इसमें गूंथा गया है और बताया गया है कि किस तरह नदी महज एक जल संसाधन नहीं, बल्कि मनुष्य के जीवन से मृत्यु तक का मूल आधार है। वेगड़जी कहते हैं कि यह उनकी नर्मदा को समझने–समझाने की ईमानदार कोशिश है और वे कामना करते हैं कि अपना सर्वस्व दूसरों पर लुटाती ऐसी ही कोई नदी हमारे हृदयों में बह सके, तो नष्ट होती हमारी सभ्यता–संस्कृति शायद बच सके। नगरों में सभ्यता तो है लेकिन संस्कृति गांव और गरीबों में ही थोड़ी बहुत बची रह गई है।

टिप्पणी

मध्य प्रदेश कलात्मक और सौन्दर्यपूर्ण स्थलों से परिपूर्ण है। अपने नाम को चरितार्थ करता हुआ यह भारत के मध्य में स्थित है। इसका अलंकरण करने में समृद्ध जल–स्रोत, हरित तथा पर्णपाती वन, धातु भण्डार, पर्वत और कन्दराएं सभी जीवनावश्यक स्रोतों की भूमिका रही है। वर्तमान स्थिति तक पहुंचने में मानव में अनेक परिवर्तन आते रहे। हमने नये रीति–रिवाजों, वस्तुओं और संस्कारों को अपनाया, पर जो जीवन रस हजारों वर्ष पूर्व विद्यमान था, वह आज भी जस का तस बना है। उसमें निहित रस, गन्ध, स्वाद और जीवन्तता वैसी ही बनी हुई है। इस निरन्तरता ने 'परम्परा' का रूप धारण कर लिया है। मध्य प्रदेश में जनजाति की बहुलता है, जिनकी अपनी सांस्कृतिक विरासत है। जनजाति संस्कृति के दर्शन हमें विभिन्न अनुष्ठानों में दिखाई देते हैं। इनके जीवन का सौन्दर्यबोध चित्रों, शिल्पों, नृत्य और गीतों में दिखायी देता है। वे कला की पूर्ति के लिये प्रकृति से प्राप्त सहज सुलभ संसाधनों का उपयोग करते हैं।

मुहावरे या लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को रोचक और अभिव्यक्ति को संक्षिप्त बनाने के लक्ष्य से किया जाता है। वक्ता इसका प्रयोग कर अपनी बात को और प्रभावी बनाते हैं। ऐसे वाक्यांश जो अपने साधारण अर्थ से हट कर कर्ता–कर्म के साथ जुड़ कर कोई विशेष अर्थ देते हैं, वे मुहावरे कहलाते हैं। मुहावरे कभी भी स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त नहीं किये जाते, क्योंकि वे स्वयं में अपूर्ण होते हैं। आम भाषा में कहें तो ये ऐसे सुगठित शब्द समूह हैं, जो विशेष अर्थ देते हैं। लोकोक्तियां लोगों द्वारा अपने अनुभवों से बनाये गये वह वाक्य हैं, जो पूरी बात का अर्थ देते हैं या संपूर्ण अर्थ देते हैं, अतएव किसी भी वाक्य में इनके प्रयोग के बिना भी इनका पूरा अर्थ समझा जा सकता है। इन्हें कहावत भी कहते हैं।

इस इकाई में अमृतलाल वेगड़ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व, मेरे सहयात्री के मूलपाठ एवं उसके समीक्षात्मक विश्लेषण के अतिरिक्त मध्य प्रदेश की लोककलाओं के व्यापक परिदृश्य और भाषा के गठन में लोकोक्तियों और मुहावरों की भूमिका पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

## 1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अमृतलाल वेगड़ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो पाएंगे;
- अमृतलाल वेगड़ के यात्रा–वृत्तांत 'मेरे सहयात्री' के मूल पाठ से अवगत हो पाएंगे
- 'मेरे सहयात्री' यात्रा–वृत्तांत का समीक्षात्मक विश्लेषण कर पाएंगे;
- मध्य प्रदेश की लोककलाओं के अतीत एवं वर्तमान परिदृश्य को समझ पाएंगे;
- भाषा के गठन में मुहावरों एवं लोकोक्तियों के महत्व से अवगत हो पाएंगे।

## 1.2 मेरे सहयात्री (यात्रा–वृत्तांत)

'मेरे सहयात्री' अमृतलाल वेगड़ का यात्रा–वृत्तांत है। पाठ पर चर्चा की शुरुआत से पहले लेखक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय प्राप्त करना यहां समीचीन होगा।

टिप्पणी

## 1.2.1 अमृतलाल वेगड़ : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अमृतलाल वेगड़ का जन्म 3 अक्तूबर, सन् 1928 को ग्राम माधापर, कच्छ में गोवामल जीवन वेगड़ के घर में हुआ था। उनके पिता रेलवे कॉन्ट्रेक्टर थे। वे मिस्त्री समुदाय से थे। फिर वे जबलपुर (मध्य प्रदेश) में आकर बस गए थे। यहां वे बंगाल, नागपुर, रेलवे के जबलपुर सेक्शन में सन् 1906 में कॉन्ट्रेक्टर का कार्य करने लगे।

अमृतलाल वेगड़ ने अपनी शिक्षा विश्वभारती विश्वविद्यालय शान्ति निकेतन से की। योग्य अध्यापक नन्दलाल घोष ने उनको प्रशिक्षण दिया था। सन् 1948 से सन् 1953 की अवधि में उन्होंने वॉटर कलर में चित्र भी बनाए। तैलीय चित्र भी बनाए। जबलपुर वापिस आकर वे फाइन आर्ट्स के एक संस्थान में अध्यापक नियुक्त हो गए थे। उन्होंने शान्ति निकेतन में अध्ययन करते हुए कहानी भी लिखी थी। गांधी गंगा नामक पुस्तक में वह 'अहिंसा' के नाम से सन् 1968 में प्रकाशित भी हुई थी।

श्री अमृतलाल वेगड़ को उनकी नर्मदा पर पुस्तक के लिए सन् 2004 में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी किया गया था। उन्हें मध्यप्रदेश राज्य साहित्य पुरस्कार और राष्ट्रपति पुरस्कार से भी उनके अनेक कार्यों के लिए पुरस्कृत किया गया। उन्हें हिन्दी में लेखन के लिए महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था।

उनकी प्रमुख पुस्तकों में हिन्दी में लिखी प्रकाशित पुस्तक 'नर्मदा की परिक्रमा' है। उन्होंने नर्मदा को लेकर ही गुजराती में भी पुस्तकें लिखी हैं। इनके लिए उन्हें अनेकानेक पुरस्कार एवं सम्मान भी प्रदान किए गए। उन्होंने गुजराती भाषा में ही लोक कथाएं और निबंध भी लिखे। नर्मदा अमृत और तीरे–तीरे नर्मदा का अनुवाद उन्होंने स्वयं गुजराती से अंग्रेजी, बांग्ला और मराठी भाषा में भी किया। उनकी पहली पुस्तक–नदी का सौन्दर्य नर्मदा थी। वेगड़ जी ने अपनी पत्नी के साथ यात्राएं भी कीं–वे उनका सामान स्वयं लेकर चलती थीं।

वेगड़ जी की कलाकृतियों की प्रदर्शनी भी लगी। अमृतलाल वेगड़ जी ने पर्यावरण सम्बन्धी कार्य भी किए। नदियों में प्रदूषण को लेकर भी उन्होंने अपनी पुरजोर आवाज उठायी। वे 'नर्मदा समग्र' के अध्यक्ष भी थे। यह संस्थान प्रदूषण को लेकर कार्यरत रहता है, जन शौचालय और स्नानघर के लिए भी कार्य करता है, नदियों पर स्नान करने के लिए घाटों के लिए भी कार्यरत रहता है। नदियों के जल को प्रदूषित न करने–कराने के लिए भी कार्यरत रहता है तथा नदियों के जल की स्वच्छता–सफाई के लिए भी कार्य करता रहता है।

सारांश में अमृतलाल वेगड़ गुजराती लेखक थे। हिन्दी में उन्होंने बहुत कम लिखा। हिन्दी में लिखा उनका यात्रा–वृत्तांत है– *'मेरे सहयात्री।'* वे निबंध लेखक, कवि और चित्रकार भी थे।

अमृतलाल वेगड़ का देहान्त दिनांक 6, जुलाई, सन् 2008 को हुआ था।

## 1.2.2 मूल पाठ

वेगड़ जी मेरे सहयात्री (यात्रा वृत्तांत) की शुरुआत कुछ यूं करते हैं–अगर वे वृद्ध मेरे सामने होते तो मैं उनके चरणों में अपना सिर रखता और उनके आशीर्वाद लेकर ही इस पुनरावृत्ति परिक्रमा पर निकलता।

टिप्पणी

1980 की बात है। मैं परिक्रमा में था, मंडला के निकट पहुंचने ही वाला था, तभी सामने से आते हुए एक वृद्ध दिखाई दिए। वेशभूषा से परकम्मावासी जान पड़ते थे। परकम्मावासी ही थे। मैंने पूछा, 'आप उलटे कैसे चल रहे हैं?' उन्होंने कहा, 'मेरी जिलहरी परिक्रमा है। इसमें समुद्र को नहीं लांघते। इसमें दुहरी परिक्रमा होती है।'

मैं चकित! पचहत्तर वर्ष की उम्र के यह वृद्ध, बिना किसी संगी–साथी के कैसी कठिन परिक्रमा कर रहे थे। शूलपाण की झाड़ी में भीलों ने उन्हें लूट लिया था। चश्मा तक ले लिया था। तब से ऊंच–नीच का सही अंदाज नहीं हो पाता। कई बार गिर चुके थे। मैंने उनकी सहायता करनी चाहिए, पैसे देने चाहे, तो बोले 'पैसे को मैं हाथ नहीं लगाता।' किसी तरह नहीं लिए।

मैं थोड़े दिनों के लिए चलता हूं तो पैसे रखता हूं, राशन रखता हूं और साथ में एक विश्वस्त साथी भी रहता है। अकेले चलने का साहस कभी नहीं कर सका और ये वृद्ध अकेले, एकाकी, निस्संग, अकिंचन चल रहे थे। पता नहीं कब घर पहुंचेंगे, पहुंचेंगे भी या नहीं क्या पता! फिर भी अपनी मस्ती में चल रहे हैं।

उसी दिन मैंने निश्चय किया था कि अगर मैं 75 का होऊंगा तो थोड़ी ही सही, नर्मदा पदयात्रा जरूर करूंगा। लेकिन 75 की उम्र बहुत दूर थी, 22 बरस दूर। वहां तक पहुंच सकूं अथवा न भी पहुंच पाऊं।

परन्तु 3 अक्तूबर, 2002 के दिन पचहत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर गया। नर्मदा की प्रथम पदयात्रा 7 अक्तूबर, 1977 के दिन शुरू की थी। उसे 7 अक्तूबर को 25 वर्ष पूरे हो गए। नर्मदा पदयात्रा की रजत जयन्ती को तो नर्मदा–तट की पदयात्रा करके ही मनाया जा सकता है। मेरे चिरपोषित स्वप्न को साकार करने की घड़ी आखिर आ गई।

यह तिथि इस यात्रा की निमित्त भले ही बनी हो, असली कारण यह है कि नर्मदा–सौन्दर्य के घेरे से मैं बाहर निकलना ही नहीं चाहता। बार–बार वहीं लौट जाना चाहता हूं–जहाज के पंछी की तरह। मैं नर्मदा की पूरी परिक्रमा कर चुका हूं। दोनों तटों को मिलाकर 2624 कि.मी. पैदल चल चुका हूं। नर्मदा पदयात्री के रूप में यह मेरा पुनर्जन्म होगा।

1977 में जबलपुर से मंडला तक चला था। इस बार भी वहीं से चलता लेकिन बरगी बांध के कारण 'अत्र लुप्ता नर्मदा' वाली स्थिति बन गई है। न वे गांव रहे, न वे पगडंडियां, न वे किनारे। इसके बाद 1978 में मैं मंडला से अमरकंटक तक चला था। तय हुआ कि वहीं से चला जाए।

कान्ता ने पहले से ही कह रखा था कि मैं साथ चलूंगी। हमारे भरे–पूरे परिवार से उसे कितना लगाव है, विशेष रूप से छह महीने के पौत्र वंशज से। वह तो उसके गले का हार है, किन्तु यह सारा सुख छोड़कर वह मेरे साथ नर्मदा की ऊबड़–खाबड़ पगडण्डियों पर चलेगी, धूप में झुलसेगी और ठण्ड में ठिठुरेगी। अशोक तिवारी मेरे साथ नारेश्वर से लेकर चौबीस अवतार तक की चालीस दिन लम्बी पदयात्रा में चल चुका है। मेरे बेटे का सहपाठी रहा। यात्रा में मेरी वैसी ही देखभाल करता था, जैसी एक पुत्र अपने पिता की करता है। जब वह भी चलने को तैयार हो गया तो मैं पूरी तरह से निश्चिंत हो गया।

साथ चलने के लिए मुम्बई से चार लोग आ रहे हैं। 64 वर्षीय रमेश शाह, 61 वर्षीय पत्नी हंसा, 36 वर्षीय पुत्र संजय और इस परिवार की अभिन्न मित्र 56 वर्षीय

टिप्पणी

गार्गी देसाई। न वे मुझे जानते हैं, न मैं उन्हें। उन्होंने मेरी दोनों गुजराती पुस्तकें पढ़ीं हैं, बस इसी से आ रहे हैं। दिल्ली से अपोलो हॉस्पिटल के डॉ. अखिल मिश्र भी आएंगे। वे कवि भवानीप्रसाद मिश्र के भतीजे हैं। वे मेरी पुस्तकें पढ़कर ही आ रहे हैं। रमेशभाई और उनकी पत्नी कोई 20 बरस तक फ्रांस, इंग्लैण्ड और अफ्रीका में रहे हैं। डॉ. अखिल सेमिनारों में विदेश जाते ही रहते हैं। ये सभी लोग नर्मदा की दूर–दराज की पगडण्डियों पर मेरे साथ चलेंगे।

कितना सुख मिलता है यह जानकर कि कोई दूसरा–सर्वथा अपरिचित, मुझ पर विश्वास करता है और मेरे साथ चलने को तैयार है। मुझे यह देखकर भी खुशी हो रही है कि नर्मदा–सौंदर्य की गूंज दूर–दूर तक फैल रही है।

इस बार मेरा विश्वस्त साथी छोटू नहीं है। वह अपने गांव चला गया है। उसकी जगह चलेगा गरीबा। नाम तो है सोहन, लेकिन उसकी बहन उसे गरीबा कहती है तो हम भी यह कहने लगे।

5 अक्तूबर, 2002 को दोपहर दो बजे हम सभी बस से मंडला गए। वहां से बीस किलोमीटर दूर एक पहाड़ी पर स्थित गुरु–स्थान जाने के लिए जीप से निकले। रात हो गई थी। एक कच्ची सड़क पहाड़ी के ऊपर तक जाती है। इसका उपयोग कभी–कभार ही होता है। इसलिए उस पर घास उग आई थी और सड़क मुश्किल से ही दिखाई देती थी। फिर भी जीप वाला हमें सही–सलामत ऊपर तक ले आया।

मन्दिर के बरामदे में सोए। थोड़ी ही देर में खर्राटे शुरू हो गए। एक के बन्द होते ही दूसरे शुरू हो जाते। खर्राटों की अन्त्याक्षरी ही समझिए। जुगलबन्दी भी हो जाती। एक महाशय तो खर्राटों का कीर्तिमान ही स्थापित करने पर तुले थे। इतना बता दूं कि इस दौड़ में मैं भी था, लेकिन कहां राजा भोज और कहां गंगू तेली!

भोर वेला में नीचे के खेतों से उठते कुहरे को देर तक निहारता रहा। धूसर धुंध में कोहरे की झीनी चादर ओढ़े खेत कितने पावन लग रहे थे।

मुझे हमेशा ही लगा है कि प्रकृति के सौन्दर्य में एक पावन भाव होता है। मनुष्य द्वारा निर्मित सौन्दर्य में सदा ऐसा नहीं हो पाता। पावन होना तो दूर, कई बार तो वह श्लील तक नहीं होता। बल्कि दिन पर दिन इस सौन्दर्य का मुखड़ा अश्लीलता की ओर होता है। और हम और आप चूं–चपड़ तक नहीं कर सकते, क्योंकि यह होता है कला के नाम पर।

फगनू रात में ही आ गया था। साठ बरस का है पर युवाओं जैसा बलिष्ठ और कद्दावर है। शरीर मजबूत और गठा हुआ है। अधिकांश दांत गिर गए हैं इसलिए उम्र से अधिक बूढ़ा जान पड़ता है। वैसे मेरे भी सामने के दांत नहीं है, पर हाल ही मैंने नए जड़वा लिए हैं। आजकल नकली दांत दो प्रकार के होते हैं–स्थायी भाव वाले और संचारी भाव वाले। मेरे स्थायी भाव वाले हैं। संचारी भाव वाले दांतों को रात में हवेली खाली कर देनी पड़ती है।

यह वही फगनू है, जो अंग्रेज परकम्मावासी मीरा (मेरिएटा मॅड्रल) के साथ यहां से अमरकंटक तक और वहां से डिंडौरी तक चला था। मीरा ने ही मुझसे कहा था कि फगनू को साथ ले जाइए। हमें दो सहायकों की आवश्यकता थी ही क्योंकि रमेशभाई और हंसा बहन सामान उठाकर नहीं चल सकते। इसलिए हमने फगनू के अलावा घनश्याम को भी साथ ले लिया। फगनू, घनश्याम और गरीबा–तीनों गोंड हैं।

सारा दिन उस पहाड़ी पर ही रहे। उसका लघु आकार उसे एक विशिष्ट जीवन्तता प्रदान करता था। यह पहाड़ी पेपरवेट जैसी लग रही थी। आसपास के खेत कहीं उड़ न जाएं, इसलिए उन पर रखा पहाड़ी पेपरवेट!

टिप्पणी

रात का अंधेरे घिरते ही दिल्ली से डॉ. अखिल मिश्र आ गए। उन्हें लेकर आए हैं अरविन्द गुरु और उनकी पत्नी मंजरी। दोनों मंडला के कॉलेज में हिन्दी के अध्यापक हैं। यह पूछने की धृष्टता मैंने नहीं की कि कौन सीनियर है और कौन जूनियर है। (कभी–कभी इसमें बड़ी गड़बड़ी हो जाती है। एक बार मैं अपने पड़ोसी वर्माजी के घर गया था। पति–पत्नी दोनों वकील हैं। श्रीमती वर्मा से पूछा, 'वर्माजी नहीं हैं?' उन्होंने कहा, 'वे कोर्ट गए हैं।' पूछा, 'आप नहीं गईं?' उन्होंने कहा, 'आज मेरी छुट्टी है।' मैंने फिर पूछा, 'उनकी नहीं है?' उन्होंने मृदु हास्य के साथ कहा, 'वे लोअर कोर्ट में हैं, मैं तो हाईकोर्ट में हूं!' दोनों ने पैर छुए। मंजरी ने कहा, 'जब से आपकी पुस्तकें पढ़ी हैं, तभी से मन में था कि मिलते ही आपके चरण–स्पर्श करूंगी।' और भी लोग ऐसा करते हैं। मैं बाधा नहीं पहुंचाता। एक तो वृद्धावस्था के कारण पूजनीयता का बोध यों ही घूस पड़ता है, दूसरे दरअसल चरण–स्पर्श वे मेरा नहीं, नर्मदा का कर रहे हैं। मेरी हैसियत तो एक चिट्ठीरसा की है।

7 अक्तूबर, 2002 को सुबह–सवेरे गुरुस्थान से नीचे उतरे और तीन किलोमीटर दूर नर्मदा पर बने मानोट के पुल के लिए चल पड़े।

दो महीने पहले पैर की एड़ी पर घर का ही दरवाजा ऐसा धड़ाम से लगा था कि दस दिन तक घर से बाहर नहीं जा सकता था। परिक्रमा में कहीं गिर–विर गया और हड्डी दरक गई या टूट गई तो जो दुर्गति होगी सो होगी, जगहंसाई अलग होगी। लोग कहेंगे, इस बुड्ढ़े की तो मति ही मारी गई है। अब पड़े रहो प्लास्टर में सालभर तक! किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने इस विचार को झिड़क दिया। यह समस्या मेरी नहीं, नर्मदा की है। इसकी चिन्ता मैं क्यों करूं!

नर्मदा को देखते ही हृदय छलक उठा। कैसा माधुर्य बिखेरती बह रही है वह।

हमें विदा देने के लिए मंडला से नरेशचन्द्र अग्रवाल अपने पूरे परिवार के साथ आए थे और हमारे लिए ढेर सारी खाद्य सामग्री लाए थे। इनसे भी पुस्तकों के कारण ही परिचय हुआ था।

घाट पर सभी ने स्नान किया। दीप प्रवाहित किए और 'नर्मदे हर!' के घोष के साथ चल पड़े। मैं हौले–से बोला, 'नर्मदा! तुम दूसरों के लिए भले ही नर्मदा हो, मेरे लिए तो मोक्षदा हो!''

## अपनी प्रगति जांचिए

1. अमृतलाल वेगड़ ने किस नदी की परिक्रमा की?

    (क) नर्मदा नदी (ख) गंगा नदी

    (ग) बेतवा नदी (घ) चंबल नदी

2. मेरे सहयात्री–

    (क) कहानी है (ख) निबन्ध है

    (ग) यात्रा वृत्तान्त है (घ) रेखा–चित्र है

## 1.3 मेरे सहयात्री (यात्रा–वृत्तांत) का समीक्षात्मक विश्लेषण



अमृतलाल वेगड़ के यात्रा वृत्तांत 'मेरे सहयात्री' का आद्योपांत अध्ययन करने से एक बात जो साफ–साफ निकलकर आती है–वह यह है कि इस वृत्तांत में परावलम्बन और स्वावलम्बन के चित्र उभर कर आते हैं। इसके मूल बिन्दुओं का महत्त्व और विश्लेषण इस प्रकार है–

अमृतलाल वेगड़ जी ने अपने इस यात्रा वृत्तांत में सन् 1980 की अपनी परिक्रमा का जो वर्णन किया है। उसमें उनको एक ऐसे वृद्ध मिलते हैं जिनके प्रति उनका मन श्रद्धा भाव से नतमस्तक हो जाता है और उनको देखकर उनका आशीर्वाद लेने का उनका मन भी कर उठता है। तो आइए, देखते हैं कि ऐसी उन वृद्ध महाशय में उन्होंने क्या बात देखी जिससे उनके मन में ये आदर भाव उछाल मारने लगे। और उनके मन में आया कि मैं अपनी यात्रा तभी फिर से शुरू करता जब उनके चरणों में अपना सिर रखकर आशीर्वाद प्राप्त कर लेता।

वेगड़ जी सन् 1980 की अपनी इस परिक्रमा का स्मरण करते हुए लिखते हैं–वे अपनी परिक्रमा कर रहे थे। वे मंडला के निकट पहुंचने ही वाले थे–तभी उन्होंने देखा कि सामने से एक वृद्ध आते हुए दिखलायी दिए। पहनावे से वे भी परिक्रमा करने वाले ही लगते थे। वेगड़ जी ने उन्हें ध्यान से देखा तो उन्हें उनको देखकर ही विश्वास हो गया कि वे परिक्रमा करने वाले ही हैं। घुम्मकड़ ही हैं। वेगड़ जी ने देखा कि वे महाशय उल्टे चल रहे थे। ये देखकर वेगड़ जी को आश्चर्य हुआ और उन्होंने अपने आश्चर्य को दूर करने के लिए उनसे पूछ ही लिया। उनके प्रश्न को सुनकर वह परिक्रमा करने वाले वृद्ध बोले–ये मेरी जिलहरी परिक्रमा है। और भी अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बतलाया कि ऐसी जिलहरी परिक्रमा में नियमानुसार समुद्र को नहीं लांघा जाता है। इसमें दुहरी परिक्रमा करने का विधान होता है।

यह सब सुनकर वेगड़ जी को दूसरे आश्चर्य ने आ घेरा। वे सोचने लगे इन वृद्ध की आयु पचहत्तर वर्ष तो होगी ही। ऐसे में ये अकेले ही इस कठिन यात्रा को कैसे करने पर तुले हैं। उन्हें ये भी ज्ञात हुआ कि इस परिक्रमा के दौरान ही शूलपण की झाड़ियों में भीलों ने उन्हें लूट भी लिया था। उनके पास जो यात्रा का सामान था, वह भी छीन–छान लिया था। उन निर्दयी लुटेरों ने तो उन बेचारों का चश्मा तक भी छीन लिया था। सहृदय वेगड़ जी ने सोचा कि ऐसे में उन बेचारे वृद्ध महाशय को पढ़ने और देखने में भी आने वाली दिक्कतों का सामना करना पड़ा होगा। उन्होंने जाना कि चश्मे के अभाव में उन बेचारों को चलने में ऊंची–नीची जमीन का भी अंदाजा लगाने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ जाता था। ऐसे ही में वे अनेक बार गिर भी चुके थे। ये सब जानकर वेगड़ जी ने उनकी कुछ सहायता करनी चाही। कुछ पैसे देने चाहे। तब वे बोले, तो तब बतियाने लगे–कि, वे पैसों को हाथ नहीं लगाते। सो उन्होंने वेगड़ जी की किसी भी प्रकार की सहायता स्वीकार करने से मना कर दिया। ऐसे में वेगड़ जी सोचने लगे कि वे थोड़े दिन के लिए भी यात्रा करते हैं तो वे धन के साथ–साथ सब साधन जुटाकर भी चलते हैं। यात्रा में काम आने वाले आवश्यक सामान के साथ–साथ वे अपने संग विश्वासपात्र साथी को भी ले लेते हैं। वे सोचते हैं–एक से भले दो। वैसे इस अवस्था में वे अकेले यात्रा करने का साहस भी नहीं जुटा पाते हैं। यही सब सोचकर वेगड़जी फिर उन वृद्ध महाशय के बारे में सोचने लगे–और वे बेचारे वृद्ध

टिप्पणी

अकेले, बिना किसी संगी–साथी के किसी भी वस्तु की आवश्यकता को आवश्यक न समझते हुए अकेले ही ऐसी कठिन यात्रा करने में लगे हुए थे। ऐसे में वे कब, कितने दिन में घर पहुंचेंगे। रास्ते में किन–किन और कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में घर पहुंचेंगे भी या फिर किसी कठिनाई में पड़ गए तो पता नहीं कुछ भी घट सकता है। वेगड़ जी फिर मन–ही–मन सोचने लगे, फिर भी वे अपनी ही मस्ती में अपनी यात्रा में आगे की चिन्ता न करते हुए वर्तमान को ही जीते चले जा रहे हैं। धन्य है उनका यह कृत्य। वह भी इस आयु में।

अपने विषय में बतलाते हुए वेगड़ जी ने लिखा है कि तभी उन्होंने भी मन–ही–मन ठान लिया कि जब वे अगर 75 वर्ष होंगे, तब जितनी भी सम्भव हो सकेगी, नर्मदा की यात्रा अवश्य करेंगे। लेकिन, फिर उन्होंने हिसाब–किताब करके जाना कि अभी तो उनके 75 वर्ष के होने में 22 वर्ष का लम्बा अन्तराल है। ऐसे में फिर वे स्वयं को अनिश्चितता की स्थिति में पाते हुए सोचने लगते हैं कि जाने वह आयु आये भी अथवा न भी आए।

फिर जो आगे वेगड़ जी लिखते हैं वह ऐसे जैसे मानो उन्होंने पाला मार लिया है और सचमुच मार ही लिया था–वे 3 अक्तूबर, सन् 2002 के दिन अपनी आयु के 75वें वर्ष में प्रवेश कर ही गए। सो, उन्होंने अपनी 22 वर्ष पहली सोच को अमलीजामा पहनाने के मन्सूबे बनाने शुरू कर दिए। समय बीता और 7 अक्तूबर सन्, 1977 को उन्होंने नर्मदा की अपनी पहली पदयात्रा शुरू की। उस बात को भी 7 अक्तूबर को 25 वर्ष पूरे हो गए। उन्हें बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हुआ। ऐसे में वे फिर मन्सूबे बनाने लगे, सोचा कि नर्मदा की पदयात्रा की रजत जयन्ती को तो नर्मदा तट की पैदल यात्रा करके ही मनाना चाहिए। और ये लो, उनके इस अपने जाने–पहचाने और पाले हुए मन्सूबे के पूरे होने का समय भी आ ही पहुंचा।

इस यात्रा वृत्तांत की जब बातें करते हैं तब लगता है कि वेगड़ जी को नर्मदा के सौन्दर्य ने एक बड़ी सीमा तक अपने आकर्षण में बांध रखा है और वे स्वयं भी इस आकर्षण के आगोश से मुक्त भी नहीं होना चाहते हैं। ऐसे में वे कहते हैं कि उन्हें यात्रा की तिथि के विषय में कोई विशेष सोच नहीं रहा कि वे इस तिथि ही में अपनी नर्मदा–यात्रा, वह भी पैदल यात्रा को मूर्तरूप दे पाएंगे। ऐसे में लगता है कि नर्मदा से उन्हें विशेष ही लगाव रहा है। वस्तुतः वे उस लगाव से मुक्त भी नहीं होना चाहते हैं। उन्होंने स्वयं को जहाज के पंछी की उपमा देते हुए बताया है कि वे नर्मदा से स्वयं को इतना जुड़ा पाते हैं कि जहाज के पंछी की तरह चाहें वे कहीं तक भी, कैसी भी उड़ान ही क्यों न भर लें, फिर भी वे लौटकर नर्मदा के सामीप्य में ही रहना चाहते हैं। उन्होंने अपनी नर्मदा पैदल यात्रा के सम्बन्ध में बतलाया है कि वैसे तो वे दोनों तटों को मिलाकर कुल 2624 किलोमीटर तक की नर्मदा की पूरी परिक्रमा कर चुके हैं। किन्तु इस बार की नर्मदा की पदयात्रा करने को वे अपना पुनर्जन्म मानते हैं।

वे अपनी आगे की यात्रा के बारे में लिखते हैं कि सन् 1977 में वे जबलपुर से मंडला तक पैदल–यात्रा पर चले थे। इस बार भी वे वहीं से ही अपनी पदयात्रा शुरू करना चाहते हैं लेकिन बरगी बांध के कारण सब कुछ बदला–बदला सा लगता है। न वे गांव रहे, न वे पगडंडियां ही रही हैं और न वे नदी के किनारे ही बच पाए हैं। ऐसे में ऐसा भान होता है कि यहां की नर्मदा कहीं लुप्त हो गई–लगती है। इस यात्रा में

टिप्पणी

उनके साथ, उनके घर–परिवार से विशेष लगाव रखने वाली उनकी सुपरिचित कान्ता ने तो पहले से चलने की हामी भरवा रखी थी। उसकी उत्सुकता देखकर वेगड़ जी ने भी उसको वचन दे दिया था। वैसे भी कान्ता का विशेष लगाव वेगड़ जी के 6 माह के वंशज से रहा है। यह छुटका वेगड़ जी का पौत्र है। वह तो कान्ता के गले से चिपका ही रहता था। फिर बच्चा तो उसका ही हो जाता है, जो उसे दिल, की गहराइयों से चाहता हो। कान्ता के साथ ऐसा ही उनके पौत्र का लगाव था। वैसे भी बच्चा तो स्पर्श मात्र से ही स्नेह, प्यार–दुलार को सूंघ लेता है। यह प्रकृति प्रदत्त गुण बच्चे को ईश्वर की ओर से मिला हुआ होता है।

वेगड़ जी सोचते हैं कि कान्ता ऐसे सुखमय वातावरण को छोड़कर कैसे उनके साथ नर्मदा की ऊबड़–खाबड़ पगडंडियों पर चल पायेगी। धूप और ठण्ड का अलग से प्रकोप रहेगा।

ऐसे ही असंगत विचारों से वेगड़ जी आगे बढ़ते हुए सोचते हैं कि उनके बेटे का सहपाठी अशोक तिवारी जो उनके संग नारेश्वर से लेकर 24 अवतार तक की चालीस दिनों की लम्बी यात्रा में पैदल चला था। वह भी तो उनके साथ इस बार भी चल रहा है। वेगड़ जी मानते हैं कि अशोक बहुत अच्छा लड़का है। वह उनके साथ पुत्रवत् ही व्यवहार करता है। पूरे समय यात्रा में उनका पूरा–पूरा ध्यान हर प्रकार से रखता है। सो, ये ही सब सोचकर वेगड़ जी ने पूर्णरूपेण संतोष की सांस ली।

आगे भी वेगड़ जी इस पद–यात्रा के विषय में बतलाते हैं कि उनकी इस यात्रा में साथ चलने के लिए बम्बई से चार लोग और भी शामिल हो रहे हैं। उनमें 64 वर्ष के रमेश शाह हैं तो 61 वर्षीया उनकी पत्नी हंसा भी हैं। उनका 36 वर्षीय पुत्र संजय और उनके ही परिवार की घनिष्ठ मित्र 56 वर्षीय गार्गी देसाई भी हैं। सो, उनकी इस यात्रा में उनके सहयात्री 6 बन गए हैं। इससे वेगड़ जी और भी निश्चित हुआ स्वयं को मानने लगे हैं।

इस यात्रा में अपने इन चारों सज्जन सहयात्रियों के विषय में वेगड़ जी विचित्र सी ही बात बतलाते हैं कि इन चारों को न तो वे जानते हैं और न वे चारों ही वेगड़ जी के सुपरिचित ही हैं। इन दोनों के बीच परिचय कराने का कार्य तो वेगड़ जी की दो गुजराती पुस्तकों ने किया है। बम्बईवासी इन चारों ने गुजराती में लिखी वेगड़ जी की दो पुस्तकें पढ़ी। उनके विचारों और लेखनी से प्रभावित होकर सम्पर्क साधा। वेगड़ जी ने सम्बन्ध बढ़ाया और पत्र–व्यवहार तथा दूरभाष से नजदीकियां बढ़ी और दोनों एक–दूजे के चेहरों से अन्जान सज्जन एक हो गए और ऐसे एक हुए कि एक–दूसरे के सहयात्री ही बन गए। कौन कब कहां किस प्रकार किससे मिल जाएगा–ये सब भी उसी के खेल निराले होते हैं। वेगड़ जी रमेश शाह और उनकी पत्नी हंसा जी के विषय में और भी जानकारी देने के लिहाज से बतलाते हैं कि ये दोनों पति–पत्नी फ्रांस, इंग्लैंड और अफ्रीका में भी लगभग 20 वर्ष तक जीवन–यापन कर चुके हैं। इस पते से पता लगता है अथवा ऐसा भान होता है कि ये दोनों ही पति–पत्नी घुम्मकड़ प्रवृत्ति के रहे होने चाहिए। खैर, जो भी हो, अब तो सहयात्री बनकर ही वेगड़ जी के साथ यात्रा का आनंद लेंगे ही।

वेगड़ जी बतलाते हैं कि इन सहयात्रियों में एक और भी दिल्ली से उनके सहयात्री जो बनेंगे, वे फिर उनका परिचय देने लगते हैं। उनका परिचय भी वेगड़ जी की पुस्तकों के जरिये ही हुआ है। सो वेगड़ जी की इस पदयात्रा में कुल मिलकर 7

सहयात्री हो जाते हैं। वैसे तो वेगड़ जी को मिलाकर कुल 8 पदयात्री हो जाते हैं। इसे एक काफिले की उपमा भी दी जा सकती है। लोग मिलते रहे और काफिला बनता गया।

**टिप्पणी**

इस वृत्तांत में वेगड़ जी की स्पष्टवादिता के भी दर्शन होते जाते हैं, उदाहरणार्थ वे अपने मन की बात को उजागर करते हुए लिखते हैं। यह जानकर कितना सुख मिलता है जब कोई दूसरा पूरी तरह अपरिचित अनजान मुझ पर विश्वास करता है और मेरे साथ मेरा सहयात्री बनने को तत्पर हो जाता है। वे कहते हैं मुझे तो यह देखकर भी प्रसन्नता हो रही है कि नर्मदा नदी के सौन्दर्य की गूंज दूर–दराज तक भी पहुंच रही है। इन विचारों में वे खो से जाते हैं। वेगड़ जी का प्रेम, लगाव, झुकाव नर्मदा के प्रति स्पष्टरूपेण परिलक्षित होता है। उनका प्रकृति प्रेम स्पष्ट जगजाहिर होता है।

वेगड़ जी अपने–परायों से किस सीमा तक जुड़ जाते हैं इसका पता उनकी इस बात से लगता है कि उन्हें इस अवसर पर अपने विश्वस्त साथी छोटू की कमी भी कचोटती है। चूंकि वह इस बार साथ न जा पायेगा। कारण, इस बार वह अपने गांव जो गया हुआ है। वह भी उनकी प्रायः सभी यात्राओं में उनके साथ–साथ चलने वालों में हुआ करता है। किन्तु उसकी अनुपस्थिति में इस बार उनके साथ उसकी जगह गरीबा लेगा। वैसे उसकी नाम तो सोहन है। परन्तु उसकी बहन उसे गरीबा ही कह कर पुकारती है। सो, वेगड़ जी भी उसे इसी नाम से बुलाते हैं। इस प्रकार अब वेगड़ जी का एक सहयात्री और बढ़ जाता है। कुल मिलाकर अब 9 लोग हो जाते हैं। लगता है तैयारियां खुद–ब–खुद होती चली जा रही हैं।

और ये लीजिए इस यात्रा की प्रारम्भ होने की तिथि भी आ ही गई और समय भी आ गया। 5 अक्तूबर, सन् 2002, समय दोपहर का। वेगड़ जी अपने सभी सहयात्रियों के संग अपने घर से विदा होकर सर्वप्रथम मंडला गए। ये सफर बस द्वारा तय किया। वहां से 20 किलोमीटर की दूरी पर पहाड़ी पर स्थित गुरु स्थान जाने के लिए जीप की सहायता ली गयी। तब तक रात्रि ने पैर पसार दिए थे। एक कच्ची सड़क उस पहाड़ी तक जाने की थी। उसी से पहाड़ी पर चढ़कर गुरु स्थान जाना था। इस सड़क का उपयोग कभी–कभी ही किया जाता है। शायद समय को देखकर या फिर शॉर्ट–कट मानकर भी ऐसा किया जाता हो। सो, अधिक उपयोग में न आने के कारण इस कच्ची डगर पर घास उग आती है। स्वाभाविक भी है। ऐसे में सड़क की जमीन दिखलायी नहीं पड़ती थी। सो, सम्भलकर सावधानी से जीप चलाकर ड्राइवर वेगड़ जी और उनके सहयात्रियों को गुरु स्थान तक ले गया। लगता था कि जीप ड्राइवर और उस कच्ची सड़क की गहरी छनती होगी। उसके विश्वास से और जीप को निर्भीकता से चलाये जाने से यह बात स्वयं ही सिद्ध हो गयी थी।

वेगड़ जी अपने पथ के साथियों के संग वहां बने मन्दिर के बरामदे में निद्रा का आनंद लेने लगे। थोड़ी ही देर में ऐसी नींद प्रायः सभी यात्रियों को आयी कि वे सभी खर्राटों की अन्त्याक्षरी में भाग लेते दिखलायी पड़ने लगे। शायद थकान के कारण भी ऐसा होना सम्भव हुआ होगा। इस अन्त्यक्षरी को वेगड़ जी जुगलबन्दी भी कहने को इच्छुक दिखलायी पड़े। उनका मानना था कि उनका एक सहयात्री तो खर्राटों का कीर्तिमान ही स्थापित करने को तत्पर लग रहा था। और ये लो, वेगड़ जी यहां भी स्पष्ट बोलने से नहीं चूके। व्यक्त करने लगे–खर्राटों की इस जुगलबंदी में वे भी थे,

किन्तु जिम्मेवारी समझो या फिर श्वान–निद्रा वाली कहावत–उनको इतना भान अवश्य था कि वे उस जुगलबंदी में गंगू तेली ही अधिक सिद्ध हो रहे थे। बाकी यात्री तो राजा भोज बनने की होड़ में शामिल लग रहे थे।

टिप्पणी

वेगड़ जी शीघ्र उठ गए। सो भोर की वेला का आनन्द लेने लगे–नीचे वाले खेतों से कुहरा उठकर धुएं के रूप में ऊपर आ रहा था या फिर हवा उसको धकेल कर ला रही थी, जो भी हो, वेगड़ जी को यह सब देखने में बड़ा ही मजा आ रहा था। धांसू धुंध में कोहरा खेतों पर झीनी चादर का सा प्रतीत हो रहा था। ऐसे खेत अत्यन्त पवित्र लग रहे थे। प्रकृति और मौसम का ये मंजर वेगड़ जी को अति आनंददायक प्रतीत हो रहा था। इससे स्पष्ट होता है कि वेगड़ जी प्रकृति–प्रेमी भी हैं।

वेगड़ जी फिर अपने मन की पोटली खोलते से लगे और कहने लगे–प्रकृति के सौन्दर्य में एक पावन भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उसका अनुभव होता है या फिर वह अनुभव स्वयं कराता है। जबकि मानव–निर्मित सौन्दर्य में सदैव ऐसा दर्शन नहीं होता है। उनका मानना है कि पावनता की तो बात ही छोड़िए। कभी–कभी तो वह श्लील भी नहीं लगता। श्लील होता ही नहीं है। उसकी दिशा अश्लीलता की ओर अधिक जाती, लगती है। ऐसे में हम सब चुप्पी साधे बस देखते रहने के लिए ही विवश से होते हैं अथवा लगते हैं। कारण, यह सब कला के नाम पर थोपा जाता है। अब कला की परिभाषा कोई भला मानुष ईमानदारी से समझे तो ही तो कुछ बात बनें ना। ऐसे में सब गुड़ गोबर–सा होकर रह जाता है।

अब वेगड़ जी अपने यात्रा वृत्तांत को आगे वर्णित करते हुए लिखते हैं कि वहां का कर्मचारी फगनू रात्रि में ही गुरु स्थान/मन्दिर में आ गया था। फगनू है तो साठ बरस का। किन्तु उसमें फुर्ती युवाओं जैसी है। बला का कद्दावर और बलवान है वह। उसका शरीर गठा हुआ और मजबूत है। फिर भी बेचारे के अधिकांश दांत भगवान को प्यारे हो गए हैं। इसीलिए आयु उसके चेहरे पर वास्तविक आयु से अधिक नग्न नृत्य करती सी प्रतीत होती है। अब यहां वेगड़ जी फिर से साफगोई पर उतर आते हैं। बतियाते हैं कि उनके भी सामने के दांत नहीं हैं। परन्तु उन्होंने लगवा लिए हैं–यह उनका दूसरा सत्य। और तीसरा सत्य वे ये उगलते हुए बतलाते हैं– आजकल नकली दांत भी दो प्रकार के होते हैं–स्थायी भाव वाले और संचारी भाव वाले। चौथे सत्य को भी वे ही स्वयं उजागर करते हैं–कहते हैं–मेरे दांत स्थायी भाव वाले हैं। इसका भी कारण बतलाते हुए वे पांचवें सत्य पर आ जाते हैं। बोलते हैं संचारी भाव वाले दांतों को रात्रि में हवेली खाली कर देनी पड़ती है। यहां हवेली से तात्पर्य मुंह से है–अर्थात् दांतों के सेट को मुंह से निकालकर डब्बी में बंद करके रखना पड़ता है। वह भी चूहों के डर से। कहीं चूहे ही न रात्रि में संचारी भाव वाले दांतों का इस्तेमाल करना शुरू न कर दें। चूहों के आतंक का साम्राज्य रात्रि में ही अधिक होता है। रात्रि में वे निर्भय होकर खुला खेलते हैं। कहते हैं न कि लालच बुरी बला। जो भी हो, वेगड़ जी पांच–पांच सत्यों को एकदम से उगल देते हैं। वास्तव में ऐसे में वे जीवट होने की सही पहचान लगते हैं। उनकी यह शैली लेखन में नया लालित्य कर देती है।

अब तक के किस्सों में अमृतलाल वेगड़ जी की स्पष्टवादिता कदम–कदम पर उनके प्रत्येक विचारों में नर्मदा के जल सी कल–कल करती दृष्टिगोचर होती है। वैसे आज के दौर में आदमी स्पष्ट बोलने से कतराता है। कारण, उसका कथनी और करनी

टिप्पणी

में भारी अंतर आ गया लगता है। आज का अधिकांश आदमी सिद्धान्तहीन, अपने में उलझन भरा चला तो जा रहा है, लेकिन उसे न तो चलना आ रहा है और न ही उसे सही रास्ता ही पता है। बस, चलते जाने की प्रक्रिया जारी है। इसे मृगतृष्णा की सी स्थिति भी मान सकते हैं।

वेगड़ जी बतलाते हैं कि वे और उनके सभी सहयात्री साथी सारा दिन उसी पहाड़ी पर रहे। वह पहाड़ी छोटी थी। इसलिए वह भली–भली सी सुहावनी स्पष्ट दिखलायी पड़ रही थी। यह पहाड़ी वेगड़ जी को पेपरवेट की मानिंद लग रही थी। इस पहाड़ी के समीपस्थ खेत कहीं उड़ न जाएं। इसी से उनके ऊपर यह पहाड़ी पेपरवेट का कार्य करती सी जान पड़ रही थी। इन विचारों में वेगड़ जी का कवि मन मुखारित हुआ–सा जान पड़ता है। वह कहावत चरितार्थ है न, 'जहां न जाए रवि, वहां जाए कवि'। सो, पहाड़ी और खेतों को लेकर जो उनके भाव आए हैं–वह एक कवि मन के ही हो सकते हैं। कवि का हृदय अत्यन्त भावुक होता है। वह तीरे–तीरे भी चलता और मंझदार में भी जीवन जीता अपनी यात्रा तय करता रहता है।

वेगड़ जी अपनी यात्रा के वृत्तांत को आगे बढ़ाते हुए बतलाते हैं कि रात का अंधकार छाते ही दिल्ली से डॉक्टर अखिल मिश्र भी उनमें आकर मिल गए थे। वे अकेले तो शायद आने में कठिनाई का सामना करते। सो, मंडला कॉलिज के दो हिन्दी अध्यापक उनको लेकर आए थे। वे दोनों दो होते हुए भी एक ही थे। अर्थात् पति और पत्नी। सो, कहने को तो दो थे, किन्तु एक ही थे। यहां अर्द्धनारीश्वर का ख्याल उभर आता है। उनके नाम अरविन्द गुरु और मंजरी हैं। वेगड़ जी लिखते हैं कि उनमें से किसी से भी यह पूछने का साहस उनका न हुआ, उनमें से सीनियर कौन है और जूनियर कौन? इसको उन्होंने साहस के स्थान पर धृष्टता का नाम दिया। वैसे ये पूछना उचित भी नहीं लगता। कारण, इसका यहां कोई सीधा–सीधा मतलब भी नहीं होता। फिर भी अपने पूछने का कारण भी बतलाते हुए वेगड़ जी ने अपने पास से घटित एक घटना का वर्णन भी किया है।

अब कोई पूछे कि पति–पत्नी में छोटा बड़ा होने समझने का मतलब ही क्या। पति पत्नी यदि नौकरी पेशा हैं। तो चाहे बाहर/कार्यालय में किसी भी ओहदे पर हों। किन्तु यह ओहदे वाली बात घर में नहीं आनी चाहिए। इसी प्रकार की बातें घर में पति–पत्नी में खटास पैदा करने में सहायक हो जाती हैं। कारण, घर में पति–पत्नी और बच्चे होते हैं, वहां पद नहीं होते। उनमें भी लोअर, ऊपर तो होना ही नहीं चाहिए। घर/परिवार में तो वे एक गाड़ी के दो पहियों के समान ही होते हैं। सो, इस प्रसंग में मिसिज वर्मा का यह उत्तर एकदम से संस्कारों की धज्जियां उड़ाता सा लगता है। इसी सन्दर्भ में मुझे अपने कार्यालय का एक प्रसंग याद हो आता है। हमारे कार्यालय की निदेशिका जी कार्यालय के परिसर में ही बने निदेशक बंगले में सपरिवार रहती थी। परिवार में पति–पत्नी और उनका जवान बेटा भर थे। एक बार की बात, उनके पतदेव बीमार हुए। सो, घर में ही विश्राम कर रहे थे। जब हम कर्मचारियों को पता लगा। तब मैंने अपने विभाग के साथी कर्मचारियों के साथ उनके आवास पर जाकर उन्हें देखकर आने का मन बनाया। सो, हम सभी लंच में उन्हें देखने गए। डोर–बेल बजायी। द्वार हमारी निदेशिका जी ने ही खोला। हमने नमस्ते करते हुए पूछा–सर, कैसे हैं मैडम! सुना तो उन्होंने हल्की मुस्कान चेहरे पर लाते हुए सभी को अन्दर आने को कहा। हम चार–पांच साथी उनके साथ–साथ उसी कक्ष में पहुंचे, जहां उनके पतिदेव बिमारी की अवस्था में लेटे हुए थे। वे जागे हुए थे। हमने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने नमस्ते लेते हुए हमें पास ही रखे सोफे

टिप्पणी

पर बैठने को कहा। हम बैठ गए। उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछा। बातें की। उन्होंने जवाब दिए। तब तक निदेशिका जी स्वयं ही ट्रे में पानी के गिलास लायी, तो हमने उनसे सकुचाते हुए कहा–''मैडम ये आप.... ।'' ''आप लोगों की मैड़म जी मैं आफिस में हूं। यहां में अपने घर में गृहणी हूं। यहां ये सब नहीं चलेगा।'' वे दक्षिण–भारतीय थीं। ये सुनकर हम सब चुप हो गए और उनके पति के शीघ्र अच्छे होने का आश्वासन देते हुए वापिस अपने विभाग में आ गए। हमने देखा कि वहां घर में उनके चेहरे–मोहरे और व्यवहार में तनिक भी उनके पद की गरिमा वाली बात नहीं थी। वैसे वे कार्यालय में बड़ी ही सख्त प्रशासिका थी किन्तु घर में तो वे गृहणी ही थी। सारांश में, हमें समय और देश, काल के अनुसार अपने व्यवहार को बनाये रखना ही सराहनीय रहता है।

हां तो वेगड़ जी ने अपने यात्रा–वृत्तांत की बात को आगे बढ़ाते हुए कहा–जब डॉक्टर अखिल मिश्र के साथ अरविन्द गुरु और उनकी पत्नी मंजरी ने वेगड़ जी को देखा, तो देखते ही दोनों ने उनके चरण स्पर्श किए। तत्पश्चात् मंजरी बोली–जबसे आपकी पुस्तकें पढ़ी हैं, तभी से मन में था कि मिलते ही आपके चरण स्पर्श करूंगी। वेगड़ जी इस सन्दर्भ में बतलाते हैं कि जब उन्हें लोग देखते हैं अथवा मिलते हैं तब वे भी अकसर ऐसा ही करते हैं। अर्थात् चरण–स्पर्श करते हैं। ऐसे में वे उन्हें रोकते नहीं हैं। वे बतलाते हैं कि वृद्धावस्था के कारण भी लोग चरण–स्पर्श करने लगते हैं। दूसरे उनका मानना ये भी है कि नर्मदा के प्रति मेरी श्रद्धा, आस्था को जानते हुए भी लोगों में मेरे प्रति श्रद्धा स्वयं ही उमड़ पड़ती है। ऐसे में उन्हें लगता है कि वे उनके नहीं अपितु नर्मदा मैय्या के ही चरण–स्पर्श कर रहे हों। वे तो बस, उनके और नर्मदा मैय्या के बीच अपने आपको एक मध्यस्थता की भूमिका में ही समझते हैं।

अमृतलाल वेगड़ जी की इस वृत्तांत–यात्रा में अब उनसे अलग 10 लोग हो गए हैं। ये ही वेगड़ जी की वृत्तांत–यात्रा के सहयात्री बने हैं।

अगली पंक्तियों में वेगड़ जी अपने सहयात्री साथियों के साथ नर्मदा के घाट पर पहुंचकर थोड़ा विश्राम करके स्नान करने में लग गए। साथ ही सभी ने दीप भी जल में प्रवाहित किए और फिर नर्मदे हर–हर के घोष के साथ अगले पड़ाव के लिए चल दिए। तभी अमृतलाल वेगड़ जी धीरे से बुदबुदाये–नर्मदा! तुम दूसरों के लिए भले ही नर्मदा हो। परन्तु मेरे लिए तो मोक्ष प्रदान करनी वाली ही हो। इसके साथ ही अमृतलाल वेगड़ जी की लेखनी अपने सहयात्री साथियों के साथ यात्रा वृत्तांत सुनाकर विराम लेने लगती है।

वेगड़ जी की इस गद्य–रचना के विषय का ताना–बाना बिखरा–बिखरा सा लगता है। तारतम्यता का अभाव खलता है।

अमृतलाल वेगड़ जी का नर्मदा के प्रति लगाव इस यात्रा–वृत्तांत में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। वैसे भी हमारे देश में नदियों को माता का स्थान दिया गया है।

नर्मदा के प्रति भी वेगड़ जी का आदर भाव इस वृत्तांत में देखा जा सकता है। जब वे सन् 1977 की जबलपुर से मंडला तक की अपनी यात्रा का वर्णन करते हैं तब बरगी बांध के कारण पैदा हुई नर्मदा की गलाघोटू भौगोलिकता का भी वर्णन करते हैं। उसके प्राकृतिक छटा के नष्ट–भ्रष्ट और बदल जाने की बात भी बतलाते हैं। ऐसे में वे इस यात्रा के रास्ते को बदलने का भी वर्णन करते हैं। नर्मदा के प्रति उनके जो भाव हैं, वे भी प्रशंसनीय बन पड़े हैं–वे भाव प्रकट करते हैं कि हे नर्मदा तुम चाहे औरों के

लिए नदी ही हो। किन्तु मैं तो तुम्हें मोक्षदायिनी ही मानता हूं। तुम्हीं मेरे लिए भवसागर रूपी संसार से मुक्ति दिलाने वाली हो। यहां उन्होंने नर्मदा नदी को माता का दर्जा न देकर उससे भी ऊपर मोक्षप्रदायिनी का स्थान दिया है।

टिप्पणी

इस यात्रा–वृत्तांत में एकाकी, आत्मनिर्भर, त्यागमय और अकिंचन जीवन का भी साक्षात्कार कराया गया है। जिलहरी परिक्रमा करने वाले वृद्ध के रूप में। वे वृद्ध उन्हें परिक्रमा सम्बन्धी ज्ञान भी देते हैं। अपनो से बड़ों के प्रति भी वेगड़ जी नतमसतक के भाव रखते हैं, जो कि उनके संस्कारों पर प्रकाश डालते प्रतीत होते हैं। इसके साथ ही सहयात्रियों के साथ यात्रा करने की बात भी रखी गई है।

यात्रा हो अथवा पदयात्रा ही क्यों न हो। 'एक से भले दो' की बात को ही प्रधानता दी गई है। यात्रा में सहायता की आवश्यकता तो एक–दूजे को पड़ती है। अब ये अपनी मनोवृत्ति है कि इन दोनों में से कोई किसको प्रधानता देता है। किसका चुनाव करता है।

और भी अनेक लेखकों ने यात्राएं की हैं। वे भी घुम्मकड़ प्रवृत्ति के रहे हैं, इनमें राहुल सांस्कृत्यायन और बाबा नागार्जुन आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

कहते हैं सुनकर, पढ़कर, देखकर और फिर इन तीनों को विचार कर, समझकर ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु जो ज्ञान और दर्शन देखकर प्राप्त किया जाता है, उसका तो आनंद ही अलग होता है। अब देखने के लिए तो घुम्मकड़ प्रवृत्ति का होना अति–आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार की यात्राएं या तो पैदल चलकर की जाती हैं या फिर लम्बी यात्राएं परिवहन की सहायता से की जानी सम्भव हैं।

अमृतलाल वेगड़ जी का यह यात्रा–वृत्तांत 'मेरे सहयात्री' बहुत कुछ बतलाता–समझाता प्रतीत होता है। विशेष रूप से उनकी स्पष्टवादिता इसमें मुखरित होती प्रतीत होती है।

## मेरे सहयात्री की भाषा और शैली

अमृतलाल वेगड़ जी मूलतः गुजराती भाषा के लेखक रहे हैं। इसलिए हिन्दी व्याकरण की दृष्टि से कहीं–कहीं भाषा–दोष आ गया है जो कि इस वृत्तांत को पढ़ते हुए अखरता–सा प्रतीत होता है। उसमें भी शाब्दिक अशुद्धि तथा एक वचन और बहुवचन का दोष अधिक बाधा पैदा करता–सा लगता है। दूसरा कारण ये भी रहा है कि वेगड़ जी ने हिन्दी भाषा और लिपि में गुजराती भाषा की अपेक्षा कम ही लिखा है। इसलिए भी भाषा दोष आया लगता है, जो कि अहिन्दी भाषी लेखक के लिए सम्भव भी है। फिर भी उन्होंने हिन्दी में कलम चलायी है। साहस किया है। अपने विचार प्रकट किए हैं, इसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाए, सो कम ही है। कारण, लेखन चाहे कैसा भी हो, किसी भी भाषा में हो, उसमें विचारों की प्रधानता प्रमुख मानी जाती है। अब जहां तक विचारों की प्रधानता की बात हैं, उसमें वेगड़ जी पूरी तरह खरे उतरे हैं। उन्होंने इस वृत्तांत में उपमाओं का भी सहारा लिया है। उपमाएं अच्छी बन पड़ी हैं।

इस पूरे यात्रा–वृत्तांत में वेगड़ जी की सह्रद्यता के भी दर्शन होते हैं। दूसरी तरफ उनका कवि मन भी उछाले मारता दीखता है। वेगड़ जी निबंधकार भी रहे हैं, सो, निबन्ध की गंध भी इस यात्रा वृत्तांत में महसूस की जा सकती है।

अपने इस यात्रा–वृत्तांत के अर्न्तगत वेगड़ जी ने लेखक और उसके लेखन की महत्ता के भी दर्शन पाठक की दृष्टि से खूब–ही–खूब कराये हैं–ये बात उनकी यात्रा में जो उनके सहयात्री बने हैं। उनमें से ज्यादातर उनके लेखन और प्रकाशन के पाठक भी रहे हैं–उनकी दृष्टि में लेखक और उसके लेखन का कितना मान है, सम्मान है, आदर भाव है–यह भी इस यात्रा वृत्तांत में स्पष्ट देखा जा सकता है। वैसे, लेखक तो सामान्य जन ही होता है। हां, उसे उसका लेखन और उसकी गुणवत्ता तथा सार्थकता ही मान–सम्मान योग्य दर्जा दिलाती है।

मेरे सहयात्री (यात्रा–वृत्तांत) की लेखन शैली इसके विषय के अनुकूल ही बन पड़ी है। अहिन्दी भाषा–भाषी होते हुए भी अमृतलाल वेगड़ जी ने हिन्दी साहित्य की इस विधा की लेखन शैली को ज्यादातर संतुलित ही बनाये रखने का प्रयास किया है–इसमें वे किसी सीमा तक सफल भी रहे हैं।

वस्तुतः वाक्य रचना का वह विशिष्ट प्रकार जो लेखक की भाषा सम्बन्धी निजी विशेषताओं का सूचक होता है, वही उसकी भाषा–शैली कहलाता है। इसके उदाहरण स्वरूप कहा जा सकता है–कि, जैसे सूरदास की भाषा–शैली निराली है। उसी की तर्ज पर कह सकते है कि वेगड़ जी ने भी इस अपने यात्रा–वृत्तांत को अपनी ही विशेष लेखन–शैली में प्रस्तुत किया है। वैसे उनकी लेखन–शैली सरल, सहज और समझ में आने वाली सीधी–सपाट बन पड़ी है। उसकी भाषा भी उसी के अनुरूप सधी हुई है। शैली से तात्पर्य अपनी बात को कहने के ढंग से भी होता है।

सारांश में यह यात्रा–वृत्तांत अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल माना जा सकता है।

### अपनी प्रगति जांचिए

3. अमृतलाल वेगड़ ने अपनी पहली पदयात्रा कब शुरू की?
   (क) 3 अक्टूबर, 2002 (ख) 5 अक्टूबर, 2002
   (ग) 7 अक्टूबर, 2002 (घ) 10 अक्टूबर, 2002
4. अमृतलाल वेगड़ मूलतः किस भाषा के लेखक रहे हैं?
   (क) मराठी (ख) गुजराती
   (ग) हिन्दी (घ) असमियां

## 1.4 मध्य प्रदेश की लोककलाएं

भारतीय संस्कृति में लोककला की अपनी एक प्रवाहमयी गति है, जो सदैव अमिट रहती हैं। लोककला की रचना का उद्देश्य स्थान–विशेष की परम्परा को जीवित बनाये रखना है। लोककलाएं लोकसंस्कृति का निर्माण करती हैं एवं लोकसंस्कृति विशाल जन–समुदाय की भावनाओं को व्यक्त करती है। वास्तव में 'लोक' शब्द स्वयं में कलाओं की देशज परम्परा को समझने में सहायक होता है एवं लोक की जड़ें गहरी होती हैं। मध्य प्रदेश की लोककलाओं के परिदृश्य पर दृष्टिपात करने से पहले लोककला की अवधारणा, उसके स्वरूप, परिभाषाओं एवं विशेषताओं से अवगत होना आवश्यक है।

लोककला एक संस्कृति है। किसी भी देश का लोक उस देश की पहचान होता है। प्रो. अमर सिंह के शब्दों में– ''संस्कृति निरंतर प्रवाहमान एक धारा है, जो लोक में बहती रहती है, उसमें नया या पुराना कुछ नहीं होता, श्रेष्ठ और निम्न की श्रेणियां हो सकती हैं। यह इतिहास का रहस्य है, सृष्टि की प्रक्रिया का रहस्य है कि कैसे कुछ जातियां समाज व देश सृष्टि की चलती धारा के अनुरूप हो जाती हैं और उन्नति करती हैं।''

हमारी लोककलाएं जब तक हमारे जीवन का, नित्यप्रति का हिस्सा बनी रहती हैं, तब तक हमें उनमें छिपे आनन्द का पता ही नहीं चलता, परन्तु जैसे ही उसे किसी कैनवास पर बना कर कलादीर्घा में लगा देते हैं, तो वे ध्यान खींचती हैं। दूधनाथ सिंह ने अपने एक संवाद में कहा था कि जब कोई चीज मूर्त्त हो जाती है, तो उसकी छानबीन अपने आप में एक सघन आनन्द और आस्वाद का अनुभव बन जाती है।

## 1.4.1 लोक और शास्त्रीय कला : परिभाषा एवं अन्तर्सम्बंध

लोक तथा शास्त्रीय परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों अवधारणाओं का विकास परस्पर एक दूसरे के अंर्तसंबंधों का परिणाम है। लोक परम्परा का विकास, शास्त्र की जननी है। लोक भावों के अशेष भंडार में से कुछ परिष्कृत मोती ही शास्त्र स्वरूप हैं। लोक परम्पराओं का विकसित रूप अपनी प्रामाणिक अवस्था में शास्त्रीय स्वरूप धारण करता है। लोक की छोटी–छोटी परम्पराएं, अवधारणाएं, कथाएं, मिल कर शास्त्रीय पद्धति रूपी अथाह समुद्र का स्वरूप धारण कर लेती हैं और आने वाली पीढ़ी के लिए यही पद्धतियां जीवन पथ का प्रदर्शन करने वाला प्रामाणिक साधन बन जाती हैं।

किसी भी शास्त्रीय पद्धति का विकासक्रम उसमें निहित अथवा उससे अंतर्सम्बंधित लोक का इतिहास होता है, जोकि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक परम्पराओं की लम्बी यात्रा का प्रामाणिक तथ्य होता है। इन पद्धतियों में जीवन संघर्ष, सभ्यताओं का परिवर्तन तथा जीवन पद्धतियों में बदलाव का प्रत्येक परिदृश्य चित्रित मिलता है।

कोई भी शास्त्र बिना लोक की अवधारणा के अकल्पनीय है। क्योंकि लोक में जीवन के क्षण–क्षण में उत्पन्न होने वाले भावों को पिरोया जाता है, समाज की शायद ही ऐसी कोई घटना हो जो लोककलाओं के रूप में विकसित न हुई हो। इन कलाओं में अनुभव का सादापन तथा सच्चाई खुले मुंह बोलती है। लोकगीत, लोकोक्ति, कहावतें, लोकनृत्य, लोकगाथाएं, लोक साहित्य जीवन के प्रत्येक रहस्य को उद्‌घाटित करते हैं, और इन्हीं लोककलाओं का विकसित स्वरूप शास्त्रीयता का भव्य रूप ले लेती है, जिसकी जड़ में अवश्य ही लोक की मिट्‌टी होती है।

लोक साधारण जन समाज है, धरती पर फैले हुए समस्त मानव इसमें सम्मिलित हैं। 'लोक' शब्द किसी भी भेदभाव से रहित, व्यापक एवं पुरानी परम्पराओं की श्रेष्ठ धरोहर सहित सभ्यता संस्कृति के विकास के द्योतक के रूप में सर्वमान्य है। भारतीय समाज में नगरीय एवं ग्रामीण दो अलग–अलग संस्कृतियों, रहन–सहन तथा जीवन मूल्यों की परिकल्पना तथा चित्रण है। परन्तु लोक शब्द की व्यापकता इतनी अधिक है कि ग्रामीण तथा शहरी दोनों संस्कृतियां इस शब्द में समाहित हो जाती हैं। लोक जीवन की जड़ से जुड़ा हुआ है। लोक पूर्ण रूप से जीवन की सत्यता को परिलक्षित करता है। लोक में प्रत्येक युग की मान्यता, अवधारणा, अभिरुचियों व विचारों का समागम मिलता है। प्रत्येक

युग की परम्परा का परिष्कृत तथा परिमार्जित स्वरूप लोक के स्वरूप में निहित है, जोकि परम्परा में जनसामान्य द्वारा अपनी भावी पीढ़ी के लिये पोषित करता है।

टिप्पणी

परम्परागत लोकरुचियों को आधार बना कर शास्त्रकारों ने उनकी शास्त्रीय विधियां निश्चित कीं। लोक परम्परा सदैव विकासोन्मुख रही है और उसकी मान्यताएं तथा उनके प्रतिमान युग की अभिरुचियों के अनुरूप परिवर्तित होते गए। इस दृष्टि से चित्र, मूर्ति, संगीत और अभिनय आदि कलाओं का विश्लेषण किया जाये तो उन पर लोकरुचि की छाप स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है।

लोक की महत्ता तथा शास्त्र से उसके अंर्तसंबंध को नाट्यशास्त्र में निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया गया है–

''यानि शास्त्राणि ये धर्मा यानि शिल्पानि या क्रिया।

लोक धर्म प्रवृत्तानि तानि नाट्यं प्रकीर्तितम्।।''

अर्थात् जिस नाट्य में विभिन्न स्त्री–पुरुषों के मनोगत भावों का अभिव्यंजन हो, उसे लोकधर्मी नाट्य कहते हैं। लोक द्वारा समर्थित एवं मान्य जो शास्त्र, धर्म, शिल्प और क्रियाएं हैं, उन्हीं को नाट्य में कहा जाता है।

दर्शक, अभिनेता, श्रोता तथा नाटक के रचनाकार को भी लोक परम्परा से अच्छी तरह से परिचित होना चाहिये। रामचंद्र गुणचन्द्र ने अपने नाट्य दर्पण (श्लोक 1/4) में लिखा है कि : जो (नाटककार अभिनेता आदि) गीत–वाद्य, नृत्य को नहीं जानते और जो लोक व्यवहार में कुशल नही हैं, वे नाटकों का अभिनय और रचना करने के अधिकारी नहीं हैं।

कला के क्षेत्र में परंपराएं पहले आयीं तथा उनको शास्त्रीय स्वरूप बाद में दिया गया। ऐतिहासिक युग की ऐसी कई कलाकृतियां हैं जो शास्त्र से सर्वथा मुक्त हैं और शास्त्र ग्रंथों के विधि–विधानों से जिनकी व्याख्या भी नहीं की जा सकती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत भी लोक संगीत की जड़ों से जुड़ा है। यदि कहें कि शास्त्रीय संगीत का आदि स्रोत लोकसंगीत है तो अतिशयोक्ति नही होगी। हमारे भारत के लोकसंगीत में बहुत ही विविधता है। इसके आधार पर अनेक दिशाओं में संगीत का विषद विकास संभव है।

श्री शरच्चंद्र श्रीधर परांजपे के अनुसार भारतीय रागों का सारा विकास लोकसंगीत के आधार पर हुआ। भारतीय संगीत का इतिहास में उन्होंने बताया है कि नाट्यशास्त्र में जाति शब्द परंपरागत स्वरावलियों अथवा धुनों के वर्गीकृत समूह की अभिव्यंजना करने वाला है। रागों से पहले हैं जातियां, वे परंपरागत धुनों का वर्गीकृत समूह हैं। धुनें पहली से चली आ रही हैं, उनका वर्गीकरण बाद में हुआ। आगे उनका कहना है कि जातियों का मूलाधार यद्यपि प्रचलित जनसंगीत था, तथापि नियमों के संस्कार एवं परिष्कार से उन्होंने शिष्ट जनसम्मत संगीत का स्थान प्राप्त कर लिया था।

'धमार' लोकजीवन की उपज था, धार्मिक संगीत नहीं था, पर उसने मंदिरों में प्रवेश किया। वह रीतिवादी संगीत नहीं था, पर उसने दरबारों और अंतःपुरों पर अधिकार किया। लोकसंगीत में ऐसी ही शक्ति पायी जाती है और यह शक्ति उसे लोकजीवन से प्राप्त होती है। इस प्रकार जनसंगीत शिष्ट संगीत बना और समय के साथ अपने मूलाधार से दूर होता गया। ऐसे ही कई राग तथा तालें लोक की उपज हैं और बाद में शास्त्र रूप में मान्य हुईं।

टिप्पणी

चौथी या पांचवीं शती में कवि, गायक लोकभाषाओं में गीत रचते थे और संस्कृत में ग्रंथ लिखने वाले शास्त्रकार उनसे संबद्ध रागों पर ध्यान देते थे। संगीत व नाट्य साथ–साथ नृत्य पर भी लोक का व्यापक प्रभाव है। नृत्य के संगीत से लेकर उसकी वेशभूषा, उसके आभूषण तक वहां के लोकजीवन से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। चाहे लोकनृत्य हो अथवा शास्त्रीय नृत्य सभी लोकजीवन से ही प्रभावित हैं।

यदि शास्त्रीय नृत्यों की बात की जाये तो आज प्रचलित अधिकतम शास्त्रीय नृत्यों पर लोक की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। जैसे कि उड़ीसा का शास्त्रीय नृत्य 'ओडिसी' वहां के लोकनृत्य के आधार पर ही विकसित किया गया है। पश्चिम बंगाल का 'छऊ' नृत्य पहले लोकनृत्यों की श्रेणी में था, इसी प्रकार क्षत्रिय, भरतनाट्यम, कुचिपुड़ी, कथकलि आदि शास्त्रीय नृत्यों की जड़ें लोक में ही मिलती हैं। शास्त्रीय नृत्य 'कथक' को भी घरानों के आधार पर यदि देखा जाये, तो अपने क्षेत्र के अनुसार लोकजीवन से प्रभावित दिखाई पड़ता है। जैसे लखनऊ घराने में नजाकत, सौम्यता, तहजीब, श्रृंगार रस की व्यापकता तथा वेशभूषा पर मुस्लिम प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। उसी प्रकार बनारस घराने में धार्मिक व सात्विक प्रभाव तथा जयपुर घराने में राजस्थान की संस्कृति का चित्रण स्वतः ही झलक जाता है। जयपुर घराने के कथक के अंग संचालन में वहां प्रचलित महिलाओं के नृत्य गरबा, घूमर, सालूडा, मटकी के प्रभाव हम देखते हैं। इसी प्रकार वेशभूषा में भी राजस्थानी सभ्यता का प्रभाव दिखता है। आजकल कई ऐसे नर्तक हैं, जो अवसर के अनुसार राजस्थानी व अन्य लोक संस्कृतियों से प्रभावित वेशभूषा भी कथक नृत्य के प्रदर्शन के दौरान धारण करते हैं। जयपुर घराने के विषय में यह भी कहा जाता है कि क्लिष्टता जयपुर घराने का प्रधान गुण है। जितने बल उनकी पगड़ी में उतने ही बल उनकी बंदिशों में हैं।

इसके अलावा शास्त्रीय नृत्यों में लोकगीतों पर भाव प्रदर्शन का नवीन प्रयोग भी देखा जा सकता है। कथक नर्तकों द्वारा लोकगीत, जैसे कजरी, डोरी व राजस्थानी लोकधुन जैसे केसरिया बालम आदि पर नृत्य प्रदर्शन देखने को मिलता है । कथक नृत्य में ही प्रदर्शित दादरा भी लोकधुन आधारित होता है ।

कथक के अतिरिक्त भी अन्य शास्त्रीय नृत्य शैलियों में आजकल लोकधुनों पर आधारित गीतों पर भाव प्रदर्शन का प्रचलन बढ़ा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गायन, वादन, नृत्य आदि की शास्त्रीय विधाओं का स्रोत लोक है। शास्त्रीय को जानने के लिये लोकाचार का ज्ञान होना आवश्यक है, तभी इस शास्त्रीय पद्धति में अनुभूति का समावेश हो सकता है। शास्त्रीय में जब लोक मान्यताओं का समावेश होता है, तभी वह लोकरुचि के स्तर तक पहुंचता है। शास्त्रीय पद्धतियों की सफलता व विफलता का सबसे बड़ा मापदंड लोकरुचि ही है, क्योंकि लोकजीवन की मधुर धारा सदैव प्रवहमान है।

परम्पराएं प्रवाहित वेग में नष्ट नहीं होतीं, अपितु नये रूपों में प्रकट होकर लोक के बीच में गत्यात्मक बनी रहती हैं। संगीत मनुष्य की विकासवादी अवस्था में उसके हर्ष, विषाद, उल्लास आदि का घोतक रहा है। लोकसंगीत हमारे विकास के इतिहास की अमूल्य निधि है। इसमें भावों का अशेष भंडार है। क्षण–क्षण के भाव इनमें पिरोये गये हैं। समाज का कौन सा ऐसा रूप है जो इसमें न उतरा हो। अनुभव का सादापन तथा सच्चाई इनमें खुले मुंह बोलती है। यदि बात लोकगीत की की जाये, तो लोक से संबंधित सभी विधाओं का शास्त्रीय पक्ष 'लोक' की सही सही व्याख्या के अभाव में सर्वथा अपूर्ण है। शास्त्रीय विधाओं में प्रयोगों की संभावना तथा उसमें नवीनता के लिये लोक परम्पराओं के

टिप्पणी

भंडार सर्वदा उपस्थित हैं। शास्त्र तथा लोक एक दूसरे के परस्पर चिर सहयोगी व संगी हैं, एक के बिना दूसरे की कल्पना अकल्पनीय है। दोनों पद्धतियां भारतीय समाज के जीवन रूपी रथ के दो पहिये हैं, जो अलग–अलग स्वतंत्र व स्वच्छंद हैं, परन्तु दोनों का एक साथ, एक लय में चलना अत्यंत आवश्यक है, तभी रथ सुचारु रूप से वेगवान रहेगा।

## मध्य प्रदेश के लोक साहित्य के विविध रंग

मध्य प्रदेश की भूमि भारत की वह भूमि है, जिसने कभी अपनी जमीन पर कालिदास, भवभूति, तानसेन जैसे महान साहित्यकार–कलाकारों को बनाया, तो कभी इस भूमि से उस्ताद अलाउद्दीन खां, कृष्णराव पंडित, उस्ताद आमिर खां, डी.जे. जोशी, डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर, कुमार गंधर्व और अब्दुल लतीफ खान, सैयद हैदर रजा जैसे तमाम गायक एवं कला संस्कृति के विद्वान जन्मे। इन्होंने न केवल देश भर में, बल्कि पूरी दुनिया भारतीय कला–संस्कृति का लोहा मनवाने में सफलता प्राप्त की।

मध्यप्रदेश कला एवं संस्कृति के संदर्भ में समृद्ध प्रदेश है। महान नाटककार कवि कालिदास इसी राज्य के थे। उज्जैन शहर कवि कालिदास की कर्मस्थली थी। सूर्य सिद्धान्त और पंच सिद्धान्त यहीं रचित हुए। मध्यप्रदेश एक आदिवासी बाहुल्य वाला राज्य है। अतः यहां आदिवासी हस्तकला का समृद्ध होना स्वाभाविक ही है। आदिवासी हस्तकला में कई प्रकार के बर्तन, कपड़े, बांस द्वारा निर्मित कलाकृतियां आदि न केवल देशी–विदेशी पर्यटकों का विषेष आकर्षण हैं, अपितु विश्व भर में जानी जाती हैं। यहां लोकगायन की अनूठी शैलियां हैं, वहीं भिन्न–भिन्न अवसरों पर किये जाने वाले लोकनाट्यों की परंपरा भी अद्भुत है।

भारतीय संस्कृति में कलाओं को विशेष प्रयास कर नहीं लाया गया, बल्कि ये आदतें (प्रवृत्तियां) वह स्वयं आत्मसात करता गया और यही परम्परा उनके जीवन का एक हिस्सा बन गयी। कन्दराओं या गुफाओं में उसने एक अद्भुत संसार को रचा। आड़ी, तिरछी रेखाओं के माध्यम से वह विस्मित हुआ और आनन्दित भी हुआ। उसने विषादपूर्ण स्थिति को भी देखा। इसी समय आखेटक संस्कृति का विकास हुआ और मानव ने स्वयं को प्रकृति के अधिक समीप पाया। पेट की क्षुधा शान्त करने के लिये एवं स्वयं की रक्षा के लिये उसने प्राकृतिक संसाधनों की सहायता ली। प्रकृति प्रदत्त आपदाओं, आंधी–तूफान, वर्षा आदि से बचने के लिये कन्दराओं की शरण ली। पर्वतों की कन्दराओं को अपना निवास स्थान बनाया और अनगढ़ प्रस्तर खण्डों को आखेट के लिये हथियार बनाया। इन कन्दराओं को प्रकाशित और गर्म रखने के लिये उसने पशुओं की चर्बी और लकड़ी को जलाया। उसने गुफाओं के धूमिल प्रकाश में अपने जीवन को सरस और सरल बनाया। तूलिका के माध्यम से खुरदरी चट्टानों, गुफाओं की दीवारों पर तथा फर्श पर चित्रों के रूप में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति देना शुरू किया। यह समय प्रागैतिहासिक काल अर्थात इतिहास के पूर्व का समय कहलाया, जो कि प्राक् और इतिहास शब्द से मिल कर बना है।

## 1.4.2 मध्य प्रदेश का प्रागैतिहासिक कला परिदृश्य

भारत की हृदयस्थली के रूप में स्थापित मध्य प्रदेश कलात्मक और सौन्दर्यपूर्ण स्थलों से परिपूर्ण है। अपने नाम को चरितार्थ करता हुआ यह मध्य में स्थित है। पर्यावरणीय दृष्टि से इसका प्राकृतिक सौन्दर्य मनमोहक है।

**टिप्पणी**

इसका अलंकरण करने में समृद्ध जल–स्रोत, हरित तथा पर्णपाती वन, धातु भण्डार, पर्वत और कन्दराएं सभी जीवनावश्यक स्रोतों की भूमिका रही है। इस भू–प्रदेश में दरियाई घोड़ा, हिप्पोपोटामस आदि सभी विचरण करते थे। जबलपुर के निकट घुघवा ग्राम में विश्वस्तरीय फॉसिल्स पार्क कई हेक्टेयर भूमि में फैला हुआ है तथा अभी–अभी प्राप्त डायनासोर का फॉसिल, धार के निकट मिला है। जीवाश्म, भोपाल के निकट रविशंकर नगर में शुतुरमुर्ग के अंडे पर उकेरे गये आकल्पन इसकी पुष्टि करते हैं।

उस समय का मानव वातावरण से संघर्ष कर 'सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट' की क्रिया में सर्वश्रेष्ठ भूमिका अदा करता रहा।

अद्यतन स्थिति तक पहुंचने में मानव में अनेक परिवर्तन आते रहे। हमने नये रीति–रिवाजों, वस्तुओं और संस्कारों को अपनाया, पर जो जीवन रस हजारों वर्ष पूर्व विद्यमान था, वह आज भी जस का तस बना है। उसमें निहित रस, गन्ध, स्वाद और जीवन्तता वैसी ही बनी हुई है। इस निरन्तरता ने 'परम्परा' का रूप धारण कर लिया है। ये गुण आदिकाल से लेकर आज तक चले आ रहे हैं।

आदिमानव के अस्तित्व का आधार ही श्रम था। वह श्रम से ही जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता और 'आनन्द' का संचय करता रहा। आदिमानव के हृदय में चित्रण की शक्तिशाली अभिलाषा विद्यमान थी और एक चित्र से दूसरे चित्र को अधिक प्रभावशाली बनाने की आकांक्षा भी।

आदिम मानव ने प्रस्तर अथवा कन्दरा के चित्रों के महत्व को भिन्न–भिन्न दृष्टि से देखा। जो चित्र पशुओं के हैं उनमें मंत्रमुग्ध करने की शक्ति है। सम्भवतः मानव का विश्वास था कि जिस पशु का वह चित्र बना रहा है, वह उसकी शक्ति पर विजय प्राप्त कर लेगा।

मंत्रमुग्ध करने वाली कला इन्द्रिय ज्ञान से सम्बन्धित है और जीवन को प्रसन्न करती है। यह कला पशुओं के स्वाभाविक गुणों और शक्ति पर निर्भर करती है। इस प्रकार की कला शक्तिमय और इन्द्रिय ज्ञान से सम्पन्न है। कला–संस्कृति के मूल में धार्मिकता का समावेश मिलता है। यूनानी, चीनी, भारतवासियों को कला की प्रेरणा प्रकृति से ही प्राप्त हुई। इसके प्रमाण प्रागैतिहासिक काल के आदिमानव द्वारा बनाये गये वे चित्र हैं, जिनमें प्रकृति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। पेड़–पौधे, वन्य प्राणी, नदी आदि के गेरू कोयला से बनाये गये चित्र आज भी मनुष्य की पर्यावरण से समबद्धता दर्शाते हैं।

मध्य प्रदेश में कन्दराओं में शैल चित्रों का उद्भव दृष्टिगोचर होता है। ये प्राकृतिक रूप से सम्पन्न और सुन्दर परिदृश्य हैं जो मानव को अपनी ओर सहज रूप से आकर्षित करते हैं। साथ ही प्रदेश में व्याप्त प्रागैतिहासिक कला की कड़ियां जोड़ने से मानव के विकास की कहानी का पता चलता है। यह पाषाण काल से सम्बद्ध है, पूर्व पाषाण काल 50,000 ई. पूर्व एवं उत्तर पाषाण काल 35,000 ई.पू.।

उत्तर पाषाण युग में शैल चित्रों के सर्वाधिक उदाहरण देखने को मिलते हैं। मध्य प्रदेश के प्रमुख प्रागैतिहासिक कला केन्द्रों की खोज का श्रेय सर्वप्रथम कार्लाइल काकबर्न को जाता है।

## भीमबेटका

टिप्पणी

भारत के सबसे प्राचीन प्रागैतिहासिक चित्र भीमबेटका में उपलब्ध होते हैं। यह मध्य प्रदेश में भोपाल से 40 कि.मी. दूर बरखेड़ा और औबेदुल्लागंज स्टेशन के बीच मियांपुर (भीमपुरा) नामक गांव से 2 कि.मी. दक्षिण में खड़ी पहाड़ी पर स्थित है। यहां 600 से भी अधिक गुफाएं हैं, जो 10 किमी क्षेत्र में फैली हुई हैं। इनमें 475 चित्र हैं। श्री वी. एस. वाकणकर (विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में पुरातत्व संग्रहालय व उत्खनन के अधीक्षक) को इस खोज का श्रेय जाता है। 30 सितम्बर, सन 1973 ई. में 'धर्मयुग' साप्ताहिक में डॉ. वीरेन्द्रनाथ मिश्र का सचित्र लेख 'भीमबेटका की गुफाओं का रहस्य' प्रकाशित हुआ था। यहां के अधिकांश चित्र मध्य–पाषाण काल के हैं। प्राचीन आदिम चित्रों के यहां दो स्पष्ट स्तर हैं।

प्रथम जहां हिरण, बारहसिंगा, सुअर, रीछ, भैंसे आदि जानवरों को स्वतंत्र रूप से चित्रित किया है। दूसरा स्तर वह है जब मानव को जानवरों के साथ अन्तरंग मित्र के रूप में दर्शाया गया है। यह वह युग है, जब मनुष्य ने खेती व पशुपालन के उन्नत तरीके ढूंढ लिये थे। चित्रों में लाल, काले व सफेद रंगों का प्रयोग हुआ है। कहीं–कहीं हरे व पीले रंगों के चित्र भी प्राप्त हुए हैं। वातावरणीय प्रभाव के कारण अधिकांश चित्र नष्ट हो गये हैं, परन्तु फिर भी छतों और दीवारों पर बने काफी चित्र अच्छी अवस्था में विद्यमान हैं। जानवरों के अलावा मछली, कछुआ व केकड़ा भी चित्रित है। कुछ सामाजिक चित्र, जिनमें सामूहिक नृत्य, मद्यपान, शिकार आदि बने हैं। बाद के चित्रों में घोड़ों पर जुलूस आदि भी हैं।

ये चित्र सबसे पुराने चित्रों में से हैं और इन्हें विश्व–धरोहर में शामिल किया गया है। स्व. श्री एच.डी. सांकलिया के अनुसार भीमबेटका और भोजपुर ही ऐसा स्थान है, जहां पर पूर्व पाषाण काल से चौदहवीं–पन्द्रहवीं शताब्दी तक के पुरावशेष क्रमिक रूप से उत्खनन में प्राप्त होते हैं। इस दृष्टि से भीमबेटका का महत्व विश्व स्तर पर बढ़ गया है।

## पचमढ़ी

पचमढ़ी होशंगाबाद जिले में सतपुड़ा पर्वत की महादेव पहाड़ी में स्थित है। इस क्षेत्र के चित्रों को प्रकाश में लाने का श्रेय डी.एच. गार्डन को है। सन 1936 में उनका एक प्रसिद्ध लेख 'द रॉक पेन्टिंग ऑफ महादेव हिल्स' प्रकाशित हुआ। इसमें 20 फलकों पर 51 चित्रों का प्रकाशन हुआ। इनमें इमलीखोह, निम्बू भोज, बाजार केव (लश्करिया खोह), माड़ादेव, डोरोथीडीप, सोनभद्र बनिया बेरी, काजरी, छोटा महादेव आदि स्थल हैं। पचमढ़ी में सम्भवतः पाण्डवों ने निवास किया था। चारों ओर फैले अरण्य में अगणित शिला चित्रों के कई स्तर मिलते हैं। यहां इन शिला चित्रों को 'पुतरी' कहते हैं। ये गुफा की छतों और दीवारों पर बने हैं। इन्हें विशेष कर लेट कर देखा जा सकता है। यहां पर चित्र आखेट, संगीत–नर्तन–वादन, पारिवारिक जीवन, पूजन तथा धनुर्धर विषयों को लेकर बनाये गेय हैं। पशुओं की सुदीर्घ पंक्तियां अलंकरण के रूप में चित्रित हैं। यहां के चित्रों के कई स्तर हैं। पहले स्तर के चित्रों में तख्तीनुमा और डमरूनुमा मानवाकृतियों को बनाया गया है और लहरदार रेखाओं से शारीरिक गठन का बोध कराने का प्रयास किया है। यहां लाल और पीले रंग की अधिकता है। दूसरे स्तर में बेडौल आकृतियां हैं। इसमें आखेट दृश्यों की

अधिकता है। शहद एकत्रित करते मानव तथा घुड़सवार हैं। तीसरे स्तर के चित्रों में स्वाभाविकता की ओर झुकाव दिखाई देता है। चित्रों के विषय में वीर योद्धा, शस्त्रधारी सैनिक, वाद्य यंत्रों को बजाते वादक और घरेलू विषयों से सम्बन्धित दृश्य बने हैं।



महादेव की गुफा में शेर का शिकार, बनिया बेरी में स्वास्तिक पूजा, क्रीड़ा, तथा नर्तन के दृश्य तथा माण्टेरोजा में सफेद रंग के लाल बाह्य रेखा वाले चित्र बने हैं। इस प्रकार पचमढ़ी मनोरम दृश्य–स्थल के साथ ही आकर्षक कलात्मक परिवेश भी उपस्थित करता है।

## होशंगाबाद

आदमगढ़ की पहाड़ी, बुदनी तथा रहेली क्षेत्र की गुफाओं में शैल चित्र अंकित हैं। ये होशंगाबाद चित्र में आते हैं। यहां के चित्रों को 1921 में मनोरंजन घोष ने खोजा था। यहां का सबसे प्रमुख स्थल आदमगढ़ है। यहां जंगली भैंसे का चित्र 10×6 फीट आकार का है, जो दोहरी शाखाओं में शैलाश्रय के ऊपरी भाग पर पूरे विस्तार से अंकित है। हल्के पीले रंग का विशाल हाथी का दृश्य है। इस शिलाश्रय पर विभिन्न कालों और चित्र शैलियों के पांच–छः स्तर एक साथ है। हाथी के पैरों के पास अनेक पतली टांगों वाला भैंसा तथा चार धनुर्धारियों वाला गतिपूर्ण चित्र बनाया गया है तथा घुड़सवार, जंगली जानवर एवं वन्य जीवन का सुन्दर चित्र मिलता है। एक शैलाश्रय पर बड़े से मोर का चित्र भी दिखाई देता है। छलांग लगाते बारहसिंगा का एक अन्य सुन्दर चित्र अंकित है जो गहरी पृष्ठभूमि पर पीली रेखाओं से उकेरा गया है। यहीं गतिशील आकृतियां बनी हैं।

## मन्दसौर

मन्दसौर जिले में भानपुरा व रामपुरा के निकट श्री वाकणकर ने अनेक शैलाश्रयों को खोजा। मोरी स्थान पर बने गुफाचित्र सुन्दर हैं। इस चित्र में 30 पहाड़ी खोह हैं, जिनमें अनेक चित्र हैं। अनेक चिन्ह भी हैं, जैसे चक्र, सूर्य, सर्वतोभद्र, अष्टदल कमल और पीपल की पत्तियां भी हैं। यहीं चित्र में देहाती बांस से बनी गुड़िया भी चित्रित है। अनेक पशु, नृत्यरत मानव तथा पशुओं को हांकते मानव भी हैं।

## ग्वालियर की प्रागैतिहासिक कला

मध्य प्रदेश के उत्तर–पश्चिमी भाग में ऐतिहासिक नगर ग्वालियर की कला–संस्कृति प्रागैतिहासिक और पूर्व पाषाणकाल से प्रारम्भ होती है। पूर्व पाषाणकाल की अश्यूलियन संस्कृति 1,00,000 वर्ष पूर्व से लेकर 40,000 ई. पूर्व तथा मध्य पाषाणयुग 40,000 वर्ष पूर्व से लेकर 20,000 वर्ष के बीच आंकी गयी है। गोपांचल क्षेत्र में दतिया जिले के केवलारी, इंदरगढ़, डबरा, नूराबाद और जसारा से भी पाषाणयुगीन उपकरण, फॉसिल प्राप्त हुए हैं। ग्वालियर से गुप्तेश्वर उत्खनन स्थल तक प्रागैतिहासिक शैलाश्रय प्रागैतिहासिक मानव का निवास केन्द्र होने का प्रमाण देते हैं। इनमें ही चित्रकला के उदाहरण मिलते हैं।

ग्वालियर में प्राप्त शैलाश्रय मोहना से एक किलोमीटर दूर पार्वती नदी के तट पर टीकला ग्राम के दक्षिण में प्राप्त होते हैं। यहां 14 शैलाश्रय हैं। टीकला ग्राम का पहला शैलाश्रय मुम्बई आगरा मार्ग की ओर माता मन्दिर से 200 मीटर दक्षिण की ओर तथा दूसरा समूह दूसरी पहाड़ी पर उत्तरी उतार के निकट है।

## शिवपुरी के प्रागैतिहासिक चित्र

टिप्पणी

शिवपुरी के निकट टुण्डा भरका खोह के निकट बिची बाजार में चुड़ैल छाज चित्रशाला में आदिमानव की संघर्षमयी कहानी चित्रित है। उसने धूमिल प्रकाश में अपने जीवन की सरस एवं सरल अभिव्यक्ति तूलिका के माध्यम से खुरदरी चट्टानों–गुफाओं की दीवारों तथा चट्टानों की ऊपरी भागों पर चित्रों के रूप में अंकित की।

चट्टानों के धरातल पर दौड़ते–भागते हिरण, आखेट करती मानवाकृतियां, विजय सिद्धि के लिये जादू–टोना, स्वास्तिक चिन्ह व हाथ के छापे गेरू रंग से उकेरे गये हैं। एक जगह पर नृत्यरत पुरुषाकृति जिसके हाथ में डमरू है– पशुपति शिव की आकृति है। इसी प्रकार आसन नदी के लिखीछाज में लगभग 86 गुफाएं विद्यमान हैं। इस प्रकार मध्य प्रदेश में शैलाश्रय मानव–विकास की आधारभूत कड़ी है। इन चित्रों द्वारा तत्कालीन संस्कृति और सभ्यता का बोध होता है।

## सिंहनपुर की प्रागैतिहासिक कला

विभाजन के पूर्व यह मध्य प्रदेश में आता था, किन्तु वर्तमान में यह रायगढ़ जिले के सिंहनपुर गांव के पास है। इसे सन 1910 में डब्ल्यू एण्डर्सन और 1913 में अमरनाथ दत्त ने खोजा। यहां के चित्र गेरू रामरज जैसे भू रंगों से बने हैं। यहां हिरण, छिपकली, सांड आदि जीवों का अंकन मिलता है।

यहां एक गुफा में दीवार पर जंगली सांड का आखेट करते हुए मार्मिक दृश्य है। इस चित्र में कुछ आखेटक चारों ओर से पशुओं को घेरे हैं और कुछ प्रबल पशु खीस से वायु में उछल गये हैं और कुछ पृथ्वी पर गिर पड़े हैं। इस चित्र में आखेटक तथा पशुओं की भयंकरता और गति का सुन्दर अंकन किया गया है।

इसी दीवार पर दूसरा चित्र जंगली भैंसे के शिकार का सुन्दर दृश्य है, जिसमें घायल भैंसा बुरी तरह तीरों से छिदा हुआ दम तोड़ रहा है। भालों से सुसज्जित मानवाकृतियां भैंसे को घेरे हुए हैं। यहां के चित्र क्षेपांकन पद्धति से बने हैं। यहां चित्र परवर्ती और प्राचीन दोनों ही काल के बने हुए हैं।

इन प्रागैतिहासिक गुफाओं में प्रागैतिहासिक काल का विस्तृत संसार दिखाई देता है, परन्तु व्यवस्थित इतिहास नहीं प्राप्त होता। 500 ई.पू. के पश्चात हम एक ऐसे युग में प्रवेश करते हैं, जहां से चित्रकला का इतिहास व्यवस्थित रूप से उपलब्ध होने लगता है। साथ ही चित्र सम्बन्धित साहित्य प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। मध्य प्रदेश में सरगुजा रियासत की रामगढ़ पहाड़ियों में जोगीमारा तथा सीताबोंगरा की गुफाएं अवस्थित हैं। इनका समय 300–200 ई.पू. माना जाता है। इस गुफा के शोध का श्रेय श्री आसित कुमार हालदार और क्षेमेन्द्रनाथ गुप्त को है। इस गुफा के चित्र सफेद चूने से पुते धरातल पर लाल–काले तथा पीले रंगों से बनाये गये हैं। सीमा रेखाएं लाल रंग से बनी हैं। यहां चित्रों के दो स्तर मिलते हैं, पहले चित्र कुशल चित्रकारों की कृति लगते हैं, परन्तु बाद में इन्हीं के ऊपर दोबारा जो चित्र बनाये गये हैं, वे अकुशल कलाकारों के लगते हैं। ये चित्र विधिवत भित्ति–चित्रण का प्रथम प्रयास हैं।

टिप्पणी

## बाघ गुफा चित्र

मध्य प्रदेश के कला परिदृश्य में बाघ–गुफा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहां की कला परिष्कृत रूप में है। इसके चित्र अजन्ता गुफा चित्रों से साम्य रखते हैं। ये गुफाएं धार जिले के अन्तर्गत विन्ध्य पर्वत श्रेणी में अवस्थित हैं। बाघ की गुफाएं बाघ नदी के किनारे अवस्थित हैं। इन गुफाओं का विवरण लेफ्टिनेंट ने 1818 में मुम्बई से प्रकाशित किया। ये गुफा चित्र गुप्तकला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

यहां कुल नौ गुफाएं हैं– 1. गृह गुफा, पाण्डव, हाथी खाना, रंगमहल, गृह गुफा चार स्तम्भ वाली 23×24 फीट के कमरे के समान है। दूसरी पाण्डव गुफा है। यह ठीक हालत में है और यहीं पर ऐतिहासिक महत्व का महाराज सुबन्दु का ताम्रपत्र मिला है। तीसरी गुफा हाथी खाना है। यह चैत्य गुफा है। इसमें सुन्दर चित्र अंकित हैं। यह विशिष्ट अतिथियों के लिये बनायी गयी है। इसमें बोधिसत्व के चित्र मिलते हैं। चौथी गुफा रंगमहल के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी दीवार तथा छत पर चित्र बने हुए हैं। यह दूसरी गुफा से मिलती–जुलती है। इसके बीच का हॉल 94 फीट लम्बा है। पांचवीं पाठशाला गुफा में छतों, दीवारों और स्तम्भों में टेम्परा चित्र हैं। छठी गुफा एक 46 फीट का वर्गाकार हॉल है। शेष तीन गुफाएं नष्ट हो चुकी हैं।

विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार यह गुफा मध्यकाल की न होकर उत्तरकाल की है। फर्ग्यूशन और बर्गस इसका निर्माणकाल 350–450 ई. निर्धारित करते हैं। महाराज सुबन्धु के ताम्रपत्र के अनुसार इसका निर्माण कार्य 416–486 ई. के मध्य निर्धारित किया गया है।

ये चित्र मनोहारी एवं प्रभावपूर्ण हैं। रंग संयोजन में लाल, पीला, हरा, रंग अधिक प्रयुक्त हुआ है। यहां के आलेखनों में फूल–पत्तियों, डालियों और पशु–पक्षियों का चित्रण हुआ है। हंस और बत्तख शुद्धि और बुद्धि के प्रतीक माने गये हैं। हाथी, ऐश्वर्य, प्रतिभा और वैभव का प्रतीक है। तो पशु–पक्षी मंगल की कामना दर्शाता है। इन गुफाओं में नारी का मनोहारी रूप सामने आया है। भारतीय जनमानस में अधिकांश चित्र सामाजिक–सांस्कृतिक क्रिया–कलापों से सरोकार रखते हैं, जो मध्य प्रदेश की तत्कालीन चित्रण शैली की विशिष्टता को सुदृढ़ करते हैं।

## मालवा की कला

बाघ गुफाओं के भित्ति चित्रों के पश्चात् दीर्घ अन्तराल तक चित्रांकन के अवशेष प्राप्त नहीं होते हैं। समय बीतने के साथ ही भारत में राजाओं का शासन हुआ। राज्याश्रय में कला के नवांकुर फिर से फूटने लगे। इसका प्रभाव मध्य प्रदेश पर भी पड़ा। मध्यकाल में तीन प्रमुख शैलियां विकसित हुईं, जो मालवी, बुन्देली और ग्वालियरी नाम से जानी जाती है।

मालवा में 8वीं शती में राजपूतों और 13वीं से 15वीं शती तक तुर्क वंश का शासन था, और 1535 ई. से 1561 ई. तक पठान शासक बाजबहादुर ने शासन किया। आपसी युद्ध के कारण कला का विकास नहीं हुआ। इस समय केवल स्थापत्य कला का ही विकास हुआ। इस समय परमार नरेशों के शासनकाल में चित्रकला का विकास हुआ। यह राजप्रासादों, धनिकों तथा जागीरदारों के भवनों की शोभा बनी। माण्डू में प्राप्त

‘कल्पसूत्र’ में लाल पृष्ठभूमि पर सुनहरे रंग में अक्षर लिखे गये हैं तथा प्रत्येक पृष्ठ को विभाजित किया गया है। दाहिने भाग में गद्य–पद्य लिखे हैं।

**टिप्पणी**

15वीं शती के पूर्व और प्रारम्भ में मालवा शैली में चित्रित ‘लौरचन्दा’ प्रणय काव्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। इन्दौर, उज्जैन, मन्दसौर, धार, देवास, राजगढ़ तथा नरसिंहगढ़ मालवा शैली के प्रमुख केन्द्र रहे हैं।

18वीं सदी में इन्दौर में मराठाओं के आगमन से चित्रकला की गतिविधियों में जान आयी। मराठों के समय एक समन्वित शैली उभर कर आयी। अहिल्याबाई होल्कर द्वारा चांदबड़ के राजप्रासाद तथा यशवंत राव (प्रथम) की छत्री में रंगमहल नामक भित्ति चित्रों को सुसज्जित किया। प्रसिद्ध राजवाड़ा में गणेश चौक के दूसरी मंजिल पर टेम्परा पद्धति में भित्ति चित्र बने हुए थे, जिनके विषय कृष्ण का होली रास, द्रौपदी स्वयंवर, राम रावण युद्ध, देवियां आदि थे। युद्ध के दृश्यों में मराठा–मेवाड़ शैली का प्रमाण दिखाई देता है। 19वीं सदी में अंग्रेजों के भारत आगमन से चित्रकला पर विदेशी प्रभाव का आक्षेप हुआ और यह मालवा शैली के विनाश का कारण बना।

नीमच में 18वीं शती में ढोलामारू की प्रेमकथा, श्रीनाथ जी, गणेश तथा 24 मिथुनाकृतियां चित्रित होती हैं। इसी प्रकार मन्दसौर में मराठा काल के लघुचित्रों का भण्डार है। यहां कन्हैयालाल पाटीदार के मकान में लघुचित्र और मालवी लोकशैली के मिश्रित चित्र दिखाई देते हैं। इनके विषय कृष्णजन्म, माखनचोरी, कालियामर्दन, कृष्णलीला, समुद्रमन्थन और अंग्रेज अधिकारी तथा भारतीय अधिकारी के बीच सन्धि आदि हैं। इसी प्रकार श्री पोरवाल के पास ‘लौरचन्दा’ के 37 लघुचित्र तथा धनार सेठ के कक्षों में मराठा काल के रंगमहल के चित्र अंकित हैं।

उज्जैन में चित्रकला भित्ति चित्रों और लघु चित्रों के रूप में दिखाई देती है। यहां साहित्य और चित्रकला का अन्तर्सम्बन्ध देखने को मिलता है। मालवा की चित्रकला के विषय रसिकप्रिया, रामायण, महाभारत तथा नायिका भेद रहे हैं। उज्जैन में लघुचित्रों का सबसे महत्वपूर्ण संग्रह सिंधिया प्राच्यविद्या शोध प्रतिष्ठान में है। यहीं पर मालवा शैली में बने ‘भक्तिविजय ग्रन्थ’ के लघुचित्र मालवा–मराठा–मेवाड़ (मिश्रित) शैली में निर्मित हैं।

उज्जैन के परमारकालीन राम जनार्दन और विष्णु जनार्दन मन्दिर में भित्ति चित्र बने हैं। राम जनार्दन मन्दिर में बने चित्रों में नाम–संस्कार, रिद्धि–सिद्धि गणेश, क्रीड़ामग्न राम और उनके भाई वशिष्ठ तथा ऋषिगण, शिव–पार्वती तथा वाद्य–वृन्द का समूह चित्रित हैं। विष्णु जनार्दन मन्दिर में धूसर आकाश की गहरे लाल रंग की पृष्ठभूमि पर अंकित चित्र में मालवा–मराठा शैली से भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यहां के प्रसिद्ध हरसिद्धि के मन्दिर के सभागृह के गुम्बद के नीचे 20वीं सदी के भित्ति चित्र बने हैं।

राजगढ़ में पनपी शैली मालवी शैली के अन्तर्गत होते हुए भी कोटा–बूंदी के संसर्ग से परिष्कृत होकर राजगढ़ शैली के रूप में सामने आयी। राजगढ़ मालवा और बुन्देलखण्ड की सीमा पर स्थित है। राधोगढ़ शैली के चित्र बूंदी और कोटा से प्रभावित रहे हैं, परन्तु पर्यावरण तथा स्त्री–पुरुष का अंकन उनकी निजी पहचान बन गये। चित्रों को पर्यावरणीय महत्व दिया गया। यहां पर सुदृढ़ देह वाली स्त्रियां तथा पुरुष, बलशाली योद्धा चित्रों में दिखाई देते हैं। इसी शैली के अन्य चित्र धार, देवास, नीमच तथा रतलाम के राजपरिवार में तथा धनिक वर्गों के यहां संगृहीत हैं।

निमाड़ क्षेत्र में ओंकारेश्वर और महेश्वर में भित्ति चित्र उपलब्ध हुए हैं। लेकिन अधिकाशंतः वे नष्ट हो गये हैं। महेश्वर के पण्डरीनाथ मन्दिर में 27 मराठाकालीन चित्र मिले हैं। इनमें कुछ राजपूत शैली तो कुछ बसौली शैली की प्रतिकृतियां लगती हैं। इनमें कमजोर रेखांकन है, पर रंग योजना आकर्षक है।



## (क) मध्य प्रदेश की पारम्परिक चित्रकला

मध्य प्रदेश में चित्रकला का इतिहास अत्यंत प्राचीन है और उसमें कई प्रकार की विविधताओं के दर्षन होते हैं। यहां स्थान और काल–विशेष की परिस्थितियों के अनुसार चित्रकला की विभिन्न लोक प्रवृत्तियों का विकास हुआ है, जिसके बारे में संक्षेप में चर्चा करना समीचीन होगा।

## बुन्देलखण्ड की चित्रकला

मध्य प्रदेश में बुन्दलेखण्ड क्षेत्र में नाग और वाकाटकों का राज्य था। चन्देलों की संस्कृति का पतन होने पर तोमरों का ग्वालियर सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में उभरा और ग्वालियर संस्कृति का पतन होने पर ओरछा नये संस्कृति केन्द्र के रूप में उभर कर आया। डॉ. दलजीत खरे ने 'ग्लोरी ऑफ ओरछा पैलेस एंड पेंटिंग्स' में ओरछा से प्रारम्भ माना है। ई.सं. 1505 के पश्चात ग्वालियर में ऐसी परिस्थितियां बनीं, जिसमें ललित कलाओं की गतिविधियां समाप्त हो गयीं। ग्वालियर के कलाकारों ने ओरछा और दिल्ली की ओर पलायन किया। इस प्रकार चित्रकला बुन्देलखण्ड संस्कृति का आवश्यक अंग बनी। उत्सव और त्योहार के अवसर पर घर–दीवारों में चित्र बनाये जाते थे। बुन्देलखण्ड की चित्रकला मन्दिरों के भित्ति चित्रों, राजप्रासादों और धार्मिक ग्रन्थों के रूप में दिखाई देती है। चन्देल राजा मदनवर्यन द्वारा निर्मित वैष्णव मन्दिर में अपभ्रंश शैली के चित्र मिलते हैं। यहां जैन तथा जैनेतर ग्रन्थों में इस शैली को अपनाया गया। एक चश्म चेहरे, पहरावे में अंगरखा, पजामा, ओढ़नी, चोली–लहंगा आदि में यह परिवर्तन दिखाई देता है। छतरपुर के जैन मन्दिरों में जैन कथाओं पर आधारित चित्र बने हैं। बुन्देलखण्ड की चित्रकला पर मालवी, राजस्थानी प्रभाव होना पता चलता है।

कृष्णलीला, गोपियों के चित्रों में रंग संयोजन और संगति मालवा शैली की है। स्त्री आकृतियों में लम्बी गर्दन तथा पहरावा और अलंकरण चित्रित किया गया है। लक्ष्मी मन्दिर में बने रामायण तथा 1857 के बुद्धचित्र लोकशैली के बने लगते हैं। 18वीं शती में इन्द्रजीत (1733–62) ओरछा का शासक हुआ। इसके समय 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' आदि ग्रन्थों पर चित्र बने।

18वीं शती के अर्धशतक में राजा शत्रुजीत सिंह के समय मध्य प्रदेश में एक नयी शैली विकसित हुई। इस समय राधाकृष्ण का प्रणय तथा ऋतुओं पर आधारित बाराहमासा के चित्र बने। इसे नवजागरणकाल कहा गया।

बुन्देलखण्ड शैली के चित्र टीकमगढ़, ताल बेहट, टोडी, फतहपुर, पन्ना छतरपुर आदि स्थानों पर विकसित हुए।

दतिया में सतखण्ड महल तथा कंचनमनिया भित्ति चित्रों के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। आर्चर महोदय के अनुसार ओरछा में चित्रकला की कोई परम्परा नहीं थी, लेकिन दतिया के चित्रों की परम्परा ओरछा नरेशों के कारण ही विकसित हुई। सतखण्ड महल के

मुख्यद्वार को गणेश तथा घुड़सवार सैनिक के चित्रों से संवारा गया है। तीसरी मंजिल के गुम्बद पर गोल पट्टी में उभरे हुए (स्टुक पद्धति) में रासलीला का अंकन है। इनमें मुगलिया प्रभाव दिखाई देता है। चौथी मंजिल के मुख्य छज्जे में भित्ति चित्र हैं।

टिप्पणी

इस प्रकार बुन्देलखण्ड की चित्रकला में मालवा, मराठा, मुगल और राजस्थानी शैली का प्रभाव दिखाई देता है।

## ग्वालियर की चित्रकला

मध्य प्रदेश में ग्वालियर क्षेत्र गोपांचल कहलाता है। मध्य प्रदेश की व्याख्या मानकुतूहल के फारसी अनुवाद में फकिरुल्ला ने 'सुदेश' कह कर की। सुदेश से तात्पर्य ग्वालियर जो आगरा का केन्द्र रहा है। इस गोपांचल क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत काफी सम्पन्न थी। यहां पर चित्रकला का इतिहास पांच चरणों में दिखायी देता हैः–

### 1. जैनकालीन चित्रकला

ग्वालियर में चित्रकला का विकास लघुचित्र, भित्तिचित्र, पोथी चित्रण के रूप में दिखायी देता है। जैन चित्रकला की ऐतिहासिक उपलब्धि 7वीं शताब्दी से है, जिसके प्रमाण पल्लव राजा महेन्द्र वर्मन (7वीं शताब्दी में बनी) की पांच जैन मूर्तियां हैं। समग्र भारतीय शैली में 15वीं शताब्दी से पूर्व के जितने भी चित्र प्राप्त हैं, उन सबमें मुख्य और प्राचीन जैन चित्र ही हैं। आरम्भिक जैन शैली को 'गुजराती–शैली' या 'अपभ्रंश शैली' कहा गया।

जैन शैली के चित्र तीन रूपों में प्राप्त होते हैं–

1. ताड़पत्र पर बने पोथी चित्र
2. कपड़े पर बने पटचित्र
3. कागज पर बने पोथी चित्र या फुटकर चित्र।

ग्वालियर में जैन चित्रकला का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ है कि सन 1424 में डूंगरेन्द्र सिंह का शासन हुआ तो जैन धर्म के प्रचार–प्रसार की अनुमति दी और जैनाचार्यों को संरक्षण भी प्रदान किया। ग्वालियर में अपभ्रंश भाषा में अत्यधिक मात्रा में सृजन हुआ। महाकवि रायधु की कृतियां चित्रमय पाण्डुलिपियों के रूप मे प्राप्त हुई हैं। ये पाण्डुलिपियां हैं– 'पासणाह चरिउ' 'शान्तिनाह चरिउ' तथा 'जसहर चरिउ'। इनमें प्राप्त चित्रों में रेखाएं सहज, सजीव व प्राबल्य कुछ दुर्बल सा हो गया है।

### 2. तोमरकालीन चित्रकला

तोमरकालीन चित्रकला को मध्ययुगीन या राजपूत शैली कहा जा सकता है। मध्यकाल में ग्वालियर में तोमर राजाओं का वर्चस्व था। वीरसिंह देव तोमर के समय कवि नारायणदास द्वारा रचित 'छिपाई चरित' में चित्रकला के विषय पर काफी रुचिकर सामग्री उपलब्ध है। मान मन्दिर के भित्ति चित्रों में 'छिपाई–चरित' के उल्लेख हैं।

ग्वालियर में तोमरों के समय 'संगीतदर्पण' एवं 'रागाध्यायी की रचना' हुई, जो राग रागिनियों के चित्रों का आधार बना। हरिहर निवास द्विवेदी ने मध्यकालीन कला के 'दृश्य संगीत' अध्याय में इसे राग रागिनियों के चित्रों की स्थली माना है। रागमाला के चित्रों के जनक ग्वालियर केन्द्र के कलाकार रहे हैं। डूंगर सिंह तोमर और कीर्ति या करन सिंह के कार्यकाल में मूर्तिकला का निर्माण हुआ। मानसिंह तोमर के शासनकाल में साहित्य और चित्रकला का विकास हुआ।

टिप्पणी

## 3. राजपूतकालीन चित्रकला

ग्वालियर में राजपूत कला का प्रारम्भ 14वीं शती में राजस्थान में हुआ। यह विशुद्ध हिन्दू संस्कारों से सम्बद्ध है। यह उस समय की है, जब मुस्लिम भारत में नहीं आये थे। प्रसिद्ध लेखिका स्टेलाक्रेमरिश ने अपनी पुस्तक 'आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया' में इसे राजपूत शैली का प्रारम्भ निरूपित किया है। उन्होंने लिखा है कि 'राजपूत कलम' का प्रारम्भ शास्त्रीय शताब्दियों के द्वारा और उसके स्थान पर लोककला के अविर्भाव के कारण हुआ। मानसिंह के मान मन्दिर राजपूत कला के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। इसमें सवाचश्म चेहरे के स्थान पर एकचश्म चेहरा बनाया जाने लगा। मान मन्दिर में संगीत और नृत्य की जालियों में प्रथम बार राजपूत शैली का प्रयोग किया गया है। नृत्य की परम्परा केवल ग्वालियर में ही थी। तोमरकालीन चित्र ग्वालियर किले स्थित गुजरी महल में विद्यमान हैं।

मध्य भारत में कछवाहा, तोमर और बुन्देला राजपूतों ने कला का संरक्षण किया। मानसिंह तोमर (1486–1516ई.) के समय वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत और नाट्यकला ने विशेष प्रगति की थी।

### ग्वालियरी शैली

परम्परागत शैली से भिन्न शैली ग्वालियरी शैली कहलायी। 1517 में निर्मित महाभारत की एक सचित्र पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है। ग्वालियर दुर्ग स्थित मान मन्दिर की सज्जा में ग्वालियरी शैली का प्रयोग किया। बुर्ज की छत को आकर्षक फूल–पत्तियों और मानवाकृतियों से चित्रित किया गया है। ये मानवाकृतियां वाद्ययंत्र लिये और नृत्य करते चित्रित की गयी हैं। रेखाओं के आरोह–अवरोह और लचीलापन विशिष्टताओं में निहित है। मान मन्दिर के एक वातायन में चामरधारी युग्म का चित्रण है। इस मन्दिर में निश्चय ही अन्य चित्र भी रहे होंगे, जो सम्भवतः कालग्रस्त हो गये। किले की प्राचीर और मान मन्दिर पर लगी कलात्मक टाइल्स दर्शाती हैं कि तोमर शासकों में कला के प्रति अभिरुचि थी।

## 4. मुगलकालीन चित्रकला

सन 1526 ई. में जलालुद्दीन मुहम्मद बाबर ने पानीपत के मैदान में सुल्तान इब्राहिम लोधी को पराजित कर मुगल साम्राज्य की नींव रखी। तैमूरवंश के समान अन्य कोई वंशज इतना सभ्य और सुसंस्कृत नहीं है, जिसने सभ्य और कलाप्रिय शासकों को जन्म दिया। यही ईरानी शैली मुगलकला के रूप में भारत आयी। अकबर के शासनकाल में अनेक चित्रकार थे। इनमें केशव, महेश, मुकुन्द लाल, मिसकिन, फारूख बेग, माधो जगन्नाथ, ख्वाजा अब्दुस्समद, मीर सैयद अली शीराजी, तारा, सांवला, हरिवंश, खेमकरन तथा राम के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से अनेक चित्रकार ग्वालियर का बताते थे। सांवला प्रथम ज्ञात चित्रकार कहलाता है।

मुगलकाल में कला और साहित्य का विकास हुआ। इसी समय वास्तुकला और चित्रकला दोनों ही फली–फूली। अनेक कलाकार मुगल दरबार में भी रहे और स्वयं को ग्वालियर का कह कर गौरवान्वित होते रहे।

## 5. मराठाकालीन चित्रकला

ग्वालियर में मराठों का इतिहास सन 1765 से प्राप्त होता है। शिन्दे वंश के महायोद्धा माहद जी शिन्दे ने ग्वालियर पर अपना अधिकार कर इस वंश की शुरुआत की। इस

टिप्पणी

प्रकार शिन्दे शासन के संरक्षण में वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला में परिवर्तन दिखायी दिया। जयाजी राव द्वारा निर्मित कोठी (कम्पू कोठी) के मेहराबदार हॉल में सुन्दर भित्तिचित्र बने हैं। यहां लता वल्लरियों, पशु–पक्षियों का चित्रांकन किया गया है। यहां पर महारानी विक्टोरिया, बादशाहों, बेगमों तथा हिन्दू महापुरुषों के चित्र भी चित्रित हैं। मोतीमहल राजप्रासाद के कुछ कक्षों में रंगीन शीशों की पच्चीकारी की गयी। यहां भित्ति चित्रों में रागमाला–शृंखला के 42 चित्र बनाये गये हैं। यहां की स्थापत्य कला में इटालियन प्रभाव दिखायी देता है, जिसमें टस्कन, इटालियन पलाजियों, कैरियोथिन शैली अपनायी गयी है। ग्वालियर स्थापत्य में शिन्दे शासकों की छत्रियां प्रमुख हैं। ये छत्रियां नागर शैली में हैं। दीवारों पर चटख रंगों में चित्र बने हैं। इस पर कमलाकृतियां तथा कृष्णलीला के दृश्य बने हुए हैं।

शिन्दे शासकों के आश्रय में पनपी कला में राजस्थानी एवं पश्चिम भारतीय शैली का समन्वय दिखायी देता है। मोतीमहल के रागमाला चित्रों में नायक, नायिकाओं की भाव–भंगिमा, वेशभूषा अलंकरणों पर मराठा संस्कृति का प्रभाव है। इस समय के चित्रकारों ने चित्रों में नाम नहीं लिखे थे।

जयाजीराव शिन्दे के शासनकाल के चित्रकारों को 'चितेरा' कहा गया और महाराजा बाड़े के पास चितेरा ओली बसाई। ये चितेरे घरों, महलों की सज्जा का कार्य करते हैं। ये चित्रकार उन्हीं के वंशज हो सकते हैं, जिन्होंने मोतीमहल और सरस्वतीमहल के भवनों को सुन्दर चित्रों से अलंकृत किया। ये मराठा शैली में बने चित्र हैं।

## बघेलखण्ड की चित्रकला

बघेलखण्ड क्षेत्र में सोनघाटी प्रागैतिहासिक संस्कृति की जनक रही है। सोन के कछार पर 'रानी माची' शैलाश्रय हैं, जिनमें गेरू से पशुओं के चित्र बने हैं। पशुओं का चित्रण चौकोर तथा आड़ी–तिरछी रेखाओं से भरा गया है। गौरा पहाड़, शैलाश्रय, बिछी–बघोरा, घघरिया, धवल गिरी, टीका, सिंहावल तथा चौरावल चित्रित शैलाश्रय हैं।

'खनदों' (रीवा–शहडोल मार्ग) एवं 'गुड्डी' (रीवा–सीधी मार्ग) शैलाश्रय कैमूर शीर्ष पर हैं। खनदों में आठ शैलाश्रय और गुड्डी में 12 चित्रित शैलाश्रय हैं। ये उत्तर पाषाणकाल के हैं। गुढ़ के नाला के पास 9 चित्रित शैलाश्रय हैं।

प्रागैतिहासिक शैलचित्रों के बाद यहां चित्रकला के अवशेष प्राप्त नहीं होते।

सन 1552 में राजा रामचन्द्र एक कलाप्रेमी शासक थे। संगीत और साहित्य में उनकी रुचि थी किन्तु चित्रकारी का अभाव था। केवल महाराजा विश्वनाथ सिंह के समय चित्रकार चतुर्भुजसिंह बावनी, गंगासिंह बावनी का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने राजाज्ञा अनुसार 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर 54 चित्रों की रचना की। आपने सोनमहल में रामायण पर आधारित चित्र बनाये। राजा विश्वनाथ सिंह के अनेक चित्र बनाये, जिनमें शिकार खेलते हुए और दशहरा दरबा तथा पोर्ट्रेट प्रमुख हैं। उनके राज्यारूढ़ होने पर 'बिछर हटा' तथा गंज युद्ध के चित्र बनाये गये हैं।

इन बावनी चित्रकारों के साथ ही बघेली शैली प्रारम्भ हुई। महाराजा रघुराज के समय के चित्रों का संग्रह रीवा किला स्थित राधौमहल में है। इनके समय में आये राजस्थान के चित्रकारों ने इस आंचलिक चित्रशैली को आगे बढ़ाया। बाद के चित्रों में पाश्चात्य शैली दिखायी देती है। अतः बघेलखण्ड की कलाशैली पर दृष्टि डालने से

ज्ञात होता है कि मध्य प्रदेश में अन्य क्षेत्रों में जिस प्रकार चित्रकला का विकास हुआ उतना बुन्देलखण्ड क्षेत्र में चित्रकला का विकास नहीं हो पाया।

**टिप्पणी**

### भोपाल की चित्रकला

मध्य प्रदेश की राजधानी झीलों की नगरी भोपाल का कलात्मक एवं सांस्कृतिक इतिहास भी कम रोचक नहीं है। प्रागैतिहासिक काल के अश्मावशेष और शैलचित्रों का विराट संसार मानवीय विकास की कहानी कहता है। भोजपुर, भीमबेटका, पंचमढ़ी, होशंगाबाद, रायसेन में प्राचीन चित्रावशेष विद्यमान हैं।

सोलह जनपदकाल में भोपाल क्षेत्र अवन्ति उज्जयनी के अधीन तथा मौर्यकाल में सम्राट अशोक की सल्तनत का हिस्सा था। सांची का स्तूप मौर्यकालीन स्थापत्य का प्रमुख उदाहरण है। इस क्षेत्र पर परमारकालीन सम्राट राजा भोज (1010–1055 ई.) ने भी शासन किया।

सन 1708 से 1949 तक का समय 'रियासत–काल' कहलाता है। लगभग 200 वर्षों में 9 पुरुष नवाब और चार महिला नवाबों का शासन रहा, जिसमें नवाब कुदसिया बेगम (गौहर बेगम), सिकन्दर जहां, शाहजहां और सुल्तान जहां बेगम प्रमुख हैं। नवाब दोस्त मोहम्मद खान और अन्य नवाबों ने अपने अधिकार क्षेत्र को बढ़ाने या स्थापत्य कला के निर्माण में अपना समय लगाया। भोपाल की स्थापत्य कला पर मुगलकालीन प्रभाव देखने को मिलता है। शाहजहांनाबाद में निर्मित ताजमहल और तालाब किनारे निर्मित गौहरमहल मुगलकालीन स्थापत्य का नायाब उदाहरण हैं। इसमें विभिन्न कक्षों में अलंकरणों से भरपूर चित्र बने हुए हैं। अलंकरणों की उपस्थिति मुस्लिम संस्कृति की अवधारणा दर्शाती है। इसके अनुसार चित्र में मानवाकृतियों का सृजन नहीं करना चाहिये, लेकिन कालान्तर में यह अवधारणा भी मिथ्या साबित हुई। तमकीन मोहम्मद खान (नवाबकाल के उत्तराधिकारी) इलियास हारुन, मोहम्मद अय्यूब और जफर ऐसे चित्रकार रहे हैं। जिन्होंने पोर्ट्रेट, संयोजन और मानवाकृतियों का सृजन किया। तमकीन मोहम्मद, अब्दुल हलीम अंसारी, सगीरजमा तथा मोहम्मद अय्यूब ने दृश्य चित्र बनाये। ऐतिहासिक स्थलों को चिरस्थायी कर दिया। बहुत से स्थल आज विलुप्त हो गये हैं, लेकिन इन चित्रों के माध्यम से तत्कालीन मनोरम स्थलों को देखा जा सकता है। मोहम्मद अय्यूब के चित्रों में ईरानी या अफगानी प्रभाव दिखायी देता है। नवाबकाल में मुस्लिम और पठानी संस्कृति वर्चस्व पर थी। नवाबी शासनकाल में भोपाल रियासत में सांस्कृतिक विरासत को विकसित करने में चित्रकला एवं वास्तुकला का अग्रणी स्थान था। इसके अलावा यहां के संगीतज्ञों, साहित्यकारों ने भी अपनी ख्याति समाज में बनाये रखी थी।

सुल्तान जहां (सन 1844–1868) के शासनकाल को नवाबी दौर का 'स्वर्ण युग' कहा जाये तो मिथ्या न होगा। इसे दौरे सुल्तानी के नाम से जाना जाता है। इस समय शिक्षा में जागृति आयी। अनेक उर्दू ग्रन्थों की रचना हुई। इसी समय के हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीतज्ञ मेवाती घराने के विख्यात गायक 'उस्ताद मसीत खान' तथा 'उस्ताद घसीट खान' का नाम सम्मान से लिया जाता है। नवाबी काल में अनेक किताबों की रचना हुई, जिनमें 1313 में उर्दू में 'तारीखे अलहक भोपाल' मुंशी मेंहदी अली सहसवानी ने लिखी। इसके अलावा अनेक पुस्तकों की रचना की गयी जो गोंडी दरबारी व्यक्तियों के जीवन वृत्तान्त पर आधारित थी।

भोपाल में हमीदिया रोड के दूसरी तरफ 'बर्रू' के पेड़ बहुत बड़े क्षेत्र में लगे हुए थे। इस क्षेत्र के पास रहने वाले लोगों को 'बरुकट भोपाली' कहा जाता था। इसका उपयोग वे कलात्मक वस्तुएं बनाने में और लिखने के उपकरण बनाने में करते थे, जिससे अक्षरकला को अलंकारिक बनाने में सहयोग प्राप्त हुआ।

**टिप्पणी**

## जनजातीय चित्रकला

मध्य प्रदेश में जनजाति की बहुलता है। यहां इनकी अपनी सांस्कृतिक विरासत है। यहां 'गोण्डवाना–प्रदेश' भौगोलिक दृष्टि से प्राचीनतम क्षेत्रों में से एक है, जहां गोण्ड जनजाति निवास करती है। गोण्डवाना शब्द की उत्पत्ति तेलुगू भाषा के 'ावदक' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है 'पहाड़' और 'वाना' अर्थात जंगल। ये लोग नर्मदा नदी घाटी और उत्तर गोदावरी क्षेत्र में पाये जाते हैं। मध्य प्रदेश में जबलपुर और मण्डला, सतपुड़ा रेंज में महादेव पहाड़ी और मैकल हिल्स भी गोंड क्षेत्र रहा है। छिन्दवाड़ा के रास्ते में 'तामिया' में गोण्डी निवास करते हैं।

गोण्ड जनजाति के पश्चात हमें भील दिखाई देते हैं। मध्य प्रदेश में जनजातियों की सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता के कारण इसे चार परिक्षेत्रों से जाना जाता है–

1. **पश्चिमी जनजाति क्षेत्र** : झाबुआ, खरगोन, खण्डवा और रतलाम (भील संस्कृति)
2. **मध्य जनजाति क्षेत्र** : मण्डला, बैतूल, सिवनी, छिन्दवाड़ा, बालाघाट, सागर, शहडोल (गोंड, कोरकू, कोल, बैगा जनजाति)
3. **उत्तर पूर्वीय जनजाति क्षेत्र** : सरगुजा, रायगढ़, विलासपुर, सीधी (उराव, कोरवा, कोल और कमार जनजाति)
4. **उत्तर पश्चिम क्षेत्र** : मुरैना, शिवपुरी और गुना (संवर और सहरिया)।

जनजाति संस्कृति हमें विभिन्न अनुष्ठानों में दिखायी देती है। इनके जीवन का सौन्दर्यबोध चित्रों, शिल्पों, नृत्य और गीतों में दिखायी देता है। इनके चित्रों को देखने से पता चलता है कि ये मात्र आड़ी तिरछी रेखाएं नहीं, बल्कि उनमें रंग और रेखाओं का अनन्त विस्तार दिखाई देता है। वे कला की पूर्ति के लिये प्रकृति से प्राप्त सहज सुलभ संसाधनों का उपयोग करते हैं। इनके चित्रों में रंगों का फैलाव, कहीं रेखाओं का उलझाव, कहीं बिन्दुओं का विस्तार, कहीं अभिप्रायों की विलक्षणता और कहीं सिर्फ आकारों की अनगढ़ता के दर्शन होते हैं। चिड़िया, मोर, हिरण आदिवासियों के लिये सिर्फ पशु–पक्षी नहीं हैं, बल्कि इनका गांव, घर और कृषि से गहरा सम्बन्ध होता है। इनका प्रकृति से निकट सम्बन्ध तो है ही, साथ ही कला जीवन का अनिवार्य अंग है।

भील जनजाति के लोग 'पिथौरा' मिथकीय घोड़े बनाते हैं। इसी प्रकार कोरकू की स्त्रियां दीवारों पर 'थाठिया' खड़िया या गेरू से बनाती है। भील, गोंड, परधान, राठ्या और बैगा जनजाति के लोग स्वयं के शरीर को 'गुदने' से अलंकृत कराते हैं। ये गुदने मात्र शारीरिक अलंकरण नहीं हैं, बल्कि इन प्रतीकात्मक रेखाओं के माध्यम से अन्वेषित अर्थों को सदियों और पीढ़ियों से जनजातियों ने अपने शरीर पर सुरक्षित रखा है। गुदना चित्र के पीछे यह मान्यता है कि मृत्यु के साथ मात्र ये चित्र ही होते हैं।

जनजाति चित्र प्रकृति प्रेरित होते हैं। सृष्टि में प्राप्त जीव–जन्तु जिनमें हाथी, गाय, बैल, घोड़ा, मगर, छिपकली, सांप, चिड़िया, मोर, हिरण, उल्लू और सुअर आदि को चित्रों

टिप्पणी

में सृजित किया है। साथ ही काष्ठ एवं धातु शिल्प में उकेरा है। यह एक परम्परा है, जो पुरस्कार और सम्मान की मोहताज नहीं। फिर भी जनजातीय कलाकारों ने भारतीय आदिवासी कला को विदेशों तक पहुंचाया। गोंड और भील जनजाति के लोग पहले प्राकृतिक रंगों से भित्ति चित्र बनाते थे, लेकिन बदलते समय के साथ सिन्थेटिक रंगों से कागज कैनवास पर उतारा है। विशेषकर ये चित्रकारी 'परधान' और 'नोहडोरा' कहलाती है। इस जनजाति कला को भील और गोण्ड कलाकारों ने समृद्ध किया है।

जे. स्वामीनाथन ने मध्य प्रदेश के सुदूर अंचलों में फैली इस आदिम स्वरूप की कला के महत्व को पहचाना और इन कलाओं के समग्र अध्ययन हेतु भारत भवन में सहेजा। इन रचनाकर्मियों को एकत्र कर भोपाल लाया गया और इनकी कलाकृतियों को नागर कलाकृतियों के साथ एक छत के नीचे प्रदर्शित भी किया गया।

इन कलाकारों में निम्नलिखित प्रमुख हैं–

गोंड कलाकार– आनन्द सिंह श्याम, भज्जू श्याम, बीरबल सिंह उइके, छोटी तैकाम, धनैयाबाई, दुर्गाबाई, धवल सिंह उइके, दिलीप श्याम, गरीबा सिंह तैकाम, हरगोविन्द श्याम, उर्वेती, हीरालाल धुर्वे, इन्दुबाई मरावी, ज्योतिबाई उइके, कलाबाई, कमलेश कुमार उइके, लखनलाल भर्वे, मयंक कुमार श्याम तथा नर्मदा प्रसाद तैकाम आदि।

भील कलाकार– अनिता बारिया, भूरीबाई (पटोला), भूरीबाई (सेर), गंगूबाई, लाडोबाई, जोर सिंह, रमेश सिंह कटारिया, शेर सिंह, सुभाष भील, भीमा पारगी, चम्पा पारगी तथा प्रेमी आदि कलाकारों ने चित्र परम्परा को सहेजा है।

इन जनजातीय कलाकारों ने मध्य प्रदेश की कला को उन्नति की राह दिखायी और आदिवासी कला को विश्व के नक्शे में स्थान दिलाने का प्रयास किया।

### 1.4.3 मध्य प्रदेश का हस्तशिल्प

अगर भारत में कोई ऐसी कला विद्यमान है, जिसका गौरव कभी कम नहीं हुआ, तो वह है हस्तशिल्प कला। इसका जादू हमेशा जनसाधारण के सिर चढ़ कर बोलता है। हस्तशिल्प कला पीढ़ी दर पीढ़ी अपना अस्तित्व बरकरार रखे हुए है। परम्परागत कला के रूप में प्रसिद्ध हस्तशिल्प ही ऐसा क्षेत्र है, जहां कलाकार अपने चिंतन, मनोभावों और कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति कर सकता है। प्राचीन स्थलों की खुदाई से प्राप्त अवशेषों को देख कर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय हस्तशिल्प कला अत्यन्त समृद्ध थी। मृत्भाण्ड, मिट्टी की मूर्तियां, धातु शिल्प, भोजन पात्र आदि अनेक उत्पाद खुदाई के दौरान मिले हैं, जो प्राचीन हस्तशिल्प कला का दिग्दर्शन कराते हैं।

भारत में दस्तकारी की परंपरा इतनी पुरानी है जितना कि देश का इतिहास। शताब्दियों से कुछ विशिष्ट किंतु अज्ञात दस्तकार पुराने औजारों द्वारा ऐसी सुंदर वस्तुएं बनाते रहे हैं, जिन्हें देख कर मन बड़ा प्रफुल्लित होता है। सदियों से हाथी दांत, लोहे, तांबे, कांसे तथा लकड़ी आदि से बनी वस्तुएं संसार के अनेक भागों में लोगों के घरों की शोभा बढ़ाती रही हैं। बड़े उद्योगों के इस युग में भी पुराने दस्तकार भारत की आर्थिक समृद्धि तथा सर्वोच्चता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

हस्तशिल्प उद्योग वे उद्योग हैं, जिनमें वस्तुओं का निर्माण पूर्णरूप से हाथ से या साधारण औजारों से किया जाता है। वे वस्तुएं जो बड़ी मात्रा में या मशीनों की सहायता

टिप्पणी

से उत्पादित की जाती हैं, उन्हें हस्तशिल्प वस्तुएं नहीं कह सकते। हस्तशिल्प को शिल्पकार के द्वारा बनाये गये शिल्प या दस्तकारी से शुद्ध रूप से परिभाषित किया जा सकता है। साधारणतः यह शब्द सामान बनाने के परम्परागत साधनों पर लागू होता है। वस्तुओं की व्यक्तिगत शिल्पकारी ही उस वस्तु की प्रबलतम या उत्तम कसौटी होती है। ये वस्तुएं अक्सर सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व की होती हैं।

हस्तशिल्प वस्तुएं साधारण सजावट के अतिरिक्त उपयोगी भी होती हैं। ये सामान्यतः अधिक पारंपरिक कार्य से संबंधित होती है, पारंपरिक कार्य में अनऔद्योगिक और परिवर्तित समाज द्वारा निर्मित दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुएं होती हैं। इस प्रकार हस्तशिल्प वस्तुओं में मुख्यतः हाथों की प्रधानता होती है। हस्तशिल्प की विशेषता है कि वह प्राकृतिक रूप से उपलब्ध सामग्री के प्रयोग से दैनिक जरूरतों और सजावट की अप्रतिम वस्तुओं का सृजन करता रहा है। इससे उनके सौंदर्यबोध का पता चलता है। इसी का परिणाम है कि ये शिल्प कालातीत हैं। शिल्प रचना एक विशिष्ट कलात्मक कार्य है, जिसके लिये कलात्मक कौशल और सृजनात्मक कल्पनाशीलता दोनों जरूरी हैं। हस्तशिल्प कई अर्थों में कला और शिल्प की प्रचलित श्रेणी से अलग एक विशिष्ट प्रकार का कौशल है।

हस्तशिल्प की पहचान के लिये जिन बातों का होना जरूरी है, उनमें खास ये है कि ये हाथों से बनी होती है, और कारीगरों की घंटों की मेहनत में उनका कौशल झलकता है। इसमें संस्कृति और विरासत के चिन्ह मौजूद रहते हैं। ये घरेलू उपयोग या सजावट के सामान जैसे रहते हैं, जिन्हें बनाने के लिये लकड़ी, मिट्टी, कांच, कपड़ा, धातु आदि प्राकृतिक साधनों का उपयोग होता है। हस्तशिल्पीय रचनाएं व्यक्ति या फिर कारीगरों के छोटे समूह का परिणाम होती हैं। ये परम्परागत होती हैं और जीवन निर्वाह के जरूरी हिस्से के रूप में निर्मित की जाती हैं। इस प्रकार वह विधि जिसमें वस्तु को हाथों से निर्मित किया जाता है, उसे 'हस्तशिल्प' का नाम दिया जाता है। टोकरी बनाना, लकड़ी का सामान बनाना, नक्काशी, चीनी मिट्टी का सामान बनाना, कढ़ाई, बुनाई, सिलाई और चर्मशिल्प हस्तशिल्प के अंतर्गत आते हैं।

हस्तशिल्प उद्योग की प्रमुख विशेषता यह है कि, सामान्यतया किसी भी प्रकार के कच्चे माल या मशीनी उपकरणों के आयात की आवश्यकता नहीं होती है। इस उद्योग में कार्यरत शिल्पी को औपचारिक रूप से किसी प्रशिक्षण संस्थान में अपने व्यवसाय से संबंधित कार्यों का प्रशिक्षण अथवा शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक नहीं। हस्तकला से जुड़े व्यवसाय तो पारिवारिक आधार पर पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं, जिसमें बच्चे अपने वरिष्ठ परिवारजनों के साथ कार्य करते हुए परिपक्व एवं कुशल कारीगर बन जाते हैं।

भारतीय हस्तशिल्प को दुनिया भर में स्वदेशी डिजाइन, पारंपरिक विरासत, संस्कृति और धार्मिक उद्‌गम तथा डिजाइन की विविधता, उत्पादों और भारत के अलग–अलग क्षेत्रों में कच्चे माल के आधार पर जाना जाता है। वनस्पति रंगों के उपयोग से उत्कृष्ट डिजाइन युक्त हस्तशिल्प भारत की विशेषता रही है। उत्कृष्ट हस्तशिल्प के मामले में चीन से मिल रही कड़ी प्रतिस्पर्धा के बावजूद भारत विभिन्न बाजारों में उच्च स्तर के हस्तशिल्प की मांग पूरी कर रहा है।

टिप्पणी

जहां तक कला और संस्कृति की बात है, मध्य प्रदेश भारत के सांस्कृतिक तौर पर सर्वाधिक समृद्ध राज्यों में से है। राज्य का यह सौभाग्य रहा है कि यहां बहुत कुशल कारीगर रहे हैं। उन्होंने भारतीय हस्तशिल्प को पूरी दुनिया में मशहूर किया है। कई ग्रामीण लोग आज भी अपनी कलाकारी से रचनात्मक वस्तुएं बना कर अपनी आजीविका कमाते हैं।

मध्य प्रदेश में हस्तशिल्प के सबसे प्रसिद्ध रूप इस प्रकार हैं :

- **बांस हस्तशिल्प**– बांस से बने हस्तशिल्प सबसे इको–फ्रेंडली शिल्प होते हैं। बांस से कई तरह के सामान बनते हैं, जैसे टोकरी, गुड़िया, खिलौने, चलनी, चटाई, दीवार पर लटकाने के सामान, छाते के हैंडल, क्रॉसबो, खोराही, कुला, डुकुला, काठी, गहने के बक्से आदि। मध्य प्रदेश के अलावा बांस का ज्यादातर हस्तशिल्प पश्चिम बंगाल, असम और त्रिपुरा में बनता है।
- **बेंत हस्तशिल्प**– बेंत का सामान हस्तशिल्प का एक प्रसिद्ध रूप है, जिसमें उपयोगी वस्तुएं जैसे ट्रे, टोकरियां, स्टाइलिश फर्नीचर आदि शामिल हैं।
- **बेल मेटल हस्तशिल्प**– पीतल का कड़ा रूप, जिसका उपयोग घंटी बनाने में किया जाता है, उसे बेल मेटल कहते हैं। इस कड़ी मिश्र धातु का उपयोग सिंदूर के बक्से, कटोरे, मोमबत्ती स्टैंड, पेंडेंट और कई शिल्प बनाने में किया जाता है। बेल मेटल हस्तशिल्प ज्यादातर मध्य प्रदेश, बिहार, असम और मणिपुर में प्रचलित है। मध्य प्रदेश में हस्तशिल्प के इस रूप को आदिवासी शिल्प के रूप में जाना जाता है।
- **हड्डी और सींग हस्तशिल्प**– हड्डी और सींग के हस्तशिल्प पक्षी और जानवरों के रूप बनाने के लिये प्रसिद्ध हैं, जोकि बहुत असली और जीवंत लगते हैं। इसके अलावा इनसे पेन स्टैंड, गहने, सिगरेट के डिब्बे, टेबल लैंप, मिर्च और नमक के सेट, शतरंज सेट, नैपकिन रिंग, लाफिंग बुद्धा आदि भी बनाये जाते हैं।
- **पीतल हस्तशिल्प**– पीतल के सामानों के टिकाऊपन के कारण पीतल के बर्तन मशहूर हैं। पीतल से बने सामान जैसे रेंगते कृष्ण या भगवान गणेश की विभिन्न मुद्राओं की मूर्तियां, फूलदान, टेबल टॉप, छेदवाले लैंप, गहने के बक्से, हुक्का, खिलौने, वाइन ग्लास, प्लेट्स, फलदान और कई वस्तुएं भारतीय घरों में इस्तेमाल होती हैं। इन कारीगरों को कंसारी के तौर पर जाना जाता है।
- **मिट्टी के हस्तशिल्प**– सिंधु घाटी सभ्यता में उत्पत्ति होने के बाद से मिट्टी के बर्तन भारत में हस्तशिल्प का सबसे प्राचीन रूप हैं। इस काम में संलग्न लोगों को कुम्हार कहा जाता है। अपने विश्वप्रसिद्ध टेराकोटा रूप के अलावा मिट्टी के हस्तशिल्प में लाल बर्तन, ग्रे बर्तन और काले बर्तन के रूप प्रचलित हैं। मिट्टी के बर्तन, सजावटी सामान, गहने आदि पूरे देश में काफी इस्तेमाल किये जाते हैं।
- **धोकरा हस्तशिल्प**– धोकरा हस्तशिल्प का सबसे पुराना रूप है और अपनी पारंपरिक सादगी के लिये जाना जाता है। इस आदिवासी हस्तशिल्प की उत्पत्ति मध्य प्रदेश में हुई। इन हस्तशिल्पों को बनाने में पश्चिम बंगाल, बिहार और ओडिशा जैसे राज्य शामिल हैं। धोकरा लोक चरित्र का प्रदर्शन करते अपने अनूठे सामानों के लिये जाना जाता है। सभी हस्तशिल्प दुकानों में धोकरा के गहने, केंडल स्टैंड, पेन स्टैंड, ऐश ट्रे और कई प्रकार के सजावटी सामान मिलते हैं।

टिप्पणी

- **कागज हस्तशिल्प**– चटखदार रंगों वाले कागज को मिला कर कई शिल्प जैसे पतंग, मास्क, सजावटी फूल, लैंपशेड, कठपुतली, हाथ के पंखे आदि बनाये जाते हैं। मुगलकाल में विकसित हुआ कुट्टी भारत में कागज हस्तशिल्प का प्रसिद्ध रूप है। यह शिल्प उद्योग मध्य प्रदेश के साथ–साथ मुख्य तौर पर दिल्ली, राजगीर, पटना, गया, अवध, अहमदाबाद और इलाहाबाद में स्थित है। इसके अलावा कागज के शिल्पकार लगभग हर शहर में हैं।
- **रॉक हस्तशिल्प**– रॉक कला का सबसे पुराना रूप रॉक नक्काशी है, जो कि राजस्थान के जयपुर, ओडिशा और नागपुर में देखा जा सकता है। राजस्थान, जयपुर और मध्य प्रदेश संगमरमर की नक्काशी के लिए प्रसिद्ध हैं। मध्य प्रदेश की खासियत हरे रंग के पत्थरों की कला है, जबकि पत्थरकट्टी गया का अनूठा रॉक शिल्प है। ओडिशा के प्राचीन मंदिर भारत के रॉक शिल्प के विश्वप्रसिद्ध उदाहरण हैं। कई प्रकार के बर्तन, सजावटी सामान, पत्थर के आभूषण और मूर्तियां रॉक से बनाये जाते हैं।
- **बुनाई या कढ़ाई हस्तशिल्प**– दो धागों के सेट ताना और बाना से बुन कर कपड़ों के उत्पादन को बुनाई कहा जाता है। हस्तशिल्प का यह पारंपरिक रूप खासतौर पर मध्य प्रदेश, गुजरात और राजस्थान में मिलता है। बुनाई का प्रसिद्ध रूप बांधनी जामनगर और राजकोट में बनाया जाता है। बिहार और कर्नाटक भी अपने कढ़ाई के काम के लिये जाने जाते हैं।
- **लकड़ी हस्तशिल्प**– पत्थर की मूर्तियों के अस्तित्व में आने के बहुत पहले से लकड़ी का हस्तशिल्प भारत में प्रचलित था। कुशल कारीगरों द्वारा लकड़ी के टुकड़े को आकार देकर विभिन्न सामान बनाये जाते थे। मध्य प्रदेश, गुजरात, जम्मू कश्मीर, कर्नाटक, केरल और उत्तर प्रदेश अपने अनूठे लकड़ी के काम के लिये जाने जाते हैं। कुल्हाड़ी, खिलौने, बर्तन, सजावटी सामान, गहने और कई सजावटी घरेलू सामान जैसे लैंपशेड, मोमबत्ती स्टैंड, सिंदूर के बक्से, गहनों के बक्से, चूड़ी होल्डर आदि कुछ ऐसे सामान्य लकड़ी के शिल्प हैं, जो लगभग हर भारतीय घर में उपयोग में आते हैं।
- **बाग की हस्तकला**– मध्य प्रदेश के धार जिले के छोटे से कस्बे बाग की हस्तकला अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय है। इस कला क्षेत्र में बाग की मिट्टी, नदियों, वनस्पति, वन्य जीवन और जलवायु का असर साफ नजर आता है। जितना खूबसूरत यह दिखता है, इसे बनाना उतना ही मुश्किल है। इस हस्तकला द्वारा एक साड़ी या दुपट्टा तैयार होने में 20 दिन लग जाते हैं। कपड़े को कई बार पैरों से रौंदा और भट्टी में उबाला जाता है। आज बाग प्रिंट को दुनिया भर में पहचान मिल चुकी है और लोग इसे काफी पसंद भी कर रहे हैं।

  बाग प्रिंट मध्य प्रदेश का नेचुरल प्रिंट है और इसे हाथों से प्रिंट किया जाता है। अनार के छिलके से हरा रंग, लोहे के जंग से काला व फिटकरी से लाल रंग तैयार होता है। इसके बाद गुजरात में सबसे बढ़िया वुडन ब्लॉक से इसे प्रिंट किया जाता है। प्रिंटिंग के आठ से दस दिन बाद बहते हुए पानी से इसे धोया जाता है, ताकि डिजाइन खराब न हो।

टिप्पणी

## 1.4.4 मध्य प्रदेश की प्रमुख लोक गायनशैलियां

मध्य प्रदेश के चारों अंचलों– निमाड़, मालवा, बघेलखंड और बुंदेलखंड में अनेक पारंपरिक लोक गायनशैलियां प्रचलित हैं। पर्व, त्योहार, अनुष्ठान, ऋतु और संस्कार संबंधी लोकगीत गायन की परंपरा प्रत्येक अंचल में मिलती है। पुरुषपरक और महिलापरक दोनों तरह की गायनशैलियां हर जगह देखी जा सकती हैं।

### (1) निमाड़ अंचल के प्रमुख लोकगीत

**लोकगीत**– निमाड़ अंचल के जीवन का कोई भी अवसर ऐसा नहीं मिलता जब कोई ना कोई गीत ना गाया जाता हो। जन्म, विवाह और मृत्यु आदि सोलह संस्कारों के अवसरों पर अलग–अलग लोग धुनो में लोकगीत गाए जाते हैं। संस्कार गीत प्रायः घर की महिलाएं ही गाती हैं। पर्व त्योहार अनुष्ठान गीतों की प्रकृति स्त्री और पुरुष की परख होती है। लोकगीतों की गायन शैली प्रायः अलग–अलग होती है। निमाड़ी लोक गायन का माधुर्य विवाह, गणगौर, संत सिंगाजी भजन, कलगी तुर्रा आदि परंपरा विधानों में मिलता है।

**कलगी–तुर्रा गीत**– कलगी तुर्रा प्रतिस्पर्धात्मक लोक गायन शैली है। यह एक प्राचीन लोक गायकी है। इस गायन शैली का प्रसार एक समय कर्नाटक से लगा कर उत्तर प्रदेश तक था। निमाड़, मालवा, बुंदेलखंड और मंडला में कलगी तुर्रा गायन मंडलियां अभी भी मौजूद हैं। चंग की थाप पर रात–रात भर कलगी तुर्रा गाया जाता है। इसके दो अखाड़े होते हैं– एक कलगी अखाड़ा, दूसरा तुर्रा अखाड़ा। अखाड़े के गुरु को उस्ताद कहते हैं। आशु कविता के साथ महाभारत की कथाएं, पौराणिक आख्यानों से लेकर वर्तमान प्रसंगों को सवाल–जवाब के शानदार माध्यम से पारंपरिक गायिका में पिरोया जाता है। कलगी तुर्रा का आध्यात्मिक पक्ष भी है। कलगी दल शक्ति और तुर्रा दल शिव को बड़ा बताने की कोशिश करता है।

कलगी तुर्रा की उत्पत्ति संबंधी एक पुरानी कथा प्रचलित है। चंदेरी के राजा शिशुपाल के दरबार में दो प्रमुख ख्याल गायक तुकनगीर और शाह अली फकीर थे। दोनों ही अपने–अपने ख्याल गायिकी के पारंगत थे। एक बार राजदरबार में दोनों का मुकाबला हुआ। दोनों ने एक–दूसरे से बढ़–चढ़ कर जवाब दिये। राजा के लिये यह निर्णय करना मुश्किल था कि दोनों में कौन श्रेष्ठ है। राजा ने दोनों को पुरस्कृत किया। तकनगीर ने अपनी पगड़ी का हीरा जड़ा तुर्रा और शाह अली फकीर ने माणक मोती से जुड़ी कलगी भेंट की। तबसे तुकनगीर की ख्याल गायिकी का नाम तुर्रा और शाह अली फकीर की गायकी कलकी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

**संत सिंगाजी गीत**– संत सिंगाजी 15वीं सदी के निर्गुण संत कवियों में अग्रणी हैं। अपनी आध्यात्मिक साधना और शुचिता के कारण संत सिंगाजी के पद समूचे निर्माड़ और मालवा के हिस्से में इतने लोगप्रिय हुए कि निमाड़ के सिंगाजी के पद गायन की एक अलग शैली बन गयी। संत सिंगाजी ने निमाड़ी में कई सौ आध्यात्मिक पदों की रचना की है, ऐसा कहते हैं।

मृदंग और झांझ के साथ उच्च स्वर में भजन गाने की शैली का विकास स्वयं सिंगाजी ने किया था। तबसे लगातार आज तक निमाड़ के गांव–गांव में संत सिंगाजी

के भजन गाये जाते हैं। संत सिंगाजी ने पहली बार खेती और गृहस्थी संबंधित प्रतीकों को अपने काव्य में स्थान दिया था और यही उनके पदों की प्रमुख विशेषता बन गयी। संत सिंगाजी की छाप लगा कर आज सैकड़ों पद गायन मंडलियां गा रही हैं।

टिप्पणी

**निर्गुणिया गीत**– निमाड़ी लोक में निर्गुण और सगुण संत कवियों की छाप लगा कर पदों की रचना और गाने की सदीर्घ और समृद्ध परंपरा रही है। इसमें कबीर, मीरा, रैदास, ब्राह्मद, दादू, सूर आदि की छाप वाले भजन लोक में सबसे अधिक प्रचलित हैं।

अनेक अनाम लोक कवियों ने परंपरा से चली आ रही चिंतनधारा अथवा पंथ को सर्वोपरि माना और अपनी रचनाओं में आंचलिक विशेषताओं, घटनाओं और लोक प्रतीकों को काल्पनिक तरीके से समाहित कर कुछ इस तरह से प्रस्तुत किया कि वे कबीर, सूर, मीरा आदि की रचना लगे। उन्होंने अपना व्यक्तित्व और कृतित्व सभी कुछ अपने प्रेरणा साध्य को समर्पित कर दिया। अलग–अलग अंचल में अपने–अपने ढंग से लोग कबीर के पद गाने लगे। निर्गुणिया गायन शैली के मुख्य आधार वाद्य तासा और खड़ताल रहे हैं। एकतारे पर भजन गाते हुए कई साधु और भिक्षुक गांव, शहर और गलियों में मिल जाते हैं। निर्गुणिया गायन को नारदीय भजन भी कहा जाता है।

**मसाण्या अथवा कायाखो के गीत**– निमाड़ के मृत्यु गीतों को मसाण्या अथवा कायाखो के गीत कहते हैं। किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर आत्मा की अमरता और शरीर की नश्वरता संबंधी पारंपरिक गीत गाये जाते हैं। इनके गाने की शैली संत सिंगाजी भजन से थोड़ी भिन्न है। मसाण्या अथवा कायाखो गीतों को भी झांझ, मृदंग और इकतारे के साथ समूह में गाया जाता है। मसाण्या अथवा कायाखो गीतों में आत्मा को दुल्हन की उपमा दी जाती है और शरीर को दूल्हा कहा जाता है। मसाण्या अथवा कायाखो गीत प्रायः मृत्यु के अवसर पर ही गाये जाते हैं। अन्य समय में इसे गाना प्रतिबंधित होता है।

**फाग गायन (गीत)**– होली के अवसर पर फाग गीत गाये जाते हैं, जो प्रायः कृष्ण और राधा पर केंद्रित होते हैं। दो या तीन ढफ बजाते हुए ऊंचे स्वर में सामूहिक रूप से पुरुष वर्ग फाग गायन करता है, जिसमें हंसी, मजाक, ठिठोली, छेड़छाड़ के गीत प्रमुख होते हैं। स्त्रीपरक फाग गायन अलग होता है।

**गरबा गीत**– निमाड़ में गरबा स्त्रीपरक अनुष्ठानिक लोग गीत हैं। नवरात्रि में गरबे की स्थापना के साथ महिलाएं ताली की थाप पर गरबा गीत गाती हैं, जिसकी गायन शैली सर्वथा अलग होती है। इसके साथ नृत्य प्रवृत्तियां भी हैं।

**गरबी गीत**– गरबी प्रायः पुरुषपरक लोक गायन है। इसे झांझ, मृदंग के साथ गाया बजाया जाता है। गरबी गीत निमाड़ी लोक नाट्य गायन का एक प्रमुख अंग है। गरबी भक्ति, श्रृंगार और हास्यपरक होता है, जो नृत्य और बैठकी गायकी दोनों में चलता है। गरबी मूलतः देवी गीत है।

**गवलन गीत**– गवलन गीत कृष्णलीला गीत है। इसके गायन की पद्धति गरबी से भिन्न होती है। गवलन गीतों का मुख्य उपयोग रासलीला में किया जाता है। गवलन गीत पुरुषों द्वारा झांझ, मृदंग और ढोलक पर गाये जाते हैं।

**नाथपंथी गीत**– निमाड़ में नाथ योगियों में सर्वथा अलग प्रकार के लोक गायन की पद्धति है। नाथ जोगी भगवा वस्त्र पहने हाथ में रेकडी अथवा रू रू बाजा

बजाते–गाते गांव–शहर में दिखाई देते हैं। नाथ जोगी प्रायः गोरख, कबीर अथवा भरथरी गाथा गाते हुए मिल जाते हैं। निमाड़ की नाथ जोगी महिलाएं प्रायः सुबह–सुबह परभाती गाती हुई मिलती हैं और घर–घर से नेग लेती हैं।

टिप्पणी

### (2) मालवा अंचल के प्रमुख लोकगीत

**मालवी लोकगीत**– मालवा में पुंसवन, जन्म, मुंडन, जनेऊ, सगाई, विवाह के अवसर पर पारंपरिक लोकगीत गाने की प्रथा है। पर्व, ऋतु, त्योहार, अनुष्ठान संबंधी गीतों के गाने की परंपरा भी समूचे मालवा अंचल में मिलती है। मालवी लोक गायन में एक प्रकार से बोली की मिठास के साथ वहां की प्रकृति, धरती और संस्कृति की समृद्धि और सौंदर्य के मूल स्वर सहज रुप से सुनाई देते हैं।

**भरथरी गायन**– मालवा में नाथ संप्रदाय के लोग चिंकारा पर भरथरी का गायन करते हैं। चिंकारा नारियल की नाट्टी, बांस और घोड़े के बालों से निर्मित एक प्राचीन और पारंपरिक वाद्य यंत्र है। चिंकारा बालों से बने धनुष से बजाया जाता है, जिसमें रू–रू की निरंतर ध्वनि निकलती है। भरथरी, गोपीचंद कथा, गोरखवाणी, कबीर, मीरा के भजन गाते हुए नाथपंथी लोग भोर में मालवा के गांव में आज भी मिल सकते हैं। कुछ नाथपंथी अखाड़ों में सितार, तबले की संगत में बैठ कर भरथरी, गोपीचंद भजन आदि गाने की परंपरा है।

**निर्गुणी भजन गायन**– मालवा की निर्गुणी लोक पद गायन परंपरा बहुत पुरानी है। निर्गुणी या भजनों में कबीर के अध्यात्म की छाप होती है, जिसमें न'वर शरीर और अमर आत्मा या परमात्मा संबंधी तत्वों की सरल ग्रामीण प्रतीकों में विवेचना होती है। निर्गुण या भजनों में एकतारा और मंजीरे के स्वरों के साथ मालवा की लोकधुनों और मालवी की बोली का माधुर्य देखा जा सकता है।

**संजा गीत**– संजा गीत मूलतः किशोरियों की पारंपरिक गायन पद्धति है। इसमें किसी प्रकार का सहवाद्य नहीं होता। पितृपक्ष में किशोरियां संजा पर्व मनाती हैं। वे गोबर और फूल पत्तियों से संजा की सुंदर आकृतियां बनाती हैं। शाम को उनकी पूजा आरती करती हैं तथा संध्या गीत गाती हैं। किशोरियों के मधुर कंठों से जब संजा गीतों के स्वर उठते हैं, तब ऐसा लगता है जैसे बाल्यावस्था की कोमल पवित्र भावनाओं का लोक संगीत शाम के झुटपुटे में हर आंगन में साकार हो रहा है। 16वें दिन सर्व पितृ अमावस्या को किशोरियां अपनी सहेलियों के साथ संजा को सम्मान देते हुए विदा कर देती हैं। संजा एक गीतपर्व ही है।

**हीड़ गायन**– श्रावण के महीने में मालवा में हीड़ गायन की प्रथा है। इधर बाग–बगीचों में झूले पड़ते हैं, उधर गांव में हीड़ गायन की प्रतिस्पर्धा शुरू होती है, जिसमें कृषि संस्कृति और आंतरिक परतों का सूक्ष्म वर्णन मिलता है। ग्यारस माता की कथा का गायन भी इसी अवसर पर किया जाता है। गोवर्धन पूजा के समय भी हीड़ गायन किया जाता है, जो प्रायः ऊंचे स्वर में होता है। इसमें आलाप भी लिये जाते हैं।

**पर्व त्योहार संबंधी गायन**– संपूर्ण मालवा में होली पर फाग, दीपावली पर दीवारी, जन्माष्टमी पर कृष्णलीला गीत और नवरात्रि में देवी गीत गाने की परंपरा प्रचलित है।

टिप्पणी

**बरसाती गीत**– बरसाती बरसात ऋतु कथा गीत है। बरसाती बरसाता का कथन और गायन बरसात के समय में किया जाता है। मालवा के गांव–गांव में घरों में बैठ कर बरसाती बरसाता रात–रात भर कही और गायी जाती है। बरसाती बरसाता की शैली चंपू काव्य की तरह होती है, जिसमें मालवी गद्य और पद्य का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है। ऋतु गीतों में मालवा में बारहमासा गीत प्रायः बरसात में गाये जाते हैं।

## (3) बुंदेलखंड के प्रमुख लोकगीत

**बुंदेली लोकगीत**– शौर्य और श्रृंगार की धरती बुंदेलखंड की कला और संस्कृति सबसे अलग है। यहां के लोकगीतों में स्वर और उत्कर्ष और श्रृंगार के भाव गुंफित होते हैं। यहां के लोक गायन के तारत्व के दो मुख्य स्वर हैं– एक षडज और दूसरा मध्यम। पुरुषपरक और बालसुलभ लोक गायन का स्वर प्रायः 'षडज यानी 'सा' होता है। अन्य संस्कार गीतों में महिलाएं मध्यम यानी 'म' सुर में गाती हैं। लोकगीतों के विषय पारिवारिक पृष्ठभूमि लिये हुए होते हैं, जिनमें लोकजीवन की सामाजिकता का संपुट होता है।

**आल्हा गायन**– वीर रस प्रधान काव्य आल्हा की रचना लोक कवि जगनिक ने लगभग 1000 वर्ष पहले की थी। आल्हा खंड की मूल भाषा बुंदेली है, इस कारण जगनिक द्वारा लिखी आल्हा ऊदल की 52 लड़ियां लोक कंठों में सहज रूप से विराजमान हो गयी। जगनिक द्वारा लिखित आल्हा कथा का प्रामाणिक रूप आज तक नहीं मिल पाया है। लेकिन आल्हा का लोक प्रचलित रूप बुंदेलखंड के गांव के अल्हेत आज भी गाते हैं। फिर भी आल्हा की मूल कथा में अंतर नहीं आया है। उसमें लोककथा और गीत तथा आल्हा और ऊदल के जीवन की घटनाओं में कोई खास फेरबदल आज तक नहीं हुआ है। आल्हा प्रायः वर्षा ऋतु में गाया जाता है। आल्हा छंद के कारण इसका नामकरण आल्हाखंड पड़ा। आल्हाखंड संसार की सबसे लंबी गाथाओं में से एक है।

**भोला गीत अथवा बंबुलिया**– बंबुलिया बुंदेलखंड की वाचिक परंपरा के मधुर गीत हैं, जिन्हें लंबे लमेटरा गीत भी कहा जाता है। बंबुलिया गीत प्रायः स्त्री पुरुष समूह द्वारा बिना वाद्य यंत्र के श्रावण मास में शिवरात्रि, बसंत पंचमी, मकर सक्रांति के अवसर पर गाया जाता है। बंबुलिया गीतों के राग लंबे होते हैं। स्त्री पुरुष अलग–अलग आमने–सामने बैठ कर समवेत स्वर में गीत गाते हैं। गीत प्रायः प्रश्न उत्तर शैली में होते हैं। उनका दोहरा भी होता है। भोला गीत शिव और शक्ति से संबंधित है। नर्मदा स्थान जाते समय महिलाएं समूह में भोला गीत गाती हुई निकलती हैं।

**फाग गीत**– फाग गायन होली के अवसर पर होता है। फागुन माह के लगते ही समूचे बुंदेलखंड में ठाकुर फाग, ईसुरी फाग, राई फाग शुरू हो जाते हैं, जो होली जलने के बाद रंगपंचमी तक चलते हैं। स्त्री–पुरुष एक–दूसरे को रंग गुलाल लगा कर गीत गाकर नृत्य करते हुए ठाकुर फाग गाते हैं। ठाकुर फाग में मृदंग, टिमकी और मंजीरा बजाया जाता है। ठाकुर फाग में स्त्रियां जीराई का खेल खेलती हैं। वे गीत गाते हुए लड़ियों अथवा चोटियों से पुरुषों पर वार करती हैं और पुरुष चतुराई से वार से बचते हैं। जीराई का आकार अंग्रेजी के 'एस' अक्षर के समान होता है। ईसुरी की चौकड़िया फाग बैठ कर गायी जाती है। राई फाग राई नृत्य के साथ गायी जाती है।

टिप्पणी

**बैरायटा गायन**— बैरायटा मूल कथागायन शैली है, जिसमें मुख्य रुप से महाभारत कथाओं के साथ अनेक ऐतिहासिक चरित्र लोक नायकों की कथाएं गायी जाती हैं। बैरायटा गायन केंद्रीय रूप से एक व्यक्ति गाता है। वहीं सहयोगी गायक मुखिया का साथ देते हैं और कथा को आगे बढ़ाने के लिए हुंकार देते हैं। बीच—बीच में कुछ संवाद भी बोलते हैं। बैरायटा गायन में लोक कथाओं का भी गायन किया जाता है। बैरायटा गायन में कलात्मकता के साथ—साथ प्रसंग अनुकूल हाथ और चेहरे के हाव—भाव गायन शैली को प्रभावशाली बनाने में सक्षम होते हैं।

**देवारी गायन**— देवारी गायन दोहों पर केंद्रित होता है। अहीर, गवली, बरेलदी, धोशी आदि जातियों में देवारी गायन और नृत्य करने की परंपरा है। दीपावली के अवसर पर ग्वाल बाल सिर पर मोर पंख धारण कर घर—घर देवारी मांगते हैं, नेग पाते हैं और ऊंचे स्वर में दोहा गाकर ढोलक, नगरिया, बांसुरी की समवेत धुन पर तेजी से नृत्य करते हैं। देवारी के दोहों के विषय कृष्ण राधा प्रेम प्रसंग, भक्ति कथा, वीर रस से परिपूर्ण होते हैं।

**जगदेव का पुवारा गीत**— पुवारा मूलतः भजन शैली में है। यह देवी की स्तुति से संबंधित एक लंबा आख्यान है जिसे भक्त गाते हैं। इस अवसर पर जावार और गीत भी गाये जाते हैं। इन्हें देवगीतों के नाम से भी जाना जाता है।

### (4) बघेलखंड के प्रमुख लोकगीत

**बघेली लोकगीत**— बघेली लोकगीत की गायन शैली मध्य प्रदेश के अन्य अंचलों से थोड़ी भिन्न है, क्योंकि बघेली बोली अवधी से प्रभावित है। बघेली लोक गीतों का मूल स्वर तीव्र मध्यम है। इनमें बघेलखंड की जातियों और जनजातियों की आंतरिक ऊर्जा का उत्कर्ष देखा जा सकता है। बघेली लोकगीत में लोक की व्यापकता, सरलता, भावप्रवणता और सुबोधता का सहज रूप देखा जा सकता है। बघेली लोकगीतों में जहां पारंपरिक कल्पना का वैभव प्रसरित है, वही बघेलखंड की संस्कृति की झांकी भी प्रतिबिंबित होती है। लोकगीतों में जितनी विविधता और विषय की भिन्नता मिलती है, उतनी किसी अन्य लोकगीत में नहीं देखी जाती है।

**बसदेवा गायन**— बसदेवा बघेलखंड की एक पारंपरिक गायक जाति है, जिन्हें हरबोले कहा जाता है। बसदेवा मूलतः कथा गायक है। श्रवण कुमार की कथा गायन करने के कारण इन्हें सरमन गायक भी कहा जाता है। बसदेवा परंपरा से कई तरह की कथाएं और गाथाएं गाते हैं। बसदेवा सिर पर कृष्ण की मूर्ति और पीला वस्त्र धारण कर हाथ में चोट की सूजन और सारंगी लिए गाते हैं। बसदेवा गायक गांव—गांव भ्रमण करते हैं। मुख्य गायक गाथा की पंक्ति उठाता है, दूसरा पंक्ति समाप्ति तक उसे उसी राग में तेजी से दोहराता है और अंत में हर गंगे की टेक हर पंक्ति के बाद लगाता है। बसदेवा जाति रामायण कथा के साथ कर्ण कथा, मोरध्वज, गोपीचंद भरथरी भोले बाबा आदि चरित्र कथाएं गाते हैं।

**बिरहा गायन**— बघेलखंड में बिरहा गायन परंपरा सभी भागों में पाई जाती है। बिरहा की गायन शैली सर्वथा मौलिक और माधुर्यपूर्ण है। बिरहा प्रायः खेत, सुनसान राहों में सवाल जवाब के रूप में गाया जाता है। कहीं—कहीं बिरहा बिना वाद्य यंत्रों के गाये जाते हैं। कानों में उंगली लगा कर ऊंची टेर के साथ बिरहा गाया जाता है।

गायक गाते समय जब भौहों को नचाता है, तब ऐसा लगता है, जैसे कोई प्रश्न पूछ रहा है। उतरती रात में बिरहा का गायन आकर्षक और मनोहारी लगता है। बिरहा शृंगारपरक गीत होते हैं।

टिप्पणी

**बिदेशिया गायन**– बिदेशिया गायन समूचे बघेलखंड में मिलता है। गडरिया, तेली, कोटवार जाति के लोग विदेशिया गायन परंपरा में विशेष दक्षता रखते हैं। बिदेशिया का राग लंबा और गंभीर होता है। बिदेशिया का गायन प्रायः जंगल अथवा सुनसान रात में किया जाता है। बिदेशिया बिछोह और मिलन की अभिलाषा के गीत हैं, जिनमें लोकनायक–नायिका के मन की आतुरता का सहज चित्रण होता है। इसमें उपालंभ भी होता है। उतरती गहरी सुनसान रात में बिदेशिया गीतों की ताने सुनने वालों को बेचैन कर देती हैं।

**फाग गायन**– बघेलखंड में फाग गायन की परंपरा सबसे पुरानी और मौलिक है। यहां नगाड़ों के ऊपर फाग गायन किया जाता है। फाग गायकी में पुरुष की मुख्य भागीदारी होती है। सामूहिक स्वरों में फाग गीतों की पंक्तियों का गायन नक्कालों के विलंबित ताल पर शुरू होता है और धीरे–धीरे तीव्रता की ओर बढ़ता है। नगाड़ों की टंकार और समूह कंठों का ऊंचा स्वर फाग गायन में एक जोशीला वातावरण निर्मित करने में सफल होता है और गायक का वृन्द गायन के साथ घूमने लगता है।

### (5) मध्य प्रदेश के अन्य प्रमुख लोकगीत

**लावणी गायन**– लावणी गायन मुख्य रूप से मालवा निमाड़ अंचल में गाया जाता है। यह प्रायः सुबह के समय गाया जाता है। यह निर्गुणी दार्शनिक गीत है।

**ढोला मारू गीत**– ढोला मारू गीत मालवा–निमाड़ तथा बुंदेलखंड में गाये जाते हैं। ढोला मारू गीत का गायन रात के समय ढोला–मारू नाटक के साथ–साथ किया जाता है। ढोला मारू गीत में प्रेमकथा का गायन उच्च स्वर में किया जाता है।

**पंडवानी गीत**– पंडवानी गीत मुख्य रूप से मध्य प्रदेश के शहडोल, अनूपपुर एवं बालाघाट जिले में गाये जाते हैं। यह अधिकतर शाम के समय आयोजित किया जाता है। पंडवानी गीत में मुख्य रूप से कथा का वर्णन किया जाता है। पंडवानी एक उच्च स्वर युक्त एकल कथागायन शैली है।

**बांस गीत**– बांस गीत मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ से जुड़े जिलों में गाया जाता है। यह मुख्य रूप से रात के समय गाया जाता है। मोरध्वज एवं कर्ण की गाथाओं पर आधारित ये गीत महिलापरक होते हैं। उच्च स्वर सहित कथात्मक गायन शैली मुख्य है।

**घोटुल पाटा गीत**– घोटुल पाटा गीत मुनिया आदिवासी क्षेत्रों में गाया जाता है। यह गीत सिर्फ मृत्यु के अवसर पर ही गाया जाता है। मुख्य रूप से बुजुर्गों द्वारा सामूहिक कथा गायन रूप में गाया जाने वाला यह गीत अन्य अवसरों पर गाना प्रतिबंधित होता है।

**लोरिक चंदा गीत**– लोरिक चंदा गीत समूचे उत्तर भारत में गाया जाता है। यह शाम के समय गाया जाने वाला गीत है। लोरिक चंदा गीत की विषय–वस्तु नायक की कथा होती है। उच्च स्वर सहित गाथा गायन शैली इसकी प्रमुख पहचान है।

**ददरिया गीत**— ददरिया गीत बैगा आदिवासी क्षेत्रों में गाया जाता है। यह विवाह, जन्मोत्सव आदि पर गाया जाता है। लोकजीवन एवं साहित्य की प्रेमगाथाओं का गायन करना इसकी प्रमुख विषय वस्तु है। इस गायन शैली में महिला एवं पुरुष के बीच एक सामूहिक सवाल जवाब होता है।

**रेलो गीत**— रेलो लोकगीत मुख्य रूप से भील, कोरकू आदिवासी जनजाति द्वारा गाया जाता है। इस गीत की मुख्य विशेषता यह है कि इसे केवल युवतियां गाती हैं।

## 1.4.5 मध्य प्रदेश के प्रमुख लोकनृत्य

लोक संगीत और नृत्य के माध्यम से हमारी सामाजिक परम्पराएं, उनका इतिहास तथा हमारे पूर्वजों के अनुभवों का सार समाज को सहज रूप में प्राप्त होता है, जिससे आने वाली पीढ़ी को जीवन के वे मार्ग सहजता से मिल जाते हैं, जिनको बड़ी ही तपस्या से प्राप्त किया गया है। लोक संगीत का मुख्य स्रोत लोक है, लोक के सहज अनुभव तथा उनके कलात्मक दृष्टिकोण ही लोकगीत, लोकनृत्य, लोक साहित्य, लोक चित्र के रूप में सामने आते हैं।

लोकगीत ऐसे ही अनुभवों का सारगर्भित तत्त्व है, जो जीवन की हर दशा में मार्गदर्शन के लिये अपने आप में एक परिपूर्ण ग्रन्थ है। हमारे जीवन के प्रत्येक रस से सम्बंधित गीत समाज में प्रचलित हैं। शृंगार, शोक, हास्य, वीर, वीभत्स, शांत आदि प्रत्येक रस इन गीतों में मिलते हैं। जीवन का हर अनुभव इन गीतों में है। ये लोकगीत मानव की प्रत्येक मानसिक अवस्था में उनका साथ देते हैं। ये उनके सुख–दुख के साथी हैं, मानो प्रत्येक व्यक्ति की आपबीती ही इन गीतों में व्यक्त की गयी हो।

लोकनृत्यों में प्रयुक्त लोकगीतों की अपनी अलग लय, विषयवस्तु तथा रोचकता होती है। इनमें जीवन के प्रति निराशा तथा पलायन नहीं होता है, अपितु जीवन के कठिन सार तत्त्व भी इन गीतों के रूप में सहज मिल जाते हैं। ऐतिहासिक घटनाएं, पुराणों, शास्त्रों के रहस्य, सामाजिक जीवन का सौन्दर्य तथा उनका संघर्ष सभी कुछ इन नृत्य गीतों में दिखाई पड़ता है, साथ ही समसामयिक सामाजिक परिस्थितयों की झलक भी इन गीतों में मिलती है। नृत्य के साथ जुड़ कर इन गीतों का सौन्दर्य और अधिक बढ़ जाता है। नृत्य की मुद्राओं को अर्थ तथा लय देने वाले ये गीत इन नृत्यों की शोभा हैं तथा ये गीत ही नृत्य को अर्थ प्रदान करते हैं।

मध्य प्रदेश में प्रचलित कुछ प्रमुख लोकनृत्य शैलियों का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है–

**करमा नृत्य**— यह मध्य प्रदेश के गोंड और बैगा आदिवासियों का प्रमुख नृत्य है, जो मंडला के आसपास के क्षेत्रों में किया जाता है। करमा नृत्यगीत कर्म देवता को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। यह नृत्य कर्म का प्रतीक है, जो आदिवासी व लोकजीवन की कर्ममूलक गतिविधियों को दर्शाता है। यह नृत्य विजयदशमी से प्रारंभ होकर वर्षा के प्रारंभ तक चलता है। ऐसा माना जाता है कि करमा नृत्य कर्मराजा और कर्मरानी को प्रसन्न करने के लिये किया जाता है। इसमें प्रायः आठ पुरुष व आठ महिलाएं नृत्य करती हैं। ये गोलार्ध बना कर आमने–सामने खड़े होकर नृत्य करते हैं।

एक दल गीत उठाता है और दूसरा दल दोहराता है। इसमें वाद्य यन्त्र मादल का प्रयोग किया जाता है। नृत्य में युवक युवती आगे–पीछे चलने में एक दूसरे के अंगूठे को छूने की कोशिश करते हैं।

टिप्पणी

बैगा आदिवासियों के करमा को बैगानी करमा कहा जाता है। ताल और लय के अंतर से यह चार प्रकार का होता है– 1. करमा खरी, 2. करमा खाय, 3. करमा झुलनी और 4. करमा लहकी।

यह नृत्य कर्म को महत्त्व देने वाला है। यह गोंड, बैगा जनजाति के कृषकों द्वारा किया जाता है। यह नृत्य गीत, लय, ताल के साथ पद संचालन पर आधारित है। करमा नृत्य जीवन की व्यापक गतिविधियों से सम्बंधित है। यह नृत्य दशहरे से वर्षाकाल के आरम्भ अर्थात अक्टूबर से जून तक चलता है।

बैगा समुदाय के बीच लोकप्रिय नृत्य का दूसरा रूप पारधौनी है। मुख्य रूप से दूल्हा पक्ष का स्वागत करने और मनोरंजन करने के लिये इसका प्रदर्शन किया जाता है। यह नृत्य खुशी और शुभ अवसर की भावना को व्यक्त करता है।

**राई नृत्य**– मध्य प्रदेश के प्रमुख लोकनृत्य राई को इसके क्षेत्र के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है– बुंदेलखंड का राई नृत्य और बघेलखंड का राई नृत्य।

**बुंदेलखंड का राई नृत्य**– राई नृत्य बुंदेलखंड का एक लोकप्रिय नृत्य है। यह नृत्य उत्सवों जैसे विवाह, पुत्रजन्म आदि के अवसर पर किया जाता है। अशोकनगर जिले के करीला मेले में राई नृत्य का आयोजन सामूहिक रूप से किया जाता है। यहां पर लोग अपनी मन्नत पूर्ण होने पर देवी के मंदिर के समक्ष लगे मेले में राई नृत्य कराते हैं। यह राई का धार्मिक स्वरूप है। राई नृत्य के केंद्र में एक नर्तकी होती है, जिसे स्थानीय बोली में बेड़नी कहा जाता है। नृत्य को गति देने का कार्य एक मृदंग वादक पुरुष द्वारा किया जाता है। राई नृत्य के विश्राम की स्थिति में स्वांग नामक लोकनाट्य भी किया जाता है, जो हंसी–मजाक व गुदगुदाने का कार्य करता है। विश्राम के उपरांत पुनः राई नृत्य प्रारंभ किया जाता है। अन्य लोकनृत्यों में जो बात प्रायः नहीं पायी जाती है, वह है राई में पायी जाने वाली तीव्र गति, तत्कालीन काव्य रचना और अद्वितीय लोकसंगीत। संगीत में शृंगार व यौवन झलकता है।

**बघेलखंड का राई नृत्य**– बुंदेलखंड की तरह बघेलखंड में भी राई नृत्य किया जाता है, परन्तु यहां पर नृत्य में कुछ विभेद आ जाते हैं, जैसे बुंदेलखंड में राई नृत्य बेड़नी द्वारा किया जाता है, वहीं बघेलखंड में पुरुष ही स्त्री वेश धारण कर राई नृत्य प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त बुन्देलखंड में जहां वाद्ययंत्र के तौर पर मृदंग का प्रयोग किया जाता है, वहीं बघेलखंड में ढोलक व नगड़िया का उपयोग किया जाता है। बघेलखंड में राई नृत्य विशेष रूप से अहीर पुरुषों द्वारा किया जाता है, परन्तु कहीं कहीं पर ब्राम्हण स्त्रियों में भी इसका प्रचलन पाया जाता है। पुत्र के जन्म पर प्रायः वैश्य महाजनों के यहां पर भी राई नृत्य का आयोजन किया जाता है। स्त्रियां हाथों, पैरों और कमर की विशेष मुद्राओं में नृत्य करती है। राई नृत्य के गीत शृंगारपरक होते हैं। स्त्री नर्तकियों की वेश–भूषा व गहने परंपरागत होते हैं। पुरुष धोती, बाना, साफा और पैरों में घुंघरू बांध कर नाचते हैं।

**टिप्पणी**

**बधाई नृत्य**– बुंदेलखंड क्षेत्र में जन्म, विवाह और त्योहारों के अवसरों पर 'बधाई' लोकप्रिय है। इसमें संगीत वाद्ययंत्र की धुनों पर पुरुष और महिलाएं सभी जोर–शोर से नृत्य करते हैं। नर्तकों की कोमल और कलाबाज हरकतें और उनकी रंगीन पोशाकें दर्शकों को चकित कर देती हैं।

**भगोरिया नृत्य**– भगोरिया नृत्य अपनी विलक्षण लय और डांडरियां नृत्य के माध्यम से मध्य प्रदेश की बैगा आदिवासी जनजाति की सांस्कृतिक पहचान बन गया है। बैगा के पारंपरिक लोक गीतों और नृत्य के साथ दशहरा त्योहार की उल्लासभरी शुरुआत होती है। दशहरा त्योहार के अवसर पर बैगा समुदाय के विवाह योग्य पुरुष एक गांव से दूसरे गांव जाते हैं, जहां दूसरे गांव की युवा लड़कियां अपने गायन और डांडरियां नृत्य के साथ उनका परंपरागत तरीके से स्वागत करती हैं। यह एक दिलचस्प रिवाज है, जिससे बैगा लड़की अपनी पसंद के युवा पुरुष का चयन कर उससे शादी की अनुमति देती है। इसमें शामिल गीत और नृत्य, इस रिवाज द्वारा प्रेरित होते हैं। माहौल खिल उठता है और सारी परेशानियों से दूर, अपने ही ताल में बह जाता है।

**मटकी नृत्य**– मटकी मालवा क्षेत्र का एक समुदाय नृत्य है, जो मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा कई अवसरों पर किया जाता है। इसमें शामिल वाद्ययंत्र एक ड्रम है, जिसे 'ढोल' कहा जाता है। नर्तकी लयबद्ध रूप से ढोल की थाप पर नाचती है, सुंदर हाथों को हिलाती है, और आश्चर्यजनक प्रभाव पैदा करती है। नृत्य करने वाली महिलाओं को 'झेला' कहा जाता है, जो आमतौर पर पारंपरिक मालवी अलमारी में होती हैं और उनके चेहरे पर एक पर्दा होता है। उनके पास 'मटकी' नामक एक मिट्टी का बर्तन भी होता है, जिसे वे नृत्य करते समय अपने सिर पर संतुलित करती हैं।

**नौरता नृत्य**– नौरता एक लोकप्रिय लोकनृत्य है, जो बुंदेलखंड क्षेत्र की अविवाहित लड़कियों द्वारा किया जाता है, क्योंकि वे एक अच्छे पति और संयुग्मक आनंद के लिये भगवान से मदद मांगती हैं। नृत्य नवरात्रि के उत्सव के साथ मेल खाता है, जहां पूरा देश देवी दुर्गा को श्रद्धांजलि देता है। समारोह में महिलाएं अपने घर को सजाने के लिये जटिल रंगोली चूने और कई अन्य रंगों से बनाती हैं।

**अहिरावण लोकनृत्य**– मध्य प्रदेश की भारिया जनजाति के प्रमुख पारंपरिक नृत्य भारम, सेतम, सेला और अहिराई हैं। भारिया जनजाति का सबसे लोकप्रिय नृत्य विवाह के अवसर पर किया जाता है। ड्रम और टिमकी (ब्रास मेटल प्लैटर की एक जोड़ी) दो संगीत वाद्ययंत्र हैं, जिनका उपयोग इस समूह नृत्य प्रदर्शन में संगत के रूप में किया जाता है। संगीतकारों का समूह एक घेरे में घूमता है और ढोल और टिमकी की बढ़ती लय के साथ, हाथ की गति और चक्र के भीतर नर्तकियों के कदम एक चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाते हैं, जिसके बाद ढोल, पिटाई और टिक्की की मधुर ध्वनि निकलती है। नर्तकियों का बोलबाला रुक जाता है। एक संक्षिप्त पड़ाव के बाद, कलाकारों का मनोरंजन जारी रहता है और रात भर नृत्य चलता रहता है।

**जवारा**– बुंदेलखंड क्षेत्र के लोग समृद्धि का जश्न मनाने के लिये इस नृत्य को करते हैं। मूल रूप से एक किसान इस नृत्य को एक अच्छी फसल की कटाई के बाद करता है। पुरुष और महिलाएं रंगीन वेशभूषा में एक साथ नृत्य करते हैं और कई तरह के वाद्ययंत्रों के लिये अपने को सिंक्रनाइज़ करते हैं। नृत्य करते समय महिलाएं अपने सिर

पर जवारा से भरी टोकरियों को भी संतुलित करती हैं। महिलाओं की कविता को नोटिस करना आश्चर्य की बात है, जबकि वे जवारा कर तेज नृत्य गतियों को बनाये रखती हैं।

**तृतीली**– यह नृत्य मध्य प्रदेश में कमर जनजाति का एक सबसे लोकप्रिय लोकनृत्य है। आम तौर पर, इस नृत्य में जनजाति की दो या तीन महिलाएं जमीन पर बैठती हैं और नृत्य प्रदर्शन शुरू करती हैं। छोटे धातु के झांझ, जिन्हें 'मंजीरा' कहा जाता है, उनके शरीर के विभिन्न हिस्सों से जुड़े होते हैं। वे प्रत्येक हाथ में एक झांझ भी रखती हैं और उन्हें लय में बजाती हैं। सिर घूंघट से ढंका रहता है। अपने दांतों के बीच एक छोटी सी तलवार को पकड़ कर और अपने सिर पर एक पॉट को संतुलित कर वे सख्ती से नृत्य की ताल का पालन करती हैं।

**लेहंगी**– लेहंगी मध्य प्रदेश के भोपाल की बंजारा और कंजर जनजाति का एक लोकप्रिय लोकनृत्य है और यह मानसून के आने के समय किया जाता है। राखी के त्योहार के दौरान बंजारा जनजाति भी इस नृत्यकला का प्रदर्शन करती है। युवा पुरुष हाथों में लाठी पकड़ते हैं और नृत्य करते समय ताल से ताल मिलाते हैं। विभिन्न एक्रोबैटिक ट्रिक्स, नृत्य में शामिल प्रदर्शन के लिये एक नाटकीय स्पर्श होते हैं।

**अहिरी नृत्य**– अहिरी नृत्य ग्वालियर के पशुपालकों की पहचान है। नृत्य में धार्मिक ओवरटोन भी है, क्योंकि ग्वालियर के विभिन्न समुदाय जो इस नृत्य को करते हैं, वे भगवान कृष्ण के वंशज माने जाते हैं। अहीर, ग्वाला, रावत, राउत और बारदी समुदाय के लोग आम तौर पर अहीरी नृत्य करते हैं। अहीर समुदाय इस नृत्य रूप का सबसे अधिक अनुयायी है और वे सभी प्रमुख सांस्कृतिक और धार्मिक अवसरों पर अहिरी का प्रदर्शन करते हैं।

**बारदी या यादव नृत्य**– बारदी ग्वालियर जिले का एक महत्वपूर्ण लोकनृत्य है। बारदी नृत्य को दीवाली से प्रारंभ किया जाता है और 'कार्तिक पूर्णिमा' के दिन तक किया जाता है। ढोलक, झांझ, मंजीरा, मृदंग और डफली जैसे वाद्ययंत्रों के साथ इसको किया जाता है। इसमें नर्तक प्रदर्शन करते हैं और मंडलियों में घूमते हैं। लोकगीत भी गाये जाते हैं, जो एक प्रश्न और उत्तर प्रारूप का अनुसरण करते हैं। कलाकार धोती पहनते हैं और मोर के पंखों से सुसज्जित होते हैं।

## 1.4.6 मध्य प्रदेश के प्रमुख लोकनाट्य

लोक भारतीय जीवन की असल पहचान है। इतिहास के प्रारंभिक चरण में रंजन की प्राकृतिक भूख को मिटाने के लिये ही आदमी ने लोकनाट्य परंपराओं को विकसित किया। श्यामसुंदर दुबे ने अपनी पुस्तक 'लोक परंपरा : पहचान और प्रवाह' में लोकनाट्य की विकास यात्रा को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का एक आधार माना है। उनका कहना है नृत्य से नाटक का निष्पादन आखेट युग से कृषि के बीच हुआ। लोकनाट्य जीवन यथार्थ के करीब विकसित हुआ है। यही कारण है कि उसमें धार्मिक कर्मकांड और लोक व्यवहारों की निश्छल अभिव्यक्तियां हुईं। नाट्य–रूपों को लोक–नाट्य कहना ही अधिक समीचीन होगा, क्योंकि इन नाटकों की मूलभूत विशेषता इनका लोक–जीवन तथा लोक–मानस से संपृक्त होना ही है। अपनी इसी विशेषता के कारण शताब्दियों से इन नाटकों की अविरल धारा अबाध रूप से प्रवाहित होती चली

**टिप्पणी**

आ रही है। राजनैतिक अस्थिरता तथा धार्मिक उथल–पुथल के काल में इन्होंने सदैव समयानुकूल रूप लेकर जनरुचि को अभिव्यक्ति दी। लोक–नाट्य अपनी प्रवृत्ति में बहुरंगी तथा प्रयोगशील था एवं बदलती हुई परिस्थितियों में अपने को ढालता रहा, साथ ही लोक–चेतना एवं लोक जीवन के विषादोल्लास का सीधा एवं अकृत्रिम रूप यहां मुखर है। इसीलिए इन नाट्य–रूपों का हमारे रंग–जीवन में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है तथा आधुनिक काल का प्रत्येक सजग रंग चिंतक इस तथ्य से परिचित है।

लोकनाट्य लोकमानस की अनुकरणमूलक प्रवृत्तियों का सहज प्रतिरूप है। शिक्षा और नागरिक सभ्यता से दूर अरण्यों में पला मानव जब देवी–देवताओं, राजा–रानी, जमींदार–साहूकार आदि की नकलें उतारता है, चेहरे पर मुखौटे लगा कर, कालिख चूना पोत कर मंच पर आता है, यही रूप कालांतर में परंपरा–पोषण द्वारा लोकरंजन की स्थायी निधि बन जाता है। जन्म–विवाह, पर्व–त्यौहार आदि उल्लेखनीय अवसरों पर जनमानस के उल्लास को अधिक सबल रूप में व्यक्त करने के लिए लोकनाट्य परंपरा का आविष्कार हुआ। लोकनाट्य, लोकगीत आदि अलौकिक कथा–कहानियों एवं लघु–वार्ताओं के सम्मिलित उपादानों के क्रमिक विकास का नाम है।

लोकनाट्य परंपराओं का विकास लोकभाषाओं से ही हुआ। वर्तमान में भारत में लोकनाट्य का सबसे प्राचीन प्रचलित स्वरूप रासलीला है। इसका प्रारंभ पहली सदी से भी पूर्व का माना जाता है। लोककथाओं के कुछ विद्वान केरल के लोकनाट्य कुडिअट्टम को भारत में सबसे प्राचीन लोकनाट्य परंपरा मानते हैं; परंतु यह सही नहीं है, क्योंकि, कुडिअट्टम का विकास नौवीं सदी के पहले का नहीं है। श्यामसुंदर दुबे जी का मत है कि हिन्दी प्रदेश में प्रचलित अधिकांश लोकनाट्य शैलियां पंद्रहवी शताब्दी के उपरांत ही अस्तित्ववान हुईं। लोकनाट्य एक विकासशील प्रक्रिया है, उसमें परिवर्तन स्वतः घुलकर मिलता चलता है। अब तक हमारे लोकनाटकों की पृष्ठभूमि मध्ययुगीन सामाजिकता रही। उसमें पौराणिक प्रसंग अधिक हैं, और उनकी दृष्टि सामान्य जनजीवन की ओर कम केन्द्रित हुई है। गांव और नगर की सीमाएं अब मिटती जा रही हैं। मानव स्वभाव नवीनता प्रिय है। वह विविध रुचियों और संस्कारों में अधिक रुचि लेता है। यही कारण है कि शिष्ट समाज आज लोककला के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता है तथा ग्रामीण व्यक्ति सिनेमा के प्रति अधिक जिज्ञासु प्रतीत होता है। लोकनाटक लोकचेतना को प्रबुद्ध करने वाले शक्तिशाली माध्यम हैं, लोककला की अद्यतन चली आती हुई परंपरा इस सत्य का प्रमाण है। शिष्ट नाट्य परंपरा तो विकसित हुई, खूब ऊंचाई पर पहुंची, परंतु उसका पतन भी हुआ, पर लोक नाटकों के साथ ऐसा नहीं हुआ बाहरी आक्रमणों से जनता लोकनाटकों से मनोबल प्राप्त करती रही, यही नहीं वह इसके माध्यम से अपने सांस्कृतिक तत्वों को नष्ट होने से बचाती रही।

भारत की समृद्ध नाट्य परम्परा की जीवंतता और निरंतरता को आधार देने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान लोकनाट्यों का ही रहा है। लोकमानस की अभिव्यंजना के लिए उपलब्ध विविध माध्यमों में से लोकनाट्य ही अपनी तीव्र रसवत्ता और सहज सम्प्रेषणीयता के भाषागत अन्तर के बावजूद एक अन्तःसूत्र में जुड़े दिखाई देते हैं। लोकमानस की स्वाभाविक अभिव्यक्ति इन सारे लोकनाट्य रूपों को एक सूत्र में जोड़ती दिखाई देती है। यह स्वाभाविक उनकी जटिल बौद्धिकता से विहीन भावात्मकता से

उपजती है, जो कथानक, संवाद, गीत–संगीत, नृत्य, प्रदर्शन–शैली, रंग–शिल्प, भाषा आदि सभी स्तरों पर स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है।

भारत के विभिन्न भागों में अनेक प्रकार के लोकनाटक प्रचलित हैं, दक्षिण भारत के यक्षगान और विधि नाटकम, महाराष्ट्र के तमाशा और ललित, पूर्वी भारत के जात्रा और गंभीरा, गुजरात के भवाई और रामलीला, मध्य प्रदेश का माच और छत्तीसगढ़ में नाचा, पंडवानी, रहस आदि इसके प्रमुख उदाहरण है। स्वांग का एक अन्य रूप भांडों का तमाषा है। यह एक प्रकार का प्रहसन है। इसका अस्तित्व भी लोकनाटकों में काफी पुराना है।

विषयवस्तु की दृष्टि से इन सभी लोकनाट्यों को चार प्रकार का कहा जा सकता है। नृत्य प्रधान–जैसे आसाम का कीर्तनिया, ब्रज की रासलीला, छत्तीसगढ़ का नाचा आदि लोकनाट्य। हास्य प्रधान–जैसे महाराष्ट्र का तमाशा, गुजरात का भवाई आदि लोकनाट्य। संगीत प्रधान– उत्तरप्रदेश की रामलीला, बंगाल का जात्रा, छत्तीसगढ़ का पंडवानी लोकनाट्य। वार्ता प्रधान– जैसे उत्तरप्रदेश की नौटंकी, मालवा का माच, आदि लोकनाट्य। इन चारों प्रकार के लोकनाट्यों में गीत–संगीत और नृत्य की योजना ग्रामीण जनता को तन्मय बनाये रखती है। लोकधर्मी नाट्य परंपराओं में तो नृत्य और संगीत नाटकों की नस–नस में व्याप्त रहे हैं। बुंदेलखंड का स्वांग, उत्तर भारत की नौटंकी, मालवा का माच, छत्तीसगढ़ का नाचा, रहस तथा मराठी का तमाषा इन सभी लोकनाट्य परंपराओं में संगीत और नृत्य को विलगाना आसान काम नहीं। नौटंकी के समस्त संवाद लगभग संगीतमय हैं। इन संवादों का कोलाज जब कथा–सूत्रों से संगृथित और रूपायित होने लगा तब लोक–नाट्यों का प्रत्यक्षीकरण संभव हुआ।

यहां हम मध्य प्रदेश की प्रमुख लोकनाट्य परंपराओं पर दृष्टिपात करेंगे–

## (1) मालवा के लोकनाट्य

**माच**– माच मालवा का पारंपरिक लोकनाट्य है। लोकरंग की दृष्टि से माच को संपूर्ण लोकनाट्य कहा जाता है। इसमें लोकनाट्य के वे सभी तत्व मौजूद हैं, जिनके आधार पर माच को देश के अन्य पारंपरिक लोकनाट्य के समक्ष रखा जा सकता है। मालवा में माच का जो रूप दिखाई देता है, उसका प्रारंभ लगभग 300 वर्ष पहले हुआ था।

माच का उद्भव राजस्थान के ख्याल से हुआ है, क्योंकि माच की प्रवृत्ति राजस्थानी ख्याल से बहुत कुछ मिलती है। इसलिये प्रारंभिक माच को माच का खेल कहा जाता था। खेल ख्याल का संक्षिप्त रूप है। बाद में मालवा की पारंपरिक लोक विधाओं ने माच के रूप स्वरुप को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मालवा क्षेत्र का लोकनाट्यरूप माच भारत के अन्य लोक नाट्यरूपों से अलग नहीं है। उसमें भी वही लोकरंजता के अनुकूल संगीत, नृत्यमूलक अभिनय एवं प्रदर्शन के तत्त्व, धार्मिकता के साथ ही सामाजिक, राजनैतिक, लोककथामूलक और प्रेमाख्यानपरक कथानकों की बहुलता तथा श्रृंगार, वीर, करुण और हास्य रसमूलक अतिरंजित भावप्रवणता और तल्लीनता मौजूद है, जो भारत के अन्य लोकनाट्य रूपों– जैसे नौटंकी, ख्याल, भवई, तमाशा, करियाला आदि में मिलते हैं। वस्तुतः इन सभी की सौन्दर्य दृष्टि संस्कृत नाटकों की भांति रसमूलक ही है। इसी तरह इन लोकनाट्य रूपों में वैयक्तिक संघर्ष के स्थान पर व्यक्ति एवं समूह के अन्तःसम्बन्धों की पहचान तथा

जीवन की अनेक स्थितियों से गुजर कर एक तरह के संतुलन की दशा में दर्शकों को ले जाने की प्रवृत्ति मौजूद है, जिसमें कहीं लोकमंगल की सिद्धि होती है तो कहीं कारुणिक अन्त के बावजूद लोकादर्श की स्थापना।

**टिप्पणी**

मालवा का माच मध्य प्रदेश का प्रतिनिधि लोकनाट्य है। उज्जैन के अतिरिक्त तोहार, रतलाम, मंदसौर, जबलपुर, शाजापुर और देवास के जिले इसके मुख्य केंद्र हैं। भारत के लोकधर्मी नाटक की परंपरा में माच का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें मंच के लिये बहुत ही मामूली सामग्री की जरूरत होती है। माच अधिकतर खुले में आयोजित किया जाता है। माच प्रदर्शन की निर्धारित तिथि से एक पखवाड़े पूर्व माच का खंभ गाड़ते हैं। माच के गुरु अथवा मुखिया के हाथों खंभ की पूजा संपन्न होती है। ढोलक तथा सारंगी माच के प्रमुख वाद्ययंत्र हैं।

यद्यपि माच में धार्मिक, पौराणिक और सामाजिक कथानकों पर आधारित खेल लिखे गये, परंतु श्रृंगारपरक प्रवृत्ति के कारण प्रेमाख्यानों पर आधारित खेल ही जनता में अधिक लोकप्रिय हुए। सामान्यतः स्त्रियां माच में भाग नहीं लेती हैं। माच एक संगीतमय नाट्य विधा एवं प्रभावी प्रयोगधर्मी जनमंच है। मालवा की यह लोकरंग शैली देश में पहचानी जाने लगी है।

### (2) बुंदेलखंड के लोकनाट्य

**स्वांग**– स्वांग बुंदेलखंड का पारंपरिक लोकनाट्य है। बुंदेलखंड में स्वांग का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। स्वांग प्रायः लोकनृत्य राई के विश्राम के क्षणों में किया जाता है। इसलिये स्वांग की अवधि अधिक से अधिक 15 से 20 मिनट तक होती है। इसी के अनुरूप बुंदेली स्वांग का रूप भी निर्धारित हुआ है। बुंदेलखंड में इसे नकल उतारना कहते हैं। स्वांग का अर्थ रूप धारण करने से लिया जाता है। स्वांग भारतीय लोक की अति प्राचीन परंपरा है।

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि बुंदेली स्वांग के ही रूप का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि न तो वह केवल नकल है और न लंबा नाटक। यह संगीत नौटंकी और भगत से भिन्न है। बुंदेली स्वांग का स्वरूप अन्य लोकनाट्यों की तरह लोकधर्मी है। स्वांग राई के अंतर्गत नाटक गतिविधि है। स्वांग का मूल उद्देश्य हास्य और व्यंग्य के माध्यम से शुद्ध मनोरंजन करना है।

राई नृत्य किसी भी समय किया जाता है। विशेष कर जन्म, विवाह तथा अन्य खुशी के अवसर पर। तभी स्वांग भी होता है। स्वांग का कोई विशेष मंच नहीं होता। जहां राई नृत्य किया जाता है, उसी जगह स्वांग किये जाते हैं। स्वांग राई का मंचन प्रायः घर अथवा चौराहे का आंगन होता है। समतल धरती पर चारों ओर दर्शक बैठ जाते हैं। बीच में जगह छोड़ देते हैं।

यही स्थल स्वांग राई का उपयोगी मंच होता है। पहले मशाल के साथ स्वांग किये जाते थे। आजकल पर्याप्त विद्युत प्रकाश मे स्वांग का मंचन जगमगाता है। स्वांग में अधिक से अधिक तीन या चार पात्र होते हैं। महिला पात्र की भूमिका भी पुरुष निभाते हैं, लेकिन मां–भाभी आदि की भूमिका नर्तकी बेड़नियां निभाती हैं। पात्रों की वेशभूषा बुंदेली होती है। पुरुष धोती, कुर्ता, बंडी पहनते हैं। नये लड़के पैंट, शर्ट, कोट, पहन कर अभिनय करते हैं। स्त्री पात्र में पुरुष साड़ी लपेट कर, मुंह ढंक कर अभिनय में उतरते

टिप्पणी

हैं, जिसका उद्देश्य स्वांग के विषय की पूर्ति करना होता है। कहीं–कहीं पुरुष स्त्री वेश में पूर्ण सिंगार के साथ उतरते हैं। धोती, घाघरा चुनरी, पोलका का सलवार कुर्ता आदि पहनते हैं। स्त्री पात्र बुंदेली गहने भी पहनती है। स्वांग में एक विदूषक भी होता है, जिसकी वेशभूषा विचित्र होती है। विदूषक हर तरह से चंचल और नटखट होता है। समाज के हर तबके के पात्रों का स्वरूप प्रतीकात्मक होता है।

स्वांग में संगीत पक्ष की गुंजाइश बहुत कम होती है, फिर भी कभी–कभी प्रसंग अनुकूल नगड़िया अथवा मृदंग की थाप अवश्य दी जाती है। गीत और संगीत स्वांग के अंत में पूर्ण सक्षमता के साथ मंच पर अवतरित होता है। तब स्वांग के सारे पाठ नृत्य में शामिल होते हैं और स्वांग के बीच गाना भी होता है, जो स्वांग के कथानक को आगे बढ़ाने के लिये होता है। स्वांग में बुंदेली बोली के पारंपरिक वैभव के दर्शन सहज रूप से होते हैं। यह नौटंकी से अधिक प्राचीन है। स्वांग के विषय सामाजिक, सांस्कृतिक विसंगतियों से संबंधित होते हैं। इसके मूल में कोई कथा, घटना, लोकगीत, लोक समस्या, पहेलियां, जादू टोना आदि कुछ भी हो सकता है। लोकजीवन को सरस रखने के उद्देश्य से स्वांग होता है। प्रतीकात्मकता स्वांग की रीढ़ है।

## (3) निमाड़ के लोकनाट्य

**गम्मत**– गम्मत निमाड़ी जनजीवन के मनरंजन का सबसे बड़ा साधन है। गम्मत व्यंग्य का जीवंत रूप है। समाज की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बुराइयों पर चोट करना गम्मत का एक खास काम है। बुंदेली में स्वांग, छत्तीसगढ़ी में नाचा, महाराष्ट्र में तमाशे का जो स्थान है, वही स्थान गम्मत का निमाड़ में है।

गम्मत निमाड़ का लोकरंग है। विशेष कर नवरात्रि में गांव–गांव में गम्मत की जाती है। गम्मत का मंच चारों ओर खुला होता है। बीच में एक खंभा गाड. कर उसके चारों ओर कपड़े का चांदोबा तान देते हैं। इसी के नीचे गम्मत की जाती है। गम्मत में एक विदूषक होता है।

गणेश और सरस्वती वंदना के बाद नर्तकी का नाच और बाद में प्रमुख गम्मत शुरू होती है। गम्मत का उद्देश्य शुद्ध मनोरंजन के साथ समसामयिक घटनाओं की व्यंगात्मक अभिव्यक्ति है। हास्य और व्यंग्य गम्मत की खासियत है। गम्मत में मृदंग और झांझ प्रमुख वाद्ययंत्र होते हैं।

**रासलीला**– भादो में कृष्ण जन्माष्टमी के आसपास निमाड़ के गांव में रासलीला का आयोजन किया जाता है। कृष्णलीला की विभिन्न प्रसंगों की प्रस्तुति रासलीला में की जाती है। मुख्य रूप से कृष्ण जन्म, माखन चोरी, कंस वध जैसे हरि प्रसंग रासलीला में प्रस्तुत किये जाते हैं।

रंगों की प्रस्तुति परंपरागत होती है। गीत, नृत्य और संगीत का समन्वय रासलीला में प्रमुख रूप से होता है। रासलीला में भी विदूषक और अन्य पात्र अपने अभिनय से गांव के दर्शकों को बांधे रखते हैं।

**रहस लोकनाट्य**– लोकनाट्य रहस एक अनुष्ठानिक नाट्य विधा है, जिसे ग्रामीण अंचलों में श्रद्धा, भक्ति और मनोरंजन के सम्मिलित भाव से आयोजित किया जाता है। यह केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि आध्यात्मिकता की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

रहस का अर्थ है रास या रासलीला। इसमें संगीत, नृत्य–प्रधान कृष्ण की विभिन्न लीलाओं के अभिनय किये जाते हैं। इसे एक ही पखवाड़े में संपन्न किया जाता है। छत्तीसगढ़ में यह बिलासपुर संभाग में प्रचलित है।

**टिप्पणी**

श्रीमद्भागवत के आधार पर श्री रेवाराम द्वारा रहस की पांडुलिपियां बनायी गयी थीं और इसी के आधार पर रहस का प्रदर्शन होता है। यह पंचांग के अनुसार निश्चित तिथि पर होता है। इसका आयोजन बेड़ा में किया जाता है। रहस प्रारंभ करने के पूर्व इसका प्रतीक स्थापित किया जाता है। रहस में कथा का परिवेश निर्मित करने के लिए पुतरी का उपयोग किया जाता है। रहस पंडित जो कर्मगत होता है जातिगत नहीं, प्रथम लीला का गायन करता है। पंडित के निर्देश पर ही रहस की समस्त क्रियाएं संपादित होती हैं। लगभग पूरा गांव इसके आयोजन में भागीदार होता है।

**मनसुखा लोकनाट्य** – मनसुखा एक लोक प्रहसन है। यह रास का बघेली रूपांतर है। इसमें दो मंच और दों पदों का प्रयोग होता है। साथ में मेकअप का स्थान भी होता है। मनसुखा उर्फ विदूषक और गोपियों में नोक–झोंक चलती है। छेड़छाड़ भी होती है। मसखरों को गांव में मनसुखलाल भी कहते हैं।

**हिंगोला लोकनाट्य**– हिंगोला बघेलखंड क्षेत्र का एक मंचरहित, सीधा और सरल नाट्यरूप है। दो दलों में गीत की झार मचती है। माटर टिमकी सहित तरुणी गायन वादन करते हैं। जीता दल पराजित दल के पांव से तरह–तरह के काम लेता है और हास्य का अविर्भाव होता है। शत्रुहरणी हिंगाली देवी का समावेश किया जाता है। कुमारी द्वारा हिंगोला का पाठ किया जाना चाहिये ऐसी मान्यता है। मजे की बात यह है कि गीत गाते समय केवल नट–नटी ही नहीं दर्शक भी भाग लेते हैं, फलतः भावों का सहचरीकरण होता है।

**लकड़बग्घा लोकनाट्य**– लकड़बग्घा आदिवासी युवक युवतियों का लोकनाट्य है, जो खुले मंच पर अभिनीत होता है। यह विवाह के बाद खेला जाता है। लड़की को लकड़बग्घा उठा ले जाता है। लड़की करुण वंदन करती है। निरुपाय लड़की लकड़बग्घे को प्रेम करने लगती है। बाद में साहचर्य प्रेम होता है। युवक जन लकड़बग्घे को तीर से आहत करते हैं। उसकी दर्द भरी चीखों को सुन कर वह उसकी सेवा करती है। इस अहेरी और वन्य में पशु की भूमिका का अभिनय मार्मिकता से किया जाता है।

**जिंदवा (बहलोल) लोकनाट्य**– यह बघेलखंड क्षेत्र का स्त्री लोकनाट्य है। स्त्रियों द्वारा विभिन्न प्रसंगों पर हास्य के साथ अभिनय गायन सहित किया जाता है। पुरुषों द्वारा देखने पर झाडू एवं मूसलों से पिटाई होती है। यह शादी के शुभ अवसर पर, जब लड़के की बारात कन्या पक्ष के घर चली जाती है, तो घर की महिलाओं द्वारा किया जाता है, जिसमें मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक की कथा होती है। यहां की गाथा गायन परंपरा नाटकीय रूप में देखने को मिलती है, जिनमें नाटकीय तत्वों का समावेश होता है।

**नौटंकी लोकनाट्य**– नौटंकी मूलतः उत्तर प्रदेश का लोक नृत्य है, किंतु मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड एवं बघेलखंड में इसका प्रचलन है। यह किसी भी खुशी के अवसर पर किया जाता है। विभिन्न लोककथाओं में दांपत्य जीवन के प्रसंगों को हास्य–व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

**भवाई लोकनाट्य**– यह लोकनाट्य झाबुआ एवं अलीराजपुर जिले में आदिवासियों द्वारा किया जाता है। यह खुशी के अवसरों पर, शादी विवाह आदि के समय किये जाने वाले लोकनाट्य रूप हैं। गणपति एवं बाकी पूजा के बाद सामाजिक प्रसंगों पर पुरुष कलाकारों द्वारा अश्लीलतापूर्वक अभिनय किया जाता है, किंतु फिर भी इसकी अपनी प्रतिष्ठा और मान मर्यादा है।

**पंडवानी लोकनाट्य**– पंडवानी मूलतः छत्तीसगढ़ में देखने को मिलता है, पर मध्य प्रदेश के शहडोल, अनूपपुर, बालाघाट जिले में भी यह लोकनाट्य देखने को मिलता है। यह किसी भी हर्ष के अवसर पर आयोजित किया जाता है।

**ढोला मारू की कथा लोकनाट्य**– यह लोकनाट्य मध्य प्रदेश के राजस्थान से जुड़े सीमावर्ती क्षेत्र में प्रचलित है।

लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। प्राचीन ग्रंथों में सामूहिक नृत्य, गीत, उत्सव आदि विभिन्न लोककलाओं के संकेत मिलते हैं। ये संकेत मात्र कल्पना नहीं हैं। लोककलाएं व उनकी परम्पराएं उतनी ही सत्य हैं जितने कि सूर्य व चंद्रमा। शास्त्रीय विधाओं को यदि इन्हीं लोक परम्पराओं की सुदीर्घ यात्रा का फल कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। लोक में प्रचलित कथा, संगीत, गीत, कविता, साहित्य आदि अपने विकसित रूप में शास्त्र का स्वरूप ले लेते हैं। विशेष रूप से परफॉर्मिग आर्ट अथवा प्रदर्षनकारी कला एक ऐसी विधा है, जिस पर लोक का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। चाहे वह नृत्य हो, गायन हो, वादन हो अथवा नाट्य, सभी पर लोक की छाप पड़ी हुई है। मध्य प्रदेश इन सभी दृष्टियों से लोक कलाओं से समृद्ध है।

### अपनी प्रगति जांचिए

5. भीमबेटका की खोज किसने की?

(क) मनोरंजन घोष (ख) सी. डब्ल्यू. एंडरसन

(ग) डी. एच. गार्डन (घ) वी. एस. वाकणरण

6. तोमरकालीन 'संगीतदर्पण' एवं रागाध्यायी' की रचना किस क्षेत्र में हुई?

(क) ग्वालियर (ख) बघेलखंड

(ग) बुंदेलखंड (घ) भोपाल

## 1.5 लोकोक्तियां एवं मुहावरे

लोकसाहित्य की प्रमुख विधाओं के अतिरिक्त ऐसी छोटी–मोटी विधाएं इस वर्ग में समाविष्ट की जाती हैं, जो आकार में लघुरूपी हैं। लोकतुक्का, लोकोक्तियां, मुहावरे, पहेलियां, लोरियां, शिशु–खेल गीत आदि सभी विधाएं आकार में लघु होने के कारण स्फुट वर्ग के अंतर्गत ही विवेचन का विषय बनायी जाती हैं। इसी वर्ग को डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक–सुभाषित नाम देकर भी पुकारा है। किंतु सुभाषित की परिधि में लोकोक्ति, मुहावरे तथा पहेलियां ही आ सकती हैं, अन्य लघुगीत आदि इस शीर्षक के

टिप्पणी

अंतर्गत समाविष्ट नहीं किये जा सकते। अतएव हमने इस शीर्षक को प्रकीर्ण साहित्य नाम ही दिया है। वैसे तो इन गीतों को शिशु गीत नाम देकर लोकगीतों के अंतर्गत ही समाविष्ट किया जा सकता था, परंतु कुछ विद्वानों ने इन शिशु–गीतों को लोक–सुभाषित शीर्षक के अंतर्गत ही समाविष्ट किया है। ऐसा करते समय उनकी प्रधान दृष्टि रही होगी– इन गीतों के लघु आकार पर। नन्हे–मुन्ने शिशुओं के गीतों को चाहे, वे पालने में मन–बहलाने के लिए गाए गए हों अथवा सुलाने के लिए थपकियां देते समय या उनके विभिन्न खेलों में आनन्द–मग्न होते समय गवाया–गाया जाए, किंतु ये सभी प्रकार के शिशु गीत होते हैं – जो अत्यंत छोटे छंद में लघु आकार वाले ही होते हैं। इसलिए आकार साम्य के आधार पर लोकोक्ति, मुहावरों, पहेलियों आदि को लघु आकारीय विधाओं के साथ ही प्रकीर्ण वर्ग में वर्गीकृत किया गया है।

अब हम विवेचन की सुविधा के लिए इस वर्ग में आने वाले विभिन्न साहित्य रूपों का स्वरूप–विवेचन प्रस्तुत करेंगे। सर्वप्रथम लोकतुक्का को लें। तुक तो प्रायः प्रत्येक काव्यात्मक रचना में रहती है। परंतु तुक्का का अर्थ तुक वाला ही नहीं, साथ ही साथ ऐसी अभिव्यक्ति से है जो आकार में अत्यंत लघु, भाव में गंभीर तथा तुक के साथ निर्मित लोकसाहित्य रूप होता है। लोकोक्ति और लोक–तुक्का में प्रधान अंतर इतना ही है कि लोकोक्ति कभी–कभी बड़े आकार में भी मिल जाती है, जबकि लोक–तुक्का अत्यंत लघु आकार में ही मिलते हैं। दूसरा अंतर यह भी होता है कि अनेक बार लोकोक्तियों में गेयात्मकता के बावजूद तुकांत नहीं मिलता। वहां संगीत की एक लय होती है– परंतु अनेक बार तुक नहीं मिलता। किंतु तुक्का में संगीत की आवश्यकता नहीं होती और न लय की आवश्यकता रहती है। लोक–तुक्का में तुकांत आवश्यक रूप से मिलना चाहिए।

### 1.5.1 लोकोक्ति

प्रकीर्ण लोकसाहित्य की दूसरी सशक्त विधा है– लोकोक्ति, जिसकी व्युत्पत्ति करने पर लोक की उक्ति कहना पड़े तो इसका रूढ़ अर्थ नहीं निकल पाता। लोक की उक्ति वैसे तो लोकनाट्य, लोकगाथा, लोकगीत आदि सभी रूप हो सकते हैं, किंतु प्रकीर्ण–साहित्य के अंतर्गत कहावतों के अर्थ में यह शब्द–प्रयोग रूढ़ हो गया है। प्रकीर्ण साहित्य–रूप के अंतर्गत पहेलियां और मुहावरे आदि भी तो लोकोक्ति शब्द के बड़े उदर में समा सकते हैं। ऐसे लम्बोदर शब्द का कहावतों के अर्थ में प्रयोग ही यहां ग्राह्य है। एतदर्थ कहावतों के पर्याय रूप में इस लोकोक्ति शब्द को यहां प्रयोग किया गया है।

लोकोक्तियां अद्‌भुत ज्ञान की रत्नाकार हैं। इनका प्रयोग विश्व की सभी भाषाओं में होता है और जन–समुदाय के सामान्य ज्ञान और निरीक्षण को प्रकट करता है। यह मानव–प्रकृति और उसके व्यावहारिक ज्ञान की द्योतक हैं, जो उसे उत्तराधिकार में सदैव से प्राप्त होती चली आ रही हैं। दैनिक समस्याएं सुलझाने के लिए ये अद्‌भुत साधन हैं। लोकोक्तियों के माध्यम से किसी देश की जनता की विचारधारा, ज्ञान और संस्कृति का सुगमता से पता लगाया जा सकता है। बड़े–बड़े विचारकों ने लोकोक्तियों से ज्ञान प्राप्त किया है।

संस्कृत में लोकोक्ति के समानार्थी अनेक शब्द प्रचलित हैं, यथा–पवाद, आभाणक, पायोवाद, लोक प्रवाद, लौकिकी गाथा। ये शब्द लोकोक्ति की विभिन्न विशेषताओं को प्रकट करते हैं। विदेशी भाषाओं में भी इसके लिए पृथक–पृथक नामों का प्रयोग होता

है, यथा – लैटिन में, ग्रीक में, स्पेनिश में, तुर्की में, रूसी में, अरबी में, हिब्रू में, और अंग्रेजी में भारतीय भाषाओं में भी इसके लिए पृथक नाम है, यथा हिंदी में लोकोक्ति, कहावत, उपखान, उर्दू में जबुंल मिस्ल, लंहदा में अखाण, राजस्थानी में ओखाणो, गढ़वाली में पखाणा, गुजराती में कहेवत, बंगला में प्रवाद, प्रवचन, मराठी में आणा, न्याय और तेलगु में समीटा आदि।

टिप्पणी

## परंपरा

लोकोक्तियों की परंपरा हमारे प्राचीन साहित्य में मिलती है। वेद और उपनिषदों में अनेक लोकोक्तियां देखी जा सकती हैं, जो हमारे प्राचीन समाज की ज्ञान की परंपरा पर प्रकाश डालती हैं। संस्कृत साहित्य में सभी कवियों ने इनका सुंदर प्रयोग किया है। कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि सभी कवियों ने लोकोक्तियों का प्रयोग करके अपनी भाषा को प्रभावोत्पादक बनाया है। प्राकृत और पालि ग्रंथों में भी बहुत आकर्षक और अनुभूतिपूर्वक लोकोक्तियां हैं। पंचतंत्र और हितोपदेश में नीति संबंधी विचारों की अभिव्यक्ति के लिए इनका प्रयोग किया गया है।

लोकोक्तियों में किसी समाज के आचार–विचार, रीति–रिवाज, धार्मिक और नैतिक संबंधों का पूर्ण विवरण मिल सकता है। ये सार्वभौमिक और सार्वकालिक हैं। जन–समुदाय में यह नीतिशास्त्र के सूत्रों का काम करती हैं। इसलिए यह समाज की अक्षय संपत्ति हैं। ये आदिम समाज से लेकर शिष्ट समाज के नित्य व्यवहार में आती है। इनसे प्रत्येक काल में समाज का पथ–प्रदर्शन होता रहता है।

## उद्‌भव और विकास

लोकोक्तियों का निर्माण–स्थल यह विशाल जगत ही है। जीवन की वास्तविक घटनाओं और मानव की निरीक्षण शक्ति ने इन्हें जन्म दिया है। लोकोक्ति का निर्माण प्रारंभ में कोई व्यक्ति ही करता है, लेकिन उस निर्माता का व्यक्तित्व इतना लोकमय होता है कि उसकी व्यक्तिगत उक्ति लोक की उक्ति हो जाती है। लोकोक्तियों के निर्माता जीवन–दृष्टा थे। उसके प्रतिदिन के अनुभवों की सरस और सारपूर्ण अभिव्यक्ति ही लोकोक्ति है। उन्होंने किसी घटना को सामान्य जीवन में घटित होते हुए देखा होगा। उसकी संक्षिप्त और लयात्मक उक्ति ही लोकोक्ति कहलाई और एक गंभीर अध्ययन और सूत्र के रूप में समाज की संपत्ति बन गई।

लोकोक्तियों के जन्म के संबंध में डॉ. कन्हैयालाल सहल ने अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त किये हैं –

जो घड़ा पूरा भरा नहीं होता, वह कुछ छलकता है और उसके छलकने से कुछ आवाज होती है। इसके विपरीत जो पूरा भरा होता है, वह न छलकता है और न उसमें से कोई आवाज होती है। पानी का घड़ा लेकर आती हुई स्त्रियों के संबंध में यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है, किंतु यह तो मात्र नेत्रानुभव है। न जाने कितने लोग इस दृश्य को देखते हैं किंतु किसी प्रकार की मानसिक प्रतिक्रिया उनमें नहीं होती। किंतु किसी दिन किसी विचारशील व्यक्ति के मन में यह दृश्य उस व्यक्ति का चित्र सामने खड़ा कर देता है जो बोलता बहुत है किंतु जिसका ज्ञान अधकचरा है, जिसकी विद्या अधूरी

टिप्पणी

है। ऐसी स्थिति में नेत्रानुभव मन के अनुभव के रूप में परिणित हो जाता है और उसके मुख से सहसा निकल पड़ता है – अधजल गगरी छलकत जाए। यद्यपि यह वाक्य प्रसंग–विशेष पर व्यक्ति के मुख से निकला था, तथापि समान प्रसंग आने पर अन्य लोग भी इस प्रकार की आवृत्ति करने लगते हैं। इस प्रकार एक व्यक्ति की उक्ति लोक की उक्ति बन जाती है, कहावत का रूप धारण कर लेती है।

लोकोक्तियों की उत्पत्ति के संबंध में डॉ. सहल की दूसरी कल्पना इस प्रकार है– कल्पना करिए कि किसी शिकारी ने बंदूक के निशाने से एक पक्षी को मार डाला और उसे हस्तगत कर लिया। यह हस्तगत पक्षी हवा में उड़ते हुए अथवा झाड़ियों में छिपे हुए अनेक पक्षियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, किंतु कभी–कभी शिकारी दूसरे अनेक पक्षियों के लोभ में इस हस्तगत लाभ को छोड़ देते हैं। यह प्रायः सभी शिकारियों का नेत्रानुभव है, किंतु किसी शिकारी के मुख से कभी पहले–पहल जब यह विचार निकल पड़ा होगा हस्तगत एक पक्षी झाड़ी में छिपे दो पक्षियों के बराबर है। तब यह समझना चाहिए कि उनके नेत्रानुभव ने मानसिक अनुभव का रूप धारण कर लिया था। नेत्रानुभव और मानसिक अनुभव की इस एकाकारिता में ही कहावत का प्रादुर्भाव होता है। इस कहावत की उद्भावना का श्रेय शिकारी जगत को जा सकता है, किंतु इसका प्रयोग शिकारियों तक ही सीमित नहीं है। कहावत की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह अभिधेयार्थ को लेकर प्रवृत्त नहीं होती, उसका प्रयोग अन्योक्ति अथवा अन्योपदेश रूप में होता है। हम भी अपने जीवन में अनेक बार जब प्रस्तुत अथवा प्रकृत लाभ को छोड़कर अनिश्चित अप्रस्तुत लाभ की ओर उन्मुख होते हैं तो चेतावनी के रूप में उक्त कहावत का प्रयोग किया जा सकता है।

डॉ. सहल के उपुर्यक्त विचारों से स्पष्ट है कि लोकोक्ति की उत्पत्ति जन–जीवन की किसी घटना और उसके संबंध में किसी व्यक्ति की संपूर्ण संक्षिप्त वाणी से होती है। इसकी उत्पत्ति के लिए घटना तथा तीव्र मानसिक अनुभूति की व्यंजना आवश्यक है। गढ़वाली और राजस्थानी में लोकोक्ति को अखाणो अथवा ओखणा कहना उसमें किसी घटना के समाहित होने को सार्थक सिद्ध करता है। लोकोक्ति को सिद्ध वाक्य भी कहा जा सकता है। क्योंकि उससे संबंधित घटना का पूर्ण अनुभव किसी व्यक्ति द्वारा कर लिया गया होता है यथा ब्रज में एक लोकोक्ति है –

*परदेसी की प्रीति, झोल को तापनो,*
*दीये प्राण गंवाइ, तऊ न भयौ आपनो।*

परदेशी से प्रेम करना निराधार है, क्योंकि वह प्रेमी को छोड़कर कभी भी जा सकता है। परदेशी से प्रेम करने से अंत में पछतावे के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता है। दूसरी घटना झोल पर तापने की है। झोल में अग्नि जलाने पर वह बहुत कम समय तक रहती है। यदि कोई व्यक्ति उससे अपना कोई कार्य सिद्ध करना चाहे तो असंभव है। इस लोकोक्ति में दो घटनाएं हैं, जो लोकोक्ति के रूप में आने पर सिद्ध वाक्य बन गई हैं। जीवन में कोई समान घटना आने पर उनकी उत्पत्ति के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। इनसे शिक्षा भी मिलती है। लोकोक्तियां भावी जीवन को पूर्ण बनाती हैं।

टिप्पणी

कुछ कहावतों की उत्पत्ति ऐतिहासिक व्यक्तियों के मुख से निकले हुए वाक्यों से होती है। उनका आधार भी कोई न कोई घटना ही होती है। तानाजी की मृत्यु पर शिवाजी का कथन 'गढ़ आला, पण सिंह गेला' लोकोक्ति बन गई है।

कुछ लोकोक्तियों का जन्म किसी स्थान की संस्कृति के प्रभाव से भी होता है। भारत में भाग्यवाद और कर्मवाद में विश्वास की जड़ें अत्यंत गहरी हैं। उसी के संबंध में अनेक कहावतों का निर्माण हुआ है। 'विधि अंकूर मिटे न मिटाएं, जब दिन खोटै आवते मिटै न कोई तदबीर' ऐसी ही लोकोक्तियां हैं। 'बामन कुत्ता हाथी, जे कबऊ न जाति के साथी' जैसी लोकोक्तियां भारत की जाति–प्रथा और समाज–व्यवस्था के कारण उत्पन्न हुई हैं।

लोकसाहित्य की अन्य विधाओं की तरह लोकोक्तियों का रचनाकार भी अज्ञात होता है। ये लोकोक्तियां दैनिक जीवन की तरह काव्य में भी प्रयोग की जाती हैं। लेकिन उस समय का पता लगाना कठिन है कि काव्य में इनका प्रयोग कब से प्रारंभ हुआ।

## लोकोक्ति की परिभाषा

लोकोक्ति पर विचार करते समय सभी विद्वानों ने इसकी परिभाषा निर्धारित की है। इन सभी परिभाषाओं में, चाहे वे भारतीय विद्वानों की हों अथवा पाश्चात्य विद्वानों की, अधिक मतभेद या विचार–भेद नहीं है।

लोकोक्ति की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं–

टी. शिप्ले के अनुसार, "लोकोक्ति किसी विशेष समूह में प्रचलित कोई ऐसा वाक्य है जो लोकानुभव पर आधारित जीवन की एक सारभूत समीक्षा है।"

डॉ. श्याम परमार ने बोरकाटे के द्वारा लोकोक्ति की दी गई परिभाषा को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–"जनता की अपनी भाषा में किसी सर्वमान्य सत्य को थोड़े से शब्दों में प्रकट करने वाला लोक प्रचलित कथन ही लोकोक्ति है।"

रवींद्र भ्रमर के अनुसार, "लोकोक्ति लोक में प्रचलित वह वाक्य, कथन या लघु वार्ता ही ठहरती है, जिसे लोक मानस के अंतराल से प्रस्फुटित जान की कोई किरण माना जा सकता है।"

बेकन के अनुसार, "भाषा के वे तीव्र प्रयोग, जो व्यापार और व्यवहार की गुत्थियों को काटकर तह तक पहुंच जाते हैं, लोकोक्ति कहलाते हैं।"

डॉ. जॉनसन के अनुसार, "वे संक्षिप्त वाक्य जिनको लोग प्रायः दोहराया करते हैं, लोकोक्ति कहलाते हैं।"

इरैस्मस के अनुसार, "वे लोक प्रसिद्ध और लोकप्रचलित उक्तियां, जिनकी एक विलक्षण ढंग से रचना हुई हो, लोकोक्ति कहलाती है।"

ऑक्सफोर्ड कन्साइज़ डिक्शनरी के अनुसार, "सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त संक्षिप्त और सारपूर्ण उक्ति को कहावत कहते हैं।"

टिप्पणी

चैम्बर्स डिक्शनरी के अनुसार, "लोकोक्ति वह संक्षिप्त और लोकप्रिय वाक्य है जो एक कल्पित सत्य या नैतिक शिक्षा अभिव्यक्त करता है।

ऐग्रीकोला के अनुसार, "कहावतें वे संक्षिप्त वाक्य हैं जिनमें आदिपुरुषों ने सूत्रों की तरह अपनी अनुभूतियों को भर दिया है।"

सर्वन्टीज के अनुसार, "कहावतें वे छोटे वाक्य हैं जिनमें लंबे अनुभव का सार हो।"

संक्षेप में लोकोक्ति तो वही हो सकती है जिसमें व्यापक अर्थव्याप्ति हो। लोकोक्ति वह उक्ति हो सकती है, जिसमें कोई गंभीर आशय छिपा हो। लोकोक्तियों का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और उसका संगठन कम से कम अर्थवान शब्दों में होता है।

## लोकोक्तियों, कहावतों के लक्षण

लोकोक्तियों और कहावतों की सामान्य विशेषताओं पर विचार करते समय डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने समास–शैली, अनुभूति और निरीक्षण तथा सरलता का उल्लेख किया है, जिनकी लोकोक्तियों के लक्षण–निर्धारण में भी सहायता ली जा सकती है। डॉ. शंकरलाल यादव ने हरियाणा प्रदेश की लोकोक्तियों के विशेष संदर्भ में लोकोक्तियों के निम्न लक्षणों का उल्लेख किया है – 1. लाघव, 2. सच्चाई एवं अनुभव का सत्व, 3. घरेलू भाषा, 4. अनाम रचयिता, 5. लोकप्रियता एवं लोक चयन।

उन्होंने इन विशेषताओं का उल्लेख ही नहीं किया, अपितु डॉ. सत्येंद्र द्वारा संकेतित तुकांतता एवं अन्योक्तिरूपत्व का जो उल्लेख किया गया है, उसका खंडन करते हुए उन विशेषताओं के संबंध में अपनी आलोचना इस प्रकार की है–

उनका तर्क है कि तुक से कहावत का लयांश खिल उठता है, किंतु ऐसी भी अनेक कहावतें हैं, जहां लयांश होता ही नहीं है। दूसरे, अन्योक्ति अंश को भी पृथक विशेषता मानने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वास्तविक कहावतों में अन्योक्ति ही उनका प्राण है। सामान्यार्थ की प्रतीति ही लोकोक्ति को गति देती है। विशेष की प्रतीति होती अवश्य है, किंतु कुछ ही स्थानों पर।

ऊपर जिन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, उनमें अनेक बार तो कुछ ऐसी बातें कही गई हैं जो लोकोक्तियों की ही विशेषता नहीं हैं, अपितु लोकसाहित्य की सभी विधाओं के लिए आवश्यक होती हैं। अनाम की स्थिति या घरेलू भाषा के आधार पर जो विशेषताएं बताई गई हैं, वे ऐसी ही विशेषताएं हैं जो लोकोक्ति–साहित्य के अतिरिक्त लोकसाहित्य के समस्त रूपों पर भी लागू होती हैं। इसलिए डॉ. दक्षिणामूर्ति द्वारा विवेचित निम्नलिखित लक्षणों को ही प्रस्तुत विवेचन का आधार माना जाता है –

1. **लघुत्व** – जैसा कि प्रायः सभी परिभाषाओं में संकेतित है, आकारगत लघुता लोकोक्ति का सर्वप्रथम एवं नितांत आवश्यक गुण है। सूत्रात्मक पद्धति में गठित लोकोक्तियों में बड़ा प्रभाव देखा जाता है। इसलिए डॉ. सत्येंद्र ने लोकोक्तियों की परिभाषा निर्धारित करते समय गागर में सागर भरने की बात का संकेत किया

है। ऊंट के मुंह में जीरा, अंधों में काना राजा, चोर की दाढ़ी में तिनका आदि ऐसी ही लघु आकारीय कहावतें हैं।

**टिप्पणी**

2. **लय या गति** – लोकोक्तियों में लय अथवा गति का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रायः सभी लोकोक्तियां लयात्मक अभिव्यक्ति के रूप में ही निर्मित रहती है। प्रत्येक जनपद की लोकोक्तियों में अनेक ऐसी लोकोक्तियां प्राप्त होती हैं, जो अपने में गेय होती हैं और इसीलिए उन्हें काव्य–रूप में गठित लघु आकारीय विधा कहा जा सकता है। ब्रज जनपद की दो लोकोक्तियां नीचे उद्धृत हैं, जिन्हें इसी लयात्मकता के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. *आलस नींद किसानयै खोबै, चोरयै खोबै खांसी।*
   *टका ब्याज वैरागीयै खोबै, रौड़यै खोबै हांसी।।*
2. *उत्तम खेती मध्यम बान, अधम चाकरी भीख निदान।*

3. **तुक या अनुप्रास** – जैसा कि ऊपर भी संकेत किया जा चुका है, लोकोक्तियों में अनेकशः तुक और अनुप्रास का ध्यान रखा जाता है, जिसके परिणामस्वरूप लोकोक्तियों की भाषा संगीतमय स्वरूप धारण करती है। यही नहीं, उसमें प्रभावक शक्ति का भी संवर्धन हो जाता है। ब्रज जनपद की कुछ लोकोक्तियों को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करके इस कथन की पुष्टि की जा सकती है। एक लोकोक्ति में आनुप्रासिक सौंदर्य देखिए –

*सांच कू आंच न*

इसी प्रकार एक अन्य ब्रज जनपदीय लोकोक्ति में तुकमयता का रूप इस प्रकार देखा जा सकता है –

*एक बार जोगी द्वै बार भोगी*
*तीन बार रोगी, जंगल कूं जात हैं।*

4. **निरीक्षण और अनुभूति की अभिव्यंजना** – मानव–जीवन की अनेक प्रकार की सूक्ष्म अनुभूतियां ही लोकोक्तियों के निर्माण में आधारशिला का कार्य करती हैं और ऐसी लोकानुभूतियां गहन निरीक्षणों पर आधारित होती हैं। ब्रज–जनपद की एक लोकोक्ति इसी प्रकार के लोकानुभव और सूक्ष्म निरीक्षण की परिचायक है–

*सांझ कौ आयौ पाहुनौ, औरू सबेरे कौ मेहु*

5. **प्रभावशीलता और लोक–रंजकता** – यद्यपि यह विशेषता प्रत्येक लोकोक्ति में नहीं होती, तथापि अधिकांश लोकोक्तियों के संबंध में यह सत्य सिद्ध होती हैं। ब्रज–जनपद में भी ऐसी लोकोक्तियां प्राप्त होती हैं, जिनमें लोकानुरंजन के साथ–साथ अपार प्रभावमयता की क्षमता होती है। ब्रज जनपद की दो–तीन लोकोक्तियां उद्धृत हैं – 1. अंधी पीसे कुत्ता खंइ। 2. चिराय के नीचे अंधेरों। 3. धोबी को कुत्ता घर कौ न घाट कौ।

6. **सरल शैली** – यह लोकोक्तियों की अनूठी विशेषता है कि उनकी अभिव्यक्ति इतनी सरल होती है कि अत्यंत शीघ्र ही बोधगम्य हो सकें। ब्रज की एक लोकोक्ति लीजिए –

*1. सौकीन डुकरिया चटाई को लहंगा ।*

*2. अरहर की टटिया गुजराती तारौ।*

टिप्पणी

लोकोक्तियों की विशेषताओं के इसी क्रम में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने जिन तीन विशेषताओं का और उल्लेख किया था, उनके संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि वे तीनों बातें डॉ. दक्षिणामूर्ति द्वारा विवेचित उपर्युक्त विशेषताओं में ही अंतर्भुक्त हो जाती हैं।

## लोकोक्तियों का वर्गीकरण

लोकोक्तियां मानव–जीवन के विविध अंगों पर आधारित होती हैं। इसलिए इनका प्रयोग किसी को शिक्षा देने या सचेत करने के लिए किया जाता है। कहीं–कहीं लोकोक्तियों के प्रयोग का उद्देश्य यह रहता है कि प्रयोगकर्ता अपने कथन की पुष्टि इनके द्वारा करता हैं। कहीं व्यंग्य या हंसी उड़ाने के उद्देश्य से इनका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार उद्देश्य की भिन्नता, आधारभूत जीवन के पक्ष की भिन्नता, स्वरूप की भिन्नता और विषय की भिन्नता के आधार पर लोकोक्तियों के विभिन्न वर्ग निर्धारत किये जा सकते हैं। लोकोक्तियों के वर्गीकरण पर लेखनी चलाने वाले विद्वानों में सर्वप्रथम डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का वर्गीकरण प्रस्तुत हैं – 1. स्थान संबंधी, 2. जाति संबंधी, 3. प्रकृति तथा कृषि संबंधी, 4. पशु–पक्षी संबंधी तथा 5. प्रकीर्ण।

इस वर्गीकरण के तुरन्त उपरांत डॉ. उपाध्याय ने लोकोक्तियों के कुछ विशेष प्रकारों का उल्लेख डॉ. सत्येंद्र का संदर्भ देते हुए किया है, जो इस प्रकार हैं – 1. अनमिल्ला, 2. भेरि, 3. अचका, 4. औठपाउ, 5. गह गड्ड, 6. ओलना तथा 7. खुंसि।

लोकोक्तियों के वर्गीकरण के संबंध में डॉ. महादेव साह, डॉ. श्याम परमार, डॉ. सत्या गुप्ता, डॉ. सरोजिनी रोहतगी, डॉ. मोहनलाल बाबुलकर, डॉ. शंकरलाल यादव इत्यादि अनेक विद्वानों ने अपने अध्ययन–क्षेत्र की लोकोक्तियों के आधार पर वर्गीकरण दिए हैं। डॉ. शंकरलाल यादव ने हरियाणा प्रदेश की लोकोक्तियों का विवेचन करते समय निम्न प्रकार की लोकोक्तियों का उल्लेख किया हैं – 1. जातिपरक, 2. देश या स्थानपरक, 3. इतिहासपरक, 4. कृषिपरक, 5. नीतिगर्भित तथा 6. व्यंग्यात्मक।

विभिन्न विद्वानों के द्वारा किये गए वर्गीकरणों की शृंखला में सबसे महत्वपूर्ण स्थान डॉ. कन्हैयालाल सहल का है, जिन्होंने राजस्थान की लोकोक्तियों का अनुसंधानपरक अध्ययन करते समय, निम्न प्रकार की लोकोक्तियों का उल्लेख किया है – 1. ऐतिहासिक कहावतें, 2. स्थान संबंधी कहावतें, 3. समाज–चित्रण विषयक कहावतें, 4. शिक्षा–ज्ञान और साहित्यिक कहावतें, 5. धर्म और जीवन दर्शन संबंधी कहावतें, 6. कृषि संबंधी कहावतें, 7. वर्षा संबंधी कहावतें तथा 8. प्रकीर्ण।

लोकोक्तियों के वर्गीकरण पर विचार करते समय डॉ. कृष्णलाल हंस का नाम इसलिए स्मरण हो जाता है कि उन्होंने लोकोक्तियों के तीन वर्गीकरण दिए हैं, जिनमें से पहला वर्गीकरण है – स्वरूप के अनुसार, जिसके अंतर्गत निम्न चार प्रकार की लोकोक्तियों का उल्लेख किया गया हैं – 1. प्राचीन संस्कृत–साहित्य पर आधारित, 2. मध्यकालीन हिंदी कवियों के काव्य पर आधारित, 3. अनूदित लोकोक्तियां तथा 4. तुलनात्मक लोकोक्तियां (एक वस्तु अथवा व्यक्ति की तुलना उसी के समान गुण, कर्म, स्वभाव अथवा रंग की दूसरी वस्तु या व्यक्ति से की जाती है)।

दूसरा वर्गीकरण उन्होंने किया है – स्थान के अनुसार, जिसके आधार पर निम्नांकित तीन वर्ग निर्धारित किये हैं – 1. सर्वदेशीय, 2. एक–देशीय, 3. क्षेत्रीय अथवा स्थानीय।

टिप्पणी

तीसरा और महत्वपूर्ण वर्गीकरण है – विषय के आधार पर, जिसके अंतर्गत निम्न आठ प्रकार की लोकोक्तियों की चर्चा की गई है–

1. ऐतिहासिक,
2. धार्मिक,
3. नैतिक,
4. दैनिक जीवन से संबंधित,
5. तथ्यपूर्ण
6. कृषि विषयक,
7. ज्योतिष विषयक,
8. व्यंग्योक्तियों से संबंधित।

लोकोक्तियों के जितने वर्गीकरण ऊपर दिए गए हैं, उनमें इतना ध्यान नहीं रखा गया है कि दो–दो वर्ग किसी एक वर्ग के अंतर्गत आ सकते हैं या नहीं। प्रायः सभी विद्वानों ने सरलतापूर्वक बिना किसी वैज्ञानिक पद्धति का आश्रय ग्रहण किये ही लोकोक्तियों के वर्गीकरण कर दिए हैं। उदाहरण के लिए धर्म संबंधी, लोक–विश्वास संबंधी या पौराणिक गाथाओं से संबंधित लोकोक्तियों के अलग–अलग वर्ग बनाए गए हैं, जबकि इन्हें धार्मिक लोकोक्तियों के अंतर्गत लिया जा सकता है। इसी प्रकार जाति संबंधी, पुरुष और नारी संबंधी कहावतों के पृथक वर्ग निर्धारित किये गए हैं, जबकि इन्हें सामाजिक कहावतों के अंतर्गत अंतर्भुक्त किया जा सकता है।

सारांश यह है कि कहावतों के वर्गीकरण के संबंध में विद्वानों का एक निश्चित अभिप्राय नहीं है। वर्गीकरण विधान कुछ भी हो, यह स्मरण रखना चाहिए कि वे सर्वथा एक–दूसरे से पृथक नहीं हैं। जैसा कि बताया गया है, एक ही कहावत में दो या दो से अधिक संबद्ध विषय दिखाई पड़ सकते हैं।

डॉ. दक्षिणामूर्ति ने रूप के आधार पर निम्न प्रकार की कहावतों का उल्लेख किया है –

1. प्रश्न–रूपक कहावतें,
2. निश्चय–रूपक कहावतें,
3. निषेध–रूपक कहावतें,
4. विधि–रूपक कहावतें,
5. उपमान–रूपक कहावतें
6. संवाद–रूपक कहावतें।

उक्त विद्वान ने दूसरा वर्गीकरण किया है – विषय के आधार पर, जिसे हम अविकल रूप में आगे उद्धृत करके लोकोक्तियों के वर्गीकरण के इस प्रसंग का समापन करेंगे।

1. धार्मिक कहावतें – (क) धर्म संबंधी साधारण कहावतें, (ख) ईश्वर संबंधी कहावतें, (ग) भाग्य–कर्म संबंधी, (घ) लोकविश्वास और आचार–विचार संबंधी, (ङ) शकुन संबंधी, (च) भक्ति–वैराग्य संबंधी और (छ) पौराणिक गाथाओं से संबंधित।
2. नैतिक कहावतें – (क) अर्थ–नीति, (ख) मैत्री, (ग) राजनीति, (घ) परोपकार, (ङ) आदर्श जीवन तथा (च) अन्य नैतिक कहावतें।

3. सामाजिक कहावतें – (क) समाज का सामान्य चित्र, (ख) व्यक्ति का चित्र, (ग) सृष्टि में मानव तथा मानवेतर प्राणी–पदार्थ, (घ) जाति संबंधी कहावतें, (ङ) पुरुष संबंधी कहावतें, (च) नारी संबंधी कहावतें तथा (छ) अन्य सामाजिक कहावतें।

टिप्पणी

4. वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक कहावतें – (क) शिक्षा तथा ज्ञान संबंधी, (ख) कृषि तथा वर्षा–विज्ञान संबंधी– 1, कृषि संबंधी साधारण कहावतें, 2. वातावरण और वर्षा संबंधी, 3. मिट्टी के लक्षण संबंधी, 4. जुताई और कृषि–प्रबंध संबंधी, 5. फसल संबंधी तथा 6. कृषि में सहायक पशुओं से संबंधित। (ग) मनोवैज्ञानिक कहावतें– 1. साधारण कहावतें, 2. विश्लेषणात्मक कहावतें। (घ) कुछ अन्य कहावतें –
1. ऐतिहासिक घटना–मूलक कहावतें 2. व्यक्ति–प्रधान कहावतें तथा 3. स्थान संबंधी कहावतें।

## 1.5.2 मुहावरे

मुहावरे का प्रयोग दैनिक जीवन में अपनी भाषा को रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए होता है। भाषा में लाक्षणिकता से संयम आ जाता है और उसका अनावश्यक विस्तार दूर हो जाता है। ये किसी भाषा में प्रयोग होने वाले वाक्य–खंड हैं, जिनके प्रयोग से वाक्य सबल और सतेज हो जाते हैं। मुहावरे वाक्यांश होते हैं, जो अपना अर्थ वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही प्रकट करते हैं। स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने पर इनका अर्थ प्रकट नहीं होता। यह अपने मूल रूप में प्रयोग किये जाते हैं। शब्द–परिवर्तन कर देने पर इनका कोई अर्थ नहीं होता। जैसे – 'पानी–पानी होना' एक मुहावरा है, इसकी जगह यदि 'जल–जल होना' प्रयोग किया जाए तो वह कोई अर्थ प्रकट नहीं करेगा। संसार में मानव ने अपने दैनिक जीवन में जिन वस्तुओं को बहुत कौतूहल से देखा और जिन भावों का सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण किया, उन्हीं को शब्दों में प्रकट किया और यही शब्द मुहावरे कहलाए।

भाषा–शास्त्रियों के मतानुसार मानव की प्रयत्न लाघवप्रियता ही मुहावरों की उत्पत्ति का रहस्य है। वह कम से कम शब्दों में अपने भावों को प्रकट करना चाहता है, साथ ही साथ वह अपनी बात को रहस्यात्मक और गोपनीय ढंग से भी कहना चाहता है। इसलिए वह साधारण बात को साधारण शब्दों में न कहकर घुमा–फिराकर कहता है। भाषा का यह रूप लघु और गद्यात्मक होता है। भाषा में इनका प्रयोग हास्य–व्यंग्य, चमत्कार, लघुता, विचारों की स्पष्टता और अभिव्यक्ति को सरल बनाने के लिए होता है। इनके प्रयोग से शैली मनोरंजक हो जाती है और आत्मीयता का वातावरण उत्पन्न होता है।

परस्पर बातचीत और सवाल–जवाब करने का अर्थ–बोध कराने वाला यह शब्द अरबी भाषा से गृहीत हुआ है। यद्यपि हिंदी में इसके पर्याय के रूप में रूढ़ि–प्रयुक्तता, वाक्धारा इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, परंतु प्रयोग के आधार पर मुहावरा शब्द ही अधिक प्रचलित है। हिंदी शब्द–सागर में 'मुहावरा' शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है –

लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य या प्रयोग जो किसी एक ही भाषा में प्रचलित हो और उसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो।

लाला भगवानदीन ने रूढ़ि लक्षणा को ही मुहावरा माना है। इसी क्रम में डॉ. कृष्णलाल हंस का निम्न कथन भी दृष्टव्य है, जो उन्होंने निमाड़ी भाषा के मुहावरों का अध्ययन करते समय व्यक्त किया है –

टिप्पणी

मुहावरे वास्तव में वाक्य खंड हैं, जब इनका प्रयोग वाक्य में किया जाता है, तब उस वाक्य की शक्ति और प्रभाव पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ जाता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मुहावरों में जो शब्द प्रयुक्त होता है, वह अत्यंत सार्थक एवं नपा–तुला होता है। मुहावरों के लक्षणों और विशेषताओं के संबंध में भी बड़े विस्तार से चर्चा की गई है। डॉ. कृष्णलाल हंस ने मुहावरे की निम्न विशेषताएं बताई हैं –

1. इन्हें बोलियों में जो रूप प्राप्त हुआ, वह भाषा अथवा उसके उच्च–कोटि के साहित्य में सदैव अक्षुण्ण रहा।
2. मुहावरे का अर्थ बिना उसका वाक्यों में प्रयोग किये स्पष्ट नहीं होता।
3. मुहावरा शब्दार्थ को छोड़कर सदैव कोई विशेष अर्थ ही प्रकट करता है।
4. मुहावरे का प्रयोग प्रसंग–विशेष में ही किया जाता है, और उस प्रसंग के अनुसार ही उसका अर्थ होता है।

## मुहावरों और लोकोक्तियों का अंतर

लोकोक्ति और मुहावरे–दोनों ही लघु आकारीय अभिव्यक्ति के प्रकार हैं, किंतु इनमें पर्याप्त अंतर होता है। इस संबंध में डॉ. शंकरलाल यादव के विचार द्रष्टव्य हैं –

लोकोक्ति में एक पूर्ण सत्य या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। वह दूसरे वाक्य का अंश नहीं बनता, वरन् एक स्वतंत्र वाक्य होता है। रूढ़ि (मुहावरा) स्वतंत्र नहीं होती, वह तो वाक्य के भीतर ही प्रयुक्त होती है अथवा यों कहिए कि वह किसी वाक्य में रखे जाने के लिए विवश होती हैं।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने मुहावरों और कहावतों का अंतर स्पष्ट करते हुए जहां एक ओर उपर्युक्त सत्य का उद्घाटन किया है, वहां दूसरी ओर निम्न विचार भी व्यक्त किये हैं–

मुहावरे गद्यात्मक होते हैं, परंतु लोकोक्तियां गद्य और पद्य– दोनों में होती हैं। दोनों का आकार लघु होता है, परंतु मुहावरा लघुत्तर होता है।

इस संबंध में डॉ. दक्षिणामूर्ति ने विस्तार से प्रकाश डाला है। जहां उन्होंने एक ओर ऊपर बताई गई पार्थक्य–भेदक रेखाओं का उल्लेख किया है, वहां दूसरी और निम्न तथ्य भी प्रस्तुत किये हैं –

1. लोकोक्ति का प्रयोग बहुधा अन्योक्ति या अप्रस्तुत व्यंजना के लिए होता है, जबकि मुहावरों का प्रयोग लाक्षणिक होता है।
2. अधिकतर मुहावरों के अंत में 'ना' प्रत्यय रहता है, जैसे –गुस्सा पीना, सिर पर चढ़ना आदि–आदि, जबकि लोकोक्तियों में इस प्रकार का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता है।

3. कहावतें अनेक देश की भाषाओं में मौलिक भाव लिए हुए रहती हैं, यह भावगत मौलिक एकता मुहावरों के लिए आवश्यक नहीं है। डॉ. दक्षिणामूर्ति के ही शब्दों में इस तथ्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया हैं –

   एक भाषा के मुहावरों को दूसरी भाषा में रूपान्तरित नहीं कर सकते। शब्दशः अनुवाद करने पर अर्थ की हानि होती है, परंतु कहावत के संबंध में यह बात नहीं। कहावत अनुभव–दुहिता है, उनमें सार्वदेशीय सार्वकालीन सत्य छिपा रहता है। एक भाषा में जो कहावत है, वह दूसरी भाषा में भी दिखाई पड़ सकती है, अभिव्यंजना में भिन्नता भले ही रहे।

4. मुहावरे में कार्य व्यापार होता है, जबकि कहावत में कोई नैतिक वाक्य या अनुभूति–जन्य कथन समाविष्ट होता है।
5. कहावतें अलंकार–शास्त्र के अंतर्गत आती हैं, जबकि मुहावरे शब्द–शक्तियों के अंतर्गत।

## मुहावरों के प्रकार

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मुहावरा शब्द किसी कार्य व्यापार या घटना–विशेष के आधार पर प्रचलित होता है, इसलिए मुहावरों के विविध प्रकार दिखाई देते हैं। मुहावरों के विविध आधारों की दृष्टि से रखकर यह विभाजन किया जा सकता है। मुहावरों के निम्नांकित प्रकार पाए जाते हैं –

1. संस्कार तथा प्रथाओं का उल्लेख करने वाले
2. इतिहास का चित्रण करने वाले
3. पौराणिक संदर्भों को व्यक्त करने वाले
4. जातिगत घटनाओं पर आधारित
5. शकुनापशकुनों से संबंधित

## लोकोक्ति व मुहावरों में लोकसंस्कृति का प्रतिबिंब

लोकोक्तियां और मुहावरे, लोकसंस्कृति और लोकानुभूतियों को अपने में समाहित रखते हैं। समाज की प्रथा–विश्वास, भाग्य, संस्कार, जाति, अर्थव्यवस्था, नीति, पुराणों में विश्वास, शकुन–अपशकुन, धार्मिक आस्था, भोजन आदि अनेक तथ्यों का मुहावरों और लोकोक्तियों में प्रतिबिंब है। इनकी परिधि व्यापक और विस्तृत है, जिसे किसी सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। लोकसंस्कृति का यह चित्रण निम्नलिखित है –

1. **संस्कार संबंधी रीतियों का प्रतिबिंब**– मुहावरों और लोकोक्तियों में संस्कार संबंधी अनेक रीतियों का उल्लेख है। पुत्र–जन्म से मानव की मृत्यु तक के संस्कारों के आधार पर अनेक मुहावरों की रचना हुई है। चूड़ी बहोरना, बांह छोड़ना, सुहाग उतरना, हल्दी के दाग न छूना, भांवर डालना, नैनों का सुरमा न

छूटना, दांतों की मिस्सी न छूटना, मांग बघेरना, लकड़ी देना, क्रिया–कर्म करना आदि मुहावरे संस्कारों की क्रियाओं का उल्लेख करते हैं।

टिप्पणी

2. **ऐतिहासिकता का प्रतिबिंब**– लोकोक्ति और मुहावरों में इतिहास की अनेक घटनाओं का प्रतिबिंब है। 'अनाड़ी' होना, जौहर करना, ताज ऊंचा करना, बीड़ा उठाना आदि ऐसे ही मुहावरें हैं। अनाड़ी शब्द भारत की अनार्थ जातियों की ओर संकेत करता है, जिन्हें आर्यों की अपेक्षा कम बुद्धिमान समझा जाता था। मध्यकाल में स्त्रियां अपने पतियों के साथ जिंदा जल जाती थी, जौहर करना उसी प्रथा की ओर संकेत करता है। राजा अपने मस्तक पर ताज बांधा करते थे, जो राजा की कीर्ति और राजत्व का प्रतीक होता था। इसी प्रकार जयचंद्र होना, विभीषण होना आदि मुहावरे देशद्रोही व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होते हैं।
3. **पौराणिक विश्वास**– भारतीय समाज में पाप–पुण्य, मोक्ष, स्वर्ग–नरक आदि की जड़ें बहुत गहरी हैं। अतः इनसे संबंधित अनेक मुहावरे हैं। पाप धोना, माया रचना, मुल्के अदम पहुंचाना, हंस रवाना होना, ईश्वर का पूंजा होना आदि मुहावरे तथा 'लिखने वाला लिख गया मेंटन हारा कौन', 'होनी अमिट ऋषि–मुनि गाई' आदि लोकोक्तियां हमारे पौराणिक विश्वास को अभिव्यंजित करती हैं। जीवनकाल में दुष्कर्म करने वाले व्यक्ति को पापी माना जाता है। उसके अचानक सत्कर्म करने पर पाप धोना मुहावरा प्रयोग किया जाता है। अपने हृदय में कपट भाव रखकर किसी सत्पुरुष को सताए जाने के लिए किसी कार्य को करने के लिए माया रचना मुहावरा प्रयुक्त होता है। राम के लिए मारीचि ने ऐसी ही माया रची थी। पुराणों के अनुसार मनुष्य मरणोपरांत निवास के लिए किसी परलोक में जाता है, अतः किसी को मारने के लिए मुल्के अदम पहुंचाना कहा जाता है। इसी प्रकार भाग्यवाद संबंधी अनेक मुहावरे पौराणिक विश्वासों पर रचे गए हैं।
4. **नैतिकता का प्रतिबिंब** – नीति संबंधी लोकोक्तियों में भारतीय लोक संस्कृति का चित्रण हुआ है। बिगरी में भाई टूटि जाति असनाई, बिन भैया शोभा नांइ, भाई–बंधी में एक सरम सब होती है असनाई की आदि अनेक ऐसी ही लोकोक्तियां हैं। मनुष्य पर विपत्ति गिरने पर उसके संबंधी भी संबंध–विच्छेद कर लेते हैं। किसी समारोह में भाइयों के अभाव में शोभा नहीं होती। भाई को अपने भाई की मर्यादा और ज्ञान की रक्षा के लिए उसके किसी कार्य को अपना कार्य समझ कर करना चाहिए। ये लोकोक्तियां हमारे लोक–समाज की नीतियों पर प्रकाश डालती हैं।
5. **जातिवाद का प्रतिबिंब** – अनेक मुहावरों में हमारे समाज में व्याप्त जातिवाद का उल्लेख है। छत्तीसा मुहावरा नाई की जाति की चतुरता की ओर संकेत करता है। कोरिया मुहावरा कोलियों के सीधे–सच्चे और भोलेपन पर प्रकाश डालता है। गधा, बैल, चमरा, बछिया के ताऊ आदि ब्रजभाषा के मुहावरे मूर्ख, आलसी और गंवार व्यक्तियों के लिए प्रयोग किये जाते हैं।

टिप्पणी

6. **अंध–विश्वास और शकुन–अपशकुन का प्रतिबिंब**– हमारे जनसमुदाय में ऐसे मुहावरे भी बोले जाते हैं, जो मानव–समाज में व्याप्त अन्ध–विश्वासों और शकुन–अपशकुनों पर प्रकाश डालते हैं। किसी बच्चे के बीमार हो जाने पर उसे नजर लगना कहा जाता है और कुदृष्टि निवारण के लिए टोने–टोटके किये जाते है। एड़ी खुजाना, काग मड़राना, हत्था चिल्लाना, नमक खाना, गंगा नहाना आदि ऐसे ही ब्रज भाषा के मुहावरे हैं। काग मड़राना और हत्था चिल्लाना मुहावरे किसी अशुभ घटना के प्रकट होने के लिए इंगन करते हैं। लोक–विश्वासानुसार कोई व्यक्ति किसी का नमक खा लेने पर उसे धोखा नहीं दे सकता। किसी असंभव कार्य में सफल होने पर गंगा नहाने के समान परिणाम मिलता है।
7. **आर्थिक स्थिति का प्रतिबिंब** – अनेक लोकोक्तियां जन समुदाय की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालती हैं। 'घर में नहीं दाने बीबी चली भुनाने' लोकोक्ति में गरीब व्यक्ति का प्रतिबिंब है। अपनी आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर अतिव्ययता करने पर यह कथन कहा जाता है। थूक से सत्तू न सनना भी कार्य में आर्थिक साधनों की लघुता की ओर संकेत करता है।

### अपनी प्रगति जांचिए

7. निम्नलिखित में से कौन–सी विधा प्रकीर्ण साहित्य के अंतर्गत नहीं रखी जा सकती?

   (क) लोकगीत (ख) लोकोक्ति

   (ग) मुहावरे (घ) पहेलियां

8. ''वे संक्षिप्त वाक्य, जिनको लोग प्रायः दोहराया करते हैं, लोकोक्ति कहलाते हैं''–किसने कहा है?

   (क) बेकन (ख) टी. शिप्ले

   (ग) डॉ. जॉनसन (घ) सर्वन्टीज

## 1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. (क) | 2. (ग) | 3. (ग) | 4. (ख) |
| 5. (घ) | 6. (क) | 7. (क) | 8. (ग) |

## 1.7 सारांश

श्री अमृतलाल वेगड़ को उनकी नर्मदा पर पुस्तक के लिए सन् 2004 में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी किया गया था। उन्हें मध्यप्रदेश राज्य साहित्य पुरस्कार और राष्ट्रपति पुरस्कार से भी उनके अनेक कार्यो के लिए पुरस्कृत किया गया। उन्हें महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन पुरस्कार से भी हिन्दी में लेखन के लिए सम्मानित किया गया था।

टिप्पणी

उनकी प्रमुख पुस्तकों में हिन्दी में लिखी प्रकाशित पुस्तक 'नर्मदा की परिक्रमा' है। उन्होंने नर्मदा को लेकर ही गुजराती में भी पुस्तकें लिखी हैं। इनके लिए उन्हें अनेकानेक पुरस्कार एवं सम्मान भी प्रदान किए गए। उन्होंने गुजराती भाषा में ही लोक कथाएं और निबंध भी लिखे। नर्मदा अमृत और तीरे–तीरे नर्मदा का अनुवाद उन्होंने स्वयं गुजराती से अंग्रेजी, बंगला और मराठी भाषा में भी किया। उनकी पहली पुस्तक–नदी का सौन्दर्य नर्मदा थी। वेगड़ जी ने अपनी पत्नी के साथ यात्राएं भी की–वे उनका सामान स्वयं लेकर चलती थी।

नर्मदा के प्रति भी वेगड़ जी का आदर भाव इस वृत्तांत में देखा जा सकता है। जब वे सन् 1977 की जबलपुर से मंडला तक की अपनी यात्रा का वर्णन करते हैं तब बरगी बांध के कारण पैदा हुई नर्मदा की गलाघोटू भौगोलिकता का भी वर्णन करते हैं। उसके प्राकृतिक छटा के नष्ट–भ्रष्ट और बदल जाने की बात भी बतलाते हैं। ऐसे में वे इस यात्रा के रास्ते को बदलने का भी वर्णन करते हैं। नर्मदा के प्रति उनके जो भाव हैं, वे भी प्रशंसनीय बन पड़े हैं–वे भाव प्रकट करते हैं कि हे नर्मदा तुम चाहे औरों के लिए नदी ही हो। किन्तु मैं तो तुम्हें मोक्षदायिनी ही मानता हूं। तुम्हीं मेरे लिए भवसागर रूपी संसार से मुक्ति दिलाने वाली हो। यहां उन्होंने नर्मदा नदी को माता का दर्जा न देकर उससे भी ऊपर मोक्षप्रदायिनी का स्थान दिया है।

अमृतलाल वेगड़ जी मूलतः गुजराती भाषा के लेखक रहे हैं। इसलिए हिन्दी व्याकरण की दृष्टि से कहीं–कहीं भाषा–दोष आ गया है जो कि इस वृत्तांत को पढ़ते हुए अखरता–सा प्रतीत होता है। उसमें भी शाब्दिक अशुद्धि तथा एक वचन और बहुवचन का दोष अधिक बाधा पैदा करता–सा लगता है। दूसरा कारण ये भी रहा है कि वेगड़ जी ने हिन्दी भाषा और लिपि में गुजराती भाषा की अपेक्षा कम ही लिखा है। इसलिए भी भाषा दोष आया लगता है, जो कि अहिन्दी भाषी लेखक के लिए सम्भव भी है। फिर भी उन्होंने हिन्दी में कलम चलायी है। साहस किया है। अपने विचार प्रकट किए हैं, इसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाए, सो कम ही है।

मध्यप्रदेश कला एवं संस्कृति के संदर्भ में समृद्ध प्रदेश है। महान नाटककार कवि कालिदास इसी राज्य के थे। उज्जैन शहर कवि कालिदास की कर्मस्थली थी। सूर्य सिद्धान्त और पंच सिद्धान्त यहीं रचित हुए। मध्यप्रदेश एक आदिवासी बाहुल्य वाला राज्य है। अतः यहां आदिवासी हस्तकला का समृद्ध होना स्वाभाविक ही है। आदिवासी हस्तकला में कई प्रकार के बर्तन, कपड़े, बांस द्वारा निर्मित कलाकृतियां आदि न केवल देशी–विदेशी पर्यटकों का विषेष आकर्षण हैं, अपितु विश्व भर में जानी जाती हैं। यहां लोकगायन की अनूठी शैलियां हैं, वहीं भिन्न–भिन्न अवसरों पर किये जाने वाले लोकनाट्यों की परंपरा भी अद्‌भुत है।

मध्य प्रदेश में कन्दराओं में शैल चित्रों का उद्‌भव दृष्टिगोचर होता है। ये प्राकृतिक रूप से सम्पन्न और सुन्दर परिदृश्य हैं जो मानव को अपनी ओर सहज रूप से आकर्षित करते हैं। साथ ही प्रदेश में व्याप्त प्रागैतिहासिक कला की कड़ियां जोड़ने से मानव के विकास की कहानी का पता चलता है। यह पाषाण काल से सम्बद्ध है, पूर्व पाषाण काल 50,000 ई. पूर्व एवं उत्तर पाषाण काल 35,000 ई.पू.।

टिप्पणी

जनजाति चित्र प्रकृति प्रेरित होते हैं। सृष्टि में प्राप्त जीव–जन्तु जिनमें हाथी, गाय, बैल, घोड़ा, मगर, छिपकली, सांप, चिड़िया, मोर, हिरण, उल्लू और सुअर आदि को चित्रों में सृजित किया है। साथ ही काष्ठ एवं धातु शिल्प में उकेरा है। यह एक परम्परा है, जो पुरस्कार और सम्मान की मोहताज नहीं। फिर भी जनजातीय कलाकारों ने भारतीय आदिवासी कला को विदेशों तक पहुंचाया। गोंड और भील जनजाति के लोग पहले प्राकृतिक रंगों से भित्ति चित्र बनाते थे, लेकिन बदलते समय के साथ सिन्थेटिक रंगों से कागज कैनवास पर उतारा है। विशेषकर ये चित्रकारी 'परधान' और 'नोहडोरा' कहलाती है। इस जनजाति कला को भील और गोण्ड कलाकारों ने समृद्ध किया है।

लोकसाहित्य की प्रमुख विधाओं के अतिरिक्त ऐसी छोटी–मोटी विधाएं इस वर्ग में समाविष्ट की जाती हैं, जो आकार में लघुरूपी हैं। लोकतुक्का, लोकोक्तियां, मुहावरे, पहेलियां, लोरियां, शिशु–खेल गीत आदि सभी विधाएं आकार में लघु होने के कारण स्फुट वर्ग के अंतर्गत ही विवेचन का विषय बनायी जाती हैं। इसी वर्ग को डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक–सुभाषित नाम देकर भी पुकारा है। किंतु सुभाषित की परिधि में लोकोक्ति, मुहावरे तथा पहेलियां ही आ सकती हैं, अन्य लघुगीत आदि इस शीर्षक के अंतर्गत समाविष्ट नहीं किये जा सकते।

## 1.8 मुख्य शब्दावली

- **प्रवहमान** – बहती हुई, प्रवाहित होती हुई
- **परिष्कृत** – सुधरा हुआ, परिमार्जित
- **द्योतक** – परिचायक
- **धरोहर** – विरासत
- **प्रतिमान** – कसौटी
- **सिंक्रनाइज करना** – लयबद्ध करना

## 1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अमृतलाल वेगड़ के व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण पहलू कौन से हैं?
2. नर्मदा के प्रति अमृतलाल वेगड़ के लगाव का कारण क्या था?
3. 'मेरे सहयात्री' में अमृतलाल वेगड़ की भाषा एवं शैली किस प्रकार की है?
4. लोक एवं शास्त्रीय कला में क्या अंतर है?
5. मध्य प्रदेश के प्रागैतिहासिक केन्द्रों की खोज का श्रेय किन लोगों को दिया जाता है?
6. जैन शैली के चित्र किन–किन रूपों में प्राप्त होते हैं?

7. मालवा के लोकनाट्य माच का परिचय दीजिए।
8. लोकोक्तियों की प्राचीन परंपरा पर टिप्पणी कीजिए।

**दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न**

टिप्पणी

1. अमृतलाल वेगड़ का लेखकीय परिचय देते हुए उनके यात्रा साहित्य की विशेषताएं बताइए।
2. 'मेरे सहयात्री' यात्रा–वृत्तांत के मूल पाठ का परिचय दीजिए।
3. 'मेरे सहयात्री' यात्रा–वृत्तांत का समीक्षात्मक विश्लेषण कीजिए।
4. मध्य प्रदेश की लोककलाओं के अतीत एवं वर्तमान परिदृश्य पर प्रकाश डालिए।
5. भाषा के गठन में लोकोक्तियों एवं मुहावरों की भूमिका एवं महत्व समझाइए।

## 1.10 सहायक पाठ्य सामग्री


1. सौन्दर्य की नदी नर्मदा, अमृतलाल वेगड़, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1992.
2. साइबर स्पेस और मीडिया–सुधीश पचौरी, प्रवीन प्रकाशन, दिल्ली, 2000.
3. जनसंचार : प्रकृति और परम्परा, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, ट्राईडैंट पब्लिशर्स, दिल्ली, 2009.
4. नया मीडिया : अध्ययन और अभ्यास, शालिनी जोशी, शिव प्रसाद जोशी, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2015.
5. मध्य प्रदेश की कला एवं संस्कृति, गोपाल भार्गव, कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2011.
6. मीडिया और हिन्दी : बदलती प्रवृत्तियां, सं. रविन्द्र जाधव, केशव मोरे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016.
7. प्रयोजनमूलक हिन्दी, सं. डॉ. रामप्रकाश, डॉ. दिनेश गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006.

# इकाई 2 हिन्दी भाषा

टिप्पणी

## संरचना


2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 जनसंचार माध्यम (प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक एवं सोशल मीडिया)
  2.2.1 जनसंचार माध्यम : स्वरूप एवं उपयोगिता
  2.2.2 प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया
  2.2.3 सोशल मीडिया : अर्थ, महत्व, उपयोगिता और भाषायी प्रभाव
2.3 टूटते हुए (एंकाकी संग्रह) : सुरेश शुक्ल चन्द्र
  2.3.1 सुरेश शुक्ल चन्द्र का परिचय एवं कृतित्व
  2.3.2 नाट्य साहित्य और सुरेश शुक्ल चन्द्र की नाट्य अभिव्यंजना
  2.3.3 'टूटते हुए' का विवेचनात्मक अध्ययन
2.4 संक्षिप्तियां (संक्षेपण)
  2.4.1 संक्षेपण की विधि
  2.4.2 संक्षेपण : वैशिष्ट्य एवं प्रयोगात्मक स्वरूप
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री


## 2.0 परिचय

अनादि काल से पृथ्वी के जन्म के साथ–साथ उसकी सबसे महत्वपूर्ण कला संचार रही है। संचार के विकास की अवधारणा के बारे में अगर हम अनुमान लगाएं तो इसके बारे में निश्चित प्रमाण मिलना मुश्किल ही नहीं लगभग नामुकिन है। विकास हुआ, जन संपर्कों का दायरा बढ़ा उसे जनसंचार का रूप दिया गया। प्राचीन काल में जिस समय पर जैसा संचार उपक्रम विकसित हुआ उसी के माध्यम से जन समुदायों को संबोधित किया जाने लगा। धीरे–धीरे विकास और मनुष्य की सोच के अनुरूप गठित संचार माध्यमों से जन संचार किया जाने लगा। रेडियो, टेलीफोन, इंटरनेट, टी.वी. आदि सभी उपकरणों का संचार के लिए उपयोग किया जाने लगा। इन्हीं के समुदायों को आधुनिक नाम 'मीडिया' से पुकारते हैं।

हिन्दी में नाटक लिखने वाले लेखकों में सुरेश शुक्ल चन्द्र का नाम भी प्रमुखता से लिया जाता है। उन्होंने अपने नाटकों का तांना–बांना दर्शकों की नब्ज गहरायी से पहचान कर किया है। वे आन्तरिक यथार्थ को अपने नाटकों में कथा वस्तु बनाने के हिमायती रहे हैं। उन्होंने शोषण में पिसते समाज और परिवारों का विशेष चित्रण अपने नाटकों में किया है। अपने चारों ओर की विसंगतियों को उन्होंने जाना, पहचाना और महसूस किया और तब जाकर अपने नाटकों का लेखन किया। महानगरीय आधुनिकता, उसके ताने–बाने और फिर उसके परिणामों का भी प्रस्तुतीकरण सुरेश शुक्ल चन्द्र ने अपने नाटकों में किया है।

टिप्पणी

संक्षिप्तीकरण यानी संक्षेपण किसी विवरण अथवा विचार को संक्षिप्त करने की कला है। संक्षिप्तीकरण करते समय संबद्ध अवतरण का शीर्षक देना संक्षेपण का अंग तो नहीं है, लेकिन उपयुक्त और सटीक शीर्षक से संक्षेपणकर्ता की सूझ–बूझ और बुद्धिमत्ता का परिचय अवश्य मिलता है। उपयुक्त शीर्षक–चयन से परीक्षक यह जान लेता है कि परीक्षार्थी अवतरण के केंद्रीय भाव को समझता है।

इस इकाई में हम संचार माध्यमों : प्रिंट–इलेक्ट्रानिक एवं सोशल मीडिया की विवेचना करते हुए सुरेश शुक्ल चन्द्र के एकांकी संग्रह 'टूटते हुए' का अध्ययन करेंगे। संक्षेपण की कला का अवलोकन भी इस इकाई में किया गया है।

## 2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- जनसंचार के माध्यामों : प्रिंट – इलेक्ट्रानिक एवं सोशल मीडिया की विवेचना कर पाएंगे;
- सुरेश शुक्ल चन्द्र के एकांकी संग्रह, 'टूटते हुए' के प्रतिपाद्य से अवगत हो पाएंगे;
- संक्षिप्तियों (संक्षेपण) के वैशिष्ट्य एवं प्रयोग से परिचित हो पाएंगे।

## 2.2 जनसंचार माध्यम (प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक एवं सोशल मीडिया)

'Media' शब्द का अर्थ है– माध्यम जोकि 'Medium' का बहुवचन है। 'माध्यम' शब्द का सामान्य अर्थ है – वह साधन जिससे कुछ अभिव्यक्त या संप्रेषित किया जाए। साधारण शब्दों में कहा जाए तो, वे साधन, जिनके द्वारा जनसंचार का कार्य संपन्न किया जाए, जनसंचार के माध्यम कहलाते हैं।

### 2.2.1 जनसंचार माध्यम : स्वरूप एवं उपयोगिता

जनसंचार के अनेक माध्यम हैं जिन्हें अनेक रूपों में रखा जा सकता है।

(अ) **मुद्रण माध्यम**–इसमें समाचार पत्र पत्रिकाएं और पुस्तकों आदि का समावेश होता है।

(ब) **श्रव्य संचार माध्यम**–इसका संबंध रेडियो, ऑडियो केसेट, टेपरिकॉर्डर से होता है।

(स) **दृश्य श्रव्य संचार माध्यम**–इसमें टेलीविजन, वीडियो केसेट, फिल्म, सीडी सभी का समावेश है।

(द) **इंटरनेट**–यह कम्प्यूटर पर संचालित होने वाला नेटवर्क है और कम्प्यूटर तथा इंटरनेट सभी संचार माध्यमों पर कार्य कर सकता है।

#### (अ) मुद्रण माध्यम

इसमें मुद्रित समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, जर्नल, पोस्टर आदि अनेक प्रकार के मुद्रित माध्यम आते हैं। समाचार पत्रों को प्रकाशित करने की जब से परंपरा पड़ी, पत्रकारिता

टिप्पणी

के उद्देश्य स्वतः ही प्रकट हुए। सबसे अधिक यदि कोई बात भयभीत करती है तो वह लोकनिंदा करती है। लोकनिंदा या यश से जनमत का निर्माण होता है इसी कारण सरकारें भी यही चाहती हैं कि उन्हें लोकप्रियता प्राप्त हो। विशेष रूप से आजकल जबकि सरकारें लोकमत का प्रतिनिधित्व पाकर ही गठित होती हैं। अखबारों ने भी लोकमत निर्माण की अपनी शक्ति की हर तरह से परीक्षा करने के प्रयोग प्रारंभ किए हैं। इसके अतिरिक्त प्रशासन यह भी नहीं चाह सकता कि प्रेस मनमाने ढंग से स्वच्छंद होकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर कुछ भी छापती रहे। इस कारण राष्ट्र में उसके लिए भी समाचार तंत्र को अनुशासित रखना आवश्यक रहा है।

आज अनेक समाचार पत्र, व्यावसायिक और साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की सारी चुनौतियों के बाद भी प्रिंट मीडिया के प्रभाव में कोई कमी नहीं आई है।

मुद्रण के निम्नलिखित प्रकार हैं–

1. **लेटर प्रेस प्रिंटिंग**– लेटर प्रेस प्रिंटर तथा अक्षर मुद्रण को रिलीफ प्रिटिंग, रेज्ड़ सरफेस प्रिंटिंग या टाइपो–ग्राफिक प्रिंटिंग भी कहते हैं। इसमें मुद्रण तल, उप मुद्रण तल से ऊपर उठा हुआ होता है। स्याही लगाने के उपरांत उस पर कागज रखकर मशीन द्वारा दबाव दिया जाता है इससे मुद्रण तल का प्रतिरूप कागज पर उठ जाता है।
2. **लिथोग्राफी तथा प्लेनोग्राफिक प्रिंटिंग**– जब मुद्रण तल और अमुद्रण तल दोनों एक समान अर्थात समतल रहते हैं तो इसे प्लेनोग्राफिक प्रिंटिंग कहा जाता है। इस विधि में मुद्रण एवं अमुद्रण दोनों तल रासायनिक क्रिया द्वारा अलग किए जाते हैं। ग्रीज तथा पानी एक–दूसरे से अलग रहते हैं। मुद्रण तल चिकनी स्याही का बना होता है तथा अमुद्रण तल पर चिकनाई नहीं होती। मुद्रण स्याही को अपेक्षित भाग की ओर खींचने तथा मुद्रण स्याही को शेष भागों से दूर करने का कार्य रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा होता है। स्टोन के स्थान पर जस्ते अथवा एल्यूमीनियम की प्लेट का भी प्रयोग किया जाता है। मुद्रण तल पर इमेज उल्टी रहती है तो कागज पर उतरने के पश्चात सीधी हो जाती है। इसमें कई रंगों की छपाई एक साथ हो जाती है।
3. **इंटेग्लियो प्रिंटिंग**– जब मुद्रण तल, मुद्रण तल से नीचे खुदा हुआ होता है और ऐसे खुदे हुए तल या निम्न तल से मुद्रण कार्य संपन्न होता है तब इसे इंटेग्लियो प्रिंटिंग कहते हैं। इसमें प्लेट पर खोदकर कार्य किया जाता है। समूचे प्लेट पर स्याही निचली स्थिति में मुद्रण तल में भर दी जाती है। इसके उपरांत समूचे प्लेट से स्याही पोंछी जाती है। गैर प्लेट पर कागज रखकर दबाव दिया जाता है जिससे खुदे हुए तल में भरी स्याही कागज पर उठ जाती है। इसे कापर प्लेट प्रिंटिंग, स्टील प्लेट प्रिंटिंग, रिसेस प्रिंटिंग आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है।
4. **स्टेंसिल प्रिंटिंग**– स्टेंसिल को जाली फटा तल भी कह सकते हैं। इस मुद्रण प्रकार में मुद्रण तेज काटा जाता है। इसमें कागज की शीट लेकर उसमें छपने वाला क्षेत्र काटा जाता है। इसे स्टेंसिल कहते हैं। इस फटे भाग पर स्याही लगाई जाती है जो स्लिक स्क्रीन में से पार होकर कागज या अन्य पदार्थ पर छप जाती है।

टिप्पणी

5. **जिरोग्राफी या शुष्क मुद्रण**– इस मुद्रण विधि में किसी भी अधातु प्लेट पर मुद्रण किए जाने वाला चित्र या अक्षर धनात्मक चार्ज्ड किया जाता है। उस पर ऋणात्मक चार्ज्ड पाउडर छिड़का जाता है। यह पाउडर वस्तु से चिपक जाता है फिर इसे पोंछ दिया जाता है और वस्तु का प्रतिरूप कागज पर छप जाता है।
6. **फोटोग्राफी प्रिंटिंग**– इसमें निगेटिव फिल्म मुद्रण क्षेत्र होता है। इसमें कागज पर प्रकाश किरणों को छोड़कर मुद्रण कार्य संपन्न किया जाता है।
7. **ग्रेवियोर मुद्रण**– यह लेटर प्रेस पद्धति के ठीक विपरीत है। जहां लेटर प्रेस में उभरे हुऐ अक्षर होते हैं, वहीं ग्रेवियोर में नीचे की सतह की तरफ दबे हुए होते हैं। इन नीचे दबे हुए भागों में ज्यादा स्याही भरी जाती है। सन् 1907 से पहले तक यह विधि गोपनीय थी फिर सन् 1910 में एक बेब रोटरी लेटर प्रेस मशीन में ग्रेवियार सिलिंडर की सहायता से द साउथ एंड स्टेंडर्ड नामक अखबार में कुछ चित्र छपे। इसमें एक सिलिंडर होता है जिस पर सामान्य सतह से नीचे की तरफ मुद्रण सतह होती है और जब यह स्याही जो काफी पतली होती है इस पात्र में घूमती है तो यह स्याही दबे हुए भागों में प्रवेश करती है। फिर इस स्याही को ब्लेड की सहायता से साफ कर दिया जाता है और यह फिर पात्र से बाहर निकाल दी जाती है। इसके बाद इसमें गर्म हवा को प्रवाहित किया जाता है ताकि स्याही सूख सके। यह मशीनें आजकल प्लास्टिक सतह पर मुद्रण के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं।

### (ब) श्रव्य संचार माध्यम

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका श्रव्य संचार माध्यम की है। मुद्रित माध्यमों के बाद आधुनिक संचार माध्यमों में श्रव्य माध्यम के रूप में रेडियो का बहुत महत्व है। रेडियो पर बहुत सारे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। रेडियो का माध्यम ध्वनि तरंगों से जुड़ा है जिसमें समय और दूरी की कोई सीमा नहीं होती। यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुंच जाता है। रेडियो को बिना कागज का ऐसा समाचार पत्र कहा गया है जिसमें दूरी का आभास नहीं होता।

रेडियो माध्यम का समाचार और साहित्य के कार्यक्रमों के प्रसारण में अनेक प्रकार से प्रयोग किया जाता है। इसमें वार्ता, साक्षात्कार, समाचार परिचर्चा, रूपक, नाटक, कवि सम्मेलन, रिपोर्ट, मुशायरा इन सभी का प्रसारण होता है।

आज के समय में रेडियो लोकरुचि के समाचारों का प्रसारण करके बहुजन–हिताय बहुजन–सुखाय के उद्देश्य से संपूर्ण देश के लोगों के मनोरंजन के अतिरिक्त उन्हें शिक्षित करने तथा सूचनाएं प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

रेडियो एक सुलभ माध्यम है जिससे श्रोताओं तक आसानी से पहुंचा जा सकता है। रेडियो पर आम बोलचाल की सरल, सुबोध, सुगम एवं आकर्षक शैली में विभिन्न कार्यक्रमों को प्रसारित किया जाता है। प्रसारण की तकनीक से अच्छी तरह परिचित व्यक्ति इस संचार माध्यम से लाभान्वित हो सकता है।

### आकाशवाणी

श्रव्य माध्यम के रूप में रेडियो प्रसारण में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाषा होती है। यह भाषा मौखिक है, क्योंकि रेडियो कोई पर्दा नहीं है और यह भाषा केवल श्रव्य होती है।

टिप्पणी

प्रयोजन मूलक हिंदी में भाषा का प्रयोग अनेक प्रकार से हो सकता है। भाषा तो एक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है जिसके दो आधार होते हैं– भौतिक और मानसिक। रेडियो में भी भाषा की मौखिक मूल प्रकृति का ही प्रयोग होता है। इसमें ध्वनि के अनुरूप मनोभावों की व्यंजना की जाती है। मौखिक भाषा की प्रकृति को श्रव्य के माध्यम के अंतर्गत आकाशवाणी के विविध कार्यक्रमों के अनुसार इस प्रकार रखा जा सकता है–

1. **ग्रामीण कार्यक्रम**– रेडियो का प्रचलन दूर–दराज के गांवों में बहुत अधिक है। इसलिए ग्रामीण लोगों के विकास हेतु तथा देश–भर में हो रहे विभिन्न विकास कार्यों से उनकी पहचान कराने हेतु आकाशवाणी से ग्रामीण कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। इसमें कृषि–जगत के तकनीकी विकास, कृषक–प्रशिक्षण, साक्षरता–अभियान आदि वैविध्यपूर्ण विषयों पर सहज–सरल रूप में कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं।

2. **विविध भारती एवं विज्ञापन सेवा**– विविध भारती पर कई मनोरंजक कार्यक्रमों का प्रसारण होता है, जिनमें गीत–संगीत, भक्ति संगीत, सुगम संगीत, फिल्मी संगीत, लघुवार्ता आदि प्रमुख हैं। आकाशवाणी पर विज्ञापन सेवा भी आरंभ की गई है।

3. **विदेश सेवा**– स्वाधीनता के बाद आकाशवाणी की विदेश सेवा का मुख्य लक्ष्य भारत के नए स्वरूप के बारे में तथा भारतीय जीवन के विविध पक्षों तथा चिंतन–शैली को दूसरे राष्ट्रों तक पहुंचाना हो गया। हालांकि विदेशी सेवा कार्यक्रम 20वीं शताब्दी के चौथे दशक के अंत में शुरू हो गए थे तथापि इनमें समुचित विकास स्वतंत्रता के बाद आया। वर्तमान में आकाशवाणी ने विश्व की 25 से अधिक भाषाओं के नियमित प्रसारण द्वारा भारत की छवि को चतुर्दिक फैलाया है। आकाशवाणी के इस प्रसारण से विश्व समुदाय भारतीय जीवन–शैली और संस्कृति तथा आर्थिक–सामाजिक क्षेत्र में राष्ट्र द्वारा की गई प्रगति से भी परिचित होता है और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के मामलों पर भारतीय रुख को विश्व जनमत के सामने रखा जाता है। इस प्रसारण में मुख्यतः समाचार, वार्ताएं, भारतीय प्रेस की संपादकीय टिप्पणियां, सामयिक घटनाओं आदि पर टिप्पणियां, संगीत आदि के कार्यक्रम होते हैं।

4. **शैक्षिक प्रसारण**– छात्रों के मानसिक स्तर के विस्तार तथा साधन–विहीन विद्यार्थियों के लिए आकाशवाणी नियमित शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण करती है। यह प्रसारण जहां छात्रों के मानसिक स्तर के लिए उपयोगी होते हैं वहीं साधनविहीन विद्यालयों तथा विद्यार्थियों के लिए भी काफी लाभप्रद होते हैं। प्राथमिक कक्षाओं के लिए इस प्रसारण में मनोरंजन तत्व को प्राथमिकता दी जाती है।

5. **समाचार–सेवा कार्यक्रम**– इस कार्यक्रम का कार्य समाचारों का संकलन और उनका प्रसारण है। हर घंटे समाचार बुलेटिन के प्रसारण द्वारा आकाशवाणी जन–मानस को संतुष्ट करती है। समाचार सेवा के अंतर्गत 'समाचार–बुलेटिन', 'समाचार–दर्शन', 'संसद–समीक्षा', 'विधान–मंडल' आदि के प्रसारण मुख्य रूप से प्रसारित किए जाते हैं।

6. **सामयिक समीक्षाएं**– आकाशवाणी के माध्यम से सम सामयिक विषयों से संबद्ध वार्ताएं, परिचर्चाएं, साक्षात्कार आदि के कार्यक्रम विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों एवं बुद्धिजीवियों की सेवा लेकर प्रसारित किए जाते हैं।
7. **युवाओं के कार्यक्रम**– युवा वर्ग को ध्यान में रखते हुए आकाशवाणी ने 31 जुलाई, 1969 को 'युगवाणी' कार्यक्रम का प्रसारण आरंभ किया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य युवा श्रोताओं की प्रतिभा को पहचान कर उन्हें आत्माभिव्यक्ति के अवसर देना है।
8. **विशिष्ट कार्यक्रम**– विशिष्ट वर्ग के श्रोताओं हेतु आकाशवाणी विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण करती है। इससे 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए लघु कहानी, नाटक, कविता आदि मनोरंजक कार्यक्रम होते हैं, तो 15 से 30 वर्ष के युवकों के लिए भी 'युगवाणी' जैसे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। जहां ग्रामीण और शहरी कामकाजी महिलाओं हेतु मनोरंजक वार्ताएं एवं गीत–संगीत के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं, वहीं श्वेत और हरित क्रान्ति हेतु खाद, बीज, भूमिशोधन, वृक्षारोपण, पशुपालन, सहकारिता आदि विषयों के संदर्भ में कृषि एवं गृह इकाइयां सामयिक सूचनाएं और परामर्श देती हैं।

वर्तमान समय में आकाशवाणी ग्रामीण कार्यक्रम, विविध भारती, व्यापारिक सेवा, युवा जगत, संगीत, वार्ता, नाटक, फीचर, खेल, लोकरुचि के समाचारों का प्रसारण करके 'बहुजन–हिताय बहुजन–सुखाय' के उद्देश्य से संपूर्ण देश के मनोरंजन के अतिरिक्त उन्हें शिक्षित करने तथा सूचनाएं प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

## मौखिक भाषा एवं रेडियो

भाषा मूलरूप में मौखिक ही होती है, उसके उपरांत ही उसका लिखित रूप सामने आता है इसीलिए उसका उच्चरित रूप महत्वपूर्ण होता है। संचार माध्यमों में रेडियो ही एक ऐसा माध्यम है जहां भाषा का मौखिक रूप ध्वनि प्रतिकों के माध्यम से अंकित होता है। ये ध्वनि प्रतीक उसका भौतिक आधार है। ध्वनियों में अर्थ का समावेश होता है। भाषा मनोभावों की अभिव्यंजक होती है। रेडियो में इसके मानक स्वरूप का प्रयोग किया जाता है। इस मौखिक भाषा में वह शक्ति भी होती है जिससे वह सारे हावभावों को, सुरताल को आकाशवाणी में बिना दृश्य के ही व्यक्त करने में समर्थ होती है। रेडियो समय के साथ भाषा का तालमेल बिठाता है, यह उसकी मूल प्रकृति है। इसमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए–

1. प्रसारण के लिए प्रायः सामान्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।
2. अस्पष्ट और दुरुह शब्दावली का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
3. वाक्य छोटे–छोटे सार्थक, रोचक और सरल होने चाहिए।
4. श्रोताओं हेतु प्रसारणार्थ कार्यक्रमों में यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए लेखन होना चाहिए। पांडित्य प्रदर्शन करने में श्रोताओं का और अपना समय बरबाद नहीं करना चाहिए।
5. अनावश्यक शब्दाडंबर से यथासंभव बचने का प्रयास करते हुए विविधता का खुलकर प्रयोग करना चाहिए।

6. इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक वाक्य अपने आप में संपूर्ण और शुद्ध हो। अस्पष्ट और अपूर्ण तथा अशुद्ध वाक्य प्रयोग श्रवणीयता में बाधक होता है।
7. समाचार रचना में सदैव उपर्युक्त छः प्रकारों का ध्यान रखना चाहिए और समाचार का सार प्रथम वाक्य में देकर बाद में उसको विस्तार देना चाहिए।
8. विचाराभिव्यक्ति श्रोताओं के स्तर तथा विषय की गहनता को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए।



## (स) दृश्य–श्रव्य संचार माध्यम

एन.सी. पंत लिखते हैं–''वर्तमान युग में संचार माध्यम सबसे बड़ा माध्यम है जिसके द्वारा आज मानवीय संवेदनाएं एकदम एक कोने से दूसरे कोने में प्रकट हो जाती हैं और भावनाओं के इस समुद्र को उजागर करने में आज का सबसे बड़ा और सशक्त माध्यम दूरदर्शन है।'' पहले प्रेस, फिर रेडियो और फिर दूरदर्शन हर माध्यम की अपनी–अपनी सीमाएं होती हैं।

टेलीविजन के आविष्कार से ऐसा लगा मानो दूरदर्शन रेडियो का प्रतिद्वंद्वी हो किंतु वास्तव में यह सही नहीं है क्योंकि दूरदर्शन रेडियो का प्रतिद्वंद्वी न होकर उसका मित्र और पूरक बनकर आया था। समाचार सुनने के साथ उस घटना, वस्तु, परिस्थिति की तस्वीर भी दिखाई देने लगी थी इससे श्रोता और दर्शकों को यह सुविधा प्राप्त हो गई कि वे किसी घटना–विशेष की जानकारी और पृष्ठभूमि को समझने के लिए घटना को देख भी सकते हैं। दूरदर्शन के बारे में डॉ. अरुण जैन कहते हैं, "एक बेहद लोकप्रिय कहावत है– 'आंखों देखी का विश्वास होता है, कानों सुनी का नहीं' इसीलिए दूरदर्शन रेडियो प्रसारण से भी बाजी मार ले गया। अखबारी समाचारों की अपनी सीमाएं हैं और हिंदुस्तान जैसे देश में जहां केवल पचास प्रतिशत (अब पैंसठ प्रतिशत) लोग शिक्षित हैं अखबारों का मूल्य खत्म हो गया हो ऐसा नहीं है। दुनिया के तमाम प्रचार के साधनों में टेलीविजन एक ऐसा साधन है जो ज्यादा निष्पक्ष होने का दावा कर सकता है।''

## (द) इंटरनेट

इंटरनेट दुनिया भर में फैले करोड़ों कम्प्यूटरों का एक महाजाल है। इंटरनेट वास्तव में कोई संस्था अथवा यंत्र न होकर एक कार्य प्रणाली है। यह कम्प्यूटरों का विश्वव्यापी नेटवर्क है। यह जनसंचार का सबसे सशक्त माध्यम है। इसे साइबर माध्यम भी कहा जा सकता है। अनेक वेबसाइट बन रही हैं और इस समाचार माध्यम से एक क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहा है। इसमें मुद्रित, श्रव्य और दृश्य–श्रव्य सभी माध्यमों का एक ही साथ प्रयोग होने लगा है।

इंटरनेट के बारे में श्री एन.सी. पंत लिखते हैं, "इंटरनेट कार्य प्रणाली का संक्षिप्त नाम है। यहां भिन्न–भिन्न प्रकार की अनेक नेटवर्क प्रणालियां; जो लगभग 40 हजार से अधिक हैं; उपलब्ध हैं, जिसका लाभ इंटरनेट के माध्यम से आसानी से उठाया जा सकता है। यह एक ऐसी प्रौद्योगिकी है जिसमें करोड़ों कम्प्यूटर एक नेटवर्क से जुड़े होते हैं तथा यह डिजिटल स्रोत और रिसीवर को जोड़ने की प्रक्रिया है।" आज दुनिया भर के शैक्षणिक संस्थान भी इंटरनेट से जुड़ते जा रहे हैं। आज हम कहीं से भी विश्व

के किसी भी शैक्षणिक संस्थान के पुस्तकालयों का सदुपयोग कर सकते हैं। महत्वपूर्ण अंशों का प्रिंट आउट ले सकते हैं।

टिप्पणी

इंटरनेट पर हजारों पन्ने खुले हैं। इन पन्नों पर उद्योग, व्यापार से लेकर पर्यावरण तक हर संभव विषय पर सूचना का आदान–प्रदान लगातार हो रहा है साथ ही इन पन्नों और विषयों में लगातार इजाफा होता जा रहा है। आधुनिक युग में मनुष्य के जीवन में इंटरनेट का महत्व तेजी से प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

## जन संचार माध्यमों की उपयोगिता

जन संचार माध्यमों की उपयोगिता निम्नानुसार है–

1. **सूचना**– जन संचार माध्यमों का कार्य विश्व की घटनाओं, समाज की गतिविधियों और व्यक्ति की कृतियों को लोगों तक पहुंचाना है। जन सामान्य की समस्याओं को शासन तक तथा शासन की उपलब्धियों को जनता तक पहुंचाकर पारस्परिक सद्भावना जागृत करने का कार्य भी जन संचार माध्यम का ही है।
2. **अंतर्संबंधों की व्याख्या**– सत्य और सामयिक टिप्पणियों द्वारा जनसंचार के माध्यम समाज के विभिन्न वर्गों में सामंजस्य पैदा करते हैं। जनता और सरकार राष्ट्र के हित के लिए उचित व उत्तम निर्णय लें, जन संचार माध्यम ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं।
3. **मनोरंजन**– सामाजिक तनाव, व्यक्तिगत द्वेष को समाप्त करके 'सबजन हिताय' स्वस्थ मनोरंजन का प्रस्तुतीकरण जन संचार माध्यमों के द्वारा ही संभव है।
4. **निरंतरता**– प्राचीन तथा नवीन में सामंजस्य उत्पन्न करके राष्ट्रीय हितों–एकता, सांप्रदायिक सौहार्द जैसे तत्वों को प्रस्तुत करके जन संचार माध्यम अपनी उपयोगिता को सिद्ध करते हैं।
5. **गतिशीलता**– राजनीतिक परिवर्तन, आर्थिक विकास एवं सांस्कृतिक पुनर्रचना हेतु जन संचार माध्यम प्रभावकारी अभियान चलाते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जन संचार माध्यमों में कैद होकर मनुष्य अपना अधिकांश समय व्यतीत करता है। सूचना, परामर्श, आज्ञा, सुझाव तथा उत्थान के लिए प्रेरणा देना ही जन संचार माध्यमों का लक्ष्य है।

आज यह बताने की जरूरत नहीं है कि मीडिया की किसी भी देश की प्रगति में क्या भूमिका रहती है और इसी भूमिका की एक जड़ हमारे भारत देश में विद्यमान है। परंतु विकास के साथ–साथ हमारे भारत देश की कुछ महत्वपूर्ण पृष्ठभूमियों को भी ध्यान में रखा जाता है। इसी कारण आज मीडिया से जहां एक ओर जन समुदायों को सूचनाएं आसानी से उपलब्ध करायी जाती हैं वहीं मीडिया के कुछ सांस्कृतिक विरोधी पहलुओं पर आए दिन जन–आक्रोश देखने को मिल जाता है।

यह बात अलग है कि आज औद्योगिक विकास एवं राष्ट्र के अंतर्राष्ट्रीय सामुदायिक विकास के लिए आई.टी. डेवलपमेंट की महत्वपूर्ण भूमिका है।

मीडिया के माध्यम से प्राप्त होने वाली पलपल की सूचनाओं से हमें अपने व्यावसायिक एवं निजी समझौतों एवं निर्णयों में आकस्मिक बदलाव के लिए भी पर्याप्त अवसर मिलते हैं। देश–विदेश में होने वाली प्रत्येक घटनाओं को हम प्रतिपल प्राप्त

टिप्पणी

करते रहते हैं। परंतु सब आज व्यवसाय के पहलुओं के मद्देनजर जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और यह व्यवसाय का पहलू भी बहुत हद तक सही है क्योंकि अगर व्यवसाय ही नहीं होगा तो हम तक खबरे पहुंचाने के लिए कोई भी न्यूज चैनल शायद हमारे बीच ही न हो फिर संभवतः सरकार बजट का एक बड़ा भाग खर्च करके दूरदर्शन के माध्यम से हम तक खबरें पहुंचाए।

अब बात आती है व्यवसाय के साथ–साथ प्रत्येक मीडिया प्रबंधक की जो कि भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर अपने कुछ व्यक्तिगत आदर्शों को अपनाकर अथवा कुछ नियम बनाकर भारतीय संस्कृति पर प्रहार करने वाले कुछ विज्ञापनों एवं सूचनाओं आदि पर रोक लगाने अथवा उन्हें बंद करने के लिए अग्रसर हो।

आज प्रत्येक चैनल विज्ञापनों के आधार पर बाजार में नं. 1 और नं. 2 की श्रेणी पर विद्यमान है। क्योंकि जितना ज्यादा पैसा उन्हें मिलता है वे उतना ही माल परोसते हैं और लोगों को आशानुरूप अपनी ओर आकर्षित करते हैं। आज सकारात्मक समाचार को कम अहमियत देकर उसकी अपेक्षा नकारात्मक समाचार को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि लोगों का रुझान हमेशा से ही नकारात्मक शक्ति से ज्यादा भरा रहता है। मनुष्य जन्म के साथ अपने 84 लाख योनियों के स्वभाव के कुछ अंशों को लेकर पृथ्वी पर जन्म लेता है जिसे संस्कारों को परिवेश के माध्यम से ठगने की बातों को अकसर कई महापुरुषों द्वारा कहा जाता है कि सौ प्रतिशत सत्य है। उसी क्रम में अगर उसका विकास नकारात्मक परिवेश के बीच होगा तो परिस्थितिवश उसका चिंतन नकारात्मक और हिंसा वाला होगा। अतः हमें चाहिए कि उसको सकारात्मक परिवेश मिले जो कि आज के मीडिया परिवेश को देखते असंभव नहीं तो कम से कम बहुत मुश्किल तो जरूर मालूम होता है।

अगर हम भारत को वर्तमान मीडिया स्वरूप का केंद्र बिंदु मानकर अवलोकन करें तो मीडिया का वर्तमान स्वरूप हमारे भारत की छवि एवं उसके आशानुरूप आध्यात्मिक विकास के लिए घातक सिद्ध होता जा रहा है। किसी भी राष्ट्र की लंबी उम्र एवं विकास यात्रा का आधार उसका आध्यात्मिक विकास होता है। यही कारण है कि भारत एक मात्र आध्यात्मिक देश है जिसका इतिहास कई लाखों वर्ष पुराना है। बाकी सभी देश क्षणिक समय से खोजे गए हैं एवं शायद कुछ समय बाद आध्यात्मिक क्षितिज से लुप्त हो जाएंगे।

भारत के भविष्य की दिशा धारा में हमारा वर्तमान मीडिया के द्वारा किए गए कार्यों का अवलोकन सकारात्मक प्रतीत होने की स्थिति में नहीं है। उसका कारण, मर्डर, बलात्कार, लूट, आदि की घटनाओं को मुख्य बिंदु बनाकर लोगों के सामने प्रस्तुत किया जाता है जबकि आवश्यकता इस बात की है कि अच्छी और धर्मक्षेत्र संबंधी एवं आध्यात्मिक खबरों को मुख्य बिंदु बनाकर बाकी खबरों को द्वितीय प्राथमिकता देकर पहुंचाएं क्योंकि दोनों ही खबरें महत्वपूर्ण की श्रेणी में आती हैं लेकिन विभाजन का आधार सकारात्मक ऊर्जा देने वाला होना चाहिए

उदाहरण के तौर पर प्रातः काल कोई अखबार में हमेशा नकारात्मक खबरें पढ़ता है तो उसका पूरा दिन लगभग समाज की वही घिसी–पिटी घटनाओं एवं कलह क्लेश के बीच बीतता है धीरे–धीरे उसका दिमाग भी नकारात्मक की श्रेणी में आ जाता है और सकारात्मक खबरें पढ़कर पूरा दिन सकारात्मकता के साथ बीतता है।

वर्तमान में मीडिया का उद्देश्य केवल पैसा कमाना है लेकिन इसके विपरीत कुछ संशोधनों के साथ–साथ भारतीय पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर जनसमुदायों के बीच

काम करें। जैसे अश्लील विज्ञापनों को न दिखाएं। अगर अति आवश्यक विज्ञापन है तो उसका एक समय सुनिश्चित हो ताकि बाकी समय अपने परिवार के साथ टी.वी. देखने में किसी को भी असुविधा (आपत्ति) महसूस न हो व नकारात्मक खबरों को प्राथमिकता न देकर सकारात्मक खबरों को प्रसारित करें।

**टिप्पणी**

अब बात आती है कि सकारात्मक खबरों में क्या करें। संसार में होने वाली प्रत्येक अच्छी घटना को मुख्य खबर बनाएं। समाज में जहां जागरूकता की आवश्यकता है वहां जागरूकता फैलाएं। चाहे जनता के लिए अपील सरकार से हो या सरकार के हित के लिए अपील जनता से हो। उदाहरण के लिए कुछ आंकड़े और खबरों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. 26 करोड़ भारतीय अभी भी प्रतिदिन 50 रुपये से भी कम में गुजारा करते हैं। इसके संदर्भ में जनता के माध्यम से अपील सरकार से की जाए।
2. दूसरा भारत में कुल श्रमिकों में 28.3 प्रतिशत महिलाएं हैं और इनमें से 36.1 प्रतिशत महिलाएं 15 से 64 वर्ष के बीच की हैं। इसमें जनता एवं सरकार दोनों से अपील की जाए कि इस दिशा में सुधार के प्रयासों को बल दिया जाए।
3. 1991 से 2001 के बीच जनसंख्या में 181 करोड़ लोगों की वृद्धि भारत में हुई। इसके मद्देनजर कोई क्रांतिकारी कदम उठाया जाए।
4. 57 लाख लोग भारत में एच.आई.वी. पॉजीटिव से ग्रसित हैं। उनके लिए नियमित दिशा–निर्देश एवं क्रिया–कलापों को अंजाम दिया जाए।

आज भारत में औसतन प्रत्येक व्यक्ति 2 घंटे रोज टी.वी. देखता है व 9.7 करोड़ युवा लोग क्षेत्रीय अखबार पढते हैं एवं 1.2 करोड़ लोग अंग्रेजी अखबार पढ़ते हैं। भारतीय सिनेमा के हर साल लगभग 4 अरब टिकट बिकते हैं। भारत में 12500 सिनेमा घर हैं एवं 250 मल्टीप्लैक्स हैं, 18.57 करोड़ लोग सप्ताह में कम से कम एक बार रेडियो सुनते हैं, 10.8 करोड़ घरों में टी.वी. है, 2.30 करोड़ लोग भारत में हर रोज सिनेमा देखते हैं, सन् 2005 तक 300 टेलीविजन चैनल भारत में थे।

उपरोक्त आंकड़े यह साबित करते हैं कि भारत में मीडिया अच्छी पत्रकारिता एवं मीडिया की नई–नई तकनीकें अपनाकर पाठकों की संख्या बढ़ाने में सफल रहा है। इससे उसे अपना यौवन फिर से प्राप्त करने में सहायता मिली है। आज रेडियो पर एफ. एम. का माध्यम भी लोगों तक महत्वपूर्ण खबरें पहुंचाने का साधन है व लोग इसकी नकल भी करते नजर आते हैं। देश में आज लगभग कितने ही एफ.एम. स्टेशन हैं।

मीडिया आज प्रोद्योगिकी की मदद से कुलांचे भरता हुआ आगे बढ़ रहा है। आप लोगों के रुझान का अनुमान इस बात से लगा सकते हैं कि स्टार प्लस पर प्रसारित होने वाला धारावाहिक 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी' 190 बार टी.आर.पी. में अव्वल रहा और तो और 26 जुलाई 2006 तक के 258 हफ्तों में तो इस धारावाहिक की एक अदाकारा  तकनीकी तौर पर 104 साल की हो चुकी थीं।

लोगों के इसी रुझान को सही दिशा में प्रेरित करने के लिए कुछ ऐसे परिवर्तन करने की जरूरत है जो हमारी भारतीय संस्कृति एवं अखंडता को कायम रख सकें।

## संचार के मुख्य कार्य

टिप्पणी

संचार एक ऐसी प्रक्रिया है, जो प्रेषक, प्राप्तकर्ता और संदेशक के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। यह एक–दूसरे से संबंध जोड़ने का एक बहुत बड़ा और सुदृढ़ माध्यम है, जो एक को दूसरे से, दूसरे को तीसरे से, इस तरह यह समूहों के समूह को एक–दूसरे का जानकार बना देता है अर्थात यह सामाजिक प्रक्रिया है। इसकी मुख्य क्रियाएं इस प्रकार हैं–

1. **सूचना तथा जानकारी**– खबरों का प्रसारण चित्रों, संदेशों, तथ्यों, विचारों और समीक्षा की ओर व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करता है। पर्यावरण, देश, परिस्थिति की समझ, प्रतिक्रिया आदि के लिए संचार कार्य महत्वपूर्ण है।
2. **प्रेरक**– संचार माध्यमों के द्वारा व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है। उसके मन की भावनाएं प्रबल होती हैं। इससे वह व्यक्तिगत या सामूहिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रयास करता है।
3. **वाद–विवाद परिचर्चा**– इसके माध्यम से हम भिन्न–भिन्न विषयों पर अपने विचारों का आदान–प्रदान करके अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं।
4. **समाजीकरण**– संचार के माध्यम से ही जन–सामान्य तक आवश्यक जानकारी पहुंच पाती है। संचार के माध्यम से व्यक्ति अपने भावों, अनुभावों से दूसरों को परिचित करवा सकता है।
5. **शिक्षा**– संचार माध्यम से मिलने वाली शिक्षा आदि से जीवन कलामय हो जाता है। व्यक्ति का चरित्र–निर्माण होता है। वह सद्भावी तथा सद्विचारी बनता है। उसका ध्यान बौद्धिक कार्यक्रमों की तरफ जाता है।
6. **मनोरंजन**– संचार का एक महत्वपूर्ण कार्य मनोरंजन है। महत्वपूर्ण जानकारियां, संप्रेषण आदि के अतिरिक्त यह शारीरिक थकान दूर करने का भी कार्य करता है। नाटक, नृत्य, कला, संगीत, कॉमेडी आदि का संकेतों, चित्रों, ध्वनियों द्वारा विकास करके व्यक्ति समाज का मनोरंजन करता है।
7. **बिक्री विज्ञापन**– संचार एक प्रकार का बिक्री विज्ञापन भी है। जब भी कोई नई वस्तु बाजार में आती है तो वह विज्ञापन के माध्यम से ही जनता तक पहुंचती है। यह जनता में विश्वास पैदा करने और बिक्री बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

## संचार क्रिया के प्रमुख तत्त्व

1. **संप्रेषण या स्रोत**– संचार प्रक्रिया को क्रियान्वित करने वाला संचारक कहलाता है और स्रोत से अभिप्राय– उत्पत्ति स्थान से है। स्रोत सूचना को समाज से ग्रहण कर पुनः उसी में प्रेषित कर देता है। संचार स्रोत या संप्रेषक व्यक्ति को संचारित विषय की पूरी जानकारी होनी चाहिए। उसमें भाषायी कौशल के साथ–साथ मनोवृत्ति और ज्ञान का स्तर ऊंचा स्तर भी होना चाहिए तथा उसे सामाजिक सांस्कृतिक आचरण का भी ज्ञान होना चाहिए।

टिप्पणी

2. **चयनित सूचना**– संप्रेषक सभी घटनाओं का संकलन भले ही कर ले, किंतु उसका संप्रेषण सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप ही कर सकता है। इसीलिए उसे प्राप्त सूचनाओं में से श्रोता अथवा समाज के लिए महत्वपूर्ण सूचनाएं ही प्रेषण के लिए चुननी पड़ती हैं और इसे ही चयनित सूचना कहा जाता है।
3. **संदेश**– संप्रेषक जब बोलकर, लिखकर या चित्र बनाकर या संकेत के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करता है या सूचना देता है, वह संदेश कहलाता है जिसके आदान–प्रदान से ही संचार–प्रक्रिया चलती है। संदेश उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए तथा प्रापक की जरूरतों के अनुकूल एवं ग्रहण क्षमता के अनुरूप होना चाहिए। इसका प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकता है।
4. **संचार साधन**– संचार–प्रक्रिया में संचार–साधन या मार्ग वह संघटक है, जिसके द्वारा स्रोत श्रोता तक संदेश पहुंचाता है। वस्तुतः संचार मार्ग वह साधन है जिसके द्वारा संप्रेषक द्वारा प्रेषित संदेश को प्रापक ग्रहण करता है, जैसे–टेलीफोन का तार।
5. **संचार–माध्यम**– स्रोत तथा श्रोता अथवा संप्रेषक तथा संग्राहक के बीच सेतु ही संचार माध्यम है। यह अंग्रेजी शब्द का हिंदी पर्याय है, जिसका अर्थ है– दो बिन्दुओं को जोड़ने वाला। संदेश को प्रभावशाली ढंग से प्रापक तक पहुंचाने के लिए संचारक जिस माध्यम का सहारा लेता है वही संचार माध्यम है। ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर संचार माध्यम को अग्रलिखित तीन वर्गों में बांट सकते हैं।
   (क) श्रव्य संचार माध्यम– आकाशवाणी, टेप–रिकॉर्डर, लाउड स्पीकर।
   (ख) दृश्य संचार माध्यम– पत्र, पत्रिकाएं, पोस्टर, चार्ट आदि।
   (ग) दृश्य–श्रव्य संचार माध्यम– फिल्म, टी.वी., नाटक, नाच–गाना आदि।
6. **श्रोता या प्रापक**– संचार प्रक्रिया में श्रोता उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि संप्रेषक। प्रापक या श्रोता में भी वे सभी गुण होने चाहिए जो संप्रेषक के लिए जरूरी हैं– जैसे किसी प्रकार की कार्यवाही का ज्ञान जितना संप्रेषक के लिए जरूरी है उतना श्रोता के लिए भी। वर्तमान समय में जनसंचार माध्यमों के प्रापक वर्ग में भी भौगोलिक विस्तार आया है।
7. **संकेतीकरण**– संप्रेषक जब भावों या विचारों को अपने रचनात्मक कौशल से संकेत के रूप में परिवर्तित कर रचनात्मक विधि से प्रापक तक पहुंचाता है तो इसे संकेतीकरण कहते हैं।
8. **गंतव्य रचना**– जिन व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहों के लिए संदेश का महत्व होता है, उन व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूह तक संदेश का गन्तव्य स्थल या मंजिल होता है।
9. **संकेत वाचन**– प्रापक सूचना ग्रहण करने से पूर्व अपने तरीके से सूचना को समझता है तथा उसे ग्रहण करता है। इसी प्रक्रिया को संकेत वाचन अथवा डिकोडिंग कहा जाता है।
10. **प्रतिपुष्टि**– जब प्रापक संदेश प्राप्त कर उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तो उसे प्रतिपुष्टि, या फीडबैक कहते हैं। प्रतिपुष्टि अत्यंत महत्वपूर्ण संघटक है। प्रतिपुष्टि के बिना संचार प्रक्रिया पूर्ण नहीं मानी जा सकती क्योंकि संचार तो सूचनाओं का आदान–प्रदान है। संपादक के नाम पत्र, अखबार में पाठकों के पत्र, आकाशवाणी में श्रोताओं के पत्र तथा दूरदर्शन में दर्शकों के पत्र प्रतिपुष्टि के अंतर्गत आते हैं।

## 2.2.2 प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

वर्तमान समय में प्रचलित प्रिंट एवं इलेक्ट्रोनिक मीडिया संदर्भित जनसंचार माध्यम मुख्यतः तीन वर्गों में रखे गए हैं–

1. शब्द संचार माध्यम (Print Media) – इसके अंतर्गत समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, आदि आते हैं।
2. श्रव्य संचार माध्यम (Audio Media) – इस माध्यम के अंतर्गत रेडियो, ऑडियो व टेपरिकार्डर आदि आते हैं।
3. दृश्य संचार माध्यम (Video Media) – इसके अंतर्गत टेलीविजन, वीडियो केसेट्स व फिल्म आदि आते हैं।

इस प्रकार, जनसंचार के उपर्युक्त अर्थ को ग्रहण करते हुए कहा जा सकता है कि

"किसी भाव, विचार, संदेश या जानकारी को दूसरों तक पहुंचाने की सामूहिक प्रक्रिया को जनसंचार कहते हैं।''

### (क) प्रेस (समाचार पत्र)

'प्रेस', शब्द संचार माध्यम के अंतर्गत आता है। इसे प्रिंट मीडिया या मुद्रण माध्यम भी कहते हैं। संसार के सभी संचार माध्यमों में मुद्रण माध्यम आधुनिक माध्यमों की अपेक्षा सबसे प्राचीन है। इस माध्यम के अंतर्गत समाचार पत्र, पत्रिकाएं, जर्नल, पुस्तकें, पैम्फलेट व पोस्टर आदि आते हैं। इन सभी माध्यमों का उदय छापेखाने (प्रेस) से हुआ। ये सभी लिखित माध्यम आज भी अन्य आधुनिक जनंसचार माध्यमों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीयता रखते हैं। इनकी प्रामाणिकता में जनता इसलिए भी भरोसा करती है क्योंकि रेडियो तथा टेलीविजन जैसे संचार माध्यमों पर सरकारी नियंत्रण है। मुद्रण माध्यम उनकी अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है क्योंकि यह स्वशासित स्वरूप का है।

प्रेस का प्रमुख जनसंचार माध्यम समाचार पत्र है। विश्व के प्रायः सभी विकसित एवं विकासशील देशों में लगभग प्रत्येक पढ़ा–लिखा व्यक्ति दैनिक समाचार पत्र पढ़ता है। यहां तक कि ऐसा व्यक्ति, जिसने कायदे से कभी कोई पूरी किताब नहीं पढ़ी हो वह भी समाचार पत्र पढ़ने में पूरी रूचि लेता है।

वह लिखित सामग्री, जो निर्धारित समय पर प्रकाशित होकर सार्वजनिक रूप से जनसामान्य को दुनिया या देश की हलचलों, घटनाओं व सरकार से लेकर जनता तक की खबर पहुंचाती है, समाचार पत्र कहलाती है।

**समाचार पत्र के कार्य**–किसी प्रकार की सूचना, घटना, दुर्घटना की जानकारी, खोज, रहस्य आदि को उजागर कर उसे जनसामान्य के बीच प्रस्तुत करना समाचार पत्र का मुख्य कार्य होता है। इसके अलावा समाज की एकता, समता, आचरण, व्यवहार व सूक्ष्म दृष्टि को बनाए रखने में भी समाचार पत्र अहम भूमिका का निर्वाह करता है। वर्तमान परिवेश में समाचार पत्र के बगैर मनुष्य जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता। समाचार पत्र की अर्थ, वित्त व नौकरी–पेशों की खबरों पर करोड़ों लोगों का भविष्य व व्यवसाय टिका हुआ है। प्राचीन समय में जिन सूचनाओं व जानकारियों को हम महीनों बाद पाते थे, अब उनको कुछ ही क्षणों में समाचार पत्रों के माध्यम से प्राप्त कर लेते हैं।

टिप्पणी

**समाचार पत्र की शुरुआत**– समाचारों के प्रसार के लिए समाचार पत्रों के वितरण करने की कोई निश्चित तिथि तो इतिहास में वर्णित नहीं है, किंतु ज्यादातर विद्वान इस बात से सहमत हैं कि दुनिया में समाचार पत्रों का चलन पुनर्जागरण काल से हुआ। जैसे–जैसे शहरों का विकास हुआ और यूरोप में व्यापार का फैलाव हुआ, वैसे–वैसे वहां के व्यापारियों को यह जानने की आवश्यकता महसूस होने लगी कि दुनिया के सुदूर स्थानों पर क्या हो रहा है। प्राचीन समय में वहां के व्यापारी यात्रियों के माध्यम से अपने ग्राहकों का 'समाचार चौपन्ने' (News Pamphlets) भिजवाते थे। ये समाचार चौपन्ने अनियतकालीन थे और कभी–कभी ही ग्राहकों तक पहुंचते थे। सन् 1622 में लंदन से सर्वप्रथम समाचार पत्र का उदय हुआ। इस अवधि में वहां लगभग एक दर्जन मुद्रक थे। प्रारंभ में लंदन से विदेशी समाचारों से ही युक्त साप्ताहिक पत्रों का प्रचलन आरम्भ हुआ। सन् 1702 में लंदन का पहला दैनिक 'डेली करंट' अस्तित्व में आया। सन् 1815 में लंदन का ही 'दि टाइम्स ऑफ लंदन', जिसकी लगभग 5,000 प्रतियां प्रतिदिन छपती थीं, पूरी दुनिया में अद्वितीय था। लंदन के पश्चात अमेरिका और अन्य देशों में भी समाचार पत्र छपने लगे। जैसे–जैसे अन्य देशों से समाचार पत्र निकलने लगे, वैसे–वैसे समाचार पत्रों की कीमत भी कम होने लगी तथा उन पर सरकार का अंकुश भी कम होता गया। 19वीं शताब्दी के मध्य में 'प्रेस' से टैक्स हटा लिए गए। जनसामान्य तक भी समाचार पत्रों का प्रचार–प्रसार होने लगा।

**भारत में प्रेस और समाचार पत्र**–भारत में प्रेस अंग्रेजों के आगमन के पश्चात आया। इसकी शुरुआत सर्वप्रथम पुरानी राजधानी कलकत्ता से हुई। कलकत्ता के उपनगर श्रीरामपुर में धर्म प्रचार के उद्देश्य से मुद्रणालय खोला गया और पहला समाचार पत्र 'बंगाल गजेट' या 'कलकत्ता जर्नल एडवरटाइजर' था जोकि अंग्रेजी भाषा का था। यह 29 जनवरी, सन् 1780 को प्रकाशित हुआ। इसके संपादक थे– जेम्स आगस्टस हिकी। इसके पश्चात कलकत्ता से ही 'इंडियन वर्ल्ड' और 'बंगाल जर्नल' पत्र भी प्रकाशित हुए।

**हिंदी समाचार पत्रों का उदय** – अंग्रेजी पत्रकारिता की तरह ही हिंदी पत्रकारिता का उदय भी कलकत्ता से हुआ। 30 मई, सन् 1826 को सर्वप्रथम 'उदंत मार्तंड' नामक साप्ताहिक समाचार पत्र कलकत्ता की कोलूटीला जगह से प्रकाशित होना शुरू हुआ। इस पत्र के संपादक थे– पं युगलकिशोर शुक्ल। इसके पश्चात शुक्ल जी ने सन् 1850 में 'सामदंड मार्तंड' नामक पत्र भी निकाला। हिंदी के पत्रों से पूर्व सन् 1820 में भवानीकरण बनर्जी के द्वारा बंगला भाषा में 'संवाद कौमुदी' नाम का एक पत्र निकाला गया। इसी समयावधि में फारसी पत्र 'मीरात उल अखबार' भी निकला।

हिंदी भाषी क्षेत्र से पहला हिंदी समाचार पत्र 'बनारस अखबार' निकला। इसके संपादक थे– मराठी भाषी गोविंद रघुनाथ। यह एक दैनिक समाचार पत्र था। इसके पश्चात इंदौर से 'मालवा अखबार', आगरा से 'बुद्धिप्रकाश' बनारस से 'सुधाकर' आदि समाचार पत्रों के अलावा देश भर के विभिन्न स्थानों से सैकड़ों पत्रों की शुरुआत होने लगी।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी प्रेस की महती भूमिका रही। साहित्यिक और राजनीतिक पत्रकारिता उस समय अलग–अलग मार्गों पर चलने लगी थी। 'प्रताप', 'कर्मवीर', 'वीणा', 'चांद', 'माधुरी', 'मतवाला', 'सुधा', 'जागरण', 'हंस', 'विशाल भारत', 'हिंदू पंच' आदि पत्र–पत्रिकाएं जनता में साहित्यिक चेतना और गांधीवादी विचारधारा

प्रसारित करने में अग्रणी रहीं। इस समय के दैनिक पत्रों में 'आज', 'भारत', 'स्वतंत्र' और आर्यावर्त, की भी भूमिका सराहनीय रही।

आज हमारे देश में हजारों दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक समाचार पत्र निकल रहे हैं। सभी का यहां उल्लेख भी नहीं किया जा सकता है। विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत में समाचार पत्रों की भूमिका बड़ी ही निर्णायक है। आज समाचार पत्र आम जनता के बीच की महती आवश्यकता बन गए हैं। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाचार पत्र (प्रेस) अपना रंग बरकरार रखे हुए हैं। वर्तमान समय में प्रेस सरकारी नीतियों और हलचलों पर जितना ध्यान देता है, आम जनता से भी उसे उसी तरह सरोकार है। भारत में 'प्रेस' को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। प्रेस के संदर्भ में प्रसिद्ध पत्रकार बी. के. नेहरू का यह कथन दृष्टव्य है– "सरकार किसी भी तरीके से बनी हो, उसमें प्रेस की भूमिका निःसंदेह बहुत महत्वपूर्ण है। तानाशाही सरकारें भी किसी न किसी तरह के लोक समर्थन के बिना नहीं चल पातीं।

**प्रेस के प्रभाव**– 'प्रेस' जो छापता है उसका लिखित सबूत होता है। रेडियो या टी.वी. पर प्रसारित खबर का कोई प्रमाण सुरक्षित नहीं रह पाता। कभी–कभी यह चिंता भी उत्पन्न होती है कि रेडियो तथा टी.वी. जैसे जनसंचार माध्यम आ जाने से 'प्रेस' पिछड़ गया है या भविष्य में 'प्रेस' पिछड़ जाएगा। लेकिन यह चिंता निर्मूल हैं। 'प्रेस' का प्रभाव और प्रसार कभी भी कम नहीं हुआ है और न ही कभी कम होगा। जिन स्थानों/घरों में इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की मौजूदगी रहती है, वहां भी समाचार पत्रों का अस्तित्व बखूबी देखने को मिलता है।

## (ख) रेडियो

मुद्रण माध्यम (प्रेस) के उपरांत दूसरा महत्वपूर्ण जनसंचार माध्यम है 'रेडियो' जो श्रव्य संचार माध्यम की श्रेणी में आता है। इस माध्यम को पत्रकारिता की दृष्टि से 'श्रव्य समाचार पत्र' (Audio News paper) भी कह सकते हैं क्योंकि वह माध्यम श्रवणेंद्रियों के जरिए सारी दुनिया को श्रोता के निकट ले आता है। जहां सुदूर क्षेत्रों में समाचार पत्र तत्काल नहीं पहुंच पाता, वहां भी संचार के इस माध्यम के द्वारा देश, दुनिया की खबरों और अन्य मनोरंजक कार्यक्रमों का लाभ उठाया जा सकता है।

**रेडियो का प्रारंभिक विकास**– रेडियो का आविष्कार 19वीं शताब्दी में हुआ। वैसे रेडियो की कहानी सन् 1815 से ही शुरु हो जाती है। इस वर्ष इटली में एक इंजीनियर गुग्लियो मार्कोनी ने रेडियो टेलीग्राफी के जरिए पहला संदेश प्रसारित किया। रेडियो पर मनुष्य की आवाज पहली बार सन् 1906 में सुनाई दी। सर्वप्रथम सन् 1916 में सार्वजनिक तौर पर संयुक्त राष्ट्र में राष्ट्रपति चुनाव के परिणाम की रिपोर्ट रेडियो पर प्रसारित की गई। सन् 1920 के पश्चात् तो अमेरिका और ब्रिटेन के अलावा विश्व के अन्य कई देशों में भी रेडियो ने धूम मचा दी।

**भारत में रेडियो**– भारत में रेडियो प्रसारण का इतिहास सन् 1926 से शुरू होता है। तत्कालीन समय में कलकत्ता, बंबई तथा मद्रास में व्यक्तिगत रेडियो क्लब स्थापित किए गए थे। इन क्लबों के व्यवसायियों ने एक प्रसारण कंपनी का गठन कर रेडियो की निजी प्रसारण सेवा का प्रारंभ किया था। सन् 1926 में ही सरकार ने इस कंपनी को देश में निजी प्रसारण केंद्र स्थापित करने के लिए लाइसेंस प्रदान किया। इस

टिप्पणी

कम्पनी की ओर से रेडियो का पहला प्रसारण 23 जुलाई, सन् 1927 को बंबई से हुआ। इसे प्रसारित करने वाली कंपनी का नाम था 'इंडिया ब्रॉडकास्टिंग कंपनी'। उस समय वायसराय लार्ड इरविन का कार्यकाल था। कलकत्ता केंद्र का उद्‌घाटन 'बंगला समाचार बुलेटिन' के साथ 26 अगस्त, सन् 1927 को हुआ। इस प्रकार प्रादेशिक भाषाओं को सर्वप्रथम रेडियो पर प्रसारित होने का श्रेय प्राप्त है। कुछ ही समय पश्चात 'इंडिया ब्रॉडकॉस्टिंग कंपनी' घाटे के कारण बंद हो गई। इसी अवधि में सन् 1930 में भारत सरकार ने प्रसारण सेवा का प्रबंध अपने अधिकार में ले लिया। तभी से 'इंडियन ब्रॉडकॉस्टिंग सर्विस' के नाम से एक नये सरकारी उपक्रम के तहत रेडियो के बंबई और कलकत्ता केंद्र कार्य करने लगे। अब इस उपक्रम का नाम 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकॉस्टिंग सर्विस' (आई.एस.बी.एस.) हो गया। इस सर्विस के प्रथम महानिदेशक थे लियोनेल फील्डेन। यह रेडियो उपक्रम आगे कार्य करता रहा और बाद में इसका नाम 'ऑल इंडिया रेडियो' हो गया। यह नाम सन् 1936 में पड़ा।

सन् 1935 में तत्कालीन देशी रियासत मैसूर में एक स्वतंत्र रेडियो स्टेशन की शुरुआत हुई। इस रियासत ने इस स्टेशन को 'आकाशवाणी' नाम दिया। देश की आजादी के पश्चात सन् 1957 में भारत सरकार ने इस संगठन का नाम 'आकाशवाणी' घोषित किया, जो मैसूर रियासत के रेडियो स्टेशन का नाम था। लेकिन 'आकाशवाणी' नाम का प्रयोग केवल हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के लिए ही हो रहा है; अंग्रेजी प्रसारणों और विदेशी सेवा के प्रसारणों में अभी भी 'ऑल इंडिया रेडियो' नाम ही प्रसारित होता है।

स्वतंत्रता के पश्चात 'आकाशवाणी' या 'ऑल इंडिया रेडियो' का व्यापक प्रसार हुआ है। सन् 1947 में जहां पूरे देश में मात्र 6 प्रसारण केंद्र, एक दर्जन ट्रांसमिटर और मात्र दो–ढाई लाख रेडियो सेट थे, वहीं आज हमारे पास 100 से अधिक रेडियो स्टेशन हैं, जो देश के तीन–चौथाई से अधिक भौगोलिक क्षेत्र तथा 90 प्रतिशत के लगभग जनसंख्या को अपनी प्रसारण सीमा में लिए हुए हैं। आज देश–भर में तीन करोड़ से भी अधिक रेडियो सेट घरों में बज रहे हैं।

**रेडियो प्रसारण**– भारत में ही नहीं दुनिया के प्रायः सभी देशों में रेडियो प्रसारण सेवा स्थिति में आशातीत प्रगति हुई है और इस जनमाध्यम को एक व्यापक समाज रुचिपूर्वक अपना चुका है। रेडियो की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि इस जनमाध्यम की क्षमता के कारण दुनियां–भर में रेडियो सेटों की संख्या सन् 1950 से सन् 1960 के बीच चार गुणा बढ़ चुकी थी। इसी प्रकार सन् 1960 से सन् 1975 के बीच प्रति हजार जनसंख्या के पीछे रेडियो सेटों की संख्या में 95 प्रतिशत की वृद्धि हुई। नए–नए देशों में रेडियो स्टेशनों की स्थापना और उनका विस्तार हुआ। माना जाता है कि विश्व के हर चौथे व्यक्ति को रेडियो प्रसारण सुनने की सुविधा उपलब्ध है।

**विदेश प्रसारण सेवा**– रेडियो के व्यापक प्रभाव को देखते हुए दुनिया के कई देशों ने अपनी विदेश प्रसारण सेवा शुरू की है। इनमें अमेरिका तथा पूर्व सोवियत संघ प्रमुख हैं। विदेश प्रसारण सेवा में ब्रिटेन की बी.बी.सी. (ब्रिटिश ब्रॉडकॉस्टिंग कॉरपोरेशन) अभी तक अग्रणी बनी हुई है। यह लंदन से एक साथ विश्व के 22 देशों में रेडियो कार्यक्रम प्रसारित करती है। इसकी क्षमता भी अत्यधिक हैं। भारत ने भी विदेश प्रसारण सेवा की शुरुआत की है, लेकिन इसकी क्षमता कम है। एक अध्ययन के अनुसार सन् 1978 में

टिप्पणी

अमेरिका और पूर्व सोवियत संघ क्रमशः 1,813 और 2,010 घंटे प्रतिवर्ष प्रसारण विदेशी श्रोताओं के लिए करते थे। चीन द्वारा प्रतिवर्ष 1,400 घण्टे के विदेशी कार्यक्रम प्रसारित किए जाते थे, जबकि पश्चिमी जर्मनी, ब्रिटेन, उत्तरी कोरिया, अल्बानिया और मिस्र प्रतिवर्ष मात्र 500 घंटे से अधिक के कार्यक्रम प्रसारित करते थे। इसके अलावा 26 देश 100 घंटे से अधिक के कार्यक्रम प्रसारित करते थे। कुल मिलाकर 80 से अधिक देश अंतर्राष्ट्रीय प्रसारण के क्षेत्र में सक्रिय थे। इनकी संख्या वर्तमान में और भी बढ़ी है।

**भारत में रेडियो प्रसारण**– अन्य देशों में रेडियो प्रसारण के समय और गुणवत्ता में तेजी से सुधार जारी हैं। भारत भी इस मामले में किसी अन्य देश से कम नहीं है। सन् 1939–40 तक ऑल इंडिया रेडियो 27 बुलेटिन प्रसारित करने लगा था।

वर्तमान समय में आकाशवाणी से 24 घंटे में अनगिनत समाचार बुलेटिन प्रसारित किए जाते हैं। एक छोटा समाचार बुलेटिन पांच मिनट का और बड़ा समाचार बुलेटिन 15 मिनट का होता है। सामान्य समाचार बुलेटिनों के अलावा समाचार पत्रों से टिप्पणियां, करंट अफेयर्स, लोकरुचि के समाचार जैसे बुलेटिन भी प्रसारित होते हैं। इसके अलावा मार्निंग न्यूज, साप्ताहिकी, संसद की कार्यवाही, न्यूज रील, चुनाव और उसके परिणामों को जन–जन तक पहुंचाने के लिए विशेष समाचार बुलेटिन आदि कार्यक्रम भी समय–समय पर प्रसारित किए जाते हैं।

**प्रादेशिक प्रसारण**– राष्ट्रीय प्रसारणों के साथ ही आकाशवाणी ने प्रादेशिक सेवाओं को भी महत्व दिया है। विभिन्न प्रदेशों की राजधानियों एवम् प्रमुख नगरों में आकाशवाणी के 42 एकांश हैं जहां से 131 समाचार बुलेटिन प्रसारित होते हैं। ये बुलेटिन उनके अतिरिक्त हैं जो दिल्ली से प्रादेशिक भाषाओं में ब्रॉडकास्ट किए जाते हैं। दिल्ली से प्रसारित होने वाले प्रादेशिक भाषाओं के बुलेटिन असमिया, नेपाली, कन्नड़, कश्मीरी, डोगरी, बंगला, मलयालम, उड़िया, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, मराठी, गुजराती, सिंधी, उर्दू तथा संस्कृत भाषाओं के होते हैं। आकाशवाणी के सूचनापरक कार्यक्रमों के अलावा बीसियों तरह के अन्य कार्यक्रम भी समय–समय पर रेडियो स्टेशनों के द्वारा प्रसारित किए जाते हैं।

वर्तमान में रेडियो पर प्रसारित की जा रही नई विधाओं में फीचर, प्रहसन, वार्ता, साक्षात्कार, डॉक्यूमेंटरी, विचारगोष्टी, आंखों देखा हाल, नाटक, कहानी, काव्य पाठ, कवि सम्मेलन, विशेष प्रसारण, न्यूज रील, रेडियो रिपोर्ट, बच्चों का कार्यक्रम, महिला कार्यक्रम, युवा कार्यक्रम, कृषकों के लिए, खेल जगत, पर्व और जयंतियों के कार्यक्रम, विज्ञान कार्यक्रम, स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम, बुजुर्गों के लिए तथा परिवार कल्याण के कार्यक्रम आदि भी सम्मिलित हैं।

**रेडियो का महत्व**– जनसंचार माध्यमों में रेडियो का अपना खासा महत्व है। यह साधारण व्यक्ति की पहुंच वाला माध्यम है। निर्धन से लेकर रईस तक सभी व्यक्ति इस माध्यम का प्रयोग आसानी से कर सकते हैं क्योंकि इसकी कीमत बहुत कम होती है। घर के बेडरूम से लेकर खेतों, सड़कों और पहाड़ों की दुर्गम चोटियों तक श्रोता हर समय अपनी जेब में रखे रेडियो के श्रवण का लुफ्त उठा सकते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ज्वेरीमल पारीख ने ठीक ही लिखा है –''रेडियो निरक्षरों के लिए भी एक वरदान है, जिसके द्वारा वे सिर्फ सुनकर अधिक से अधिक सूचना, ज्ञान और मनोरंजन हासिल कर लेते हैं। कम कीमत और अधिक से अधिक

टिप्पणी

जनता के लिए सुलभ होने के कारण भी, टी.वी. के व्यापक प्रसार के बावजूद तीसरी दुनिया के देशों में रेडियो का अपना महत्व आज भी कायम है।'' इस माध्यम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि निरक्षर लोग भी इस जनमाध्यम से रुचिपूर्वक संदेश व मनोरंजन के कार्यक्रम सुन सकते हैं और उनका भरपूर आनंद ले सकते हैं।

आज रेडियो जनसंचार का एक सशक्त माध्यम है। इसकी अपरिहार्यता और व्यापकता से आज कौन परिचित नहीं है। यह माध्यम लोगों को आपसी अनुभवों के जरिए परस्पर जोड़ता है और ऐसे विषय प्रदान करता है, जिन पर संवाद हो सकें।

## (ग) टेलीविजन (टी.वी.)

शाब्दिक अर्थ– 'टेलीविजन' शब्द 'दूर–दर्शन' शब्द का पर्याय है। 'टेलीविजन' को हिंदी में 'दूर–दर्शन' (हाइफन लगाते हुए) लिखना उचित है, 'दूरदर्शन' नहीं। 'टेलीविजन' शब्द ग्रीक तथा लैटिन भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है। इनमें 'टेली' ग्रीक शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है– दूरी पर जबकि 'विजन' लैटिन शब्द है, जिसका आशय है– देखना। इस प्रकार 'दूर–दर्शन' का सामान्य अर्थ हुआ– 'दूर से देखना' या 'दूर के दर्शन'। कुछ लोग टेलीविजन के लिए 'रेडियो–वीक्षण' शब्द का प्रयोग करने का भी सुझाव देते हैं, लेकिन ज्यादा सटीक शब्द 'दूर–दर्शन' ही है।

जनसंचार माध्यमों में फिल्म और टेलीविजन की लोकप्रियता सबसे अधिक है। बल्कि फिल्म माध्यम भी अब टेलीविजन के साथ सांठ–गांठ करके दुनिया का चेहरा बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। सच तो यह है कि इन इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों ने जहां मनुष्य को घर बैठे सारी दुनिया से जोड़ दिया है, वहीं वह शिक्षित होते हुए भी अशिक्षा के अंधकार की और लौट रहा है। टी.वी. ने हमारी पढ़ने की आदत बिगाड़ दी है और कम्प्यूटर ने हमारी गणित की क्षमता को बांध दिया है। यह एक कटु सत्य है लेकिन इसके बावजूद फिल्म, दूर–दर्शन (टी.वी.) और कम्प्यूटर की उपयोगिता एवं लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई है।

**उपयोगिता**– जहां तक पत्रकारिता के संदर्भ में इन माध्यमों की उपयोगिता का सवाल है, तो फिल्म की अपेक्षा दूर–दर्शन (टी.वी.) बहुत महत्वपूर्ण हो चला है। इसने पत्रकारिता को पूरे विश्व में एक नया आयाम दिया है। इसका सबसे अच्छा प्रमाण है अभी कुछ वर्ष पूर्व हुए खाड़ी युद्ध का सी. एन. एन. चैनल द्वारा उपग्रह के जरिए पूरे विश्व में जीवंत (सीधा) प्रसारण। इस प्रसारण से सारी दुनिया ने अपने शयनकक्ष या ड्राइंगरूम में बैठकर उस युद्ध के सजीव दृश्य देखे थे। दूर–दर्शन से पूर्व श्रोताओं को केवल रेडियो की आवाज ही सुनाई देती थी, लेकिन टी. वी. से आवाज के साथ–साथ चित्र भी देखने को मिले। इससे दूर–दर्शन ने लोगों को चित्र दिखाकर उसका विश्वास ही नहीं जीता बल्कि दर्शकों के सामने मनोरंजन का भरपूर खजाना भी परोस दिया।

**टेलीविजन का विकास**– दुनिया में टेलीविजन यानी दूर–दर्शन का आविष्कार बहुत पुराना नहीं है। तस्वीरों को प्रसारित करने की युक्ति सन् 1890 में ही ब्रिटेन में ज्ञात हो गई थी। आगे चलकर सन् 1930 में 'टेलीविजन' ब्रिटेन में एक लोकप्रिय घरेलू शब्द बन चुका था। संसार का पहला सार्वजनिक नियमित प्रसारण सन् 1936 में जे. एल. बेयर्ड ने बनाया और उसका प्रदर्शन किया। इसके दो वर्ष पश्चात 'बेल टेलीफोन कंपनी' में काम करने वाले एक इंजीनियर सी. एफ. जेकिंस ने पहली बार अमेरिका में प्रसारित तस्वीर दिखाई। वे आरंभिक टेलीविजन यांत्रिक थे, इलेक्ट्रॉनिक नहीं।

टिप्पणी

टेलीविजन के विकास का दूसरा चरण सन् 1930 में शुरू हुआ। इस काल में यांत्रिक प्रणाली का स्थान इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली ने ले लिया। नए इलेक्ट्रॉनिक कैमरे एवं रिसीविंग ट्यूब ने न केवल पुरानी यांत्रिक समस्याओं को दूर किया, अपितु तस्वीर की गुणवत्ता को भी बढ़ा दिया। इस प्रकार निरंतर सुधार प्रक्रिया में चल रहे टेलीविजन (आवाज वाले) का प्रथम सार्वजनिक प्रसारण ब्रिटेन में सन् 1930 में हुआ। उस समय ब्रिटेन में मात्र 300 व्यक्तिगत रिसीवर थे, जो बाद में सन् 1930 से सन् 1938 के बीच बढ़कर 4000 तक हो गए। फ्रांस में नियमित प्रसारण सन् 1938 में शुरू हुआ। अमेरिका में नियमित प्रसारण सन् 1941 में शुरू हुआ। सन् 1955 में 'यूरोविजन' नेटवर्क विधिवत् देखा गया, जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, डेनमार्क, स्विट्जरलैंड, पश्चिम जर्मनी, बेल्जियम तथा नीदरलैंड को जोड़ा गया। सन् 1962 में सेटेलाइट के जरिए पहले जीवंत (लाइव) कार्यक्रम का आदान–प्रदान यूरोप तथा अमेरिका के बीच शुरू हुआ।

**भारत में टेलीविजन और इसके कार्यक्रम**– भारत में प्रायोगिक टी.वी. केंद्र का उद्घाटन 15 सितम्बर, सन् 1959 को देश के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद के हाथों हुआ। उन दिनों भारत में यूनेस्को का सम्मेलन आयोजित हुआ था। इस सम्मेलन का टेलीविजन से प्रसारण करने के लिए यूनेस्को ने भारत को 20000 डॉलर का अनुदान दिया था। उस समय संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार व यूनेस्को के सहयोग से आकाशवाणी भवन में एक लघु टेलीविजन स्टूडियो की स्थापना की गई। सन् 1961 में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में एक नियमित 'स्कूल टी.वी. कार्यक्रम' की शुरुआत की गई। उस समय टी.वी. आम आदमी से बहुत दूर था। सन् 1965 में जनता की मांग और अनुकूल परिणामों से उत्साहित होकर सरकार इस बात पर सहमत हुई कि शिक्षा के साथ–साथ मनोरंजन तथा सूचना कार्यक्रम शुरू किए जाएं। इस प्रकार धीरे–धीरे टेलीविजन के कार्यक्रम दिन–प्रतिदिन रोचक होते चले गए।

भारत में सबसे पहले टेलीविजन से समाचार बुलेटिन 15 अगस्त, सन् 1965 को प्रसारित हुआ। 1 अप्रैल, सन् 1976 से देश में टेलीविजन 'दूरदर्शन' नाम से आकाशवाणी से पृथक होकर स्वतंत्र अस्तित्व में आ गया है। अपने दूरदर्शन के अलावा सेटेलाइट के जरिए स्टार टी.वी., जी.टी.वी., एम.टी.वी., वी.टी.वी., बी.बी.सी, एल.टी.वी., जी सिनेमा, पी. टी.वी., स्टार मूवीज, सोनी टी.वी., ए.टी.एन. आदि सैकड़ों प्रकार के टी.वी. नेटवर्क का जाल भारत और दुनिया के अन्य देशों में तेजी से फैल रहा है।

आज इन टी.वी. चैनलों के प्रसार के चलते देश भर के दर्शकों के घर संगीत, फिल्म, समाचार, धारावाहिक, नाटक, ज्ञानवर्धक वृत्तचित्रों आदि से गूंज रहे हैं। रंग–बिरंगे देशी–विदेशी दृश्यों, बिंब और संगीत लहरों से बहुत बड़ी जनसंख्या अपने आप को आनंदित कर चुकी है। आजकल दूरदर्शन के प्रमुख कार्यक्रमों में समाचार, वार्ता, साक्षात्कार, रिपोर्ट, नाटक, परिचर्चा, रूपक या फीचर, कमेंटरी, खेल, वृत्तचित्र, आखों देखा प्रसारण, कवि सम्मेलन, मुशायरा, यू.जी.सी. व इग्नू के कार्यक्रम प्रथम वर्ग के कार्यक्रमों के अंतर्गत आते हैं। द्वितीय वर्ग के कार्यक्रमों में फीचर फिल्म, फिल्मी गीत व संगीत, लोकगीत व संगीत, पारंपरिक संगीत, सुगम संगीत, शास्त्रीय संगीत, गायन, वाद्य संगीत आदि सम्मिलित हैं, जो 24 घंटे दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों से प्रसारित होते रहते हैं।

## (घ) फिल्म एवं वीडियो टेक्स्ट

टिप्पणी

फिल्म भी जनसंचार का एक प्रमुख माध्यम है। फिल्मों का असर जनसाधारण पर ही नहीं, बच्चों व महिलाओं (अनपढ़) पर भी बहुत तेजी से होता है। आजकल फिल्म का आशय वीडियो फिल्म, सी.डी. फिल्म आदि से भी लगाया जाता है। जिनका प्रयोग सरकारी संगठन ही नहीं, गैर–सरकारी संगठन भी अपने प्रचार–प्रसार के लिए कर रहे हैं। इतना ही नहीं, व्यक्तिगत तौर पर भी फिल्म का प्रयोग बढ़ गया है।

यह देश के नागरिकों का दुर्भाग्य ही है कि फिल्म का ज्यादातर प्रयोग मनोरंजन के लिए ही हो रहा है। फिर भी, अब शिक्षा, साहित्य, देशभक्ति, संगीत आदि समस्त विषयों पर फिल्म निर्माण जारी है।

**भारत में फिल्म निर्माण**– देश में सर्वप्रथम सन् 1913 में दादा साहेब फाल्के ने पहली बार मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' का निर्माण किया। देश की पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' थी। सन् 1959 में गुरूदत्त द्वारा बनी 'कागज के फूल' पहली सिनेमास्कोप फिल्म थी। प्रारम्भ में भले ही 'बॉलीवुड' की फिल्में 'हॉलीवुड' की तर्ज पर बनीं, पर वर्तमान दौर में भारतीय फिल्म उद्योग तेज गति से फल–फूल रहा है। प्रतिवर्ष यहां विभिन्न भाषाओं की 800 से अधिक फिल्में बन रही हैं। देश की एक अरब से अधिक की आबादी का मनोरंजन करने में फिल्मों का व्यापक योगदान है। खासतौर से हिंदी भाषी राज्यों, जैसे दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश आदि में तो हिंदी फिल्मों का सामान्य जनजीवन पर व्यापक असर होता है।

### वीडियो टेक्स्ट

वीडियो टेक्स्ट भी संचार का एक अत्याधुनिक साधन है। सूचनाओं के इलेक्ट्रॉनिक भंडारण की पद्धति, इलेक्ट्रॉनिक डाटा बेस के नाम से जानी जाती है। इलेक्ट्रॉनिक डाटा बेस में कई प्रणालियां शामिल की जा सकती हैं। वीडियो टेक्स्ट, केबल टेक्स्ट, ऑन लाइन, डाटा बेसेज, इलेक्ट्रॉनिक बुलेटिन बोर्ड, टेली टेक्स्ट, ऑडियो टेक्स्ट जैसी प्रणालियां इलेक्ट्रॉनिक डाटा बेस के ही अंग हैं।

**वीडियो टेक्स्ट प्रणाली**– यह वीडियो और टेक्स्ट (पाठ) से मिलकर बनी है। इसमें मुद्रित सूचना का पाठ टेलीविजन के पर्दे पर पढ़ा जा सकता है। इस प्रणाली में एक मेनफ्रेम कम्प्यूटर रहता है जिसमें मनचाही सूचनाएं एकत्र रहती हैं।

वीडियो टेक्स्ट प्रणाली में दुतरफा संवाद की सुविधा रहती है। इलेक्ट्रॉनिक संवाद प्रेषण पद्धति से उपभोक्ता अपने संदेश टाइप करके दूसरे उपभोक्ता तक आसानी से भेज सकते हैं।

'वीडियो टेक्स्ट सेवा' चलाने वालों में 'कंप्यूसर्व इंफार्मेशन सर्विसेज' और 'प्रोडिजी' अग्रणी हैं।

## (ङ) इंटरनेट सेवा

इंटरनेट दुनियाभर में अलग–अलग जगहों पर लगे कम्प्यूटरों को जोड़कर सूचना की आवाजाही के लिए बनाई गई एक विशेष प्रणाली है। इसकी स्थापना अमेरिका में एक विशेष परियोजना के तहत हुई थी। उस समय संचार की इस सेवा का उद्देश्य था–

परमाणु हमले की स्थिति में संचार का नेटवर्क बनाए रखना। लेकिन जल्दी ही यह सुविधा रक्षा शोध केंद्रों से निकलकर व्यावसायिक क्षेत्रों में पहुंच गई।

टिप्पणी

आज इंटरनेट पर कई सेवाएं उपलब्ध हैं; जैसे– ई–मेल (इलेक्ट्रॉनिक मेल); जिसके माध्यम से कोई भी सूचना, संदेश, पत्र, पता दुनिया के किसी भी कोने में तत्काल पहुंचाया जा सकता है। डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू (वर्ल्ड वाइड वेब) डाटा बेस के द्वारा कोई भी उपभोक्ता इच्छित सूचना प्राप्त कर सकता है। शुरू–शुरू में इंटरनेट पर केवल लिखित सामग्री उपलब्ध थी। लेकिन अब इस पर चित्र, ध्वनि, कार्टून आदि सभी प्रकार की सामग्री उपलब्ध हो जाती है। इसके अलावा इंटरनेट की अन्य सुविधाओं में 'होमपेज' है। इसमें कोई भी व्यक्ति, कंपनी या संस्था अपने बारे में विवरण देकर एक तरह से विज्ञापन कर सकती है। 'होमपेज' की जानकारी लेने को 'हिट' कहा जाता है। 'नेट' में सूचना भंडार, विश्वकोश, पुरानी–नई लोकप्रिय पुस्तकें, विशेष लेख, शोध पत्र, अखबारों की कतरनें, पूरे अखबार व पत्रिकाएं, कोर्ट के फैसले आदि के विशाल सूचना भंडार में से कोई भी उपभोक्ता मनचाही सूचना ले सकता है। इसके अतिरिक्त खेल बुलेटिन तथा फाइल ट्रांसफर प्रोटोकॉल (एफ.टी.पी.) है जिसके जरिए हम दूर बैठे किसी व्यक्ति से जानकारी अपनी फाइल में ले सकते हैं और अपनी जानकारी दे सकते हैं यहां तक कि ऐतिहासिक महत्व के दस्तावेज, गीत, कविताएं, टी.वी. कार्यक्रमों के सार संक्षेप आदि भी हम अपनी फाइल में ले सकते हैं।

**नेट नियंत्रण**– 'इंटरनेट' को संक्षेप मे 'नेट' कहने का चलन भी हो गया है। यह एक ऐसा विश्वव्यापी कम्प्यूटर नेटवर्क है, जिस पर दुनियाभर में फैले रहने के बावजूद किसी का नियंत्रण नहीं है। यह किसी कानून के दायरे में भी नहीं आता। 'इंटरनेट' से कोई भी व्यक्ति जानकारी ले सकता है और किसी भी प्रकार की सामग्री व जानकारी, अपना कोई पता या कोड देकर नेट पर छोड़ सकता है, जो कुछ ही क्षणों में दुनियाभर में फैले उसके चिरपरिचितों को कम्प्यूटर पर क्लिक करते ही उपलब्ध हो जाएगी। इंटरनेट का नकारात्मक पहलू यह है कि इसको निजी तौर पर इस्तेमाल करने वालों के नाम–पते का कोई रिकॉर्ड नहीं होता है। अतः किसने कब और क्या जानकारी किस उद्देश्य को लेकर नेट पर डाली, इसका पता लगाया जाना मुश्किल है। इस कारण ही आजकल 'इंटरनेट' के दुरुपयोग की घटनाएं दिन–प्रतिदिन बढ़ रही हैं।

छापेखाने के आविष्कर्ता ने सन् 1455 में यह कभी नहीं सोचा होगा कि एक दिन उसकी मुद्रण मशीन मानव के अत्याधुनिक कम्प्यूटर से पिछड़ जाएगी। डिजिटल टेक्नालॉजी की सहायता से 'इलेक्ट्रॉनिक समाचार पत्र' अब घर–घर पहुंचने लगे हैं। आज हमारे देश में अनेक समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं मुद्रण माध्यम (प्रेस) से प्रकाशित होने के साथ–साथ इंटरनेट पर भी उपलब्ध हैं। इस श्रृंखला में सर्वप्रथम 'दि हिंदू' और 'इंडिया टुडे' इस सेवा से जुड़े, इसके बाद 'दि टाइम्स ऑफ इंडिया', 'दि इंडियन एक्सप्रेस', 'बिजनेस स्टैंडर्ड', 'आउटलुक', 'नवभारत टाइम्स', 'डेकन हेरल्ड', 'दि हिंदूस्तान टाइम्स', 'हिंदुस्तान', 'अमर उजाला', 'दैनिक जागरण', 'दैनिक भास्कर' आदि समाचार पत्र भी इंटरनेट से जुड़ गए हैं। इंटरनेट पर उपलब्ध समाचार पत्रों का मुख्य उद्देश्य यही होता है कि देश–विदेश में बैठे अपने पाठकों से संवाद स्थापित किया जा सके। इससे उनको विज्ञापन भी मिलता है।

देश में कुछ समाचार–पत्र केवल इंटरनेट पर ही प्रकाशित हो रहे हैं। इनमें 'तहलका डॉट काम' भी एक ऐसा प्रसारण है जो मात्र इंटरनेट पर किसी खास विषय पर जानकारी और रहस्य उजागर करता है।

**टिप्पणी**

ब्रजमोहन गुप्त ने इलेक्ट्रॉनिक अखबार के विषय में अपने एक लेख में लिखा है कि ''दरअसल इलेक्ट्रॉनिक समाचार पत्र की कल्पना नई नहीं है। टेली–टेक्स्ट सेवा की तरह से इलेक्ट्रॉनिक समाचार पत्र अद्यतन रूप में उपलब्ध होते रहते हैं। नेत्रहीनों के लिए निकलने वाले 'दि गार्जियन' का संस्करण भी इलेक्ट्रॉनिक पद्धति से प्रसारित होता है और अपने पाठकों को कम्प्यूटर की आवाज में जोर–जोर से पढ़कर सुनाया जाता है। कुछ मीडिया विशेषज्ञों का मानना है कि परंपरागत अखबार की तुलना में इलेक्ट्रॉनिक समाचार पत्र काफी सस्ता होता है।

## 2.2.3 सोशल मीडिया : अर्थ, महत्व, उपयोगिता और भाषायी प्रभाव

सोशल मीडिया मूल रूप से कंप्यूटर या किसी भी मानव संचार या जानकारी के आदान–प्रदान करने से जुड़ा हुआ है जो कंप्यूटर, टैबलेट या मोबाइल के माध्यम से प्राप्त की जाती है। ऐसी कई वेबसाइटें और ऐप्स भी हैं जो इसे संभव बनाते हैं। सोशल मीडिया अब संचार का सबसे बड़ा माध्यम बन रहा है और तेजी से लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। सोशल मीडिया विचारों, सामग्री, सूचना और समाचार इत्यादि को बहुत तेजी से एक दूसरे से साझा करने में हमें सक्षम बनाता है। पिछले कुछ वर्षों में सोशल मीडिया के उपयोग में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हुई है तथा इसने दुनिया भर के लाखों उपयोगकर्ताओं को एक साथ जोड़ लिया है।

हम आज उस समय और युग में हैं, जहां सूचना सिर्फ एक बटन दबाने पर मिल जाती है। इनके कारण हम अपने चारों ओर की जानकारी से अवगत हो जाते हैं। सोशल मीडिया वह जगह है, जहां हमें किसी भी चीज के बारे में जानने, पढ़ने, समझने और बोलने का मौका मिलता है। सोशल मीडिया उन बड़े तत्वों में से एक है, जिसके साथ हम जुड़े हुए हैं और जिसे आज हम अनदेखा नहीं कर सकते।

सोशल मीडिया वेबसाइटों, अनुप्रयोगों और अन्य प्लेटफार्मों का संग्रह है, जो हमें जानकारियों का आदान–प्रदान करने तथा सोशल नेटवर्किंग में भाग लेने में मदद करता है। सोशल मीडिया ब्लॉगिंग और चित्रों को साझा करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह हमें बहुत मजबूत उपकरण भी प्रदान करता है। ऐसा इसलिये है, क्योंकि सोशल मीडिया का प्रभाव बहुत अधिक और दूर तक पहुंच रहा है और यह किसी की छवि को बना या बिगाड़ भी सकता है।

लेकिन सोशल मीडिया आज विवाद का विषय बन गया है। कुछ लोग इसे वरदान समझते हैं, तो वहीं कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो इसे एक अभिशाप मानते हैं। लोग ज्यादातर यह महसूस करते हैं कि सोशल मीडिया ने तेज गति के साथ मानव अंतःक्रियाओं को नष्ट कर, आधुनिक मानव संबंधों में परिवर्तन कर दिया है। लेकिन कुछ लोग इसे वरदान मानते हैं, क्योंकि इसके कारण वे दुनिया के हर कोने से जुड़े हुए महसूस करते हैं और जिसके द्वारा वे दूर बसे अपने प्रियजनों से बात कर सकते हैं। इसके द्वारा जागरूकता फैला सकते हैं और सुरक्षा चेतावनियां भी भेज सकते हैं। ऐसा बहुत कुछ है जो सोशल मीडिया के माध्यम से किया जा सकता है, लेकिन यह एक

अविश्वसनीय तथ्य है कि सोशल मीडिया की मौजूदगी ने हमारे जीवन को सुविधाजनक, आसान और बहुत तेज बना दिया है।

## सोशल मीडिया का महत्व



सोशल मीडिया प्लेटफार्म अपने उपयोगकर्ताओं तथा लाखों अन्य लोगों को जानकारी साझा करने में मदद करता है। सोशल मीडिया के महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह आज हमारे जीवन में एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

सोशल मीडिया के महत्व को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं :

- ब्रांड बनाना– गुणवत्तापूर्ण सामग्री, उत्पाद और सेवाएं आज ऑनलाइन आसानी से पहुंचने में सक्षम हैं। आप अपने उत्पाद को ऑनलाइन बाजार में बेंच सकते हैं और एक ब्रांड बना सकते हैं।
- ग्राहक के लिये सहायक– उत्पाद या सेवा खरीदने से पहले ग्राहक समीक्षा और प्रतिक्रिया पढ़ सकते हैं और स्मार्ट विकल्प चुन सकते हैं।
- सोशल मीडिया एक महान शिक्षा उपकरण है।
- सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के माध्यम से आप अपने इच्छित दर्शकों से जुड़ सकते हैं।
- गुणवत्ता की जानकारी तक पहुंचने का यह एक शानदार तरीका है।
- सोशल मीडिया आपको केवल एक क्लिक में समाचार और सभी घटनाएं प्राप्त करने में मदद करता है।
- सोशल मीडिया आपको मित्रों, रिश्तेदारों से जुड़ने में तथा नये दोस्त बनाने में भी मदद करता है।

## सोशल मीडिया से लाभ

सोशल मीडिया वास्तव में कई फायदे पहुंचाता है। हम सोशल मीडिया का उपयोग समाज के विकास के लिये भी कर सकते हैं। हमने पिछले कुछ वर्षों में सूचना और सामग्री का विस्फोट देखा है और हम सोशल मीडिया की ताकत से इनकार नहीं कर सकते हैं। समाज में महत्वपूर्ण कारणों से तथा जागरूकता पैदा करने के लिये सोशल मीडिया का व्यापक रूप से उपयोग किया जा सकता है। सोशल मीडिया एनजीओ और अन्य सामाजिक कल्याण समितियों द्वारा चलाये जा रहे कई समाजोपयोगी कार्यों में भी मदद कर सकता है। सोशल मीडिया जागरूकता फैलाने और अपराध से लड़ने में अन्य एजेंसियों तथा सरकार की मदद कर सकता है। कई व्यवसायों में सोशल मीडिया का उपयोग प्रचार और बिक्री के लिये एक मजबूत उपकरण के रूप में किया जा सकता है। सोशल मीडिया प्लेटफार्म के माध्यम से कई समुदाय बनाये जाते हैं जो हमारे समाज के विकास के लिये आवश्यक होते हैं।

फेसबुक जैसी सोशल मीडिया साइटें आधुनिक जीवन का एक अहम हिस्सा बन गयी हैं। इसकी सहायता से आप अपने मित्रों के साथ तुरन्त और वास्तविक समय में जुड़ सकते हैं। उपयोगकर्ता एक दूसरे से बातचीत कर सकते हैं, बार–बार जुड़ सकते हैं और सामूहिक संवाद कर सकते हैं।

लिंक्ड्इन जैसी सोशल मीडिया साइट, रोजगार का एक प्रमुख स्रोत बन गयी है। लिंक्ड्इन और कंपनी की वेबसाइटों का उपयोग करके 89 प्रतिशत से अधिक नये लोगों की भर्ती की जाती है।

**टिप्पणी**

ट्विटर 140 लिपि–संकतो वाली असीमित जानकारियों की दुनिया है। यह आपको दुनिया और आपकी रुचि के बारे में जानकारी देता है।

व्यापार के लिये सोशल मीडिया का प्रयोग बेहद फायदेमंद है। इसका प्रभावी उपयोग समग्र विपणन लागत को कम करने में मदद करता है। ऑनलाइन सफलता सोशल मीडिया के प्रभावी उपयोग के साथ आती है। सोशल मीडिया से आप संभावित ग्राहकों को संगठित कर सकते हैं और अपने व्यापार में वृद्धि कर सकते हैं। हाल ही में सोशल मीडिया परीक्षकों ने सोशल मीडिया मार्केटिंग के महत्व को समझने के लिये 3,000 से अधिक उत्तरदाताओं का सर्वेक्षण किया है। 89 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि सोशल मीडिया मार्केटिंग से व्यापार को बढ़ावा मिला है। 64 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नेतृत्व पीढ़ी में वृद्धि देखी और 62 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि उनकी साइटों के सर्च इंजन श्रेणी में सोशल मीडिया का उपयोग करने से लगभग दो साल से अधिक समय से काफी सुधार हुआ है।

## सोशल मीडिया के नुकसान

सोशल मीडिया को आजकल हमारे जीवन पर सबसे हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारकों में से एक माना जाने लगा है, और इसका गलत उपयोग करने से बुरा परिणाम सामने आ सकता है। सोशल मीडिया के कई नुकसान और भी हैं, जैसे :

**साइबर बुलिंग**– कई बच्चे साइबर बुलिंग के शिकार बने हैं, जिसके कारण उन्हें काफी नुकसान हुआ है।

**हैकिंग**– व्यक्तिगत डेटा का नुकसान, जो सुरक्षा समस्याओं का कारण बन सकता है तथा आइडेंटिटी और बैंक विवरण चोरी जैसे अपराध, जो किसी भी व्यक्ति को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

**बुरी आदतें**– सोशल मीडिया का लंबे समय तक उपयोग, युवाओं में इसकी लत का कारण बन सकता है। बुरी आदतों के कारण महत्वपूर्ण कार्यों जैसे अध्ययन आदि से ध्यान भटक सकता है। लोग इससे प्रभावित हो जाते हैं तथा समाज से अलग हो जाते हैं और अपने निजी जीवन को नुकसान पहुंचाते हैं।

**घोटाले**– कई गर्हित उद्देश्यों वाले लोग, कमजोर या सीधे उपयोगकर्ताओं की तलाश में रहते हैं, ताकि वे घोटाले कर उनसे लाभ कमा सके।

**रिश्ते में धोखाधड़ी**– हनीट्रैप्स और अश्लील एमएमएस सबसे ज्यादा ऑनलाइन धोखाधड़ी का कारण हैं। लोगों को झूठे प्रेम–प्रंसगों में फंसा कर धोखा दिया जाता है।

**स्वास्थ्य समस्याएं**– सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग आपके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बड़े पैमाने पर प्रभावित कर सकता है। अक्सर लोग इसके अत्यधिक उपयोग के बाद आलसीपन, वसा में वृद्धि, आंखों में जलन और खुजली, दृष्टि के नुकसान और तनाव आदि का अनुभव करते हैं।

**सामाजिक और पारिवारिक जीवन का नुकसान**– सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग के कारण लोग परिवार तथा समाज से दूर, फोन जैसे उपकरणों में व्यस्त हो जाते हैं।

## युवाओं पर सोशल नेटवर्क का प्रभाव

इन दिनों सोशल नेटवर्किंग साइटों से जुड़े रहना सबको पसंद है। कुछ लोगों का मानना है कि यदि आप डिजिटल रूप में उपस्थित नहीं हैं, तो आपका कोई अस्तित्व नहीं हैं। सोशल नेटवर्किंग साइटों पर उपस्थिति का बढ़ता दबाव और प्रभावशाली प्रोफाइल, युवाओं को बड़े पैमाने पर प्रभावित कर रहे हैं। आंकड़ों के मुताबिक एक सामान्य किशोर द्वारा प्रति सप्ताह औसत रूप से 72 घंटे सोशल मीडिया का उपयोग किया जाता है, ये चीजें अन्य कार्यों के लिये बहुत कम समय छोडती हैं, जिनके कारण उनके अदंर गंभीर समस्याएं पैदा होने लगती हैं, जैसे अध्ययन, शारीरिक और अन्य फायदेमंद गतिविधियों में कमी, न्यूनतम ध्यान, चिंता और अन्य जटिल मानसिक समस्याएं। अब हमारे पास वास्तविक मित्र की तुलना में अप्रत्यक्ष मित्र सबसे अधिक होते जा रहे हैं, और हम दिन प्रतिदिन एक–दूसरे से संबंध खोते जा रहे हैं। इसके साथ ही अजनबियों, यौन अपराधियों को अपनी निजी जानकारियां दे बैठना आदि भी कई खतरे हैं।

## सोशल मीडिया और विश्वसनीयता का प्रश्न

संचार क्रांति के इस युग में सोशल मीडिया ने जिस प्रकार दस्तक दी, उसने प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए भी नई चुनौती खड़ी कर दी है। मीडिया जगत में सोशल मीडिया ने अचानक अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज कर हड़कंप मचा दिया। जो लोग मीडिया की अतिरंजना से ऊब गए थे, मोबाइल पर सहज उपलब्ध सोशल मीडिया की खरी–खरी खबरों पर पूर्ण विश्वास करने लगे। परंतु जिस तरह मीडिया की विश्वसनीयता पर सवाल खड़े हैं उसी तरह आम जनता के लिए सोशल मीडिया पर भी पूर्ण विश्वास कर पाना संभव नहीं हो पा रहा है। सोशल मीडिया पर कई बार खबरों को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है और उनके संदर्भ बदल दिए जाते हैं। कुछ लोग इसे व्यक्तिगत राय थोपने का मंच अथवा आपसी भड़ांस निकालने का माध्यम भी बना रहे हैं। ऐसी बात नहीं है कि सोशल मीडिया की खबरें विश्वसनीय नहीं होती, खबरों का तीव्र प्रसार इसी माध्यम से होता है, मगर बिना सामाजिक जिम्मेदारी के कोई भी खबर पोस्ट कर देना और उसे फॉरवर्ड करते जाना सोशल मीडिया का सबसे अधिक अविश्वसनीय पहलू है।

## सोशल मीडिया और हिंदी

आजकल जब लगभग हर चीज को सोशल मीडिया में उसकी उपस्थिति से नापा जा रहा है, हर संस्था, व्यक्ति, सरकार, कंपनी, साहित्यकर्मी से समाजकर्मी तक और नेता से अभिनेता तक को सोशल मीडिया में उसके वजन, प्रभाव और लोकप्रियता की कसौटी पर तोला जा रहा है, यह स्वाभाविक है कि इस नयी तकनीकी–सामाजिक शक्ति और भाषा के संबंध को भी हम समझने की कोशिश करें। शुरू में हम कुछ बुनियादी बातों की चर्चा करेंगे।

यह सोशल मीडिया भी अंततः एक तकनीकी चीज है। हर तकनीकी आविष्कार निरपेक्ष होता है। यानी हर तरह के काम के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा। इसलिये हर तकनीकी आविष्कार की तरह इसके दुरुपयोग पर

टिप्पणी

हमें ज्यादा आश्चर्य नहीं होना चाहिये। हर वैज्ञानिक या तकनीकी आविष्कार, यदि वह एक व्यापक समाज के लिये रोचक या उपयोगी है, अपनी एक नयी जगह बना लेता है। और जब यह नयी तकनीक संवाद और संप्रेषण से जुड़ी हो, तो स्वाभाविक है कि वह अपनी विशिष्टताओं के साथ संवाद और संप्रेषण के नये–पुराने तरीकों, उपकरणों और तकनीकों को कुछ विस्थापित करके ही अपनी जगह बनाती है।

जब प्रिंट आया तो वाचिक संवाद की सर्वव्याप्तता घटी। जब रेडियो आया, तो उसने लिखित और मुद्रित माध्यम को थोड़ा खिसका कर अपनी जगह बनायी। जब टेलीविजन आया तो बहुत से लोगों ने मुद्रित माध्यम के अवसान की घोषणा कर दी। उसका अवसान तो नहीं हुआ, लेकिन उसके विकास, प्रभाव और राजस्व पर सीधा प्रभाव पड़ा और आज भी पड़ता ही जा रहा है। अब सोशल मीडिया नाम के इस नये तंत्र ने संचार माध्यमों की दुनिया को फिर बड़े बुनियादी ढंग से बदल दिया है। यह प्रक्रिया जारी है और कहां जाकर स्थिर होगी, यह कोई नहीं जानता। लेकिन इन नये संप्रेषण मंचों और पुरानों में एक बुनियादी अंतर है।

अखबार, पुस्तकों, पत्रिकाओं, रेडियो और टीवी से अलग इस माध्यम की संवाद क्षमता इसे शायद इन सबसे ज्यादा निजी, आकर्षक, अंतरंग और इसलिये शक्तिशाली बनाती है। दूसरे माध्यम एकदिशात्मक थे। यह नया माध्यम अंतःक्रियात्मक है, आपसी संवाद संभव बनाता है। अब जब यह डेस्कटॉप कंप्यूटरों, लैपटॉपों से निकल कर मोबाइल फोन पर आ गया है, तो सर्वव्यापी, सर्वसमय, सर्वत्र और सर्वसुलभ हो गया है। इसने राजनीतिक रणनीतियों, विमर्श और चुनावी नतीजों में अपनी जगह बनायी है। कंपनियों और उनके उत्पादों, सेवाओं के प्रचार–प्रसार, उपभोग, मार्केटिंग और ग्राहकों तक पहुंचने, उन्हें छूने के तौर–तरीकों को बदला है। व्यापार, उद्योग, शासन, मनोरंजन, राजनीति और मीडिया जगत के लोगों के लिये तो ये मंच महत्वपूर्ण है ही।

दरअसल भाषा के दो प्रमुख आयाम हैं। एक, उसका शुद्ध भाषिक आयाम जिसमें उसके शब्दों, वाक्य रचना, व्याकरण, शब्दकोश आदि पर ध्यान रहता है। दूसरा, भाषा का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सन्दर्भ, जिसमें उसके इन सन्दर्भों में प्रयोग, परिवर्तनों, अर्थों, प्रभावों आदि पर ध्यान होता है। आज संसार की लगभग हर भाषा पर सोशल मीडिया के प्रभाव को महसूस किया जा रहा है, उसे समझने की कोशिश हो रही है और विमर्श हो रहा है। इस नये माध्यम ने हर नये माध्यम की तरह हर भाषा के प्रयोग के तौर–तरीकों, शब्दकोश, शैली, शुद्धता, व्याकरण और वाक्य रचना को प्रभावित किया है। यह असर लिखित ही नहीं, बोलने वाली भाषा पर भी दिख रहा है।

जब ईमेल आया तो कहा गया कि पत्र लिखना ही समाप्त हो जाएगा। वह तो नहीं हुआ, लेकिन हाथ या टाइपराइटर से पत्र लिखने का चलन जरूर खत्म हो गया। पर बात यहीं तक नहीं है। अब एसएमएस, ट्विटर, फेसबुक और वाट्सएप ने बहुत से लोगों के लिये ईमेल को भी अनावश्यक और अप्रासंगिक बना दिया है। सोशल मीडिया ने अपनी एक नई भाषा गढ़ ली है। भाषा और शब्दों के सौंदर्य, मर्यादा, गरिमा और स्वरूप की चिंता करने वाले सभी इस नयी भाषा के प्रभाव और भविष्य पर तो चितिंत हैं ही, इस पर भी हैं कि इस खिचड़ी, विकृत, कई बार अटपटी भाषा की खुराक पर पल–बढ़ रही किशोर और युवा पीढ़ी वयस्क होने पर किसी भी एक भाषा में सशक्त और प्रभावी संप्रेषण के योग्य बचेगी या नहीं।

**टिप्पणी**

यह खतरा इसलिए भी गंभीर होता जा रहा है, कि नयी पीढ़ियां पाठ्य–पुस्तकों के अलावा कुछ भी गंभीर, स्वस्थ, विचारपूर्ण लेखन, साहित्य, वैचारिक पठन से लगातार दूर जा रही हैं। अच्छी, असरदार भाषा अच्छा पढ़ने से ही आती है। अच्छी भाषा के बिना गहरा, गंभीर विचार, विमर्श, चिंतन और ज्ञान–निर्माण संभव नहीं। वे पीढ़ियां जो विद्यालयों की मजबूरन पढ़ाई के बाहर केवल या अधिकांशतः यह खिचड़ी और भ्रष्ट भाषा ही पढ़ लिख रही हैं, उसकी बौद्धिक क्षमताएं ठीक से विकसित होंगी कि नहीं? अगर हमारे भावी नागरिक गंभीर चिंतन और विमर्श में सक्षम ही नहीं होंगे, तो उसका उनके विकास के अवसरों और व्यापक सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, बौद्धिक, राजनीतिक विकास पर कैसा असर पड़ेगा, इस पर अभी हमारे बौद्धिक समाज, सरकार और नीति–निर्माताओं का ध्यान बहुत कम गया है।

सोशल मीडिया का असर बस नकारात्मक ही नहीं है। ट्विटर जैसे मंचों की शब्दसीमा ने अपनी बात को चुस्त और कम से कम शब्दों में कहने के अभ्यास को संभव बनाया है। सोशल मीडिया ने सार्वजनिक अभिव्यक्ति और एक बड़े समुदाय तक निडर और बिना रोक–टोक और नियंत्रण के अपनी बात, अपनी सोच और अनुभव पहुंचाना संभव बना कर करोड़ों लोगों को एक नयी ताकत, छोटी बड़ी बहसों में भागीदारी का नया स्वाद और हिम्मत दी है। इस नयी ताकत ने सरकारों और शासकों को ज्यादा पारदर्शी, संवादमुखी और जवाबदेह बनाया है, जनता के मन और नब्ज को जानने का नया माध्यम दिया है। सोशल मीडिया की ताकत ने सरकारों को अपने फैसलों, नीतियों और व्यवहारों को बदलने पर भी मजबूर किया है। पर क्या इस मीडिया ने लोक–विमर्श को ज्यादा गंभीर, गहरा, व्यापक, उदार बनाया है? क्या जब करोड़ों लोग एक साथ इतना लिख– बोल रहे हैं तो इन मंचों पर सार्वजनिक विमर्श की गुणवत्ता बढ़ी है, स्तर बेहतर हुआ है? इस पर दो टूक राय देना संभव नहीं, क्योंकि संसार में कुछ भी एकांगी, एकदिशात्मक नहीं होता।

### अपनी प्रगति जांचिए

1. आकाशवाणी ने 'युगवाणी' कार्यक्रम का प्रसारण कब आरंभ किया?
   (क) 15 अगस्त, 1947  (ख) 31 जुलाई, 1969
   (ग) 26 जुलाई, 1950  (घ) 6 जून, 1970
2. संचार के मुख्य कार्यों में इनमें से क्या शामिल नहीं है?
   (क) कानून व्यवस्था बनाए रखना  (ख) सामाजीकरण
   (ग) मनोरंजन  (घ) बिक्री विज्ञापन

## 2.3 टूटते हुए (एकांकी संग्रह) : सुरेश शुक्ल चन्द्र

टूटते हुए एंकाकी संग्रह के नाट्य साहित्य पर चर्चा करने से पूर्व लेखक के संक्षिप्त जीवन–वृत्त एवं कृतित्व से अवगत हो लेना समीचीन होगा।

## 2.3.1 सुरेश शुक्ल चन्द्र का परिचय एवं कृतित्व

टिप्पणी

सुरेश शुक्ल चन्द्र का जन्म 10 फरवरी, सन् 1954 को भारत में हुआ। इनकी राष्ट्रीयता नार्वे की है। आपने सन् 1985 में नॉर्वेजियन स्कूल ऑफ जर्नलिज्म से स्नातक किया। ग्राफिक कला में अतिरिक्त शिक्षा भी आपने प्राप्त की है। शुक्ल जी ने हिन्दी और नॉर्वेजियन में शैलीगत गीत, लघु कहानी और गद्य विधा में और भी अनेकानेक रचनाएं की हैं।

सुरेश जी ओस्लो में प्रकाशित द्विभाषी बहु–सांस्कृतिक पत्रिका 'स्पिल' के सन् 1988 से सम्पादक हैं। आप सन् 2003 से सन् 2007 तक ओस्लो में नगर परिषद के डिप्टी सदस्य भी रहे हैं।

सुरेश शुक्ल चन्द्र का एक और नाम शरद आलोक है लेकिन ओस्लो की सड़कों पर जो भी उन्हें जानता है वह उन्हें शुक्ला जी ही कहता है। हिंदी और नार्वेजी भाषा के पत्रकार और साहित्यकार होने के अलावा सुरेश शुक्ल नार्वे की राजनीति में भी दखल रखते हैं। ओस्लो की नगर पार्लियामेंट में सोशलिस्ट लेफ्ट पार्टी (एस वी) की ओर से सदस्य रह चुके हैं। 2007 में ओस्लो टैक्स समिति के सदस्य थे और 2005 में हुए पार्लियामेंट के चुनाव में सोशलिस्ट लेफ्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में राष्ट्रीय चुनाव में शामिल हो चुके हैं। नार्वेजियन जर्नलिस्ट यूनियन और इंटरनैशनल फेडरेशन और जर्नलिस्ट्स के सदस्य हैं। इसके अलावा बहुत सारे भारतीय और नार्वेजी संगठनों के भी सदस्य हैं। डेनमार्क और कनाडा के कई साहित्यिक संगठनों से जुड़े हुए हैं। अपनी ही कहानियों पर आधारित टेलीफिल्म, तलाश, नार्वे और कनाडा की संयुक्त फिल्म 'कनाडा की सैर', आतंकवाद पर आधारित हिंदी लघुफिल्म 'गुमराह' बना चुके हैं। एक शिक्षाविद के रूप में भी उनकी पहचान है। ओस्लो विश्वविद्यालय, कोपेनहेगन विश्वविद्यालय, अमरीका का कोलंबिया विश्वविद्यालय और महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में आमंत्रित किये जा चुके हैं। नार्वे की कई साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं में महत्वपूर्ण पदों पर हैं।

साहित्यकार के रूप में भी सुरेश शुक्ल चन्द्र 'शरद आलोक' जाने माने नाम हैं। 1996 में उनका पहला कहानी संग्रह छपा था, अब तक कहानियों के कई संकलन वे संपादित कर चुके हैं। नार्वे के सबसे नामवर साहित्यकार हेनरिक इब्सेन के 1945 के बाद के साहित्य का उन्होंने गहराई से अध्ययन किया है। ओस्लो विश्वविद्यालय के छात्र के रूप में उन्होंने इसी विषय पर विशेष अध्ययन किया था। नार्वे के साहित्य खासकर इब्सेन के लेखन का सुरेश शुक्ल ने अनुवाद भी खूब किया है।

### प्रयोगशील नाटककार

सुरेशचन्द्र शुक्ल एक प्रयोगशील नाटककार हैं। दस वर्ष तक एकांकी लेखन करने के पश्चात् आप नाटकों की ओर मुड़े। 1970 के बाद आपका आदर्शवादी दृष्टिकोण कुछ हद तक यथार्थवादी हो गया था। यथार्थवादी होने पर आपने वस्तु एवं शिल्प के संबंध में नये प्रयोग किये हैं। आपके 'स्वप्न का सत्य', 'टूटते हुए' तथा 'प्रत्यावर्तन' एकांकी संकलन प्रकाशित हुये हैं। प्रत्येक संकलन में दस एकांकी संकलित हैं।

1977 में प्रकाशित 'टूटते हुए' संकलन के टूटते हुए में आधुनिक नारी की विघटनकारी वृत्ति को उभारने का प्रयत्न किया गया है। आपके एकांकियों में

एकांकी–शिल्पकला का पूर्ण निर्वाह हुआ है। प्रायः सभी एकांकियों में संकलन त्रय का निर्वाह हुआ है– स्थान, काल और वस्तु का संकलन और फलतः इनमें एकांकी के शिल्प और अभिनेयता का सुन्दर समन्वय है। संवाद छोटे–छोटे और व्यंजनापूर्ण हैं।

**टिप्पणी**

अपनी एकांकियों में भाषा की शुद्धता का विशेष ध्यान रखा है। उनकी भाषा बोल–चाल और युगबोध से सम्पृक्त है। सरल मंचीय उपकरणों का उपयोग तथा निर्देशकों और अभिनेताओं के लिए निर्देश आदि का विचार किया गया है। आपकी सबसे बड़ी विशेषता गहन जीवन दर्शन और नाटकीय स्थितियों की सूक्ष्म पहचान है। इन विशेषताओं के कारण एकांकी उल्लेखनीय बने हैं। प्रत्येक एकांकी किसी–न–किसी प्रमुख समस्या को लेकर, जीवन एवं समाज की किसी उलझनों की ओर संकेत कता है।

सुरेशचन्द्र शुक्ल के अब तक बीस पूर्णाकार नाटक, तीस एकांकी, एक उपन्यास, दो कविता संग्रह, चार समीक्षा, ग्रंथ और आत्मकथा प्रकाशित हो चुकी हैं। सन् 1960 तक वे सभी विधाओं में लिखते रहे। इसके बाद उन्होंने विशेष रूप से नाटक में अपने को केन्द्रित किया और विशिष्ट स्थान बनाया। वृहत्तर मानव मूल्यों की स्थापना एवं विश्वकल्याण की भावना को लेकर चलने के कारण सुरेशचन्द्र शुक्ल अपने समकालीन नाटककारों में एक अलग पहचान रखते हैं तथा इसी विशेषता के कारण समकालीन नाट्य परिदृश्य में अपनी अमिट छाप छोड़ने में समर्थ हैं।

## सुरेशचंद्र शुक्ल की रचनाएं

**कविता** : (हिंदी में): वेदना, रजनी, नंगे पांवों का सुख, दीप जो बुझते नहीं, संभावनाओं की तलाश, नीड़ में फंसे पंख, गंगा से ग्लोमा तक और 'एकता के स्वर' (नार्वेजीय में): फ्रेममेदे फ्यूगलेर और मेल्लुम लिनयेने

**उपन्यास** : गंगा को वापसी

**कहानी संग्रह** : तारूफी खत, अर्धरात्रि का सूरज, सरहदों के पार.

**नाटक** : जागते रहो, अंतर्मन के रास्ते

**अनुवाद** : नार्वे की लोककथाएं, एच.सी. अन्दर्ससन (डेनमार्क) की कथाएं, हेनरिक इबसेन कृत नार्वेजीय नाटक : गुड़िया का घर, मुर्गाबी, समुद्र की औरत, क्नुत हामसुन कृत

**उपन्यास** : 'भूख' का हिंदी में मूल भाषा से अनुवाद किया।

**संकलन** : प्रतिनिधि प्रवासी कहानियां, नार्वे की उर्दू कहानियां, स्कैंडिनेविया (नार्वे, स्वीडेन और डेनमार्क) का हिंदी काव्य और कथा साहित्य (कार्यरत), नार्वेजीय कविताएं (कार्यरत), समसामयिक प्रवासी कहानियां (कार्यरत), बीसवीं सदी की प्रवासी कहानियां (कार्यरत)।

**संपादन** : (पत्र–पत्रिकाएं) श्रमांचल, परिचय, वैश्विका, स्पाइल–दर्पण और www.speil.no

**सम्प्रति** : पत्रकार, आकेर्स आवेस ग्रूरुददालेन (नार्वेजीय भाषा का पत्र), ओस्लो, नार्वेः यूरोप सम्पादक, देशबंधु राष्ट्रीय दैनिक, नई दिल्ली।

### पुरस्कार और सम्मान

टिप्पणी

1998 में उत्कल युवा सांस्कृतिक संघ, कटक (उड़ीसा) ने 'नाट्य–भूषण' की उपाधि से विभूषित किया। हिंदी संवाहक सम्मान, विश्व हिंदी समिति, न्यूयार्क, अमेरिका (1998). विदेशों में हिंदी भाषा और साहित्य सेवा के लिए 'विश्व हिंदी सम्मान' हिन्दी अकादमी दिल्ली (2000)। नार्वेयीय लेखक यूनियन, ओस्लो, नार्वे (2001)। सन् 2008 में म.प्र. शासन का 'हरिकृष्ण प्रेमी पुरस्कार' प्रदान किया गया। हिंदी प्रचारक शताब्दी सम्मान, नाथद्वारा, राजस्थान (2009)। उत्तर प्रदेश राज्य कर्मचारी साहित्य संस्थान, लखनऊ द्वारा सम्मानित (2013)

## 2.3.2 नाट्य साहित्य और सुरेश शुक्ल चन्द्र की नाट्य अभिव्यंजना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता है। समाज भी अलग–अलग प्रकार के और अलग–अलग स्तर के होते हैं। जिस भी जैसे भी समाज में मनुष्य रहता है–उसका प्रभाव उसके ऊपर गाहे–बगाहे पड़ता ही है।

लेखक भी सामाजिक प्राणी है, वह भी समाज में जीता है। तरह–तरह के अनुभव करता है। अपने समाज के परिवेश के अतिरिक्त भी वह अन्य मानवीय समाजों के विषय में भी पढ़ता है, सुनता है, उन्हें देखता है और भोगता भी है और उनसे प्रभावित होकर वह अपना लेखन भी करता है। चाहे वह विधा कोई भी हो, किन्तु उसके विचार, उसके अनुभव, उसके अहसास को लेकर, अपने हिसाब से वह साहित्य का सृजन करता है। उसके साहित्य को पाठक पढ़ते हैं। अपनी राय बनाते हैं। समीक्षक समीक्षा भी करते हैं।

वस्तुतः साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। जिस भी समय, देश और काल में जो भी साहित्य रचा गया, तत्कालीन लेखक उस समय के समाज को अपने–अपने तरीके से, अपनी–अपनी भाषा, शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास करता प्रतीत होता है।

अब जहाँ तक नाटक विधा का प्रश्न है–इस विधा को गद्य और पद्य दोनों ही श्रेणियों में रख सकते हैं क्योंकि किसी भी नाटक में गद्य–पद्य दोनों ही विधाओं का प्रयोग किया जा सकता है। यह नाटक की विषय–वस्तु और चरित्र–चित्रण पर निर्भर करता है।

नाटक लेखकों ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, असामाजिक तत्त्वों की भ्रष्टाचारी नीतियों को लेकर भी नाटक रचे हैं। समय–समय पर समाज, परिवार के प्रेम और तोड़ा–टूटन को लेकर भी नाटक लिखे गए हैं।

जैसा कि सब जानते हैं कि भारतेन्दु युग के नाटकों में ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाओं के आधार पर उस समय के समाज की समस्याओं को लेकर नाटक रचे गए। भारतेन्दुयुगीन नाटककारों में कुछ प्रमुख रहे हैं–देवदत्त मिश्र, अंबिकादत्त व्यास, देवकीनंदन त्रिपाठी, काशीनाथ खत्री, पंडित जगत नारायण, राम गरीब चौबे आदि–आदि।

जयशंकर प्रसाद तथा उनके समय के नाटककारों ने भारतेन्दु युगीन नाटकों की भाँति ही अपने नाटकों में समाज की तत्कालीन समस्याओं को लेकर नाटक रचे हैं। इस युग के प्रमुख कुछ नाटक लिखने वाले रहे हैं–प्रसाद, लक्ष्मी नारायण, प्रेमचंद्र, जगननाथ प्रसाद चतुर्वेदी, गोविन्द बल्लभ पंत आदि–आदि। वस्तुतः देखा जाए तो सामजिक समस्याओं को लेकर जो नाटकों की शुरूआत मानी जाती है वह भारतेन्दु के समय से ही मानी जाती है।

स्वातंत्र्योत्तर युग में नाटककारों ने सामाजिक विषयों को अपनाकर जनता के बीच नाटक रखें। ऐसे नाटक लेखकों में भगवती चरण वर्मा, अभय कुमार, विष्णु प्रभाकर, शंभुनाथ सिंह, नरेश मेहता और लक्ष्मीनारायण लाल आदि–आदि प्रमुख रहे हैं। इस युग के नाटक लिखने वाले लेखकों की तरह ही साठोत्तर में भी सामाजिक समस्याएं भी नाटकों की विषय– वस्तु/कथा वस्तु विशेष रही। इस काल में मानव जीवन के प्रत्यक्ष पहलुओं को नाटक की विषय वस्तु बनया गया। ऐसे नाटक लेखकों में नरेश नाटक की विषय वस्तु बनाया गया। ऐसे नाटक लेखकों में नरेश मेहता, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश, हबीब तनवीर, शरद् जोशी, मणि मधुकर, सुदर्शन चोपड़ा, गिरीश कर्नाड़, भीष्म साहनी, रेवतीरमण शर्मा, मृणाल पाण्डेय, गोविन्द चातक, ब्रजमोहन शर्मा और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि–आदि रहे हैं।

सुरेश शुक्ल चन्द्र ने 'टूटते हुए' में मध्यमवर्गीय परिवार की टूटन को दर्शाया है। आपने अपने नाटकों में समाज, परिवार यहाँ तक कि राजनीति में फैले भ्रष्टाचार को भी मुद्‌दा बनाया है। अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने दर्शकों, पाठकों के समक्ष अपनी बात रखनी चाही है।

सुरेश शुक्ल चन्द्र जी के सामाजिक नाटकों में प्रमुख हैं–'लड़ाई जारी है', 'बदलते रूप', 'भावना के पीछे', 'शादी का चक्कर' और 'आकाश झुक गया' आदि।

### 1. 'लड़ाई जारी है'

आज हमारे सामाजिक मूल्यों को, भ्रष्टाचार और घूसखोरी का दानव निगलता जा रहा है। 'लड़ाई जारी है', पूँजीवादी मानसिकता को तोड़ने वाला, जन चेतना और दायित्वबोध का नाटक है।

- **कथावस्तु**

नेताजी सुबह–सुबह अगरबत्ती जलाकर गाँधीजी की तस्वीर की पूजा करते हैं। गाँधीजी उनके आदर्श हैं और वे जनता के सम्मुख उनके आदर्श पर चलने का दिखावा करते हैं। उसी समय उनके मित्र सेठजी उनसे नई उल्लू निर्माण फैक्टरी डालने के लिए सरकार से अनुमति दिलाने को कहते हैं। नेताजी इस कार्य के लिए सेठजी से बड़ी रकम माँग लेते हैं। इस प्रकार उन्हें सरकार से फैक्टरी लगाने की अनुमति मिल जाती है। सेठजी धर्म की आड़ लेकर पैसा कमाने का रास्ता खोजते हैं। इसके लिए वे मीडिया के जरिए यह विज्ञापन देते हैं कि लक्ष्मी की सवारी उल्लू को पूजने से धन की प्राप्ति होती है। और अपने सोने–चाँदी के बने उल्लू की मूर्ति को बेचते हैं। उसी के साथ–साथ वे मिलावट का धंधा भी शुरू कर देते हैं। यह सब नेताजी के नाक के नीचे होता है।

लोकसभा का चुनाव जब नजदीक आता है तब नेताजी को चिंता सताती है, क्योंकि उनके विरोधी नेता मेवालाल के जीतने का अवसर ज्यादा था। युवा वर्ग उनसे नाराज था। इसी बीच सेठजी की मिलों में छापे पड़ते हैं। वे अपना सारा माल मिल से निकालकर अपने मित्र नेताजी के घर रखवा देते हैं। ताकि कोई शक न कर सके। इस एवज में नेताजी को पैसे देकर बच जाते हैं। अब मेवालाल को पता पड़ता है तो वे उनका भंडा फोड़ने में लगे रहते हैं। नेताजी मेवालाल को ठिकाने लगा देते हैं। उधर नेताजी की बेटी बिन्नी और बेटा ऋषि अपने पिता को चुनाव में जीताने के लिए उनके मित्र विकास से सहायता माँगते हैं।

टिप्पणी

नेताजी की साफ छवि न होने के कारण वह सहायता करने से मना कर देते हैं। नेताजी छल–कपट करके लोकसभा का चुनाव जीत जाते हैं। इसी बीच विकास नेताजी के घर उनकी बेटी बिन्नी से मिलने आता है। नेताजी और उसमें तू–तू, मैं–मैं हो जाती है। तब विकास नेताजी की भ्रष्टाचारी नीतियों का बखान करता है। यह सुनकर नेताजी अपना माथा पकड़कर बैठ जाते हैं और भविष्य में विकास उनके साथ लड़ाई जारी रखकर भ्रष्टाचार का नामोनिशान मिटाने का आगाज करके चला जाता है।

### 2. बदलते रूप

'बदलते रूप' नाटक सामाजिक नाटकों के अंतर्गत आता है। इस नाटक में पारिवारिक विघटन को एक प्रतिक्रिया के रूप में दर्शाया गया है।

- **कथावस्तु**

प्रदीप दिन–रात अपने कार्यालय में मेहनत करता है। उसकी पत्नी संध्या हमेशा उससे शिकायत करती है कि उसने दस वर्ष के वैवाहिक जीवन में कभी सुख नहीं पाया है। न अच्छा खाने को, न अच्छा पहनने को। यह सुनकर प्रदीप को दुःख होता था और क्रोध भी आता है। संध्या अपने पति से पूछे बिना ही अपने दोस्त रवीन्द्र के साथ घूमने जाती थी। रवीन्द्र धनी घर का लड़का था। इसलिए वह संध्या पर दिल खोलकर खर्च करता था। उसका इस तरह से घूमना प्रदीप को अच्छा नहीं लगता था। वह हमेशा अपनी पत्नी को समझाता। मगर वह मानती ही नहीं। इस पर दोनों में बहुत झगड़ा होता है। प्रदीप नाराज होकर चला जाता है।

इसी बीच संध्या की पड़ोसी रीता अपना दुखड़ा सुनाने संध्या के पास आती है। उसका पति मनोज दिन–रात शराब पीता रहता है। शराब पीने के लिए वह घर के सामान और गहने बेच देता था। गहने न देने पर वह उसे बुरी तरह पीटता था। संध्या उसे सुझाव देती है कि वह मनोज का कड़ा विरोध करे और जैसे को तैसा वाली नीति अपनाए, साथ ही जो कार्य उसके पति को पसंद नहीं, उसी काम को करने को रीता से कहती है। रीता संध्या के बताए गए मार्ग पर चलती है।

इधर प्रदीप रीता के पति मनोज के पास जाकर उसे अपना दुखड़ा सुनाता है। प्रदीप की बातों को सुनकर मनोज उसे सलाह देता है कि उसे स्त्री को डरा, दबाकर रखना चाहिए। जिससे वह अपना फन न उठा सके, मनोज प्रदीप को धैर्य देने के लिए उसे शराब देता है। धीरे–धीरे प्रदीप को भी शराब की लत लग जाती है। वह दिन–रात शराब पीकर संध्या से झगड़ता रहता है। मनोज शराब पीने के लिए रीता से कान के सोने की बाली माँगता है। इस पर रीता अपना विरोध जताती है। रीता को विरोध करता देख मनोज आश्चर्य में पड़ जाता है। जब मनोज क्रोध में आकर उसे मारता है, तब रीता उसके हाथों में काट लेती है। उधर प्रदीप शराब के नशे में संध्या को गाली देकर उसे मारने को दौड़ता है। संध्या अपने पति की इन हरकतों से परेशान हो जाती है।

संध्या और रीता दोनों अपने पतियों को सही रास्ते पर लाने का उपाय सोचती हैं। इसी समय संध्या की सहेली आरती उससे मिलने आती है। संध्या उसे अपनी सारी परेशानी बयान कर देती है। संध्या की बात सुनकर आरती उसी को जिम्मेदार मानती है। और संध्या को समझाती है। उधर प्रदीप और मनोज शराब पीने लगते हैं। यह सुन–देखकर आरती और उसके पति प्रमोद वहाँ आकर दोनों को अच्छी तरह से

समझाते हैं। उनके बार–बार समझाने पर प्रदीप और संध्या, मनोज और रीता अन्ततः हँसी–खुशी से अपना जीवन बिताने लगते हैं।

टिप्पणी

### 3. आकाश झुक गया

इस नाटक में मठ का स्वामी अपने भक्तों को अनैतिकता का उपदेश तथा भ्रष्टाचार से युक्त साधनों द्वारा सफलता प्राप्त करने का गुरु मंत्र देता है।

- **कथावस्तु**

स्वामी युगानंद अपने मठ में अपनी शिष्या वासना कुमारी से कुछ चर्चा कर रहे थे। तभी उनके पास विद्याभूषण नामक छात्र अपनी समस्या लेकर आता है। स्वामी जी से कहता है कि उसका मन पढ़ने–लिखने में नहीं लगता। वह बिना पढ़े–लिखे ही बी.ए. पास होना चाहता है। स्वामी जी उसे उपदेश देते हैं कि वह अध्यापकों को छुरा दिखाकर उन्हें धमकाए, फिर परीक्षा में नकल करे। ऐसे कार्य में शक्ति की जरूरत पड़ती है। इस शक्ति को प्राप्त करने के लिए उसे साधना कक्ष में बैठकर ''मैं'' गुरु मंत्र का जप करने को कहते हैं। उसके कुछ देर बाद रोजीलाल नामक व्यक्ति आता है, वह अपनी गरीबी से बहुत परेशान था। तीन साल से नौकरी के लिए भटक रहा था, मगर उसे नौकरी नहीं मिली। स्वामी जी उसे कल–बल–छल का उपदेश देते हैं और शक्ति प्राप्ति के लिए साधना कक्ष में बैठकर ''मैं'' मंत्र जपने को कहते हैं। रोजीलाल अंदर जाकर ''मैं'' मंत्र जपने लगता है। फिर स्वामी जी अपनी शिष्या वासना के साथ चिलम पीने में मस्त हो जाते हैं। कुछ देर बाद प्रेमकुमारी नामक युवती स्वामी जी के पास रोती–बिलखती प्रेम में धोखा खाए जाने का दुखड़ा सुनाती है। स्वामी जी उसे उपदेश देकर ''मैं'' मंत्र का जप करने को कहते हैं। वह अंदर जाकर ''मैं'' मंत्र जप करने लगती है। प्रेमकुमारी के जाने के बाद नेता सेवकराम अपनी चुनावी समस्या स्वामी जी को बताता है। स्वामी जी उसे दोहरे व्यक्तित्व में जीने, जनता को झूठे सपने दिखाने तथा हर कार्य छल से करने की सीख देते हैं। साथ में ''मैं' गुरु मंत्र जपने का उपदेश देते हैं। नेताजी यह उपदेश सुनकर वहाँ से चले जाते हैं। स्वामी जी और वासना चिलम पीने में व्यस्त हो जाते हैं। तभी एक बूढ़ा व्यक्ति रोता हुआ अपने बेटे रोजीलाल को खोजता–खोजता मठ में आ पहुँचता है। वह स्वामी जी से अपने बेटे के बारे में पूछता है। स्वामी जी बताने से मना कर देते हैं और उसे बेइज्जत करके मठ से बाहर निकाल देते हैं। उसी समय कॉलेज का अध्यापक विवेक रंजन स्वामी जी से अपनी परेशानी का हल निकलवाने के लिए आता है। वह बताता है कि उसके छात्र सदैव ही गुंडागर्दी करते हैं। स्वामी जी उसे लड़कों की चापलूसी करने तथा उन्हें परीक्षा में नकल करवाने का गलत उपदेश देते हैं और साथ में ''मैं'' मंत्र जपने को कहते हैं, जिससे ऐसे कार्य करने में शक्ति आए।

कुछ दिनों बाद नेता सेवकराम चुनाव जीत कर आता है। वह स्वामी जी से कृतज्ञता प्रकट करता है। उनके द्वारा बताए गए गुरु मंत्र की शक्ति पहचान जाता है। स्वामी जी उसे साधना कक्ष में बैठकर ''मैं'' गुरु मंत्र जपने को कहते हैं। वह अंदर जाकर मंत्र जपने लगता है। उसी समय व्यापारी कुबेरनाथ अपने व्यापार की समस्या को लेकर स्वामी जी के पास आते हैं। स्वामी जी उसे मिलावटी धंधा और नकली सामानों का व्यापार करने का उपदेश देते हैं तथा शक्ति के लिए ''मैं'' मंत्र जपने को कहते हैं। व्यापारी के जाने के बाद लेखक मसिपाल अपनी कष्टता उन्हें सुनाते हैं। वह बताता है कि उसके नाटक, कविताएँ और उपन्यास को लोग पढ़ते नहीं हैं तथा संपादक

उनकी रचना जल्दी नहीं छापते। स्वामी जी उसे उपदेश देते हैं कि वह अपनी रचनाओं में अश्लीलता को बढ़ावा दे और अपने नाम के स्थान पर लड़कियों का नाम दे। साथ में ''मैं'' मंत्र जपने को कहते हैं। मसिपाल उनकी बात मानकर वहाँ से चला जाता है।

**टिप्पणी**

प्रेमकुमारी और रोजीलाल स्वामी जी के शिष्य बनकर मठ में रहते हैं। ''मैं'' मंत्र जप करने से नेता सेवाराम को शिक्षा मंत्री का पद मिल रहा है। वह मठ में आकर साधना कक्ष में ''मैं' मंत्र जप करने लगता है। उसी समय दफ्तर का क्लर्क मौजीलाल अपनी परेशानी लेकर स्वामी जी के पास आता है। स्वामी जी उसे उपदेश देते हैं कि अधिकारियों को खुश करने के लिए उनके सामने सुंदर–सुंदर लड़कियाँ भेजे। जिससे अधिकारी खुश हो जाएं। मौजीलाल को ऐसे काम करने में बड़ी झिझक होती है। स्वामी जी उसकी झिझक मिटाने के लिए ''मैं'' मंत्र जप करने को कहते हैं। मौजीलाल साधना कक्ष में जाकर जप करने लगता है। तभी विद्याभूषण मिठाई और नारियल लेकर स्वामी जी की जय–जयकार करता हुआ आता है। क्योंकि स्वामी जी के कहे अनुसार चलने पर वह बी.ए. पास हो जाता है। वह स्वामी जी के पैर छूकर उनका आशीर्वाद माँगता है। स्वामी जी विद्याभूषण को आशीर्वाद देते हैं तभी चरणदास नामक साधू अपनी परेशानी लेकर स्वामी जी के पास आता है। वह कहता है कि आज साधुओं को न कोई मानता है, न आदर ही देता है। स्वामी जी उसे उपदेश देते हैं कि उसे ढोंगी बनकर नकली चमत्कार करने पडेंगे। जिससे लोग आकर्षित हों तथा उसे भी हिम्मत देने के लिए ''मैं'' मंत्र जप करने को कहते हैं। साधू उनकी बात मानकर साधना कक्ष में जप करने चले जाते हैं।

उसी समय मसिपाल और कुबेरनाथ खुशी से स्वामी जी की जय जयकार करते हुए आते हैं। क्योंकि दोनों स्वामी जी के बताए गए रास्ते पर चलकर सफल हो जाते हैं। स्वामी जी दोनों को साधना कक्ष में ''मैं'' मंत्र जप करने के लिए भेज देते हैं। कुछ क्षण बाद रोजीलाल का बूढ़ा पिता कुछ लोगों को लेकर मठ में घुसता है। वह स्वामी जी से अपना बेटा माँगता है। पिता की आवाज सुनकर रोजीलाल बाहर आता है और उन्हें बेइज्जत कर देता है। पिता अपने बेटे के बिगड़ने का दोष स्वामी पर लगाता है। जब वे लोग स्वामी जी को मारने के लिए आगे बढ़ते हैं तब शिष्यों की फौज के आगे वे कुछ नहीं कर पाते और वहाँ से चले जाते हैं। स्वामी जी अपने सभी शिष्यों को लेकर साधना कक्ष में मंत्र का जप करवाते हैं।

साराशतः डॉ. चंद्र ने अपने प्रायः सभी सामाजिक नाटकों में यथार्थ को प्रधानता दी है। जिससे उन्होंने मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के भिन्न–भिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया है। वर्तमान समाज के भ्रष्ट और दूषित सामाजिक तथा राजनैतिक परिवेश का पर्दाफाश किया तथा पूँजीवादी मानसिकता को तोड़कर जनचेतना और दायित्वबोध जाग्रत करने का प्रयास किया गया। साथ–ही–साथ समाज के यथार्थ चित्रण करते हुए उसे एक व्यवस्थित दिशा में मोड़ने का प्रयत्न भी किया है। आज के वैज्ञानिक तथा प्रगतिशील युग में समाज का विघटन दिखाई देने लगा है। वर्तमान शिक्षा, अधिकार स्वतंत्रता तथा बुद्धिवाद ने भी समाज के विघटन में सहयोग दिया है। इसके अतिरिक्त हमारे समाज में पारिवारिक समस्या, असामाजिक तत्व, घूसखोरी, धोखाधड़ी एवं चोरी–डकैती, लूटपाट, छीना–झपटी और आरक्षण–समस्या आदि का यथार्थ रूप डॉ. सुरेश चंद्र के नाटकों में चित्रित किया देखा जा सकता है।

समाज की विसंगति राजनैतिक और धार्मिक परिवेश की अनेक विद्रुपताओं और समस्याओं को लेकर लिखे गए नाटकों में 'बदलते रूप, 'शादी का चक्कर', 'भवना के

पीछे' तथा 'आकाश झुक गया' आदि का नाम आता है। उनके पात्र चिंतन भी करते हैं और अपने चिंतन के अनुसार कार्य करने की सामर्थ्य भी रखते हैं। सुरेश शुक्ल चन्द्र ने यह स्वीकार किया है कि नाटक अंततः दृश्य काव्य है। उसकी कसौटी मंच है। उनकी भाषा पात्रों के मनोभावों एवं विचारों को दर्शकों तक संप्रेषित करने की क्षमता रखती है। भाषा की शुद्धता पर उनका ध्यान कम ही रहा है।

अंत में यह कहना अनुचित न होगा कि डॉ. चंद्र परिवेश के प्रति सजग हैं और इस सजगता का ही परिणाम है कि उन्होंने परिवेशगत बदलाव को पहचाना है। वृहत्तर मानव मूल्यों की स्थापना एवं विश्व कल्याण की भावना को लेकर चलने वाले नाटककार सुरेश शुक्ल चन्द्र अपने समकालीन नाटक व लेखकों में अलग–थलग दिखाई पड़ते हैं।

## 2.3.3 'टूटते हुए' का विवेचनात्मक अध्ययन

साहित्य संस्थान, गांधी नगर, कानपुर से प्रकाशित प्रयोगशील स्वगत नाट्य 'टूटते हुए' में महानगर के टूटते हुए मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण है।

'टूटते हुए' संग्रह में सुरेश शुक्ल चन्द्र के 10 नाटक हैं, जो कि 'एकांकी' हैं। 'टूटते हुए' एक स्वगत नाटक है। इसके अतिरिक्त 'मुखौटे' तथा 'सही' और 'प्रतिनिधि का चुनाव' नुक्कड़ नाटक कहे जा सकते हैं। 'भावना के पीछे', 'शादी का चक्कर' और 'नई पौध' बाल नाट्य हैं।

वस्तुतः 'टूटते हुए' (एकांकी) संग्रह के सभी नाटकों को मोटे तौर पर दो वर्गो में रखा जा सकता है–

(क) मंच नाटक, और

(ख) ध्वनि नाटक

मंच नाटकों के भी निम्नांकित तीन रूप मिलते हैं–

(अ) वयस्कों के लिए

(ब) किशोरों के लिए, तथा

(स) बालकों के लिए

हिन्दी में स्वगत शैली की रचना बड़ी ही विरल है। 'शाप और वर' एकांकी के अतिरिक्त तीन एकांत के नाट्य रूपान्तर विशेष रहे हैं। कुछ और भी ऐसी ही शैली की रचनाएं हैं, लेकिन वे गिनती की ही हैं।

सुरेश शुक्ल चन्द्र का 'टूटते हुए' एकांकी इसी स्वगत शैली की रचना मानी जाती है। इसे चार एकालापों में प्रस्तुत किया गया है। इन चारों एकालापों में ऊबे हुए, नीरस और मशीनी जीवन के कारण टूटती हुए जिजीविषा का चित्रण किया गया है। दृश्यबंध तो एक ही है। चारों चरित्र बारी–बारी से मंच पर आते हैं–अपने–अपने संवाद बोलते हैं और चले जाते हैं। 'शाप और वर' नामक एकांकी में स्त्री और पुरुष दो चरित्र हैं, किन्तु संवाद केवल स्त्री के हिस्से में ही आये हैं।

तीन एकांत के तीनों एकांकी एक ही चरित्र के एकालाप हैं। लगता है, यह इस प्रकार का पहला ही प्रयोग सुरेश शुक्ल चन्द्र का रहा होगा। उन्होंने एक ही मंच का प्रयोग करके चार चरित्रों के एकालापों को शिल्पगत कौशल का सहारा लेते हुए प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वह भी एकांकी के आधार पर है।

**टिप्पणी**

इस संग्रह का एकांकी 'मुखौटे' और 'सही प्रतिनिधि का चुनाव' नुक्कड़ नाटक की मानिंद बन पड़े हैं। 'सही प्रतिनिधि का चुनाव' तो बस दो–तीन मिनट की झलक भर ही है। इसमें अशिक्षित और मूर्ख जनता के सन्दर्भ में चुनाव के औचित्य पर व्यंग्य बाण छोड़े गए हैं। तभी तो ये ध्वनि निकलती है–प्रजातंत्र मूर्खो के द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों का शासन है।

'मुखौटे' नाटक प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के उस भाग को दिखलाने का प्रयास करता प्रतीत होता है जहाँ बाहर से तो वह शिष्टता और औपचारिकता का मुखौटा लगाए हुए है, परन्तु जब भी अवसर पाता है, तब ही अन्दर के विष को निकालने से नहीं चूकता है। यह नाटक दिखावटी शिष्टता और औपचारिकता पर पड़े नकाब को नोंच फेंकने में सफल हैं। हिन्दी में भी अब कुछ नुक्कड़ नाटक लिखे जाने लगे हैं। किन्तु सुरेश जी के नुक्कड़ नाटक उनके इस संग्रह से पहले के संग्रह के नाटक 'स्वप्न का सत्य' से आगे की मंजी हुई उनकी रचना नहीं लगती। यदि दोनों संग्रह के इस प्रकार के नाटकों को गुणवत्ता के आधार पर परखा जाए तो 'टूटते हुए' एकांकी संग्रह के नाटक से पिछले संग्रह के नाटक अधिक प्रभावित करते हैं। दर्शकों को वे अनेकों अर्थो में प्रभावित करते प्रतीत होते हैं।

'टूटते हुए' एकांकी संग्रह में किशोरों और बालकों के लिए पाँच एकांकी हैं। इनमें से किशोरों की दृष्टि से 'देवी की पूजा' छत्रसाल के बालजीवन की घटना पर, और 'गुरु प्रतिज्ञा' गुरुगोविन्द सिंह जी के पुत्रों की हत्या की घटना से प्रभावित लगता है। जबकि 'गुरु दक्षिणा' एकांकी नाटक एकलव्य की कथा को आधार मानकर रचा गया लगता है। 'नींद का चक्कर' को बाल–हास्य नाटक की श्रेणी में रखा जा सकता है। जबकि 'नई पौध' एकांकी को सुधारवादी आदर्श बाल नाटक कह सकते हैं। इस नाटक में एक प्रौढ़ा स्त्री अपने सद्भाव से बालक में सद्‌गुणों को भरती है। अब जहाँ तक इन बाल और किशोरों के नाटकों की शैली, शिल्प और कथ्य की बात है तो उस दृष्टि से इनकी शैली, शिल्प और कथ्य में किसी भी प्रकार की नवीनता के दर्शन नहीं हो पाते हैं। और बाल एकांकी नाटकों की तरह ही ये भी बन पड़े हैं। सभी साधारण ढंग के हैं। इन सभी एकांकी नाटकों में बालकों की प्रतिभा का उपयोग किसी भाँति भी सम्भव नहीं लगता। बाल दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करने में भी ये नाटक सफल नहीं माने जा सकते हैं। कारण, सुरेश शुक्ल चन्द्र प्रयोगशील नाटक लेखक रहे हैं। ऐसे में यही आशा की जा सकती है कि इन नाटकों की प्रतिक्रिया को दृष्टि में रखते हुए आगे इस श्रेणी के जो वे नाटक तैयार करेंगे, उनमें ये कमियाँ नहीं रहने देंगे। भाषा की शुद्धता पर भी ध्यान देंगे।

रेडियों पर जो नाटक प्रसारित किये जाते हैं, उनमें ध्वनि की प्रमुख भूमिका रहती हैं। पार्श्व संगीत के अलावा भी ध्वनि का महत्त्व संवाद बोलने की दृष्टि से भी माना जाता है। संवादगत ध्वनि में उच्चारण और शब्द दोनों की ही प्रधानता रहती है। इसीलिए रेडियो नाटकों में संवादों की रचना बड़ी ही सावधानी और सतर्कता से की जानी चाहिए। ध्वनि की प्रधानता के कारण ही इन्हें ध्वनि नाटक कहा जाता है। इस दृष्टि से 'टूटते हुए' (एकांकी) संग्रह में 'भावना के पीछे' तथा 'शादी का चक्कर' दिए गए हैं। इन दोनों नाटकों को क्रमवार समझने और जानने का प्रयास करते हैं–

'टूटते हुए' के प्रमुख नाटकों पर एक दृष्टिः

टिप्पणी

## 1. भावना के पीछे

'भावना के पीछे' नाटक में नाटककार ने पति–पत्नी के सम्बन्धों के अलग–अलग पहलूओं को उभारने को प्रयास किया है।

### • कथावस्तु

रेखा बहुत ही सुंदर और स्वतंत्र विचारों वाली युवती है। वह एक दफ्तर में काम करती है। उसे पुरुषों के अधीन रहना अच्छा नहीं लगता था। पुरुष उसके अधीन रहे, यह उसे बहुत अच्छा लगता था। रेखा के पति अखिलेश को कम पढ़े–लिखे होने के कारण नौकरी नहीं मिलती। इसलिए वह घर का काम करता है। रेखा अपने पति से नौकर जैसा बर्ताव करती है और वह सब कुछ सह लेता है। अखिलेश की यह स्थिति देखकर, रेखा की सहेली उसे समझाती है कि वह अपने पति से ऐसा व्यवहार न करे। मगर वह उसकी बात को अनसुना कर देती है।

एक बार अखिलेश रेखा की साड़ी इस्तिरी करते समय साड़ी को जला देता है। यह देखकर रेखा उसे बहुत डाँटती है। उसी समय रेखा के दफ्तर में काम करने वाला उसका दोस्त उमेश वहाँ पहुँचता है। वह उमेश से कहती है कि यह अखिलेश से बड़ी परेशान है। धीरे–धीरे उमेश और रेखा में नजदीकियाँ बढ़ जाती हैं और दोनों विवाह कर लेते हैं। अखिलेश से यह दुःख सहा नहीं जाता। तब अखिलेश का मित्र गणेश उसमें साहस बाँधता है और नई नौकरी दिलाता है। उधर उमेश अपनी पत्नी रेखा को नौकरी छोड़कर घर संभालने को हिदायत देता है। मगर वह नहीं मानती। उलटे उसे घर संभालने को कहती है। इस पर दोनों का झगड़ा बढ़ता जाता है। उसके कुछ दिन बाद, रेखा की सहेली उर्मिला उससे मिलने आती है। वह रेखा को सतर्क रहने को कहती है। क्योंकि उमेश का सम्बन्ध कई लड़कियों से था। उसे यह सुझाव देती है कि वह नौकरी छोड़कर घर संभाले और उमेश को प्यार से समझाए।

अखिलेश अपनी पत्नी रेखा को अभी तक भी भूल नहीं पाया था। गणेश उसे बहुत समझाता है। उधर रेखा और उमेश में बात आगे बढ़ जाती है। उमेश किसी दूसरी लड़की से शादी कर लेता है और रेखा को अपने घर से बाहर निकाल देता है। रेखा को इस बात का दुःख होता है कि उसने अखिलेश जैसे देवता स्वरूप व्यक्ति को छोड़कर एक धोखेबाज पर विश्वास किया। वह अपने दुःख को सह नहीं पाती और जहर खाकर आत्महत्या कर लेती है।

### • सामाजिक दृष्टिकोण

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर ही वह रिश्तों के बंधन में बंधता है। इन बंधनों में उतार–चढ़ाव आते हैं। नाटककार ने इन्हें निम्नलिखित कुछ बिन्दुओं के रूप में चित्रित किया है–

### पति से नौकरों जैसा व्यवहार

समाज में अगर स्त्री को अधिकार मिल जाए तो वह पुरुषों को अपने अधीन में रखने का प्रयास करती है। ''योध समाज में स्त्री का पूर्ण रूप से अधिकार था। असभ्य

टिप्पणी

फ्यूजियन, हायदा तथा अन्य अनेक जातियों में स्त्रियों को बहुत अधिकार प्राप्त थे। भारतवर्ष की खासिया जाति में स्त्रियों का इतना अधिकार है कि यदि वे नाराज हो जाएं, तो अपने पति को घर से निकाल सकती हैं। निकारगुआ और टाहिटी की स्त्रियाँ अपने पति को घर से निकाल कर दूसरा विवाह कर लेती हैं। जब आयात जाति के लोग लड़ाई में हार कर लौटते हैं। तब स्त्रियाँ अपने पति को घर में प्रवेश नहीं करने देती।'' (स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का रोमांचकारी इतिहास, मन्मथनाथ गुप्त, पृ. 67) निकारगुआ टाहिटी स्त्रियों की भाँति रेखा अपने पति अखिलेश से नौकरों जैसा ही व्यवहार करती है, जो इस उदाहरण में दर्शाया गया है, देखें–

**रेखा** : (पति से) जाओ तब तक मेरी साड़ी और ब्लाउज प्रेस कर डालो।

**अखिलेश** : अच्छा (प्रस्थान)

**उर्मिला** : नौकर है यह?

**रेखा** : नही मेरा हसबैंड है।

**उर्मिला** : अरे मैं नहीं समझी, क्षमा करना।

**रेखा** : इसमें क्षमा की क्या बात है। आजकल तो हसबैंड को नौकर बनाकर रखना ही चाहिए।

**उर्मिला** : यह तुम क्या कह रही हो?

**रेखा** : ठीक कह रही हूँ। अब वह पुराना जमाना नहीं रहा। आदर्श के दिन लद गए।

### जीवन साथी के चयन में गंभीरता अहम

जीवन साथी को चुनने से पहले कुछ बातों पर गंभीरता से सोच–विचार जरूर कर लिया करें। ताकि दांपत्य जीवन सुखमय बना रहे। जिंदगी के सफर को सरल, खुशनुमा बनाने के लिए ऐसे हमसफर की जरूरत होती है। जो एक–दूसरे के ज़ज्बातों को समझे।

जब जीवन साथी चुनें तो अपनी नौकरी से जुड़ी बातों की विस्तार से चर्चा करें। अपने साथी की राय जानें और समझें कि नौकरी को लेकर सकारात्मक और नकारात्मक भाव रखते हैं। जीवन साथी से अगर लड़कियाँ अपनी नौकरी को लेकर गंभीर हैं तो साफ बता दीजिए कि वह विवाह के बाद नौकरी नहीं छोड़ेगी। वरना अकसर बाद में लड़की पर नौकरी छोड़ने को लेकर दबाव बनाया जाता है। इस दिशा में पूर्णता संतुष्ट होने के बाद ही निर्णय लें।

इस नाटक के कथापात्र रेखा और उमेश आपस में प्यार कर बैठते हैं। रेखा ने केवल अपने दिल की सुनी, दिमाग की नहीं। उसे उमेश के प्यार पर बड़ा भरोसा था। इसलिए उमेश के साथ चर्चा करने की जरूरत नहीं पड़ी। इसका नतीजा यह निकला कि शादी के बाद दोनों की आपस में नहीं बनी। उमेश को रेखा का दफ्तर में नौकरी करना बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता। वह रेखा पर दबाव डालता है कि वह नौकरी छोड़कर घर संभाले मगर रेखा मानती ही नहीं है। नाटक के ऐसे कुछ अंश पढ़ें–

**उमेश** : रेखा, मैंने तुमसे कई बार कहा कि अब तुम्हें सर्विस करने की आवश्यकता नहीं है।

टिप्पणी

**रेखा** क्यों?

**उमेश** : मैं तो खर्च भर के लिए पैसा पैदा ही कर लेता हूँ।

**रेखा** : इससे क्या होता है? जितना अधिक पैसा आएगा, उतना ही अच्छा होगा।

**उमेश** : लेकिन घर में भी तो काम है।

**रेखा** : तो उसके लिए एक नौकर रख लो।

**उमेश** : नहीं अपना काम अपने हाथों करना चाहिए। तुम सर्विस छोड़कर अब घर का काम करो।

**रेखा** : घर का काम मुझसे न होगा। तुम सर्विस छोड़कर घर का काम करो, मैं खर्च चला लूँगी।

**उमेश** : ऐसा नहीं हो सकता, सर्विस पुरुषों को ही करनी चाहिए।

वास्तव में जीवन साथी बनाने से पूर्व न सोचने का नतीजा ऐसा ही निकलता है। किसी भी रिश्ते को दीर्घ रखने की पहले शर्त है–आपसी विश्वास और ईमानदारी। परन्तु यह तब सम्भव है जब दोनों पक्ष सकारात्मक सोच रखते हों।

- **राजनीतिक दृष्टिकोण**

राजनीति का प्रयोग हर जगह होता है। इसी के आधार पर लोग अपना काम बनाते हैं। इसी मुद्दे को इस बिन्दु में सुरेश शुक्ल चन्द्र ने दिखाया है।

**चमत्कृत बनाए रखने की नीति**

अकसर महिलाएँ सबसे ज्यादा जागरूक अपने सौंदर्य को लेकर होती हैं। खासतौर पर अपने चेहरे को लेकर। लेकिन कई बार लोगों की दृष्टि चेहरे से फिसलकर उनकी देह पर पड़ जाती है, देह अगर मोटी हिप्पोपटॉमस के समान हो तो बहुत भद्दा लगता है। इसीलिए वह अपने चेहरे के साथ–साथ अपनी देह का भी ध्यान रखती हैं।

स्त्रियाँ अपने को चमत्कृत बनाए रखने के लिए क्या नहीं करती। आज की नारी ने अपनी सेहत और काया को लेकर सोच बदली है। वह रोज अपने स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए क्या नहीं करती है। स्त्रियों ने उम्र बढ़ने के साथ–साथ अपनी सुंदरता को बरकरार रखने का महामंत्र समझ लिया है। वह व्यायाम से अपनी उम्र पर पहरा बैठाती हैं। इसलिए स्त्रियाँ व्यायाम को महत्त्व देती हैं। जिससे उनकी देह निखर कर आकर्षक लगे। इतना ही नहीं, स्त्रियाँ इसके साथ ही कपड़ों के साथ सही मेकअप पर भी ध्यान रखती हैं। मेकअप सही न हो तो उनकी खूबसूरती कम ही नजर आती है। इसलिए वे सही कपड़ों और मेकअप के साथ अपनी देह पर ध्यान देती हैं। जिससे उनकी सुंदरता में चार चाँद लग जाएँ। ज्यादातर महिलाएँ ऐसा इसलिए करती हैं कि वे औरों से कुछ अलग लगें तथा अपने को चमत्कृत बनाए रखने से वह आकर्षण का केन्द्र लगें।

यही बात रेखा पर सही रूप से फिट बैठती है। रेखा नए जमाने के हिसाब से चलने वाली युवती है। शादी के बाद भी अपनी उम्र बढ़ने के साथ–साथ अपनी देह और मेकअप पर ध्यान देती है। वह हमेशा अपने को चमत्कृत बनाए रखती है। जिससे उसके दफ्तर के अधिकारी उसकी खूबसूरती पर मरते थे। वह अपनी अदाओं से

अधिकारियों को अपने अधीन रखती थी। जिससे यह हुआ कि वह जब चाहे आ–जा सकती थी तथा वे उसके इशारों पर नाचते थे। जो इस उदाहरण में व्यक्त है–

टिप्पणी

**रेखा** : यह तो अपनी समझ है। मैं इसी को ठीक समझती हूँ।

**उर्मिला** : (सोचते हुए) हूँ।

**रेखा** : ऑफिस तक को में डॉमिनोट करती हूँ। मेरा एम्मिडिएट बॉस तक मेरे आगे खीसें निपोरता है।

अपनी इच्छा से ऑफिस जाती हूँ, अपनी इच्छा से काम करती हूँ। क्या मजाल कोई टोक दे? मेरे फ्रैंड्स मेरे इशारों पर नाचते हैं।

रेखा जैसी औरतें अपने चमत्कृत होने का बहुत लाभ कदम–कदम पर उठाती हैं।

### • आर्थिक दृष्टिकोण

बिना सुदृढ़ आर्थिक स्थिति के परिवार की गाड़ी आगे नहीं बढ़ती है। अपनी आर्थिक स्थिति को बढ़ाने के लिए वे छोटी–से–छोटी नौकरी की तौहीन करते हैं। उसकी सजा उन्हें भुगतनी पड़ती है। इसी बात को इस बिन्दु में बताया गया है–

### नौकरी का महत्व

हमारे जीवन में नौकरी की बड़ी प्रधानता है। अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए हर मनुष्य को प्रयास करना चाहिए। अपनी शैक्षिक योग्यता के अनुसार व्यक्ति को नौकरी ढूँढनी चाहिए। उस नौकरी को पाने के लिए व्यक्ति को अच्छी तरह से कोशिश करनी चाहिए। अच्छी शैक्षिक योग्यता होने के बावजूद भी व्यक्ति को उसकी पसंद की नौकरी मिले, यह सम्भव नहीं।

व्यक्ति को उसकी शैक्षिक योग्यता के अनुसार अच्छी नौकरी न मिले तो उसे निराशा नहीं होना चाहिए। ऐसे समय में छोटी नौकरी करने का मन बना लेना चाहिए। जिससे वह छोटी नौकरी पर रहकर बड़ी नौकरी पाने का प्रयत्न करता रहे। 'कलम के सिपाही' प्रेमचंद उन्हीं में से एक हैं। पिताजी की मृत्यु के बाद परिवार भरण–पोषण का भार प्रेमचंद के कंधों पर आ गया। इसलिए पढ़ाई के साथ–साथ वे ट्यूशन भी करते थे। बाद में उन्होंने अध्यापक की नौकरी स्वीकार की। होते–होते वे स्कूल इंस्पेक्टर के पद तक पहुँच गए।'' (इंडिया टुडे, 2007, राजकिशोर, पृ. 26)

आज की युवा पीढ़ी नौकरी पाने के लिए कठिन प्रयत्न करती है। मगर नौकरी न मिलने पर वे जल्दी हताश और निराशा हो जाते हैं। इस नाटक के पात्र अखिलेश के पास शैक्षिक योग्यता थी। वह अपनी पसंद की नौकरी चाहता था। बड़ी नौकरी की कोशिश में उसने छोटी नौकरी ढूँढने की कोशिश नहीं की। हार कर वह अपनी पत्नी रेखा की कमाई पर जीने लगा। घर का सारा काम करने लगा। जरा–सी गलती पर उसकी पत्नी उसे डाँटती और उसे अपमानित करती। इसीसे संबंधित नाटक के अंश देखें–

**रेखा** : क्या हुआ? (जली हुई साड़ी देखकर) अरे! टेरलीन की नई साड़ी जला दी? (जली साड़ी अपने हाथ में लेकर देखने लगती है) यह कैसे जल गई?

**अखिलेश** : गलती हो गई।

**रेखा** : कैसे नहीं होगी? हमेशा तो यही होता है। तुझे क्या पता कि पैसा किस तरह आता है? जब सुबह से शाम तक मेहनत करती हूँ तब पैसा मिलता है। यहाँ बैठे–बैठे खाता है। तुझे किसी प्रकार की चिंता तो है नहीं।



नौकरी छोटी हो या बड़ी उसका अपना महत्त्व होता है। इसे पाने के लिए उसे अपनी कोशिश जारी रखनी चाहिए। नहीं तो ऐसी जलालत भरी जिंदी जीनी पड़ेगी।

### धार्मिक दृष्टिकोण

मनुष्य जिस ईश्वर की आराधना और वंदना करता है, वह उसे कोसता भी है। इसी बात को आधार बनाकर नाटककार ने इस बिन्दु में चित्रित किया है–

### ईश्वर को भला–बुरा कहना

ईश्वर को कोसने में दंपत्ति सबसे आगे रहते हैं। जब लड़के और लड़की आपस में प्रेम विवाह करते हैं, विवाह के पश्चात दोनों अपनी आकांक्षाओं के चलते एक दूसरे को प्राथमिकता नहीं देते। जिससे उनकी आपस में नहीं बनती और वे ईश्वर को कोसते हैं कि उसने ऐसी जोड़ी क्यों बना दी है?

कुछ दंपत्ति ऐसे हैं जो अपनी नौकरी को ज्यादा महत्त्व देते हैं जिससे उसका दुष्प्रभाव उनके जीवन पर पड़ता है। स्त्री–पुरुष को समझना चाहिए कि नौकरी और घर का वातावरण अलग–अलग होता है। दफ्तर यदि पैसा और तरक्की देता है, तो घर खुशी की बौछार करता है। इस खुशी को निरंतर बनाए रखने के लिए पति–पत्नी दोनों को ही अपनी स्वार्थपरक आकांक्षाओं को त्याग देना चाहिए। तभी यह रिश्ता सही रूप से चल पाएगा। पति–पत्नी सकारात्मक सोच रखकर एक–दूसरे को प्राथमिकता देना सीखें। अगर वे एक–दूसरे को प्राथमिकता न दें तो किसी–न–किसी एक को चोट लगती ही है। और वह ऊपर वाले को कोसता है कि ऐसी जोड़ी क्यों बनाई।

इस नाटक का पात्र अखिलेश अपनी पत्नी को प्राथमिकता देता है। मगर रेखा अपने पति से ज्यादा अपने नौकर को अहमियत देती है। रेखा अखिलेश से नौकरों की तरह व्यवहार करती है। जो उसे अच्छा नहीं लगता और वह ईश्वर को कोसता है। नाटक के अंश देखें–

**रेखा** : (पर्स लेते हुए) कपड़े प्रेस हो गए?

**अखिलेश** : कर रहा हूँ। थोड़ा–सा रह गया है।

**रेखा** : प्रेस करने के बाद जल्दी से खाना बना डालो। मुझे पिकनिक पर जाना है।

**उर्मिला** : चलो

(दोनों बाहर चली जाती हैं। अखिलेश भीतर से इस्त्री और कपड़े लाता है और उन्हें मेज पर रखकर प्रेस करने लगता है।)

**अखिलेश** : भगवान! क्या गुनाह किया था जो इस स्त्री की गुलामी करनी पड़ रही है?

टिप्पणी

नाटककार ने पति–पत्नी के बीच होने वाली खटास में किसी तीसरे का इसमें दखल देना, उनकी जिंदगी को बर्बाद कर देता है। साथ ही उन्होंने यह बताना चाहा है कि स्त्री को अगर असीमित स्वतंत्रता दी जाए तो वह सीमा में रहकर स्वतंत्रता का निर्वाह नहीं कर सकती।

### 2. शादी का चक्कर

डॉ. सुरेश शुक्ल चन्द्र द्वारा लिखित 'शादी का चक्कर' में विवाह को लूट के व्यवसाय के रूप में दिखाने का प्रयास किया गया है।

- **कथावस्तु**

रतन चालीस साल का अविवाहित काणा व्यक्ति है। उसका मन शादी करने के लिए ललचा रहा था। अपने मित्र रतन की बात जानकर राजीव ने पत्रिका में विवाह के विज्ञापन को देखकर रतन के विवाह की चर्चा कर डाली। रतन को मनोहर की बहन मोहनी बहुत पसंद आ जाती है और वह विवाह के लिए 'हाँ' भर देता है। मनोहर अपनी बहन की शादी रतन से करने से पूर्व उससे पाँच हजार रुपये की माँग करता है। मनोहर, राजीव और रतन को बताता है कि मोहनी उसकी सगी बहन नहीं है। वह उसके दूर के रिश्तेदार की बहन है। उसके माँ–बाप के जाने के बाद वह अनाथ हो गई और उसके सिर पर पाँच हजार रुपये का कर्ज है। इसी कर्ज को वह उतार नहीं पा रहा है। ये सुनकर उन्हें दुःख होता है और रुपयों का प्रबंध करने के लिए वहाँ से चले जाते हैं।

रतन के मित्र जीवन को इस बात का पता चलता है तो वह रतन को आगाह करता है कि ऐसे ठग से सावधान रहे। रतन जीवन की बातों को अनसुना कर देता है। वह अपना घर गिरवी रखकर पाँच हजार रुपये मनोहर को सौंप देता है। फिर मनोहर मोहनी की शादी रतन के साथ कर देता है। शादी के बाद मोहनी के ढंग बदल जाते हैं। वह घर का कोई काम नहीं करती। दिनभर घूमना, मौज–मस्ती करना, सिनेमा देखना और होटलों में खाना आदि क्रम कुछ दिनों तक चलता रहा। ऐसे में रतन मोहनी के खर्च को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। वह कर्जे के तले डूबता जा रहा था। उस पर वह मोहनी को समझाने लगता है, तो वह समझने को तैयार ही नहीं होती।

तब दोनों के बीच झगड़ा होता है और रतन उसे छोड़ने का मन बना लेता है। जब यह बात राजीव को पता चलती है तब वह उसे प्यार से समझाने की सलाह देता है। घर पहुँचने पर रतन के परिचित पंडित जी उसकी राह देख रहे थे। वे रतन को समझाते हैं कि ग्रहों के हेर–फेर के कारण ही पति–पत्नी में झगड़े होते हैं। इक्कीस दिन जाप करने से पारिवारिक समस्या दूर हो जाएगी। रुपए–पैसे के खर्च का ब्यौरा वे रतन को देते हैं। यह सुनकर मोहनी पंडित जी को जप करने को कहती है। पंडित जी अपनी पूजा साम्रगी निकालकर घर के बाहर जप करना शुरू कर देते हैं। रतन को यह सब अच्छा नहीं लगता वह चुप रह जाता है। मोहनी घर के अंदर चली जाती है। तभी राजीव दौड़ता हुआ आता है। वह रतन को बताता है कि मोहनी मनोहर की कुछ नहीं लगती। पैसों के लिए मनोहर ने इसका साथ दिया था। इससे पहले भी मोहनी चार पतियों को छोड़ चुकी है। यह उसकी पाँचवीं शादी है। यह सुनकर रतन को क्रोध आता है और वे दोनों मनोहर को पकड़ने के लिए जाते हैं।

मोहनी शोर सुनकर बाहर आती है। तब पंडित जी उससे कहते हैं कि उसका सारा भेद खुल गया है। इसलिए यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं है। मोहनी वहाँ से भाग जाती है। पंडित जी उसी जगह बैठकर जप करने लगते हैं। राजीव और रतन के हाथ मनोहर नहीं लगता। तब वे मोहनी को पुलिस के हाथों पकड़वाने की बात करते हैं। वे जब घर पहुँचते हैं तब मोहनी उन्हें नहीं मिलती। पंडित जी उठकर रतन से कहते हैं कि उनका जप सफल रहा। उन्हीं के जप के कारण सारी बाधा दूर हो गई। वे इसके फलस्वरूप रतन से दक्षिणा माँगते हैं। राजीव पंडित जी को गालियाँ देकर भगा देता है। रतन मन में ठान लेता है कि वह अब शादी नहीं करेगा।

### • सामाजिक दृष्टिकोण

मनुष्य समाज में रहकर ही एक–दूसरे के समीप आता है। जिससे कुछ लोगों से उसका हेल–मेल हो जाता है और उनमें से वह मित्रों का चुनाव कर लेता है। साथ ही अपना परिवार आगे बढ़ाने के लिए जीवन साथी का चुनाव भी करता है। कुछ इन्हीं मुद्दों को नाटककार ने कुछेक निम्न बिन्दुओं के रूप में चित्रित किया है, देखें–

### दाम्पत्य जीवन के लिए ललचाना

जब मनुष्य अकेला होता है तब उसे लगता है कि उसका अकेलापन दूर करने के लिए एक साथी की जरूरत है। ऐसे साथी की जो उसके सुख–दुःख में उसका साथ दे तथा जीवन में आने वाली समस्याओं, दिक्कतों, परेशानियों और खुशियों को बाँटे–ऐसे व्यक्ति की चाहत यही होती है। अपना घर, प्रेम करने वाली एक सुशील पत्नी और प्यारे–प्यारे बच्चे, ऐसी पत्नी जो दिल से अपने पति में बदलना आदि की उन्नति की कामना करती हो।

जब उसकी कामना रंग लाए तब उसके चेहरे पर रौनक हो। ऐसी पत्नी की चाहत रखने वाले व्यक्तियों का मन दूसरे व्यक्तियों के दांपत्य जीवन की खुशियों को देखकर ललचाता है। उन पति–पत्नियों में होने वाली छोटी–छोटी छुट–पुट नोंक–झोकों के बाद प्यार में बदलना आदि की चाहत वह स्वयं के जीवन में अनुभव करना चाहता है।

इस नाटक का कथा पात्र रतन ऐसी ही चाहत रखने वाला व्यक्ति है। उसकी एक आँख नहीं थी। इसकी वजह से उसकी शादी नहीं हो रही थी। दूसरे दंपत्तियों को देखकर रतन का मन विवाह करने के लिए ललचाता है। जो इस नाटक के इस अंश में चित्रित है, देखें–

**राजीव** : कैसा दर्द?

**रतन** : जब मैं सुसज्जित चहकते हुए नव परिणित दंपत्तियों को देखता हूँ तो मन मसोस कर रह जाता है। आज मोती झील पर दांपत्य जीवन की छटा देखकर मेरा हृदय रो उठा। काश में भी विवाहित होता।

**राजीव** : ओह अब समझा। अरे बस इसलिए इतने दुखी हो। आज के युग में कहीं लड़कियों की कमी है? जितने चाहो उतने विवाह करो। हूँ, तुम भी वही हो अरे यार! एक ढूँढो हजार मिलती हैं।

**रतन** : नहीं दोस्त! जिस पर बीतती है, वही जानता है। तुम तो बस हवा बाँधते हो।

टिप्पणी

## हितैषी मित्रों की सलाह न मानना

हितैषी मित्र वे हैं जो अपने मित्रों को सही राह दिखाएँ। हितैषी मित्रों की सलाह से कितने ही व्यक्ति अच्छे–से–अच्छे पद पर विराजमान हुए हैं। उन्हें कुमार्ग के दल–दल से निकाल कर सात्विकता के उच्च से उच्च शिखर पर पहुँचाया है। इतना ही नहीं इन्हीं हितैषी मित्रों की सलाह से ही उनके विवेक में परिवर्तन आया, जिससे उनका जीवन सुखमय हो गया।

हितैषी मित्र लड़खड़ाते हुए पैरों को हिम्मत बँधाते हैं। वे अपने मित्रों का बुरा न चाहकर भला ही चाहेंगे। जब भी कोई अपने हितैषी मित्र की सलाह को अनसुना कर देता है, तब वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। यही बात रतन के साथ घट जाती है, जीवन रतन को सलाह देता है कि शादी से पहले अपने भावी सहयोग के स्वभाव, उनके घरवालों के बारे में अच्छी तरह से मालूम कर लो। मगर रतन की आँखों में मोहनी की सुंदरता का पर्दा डला पड़ा था। इसलिए अपने मित्र की बातों पर ध्यान नहीं देता और अंत में विवाह करके पछताता है। नाटक के अंश देखें–

**रतन** : मैंने बड़ी गलती की जो आपकी बात पर ध्यान न दिया।

**जीवन** : लेकिन अब उस पर सोचने से क्या फायदा? अब तो जो कुछ है, उसी में संतोष रखिए और निर्वाह करिए।

**रतन** : यही तो अब मुझसे नहीं हो सकता। अभी चार माह ही बीते हैं लेकिन हर दशा को पहुँच चुका हूँ।

**जीवन** : यह कोई नई बात नहीं है। ऐसी शादियाँ तो संघर्ष लेकर आती हैं। देखो, या तो फिर इस प्रकार की शादी करें ही नहीं और यदि करें तो हर दशा में निभाने को तैयार रहें।

**रतन** : पर मुझमें तो अब शक्ति नहीं रही, निभाने की भी एक सीमा होती है।

- **राजनीतिक दृष्टिकोण**

राजनीति हर क्षेत्र में होती है। इसी नीति को अपनाकर मनुष्य अपने शत्रुओं को मात देता है। कुछ इसी मुद्दे को नाटककार ने इस बिन्दु में अपने नाटक में प्रस्तुत किया है–

## परिचितों में छिपा भेदिया

व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से अपनी दुश्मनी निकाने के लिए उसके सारे राज दूसरों को बता देता है। खासकर, परिचितों में छिपा दुश्मन खतरनाक होता है।

इस नाटक के पात्र पंडित जी रतन से अपनी दुश्मनी निकालते हुए नजर आते हैं।

पंडित जी को करीब पच्चीस सालों से जानते थे। पंडित जी रतन से उसके विवाह के सारे धार्मिक अनुष्ठान उनसे करवाने को कहता है। आर्थिक तंगी के चलते रतन धार्मिक अनुष्ठान करने से मना कर देता है, जिससे पंडित जी को बहुत बुरा लगता है और वे उसके शत्रु बन जाते हैं। वे रतन की शादी तोड़ने के लिए मोहनी के भाई मनोहर के पास जाते हैं और रतन का राज खोलते हैं। नाटक के अंश देखें–

**मनोहर** : कहिए, पंडित जी, कैसे कष्ट किया?

**पंडित** : ऐसे ही, मैंने सुना आप अपनी लड़की का विवाह कर रहे हैं।

**मनोहर** : हाँ।

**पंडित** : यही कि शादी सोच–समझकर करिएगा।

**मनोहर** : क्यों?

**पंडित** : जिससे आप शादी कराने जा रहे हैं, उसकी एक आँख है।

**मनोहर** : (आश्चर्य) एक ही आँख है?

**पंडित** : हाँ, और अवस्था भी चालीस से कम नहीं है। ऐसी शादी करके लड़की की जिंदगी की क्यों बर्बाद कर रहे हैं?

**मनोहर** : (सोचते हुए) हूँ।

**पंडित** : घर के भी कोई मजे में नहीं हैं। मैं तो उनकी सात पुश्त का इतिहास जानता हूँ।

व्यक्ति के परिचित लाभ भी देते हैं हानि भी। उनसे शत्रुता मोल लेने से वे ही पीठ पीछे छुरा घोप देते हैं।

## • धार्मिक दृष्टिकोण

जो मनुष्य धार्मिक रूप से अपने देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना करता है, तो वह उन्हें मानने तथा अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिए चढ़ावा चढ़ाता है। कुछ इसी मुद्दे को नाटककार सुरेश शुक्ल चन्द्र ने इस बिन्दु के रूप में अपने इस नाटक में प्रस्तुत किया है–

### चढ़ावा चढ़ाना

धार्मिक रूप से देखा गया है कि मनुष्य अपना काम बनाने के लिए देवी–देवताओं पर चढ़ावा चढ़ाते हैं। कुछ खास मंदिरों और मजारों पर यह दृश्य देखा जाता है। परेशानी दूर करने के लिए दुआ करने और मन्नतें पूरी होने के लिए चढ़ावा चढ़ाने का रिवाज पुराना है। आमतौर पर देहातों में जहाँ पर चढ़ाने के लिए पैसा कम होता था। लोग मंदिरों में घंटा चढ़ाने, चबूतरा बनवाने या जानवर दान करने की बात करते हैं। मजारों पर चादर चढ़ाने और चबूतरा बनवाने का वादा भी लोग पूरा करते हैं। चढ़ावा चढ़ाने के लिए लोग इसलिए विश्वास करते हैं कि इसकी महत्ता बताने वाले लोगों की कोई कमी नहीं है। वह चाहे मजार हो या मंदिर, उसका बढ़–चढ़कर बखान करते हैं, यथा–बाबा का मजार अंग्रेजों ने हटाने का प्रयास किया, मगर वे हटा नहीं पाए। बादशाह ने देवी–माँ की मूर्ति को तोड़ने का प्रयास किया पर वह टूटी नहीं। देवी के इस चमत्कार को देखकर बादशाह ने मंदिर को फिर से बनवाया।

व्यक्ति इन सभी बातों पर विश्वास कर लेता है और दूसरी ओर अपनी परेशानी के चलते उसके पास और कोई रास्ता ही नहीं बचता। इस परेशानी को दूर करने के लिए वह चढ़ावा चढ़ाने की ठान लेता है। जिससे उसकी परेशानी दूर हो जाए।

इस नाटक का पात्र रतन। जिसकी शादी नहीं हो रही थी। अगर उसकी यह मनोकामना पूर्ण हो जाती है तो वह भगवान को चढ़ावा चढ़ाने के लिए तैयार है। इसी से संबंधित नाटक के अंश देखें–



**रतन** : तुम भी मजाक कर रहे हो।

**राजीव** : नहीं, मजाक नहीं, सच कह रहा हूँ। मैं अभी अपने घर से पत्रिकाएँ लेकर आता हूँ तब तक तुम ब्याह की तैयारी करो।

**रतन** : अंधा आँखें पाए, तो ....।

**राजीव** : अच्छा तो फिर आगे–आगे देखिए होता है क्या (जाता है)

**रतन** : राजीव बड़ा चलता–पुर्जा है, अवश्य कहीं–न–कहीं भिड़ाएगा। अगर पहले से ही कहा होता तो इतनी कसक क्यों सहनी पड़ती? अब तो आधी से अधिक उम्र बीत गई। खैर अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। लोग तो साठे में पाठे होते हैं। (दोनों हाथ जोड़कर) हे भगवान, यदि ब्याह हो गया, तो सवा सात रुपया का प्रसाद चढ़ाऊँगा।

मनुष्य अपना काम बनाने के लिए ईश्वर को चढ़ावा चढ़ाता है।

### • आर्थिक दृष्टिकोण

आज के इस महंगाई के दौर में जीवन गुजारना कठिन हो गया है। इसलिए लूट–पाट, चोरी–चकारी यहाँ तक कि वह ठग तक बन गया है। ऊपर से खर्च पर लगाम न रखने वाली पत्नी हो तो आर्थिक संकट अतिथि के रूप में जरूर आता है। कुछ इन्हीं को आधार बनाकर नाटककार ने निम्न दो बिन्दुओं को चित्रित किया है–

### ठग विवाह का व्यापार

आज के युग में योग्य वर–वधु की तलाश करना आसान नहीं है। युवक–युवती का जीवन साथी कैसा हो? इसे लेकर कई विचार मन में पलते हैं। शादी–ब्याह को सिर्फ जरूरत ही नहीं बल्कि एक सामाजिक दायित्व के तौर पर भी देखा जाता है। भले ही आज की नई पीढ़ी कितने भी आधुनिक सोच रखती हों। शादी को लेकर आज भी कहीं हमारी वही पारम्परिक सोच बनी हुई है। लेकिन आज के युवक–युवती शादी की इस पारम्परिक सोच से तालमेल नहीं रखते। उसे पति या पत्नी के रूप में कोई राजकुमार या सेविका नहीं, बल्कि एक अच्छे जीवन साथी, दोस्त और हमसफर की तलाश रहती है। यही कारण है कि अब लड़के ही नहीं लड़कियाँ भी इस विषय पर खुलकर बात करने लगी हैं। लेकिन इस खुली सोच ने जीवन साथी की तलाश को थोड़ा मुश्किल भी बना दिया है, मनोनुकूल वर या वधू की तलाश अब और मुश्किल हो गई है। क्योंकि अब माँ–बाप की पसंद ही नहीं, लड़के–लड़कियों की रजामंदी भी मायने रखती है।

इससे ज्यादा दिक्कत यह हो गई है कि आज माँ–बाप अपने बेटे–बेटियों के मनोनुकूल वर या वधू को प्राप्त करके भी ठगे जाते हैं। ठग विवाह का व्यापार करने वाले गिरोह ऐसे माँ–बाप की आवश्यकताओं को जानकर उन्हें फंसा लेते हैं। यह गिरोह अपने शिकार को फाँसने के लिए अपने विवाह के इश्तिहार को विज्ञापन तंत्रों के द्वारा पत्रिकाओं में, इंटरनेट में या दलालों का इस्तेमाल करता था। युवक–युवती इन विज्ञापनों को देखकर इनके पास आते हैं। यह गिरोह इन युवक–युवतियों के मनोनुकूल वर–वधू को बताकर

उनका विवाह करा देता है। शादी की पहली रात ही वधू अपने पति के रुपए, गहने तथा महँगी चीजों पर हाथ साफ कर देती है या फिर अपने पति से लड़—झगड़ कर तलाक माँग लेती है। फिर जाकर उसी गिरोह में वापिस शामिल हो जाती है। ठगी विवाह के गिरोह एक स्थान पर अपना ठिकाना नहीं बनाते हैं। काम हो जाने के बाद वे अपना ठिकाना बदल देते हैं और दूसरे शिकार की खोज में लग जाते हैं।

इस नाटक के पात्र मनोहर, माया और मोहन ठग विवाह के सदस्य हैं। इसमें इन्होंने बहुत कमाया। मोहनी इस तरह विवाह करके चार जनों को ठग चुकी है। इस गिरोह की खासियत यह थी कि वे अपनी झूठी वाक्पटुता से सभी को अपने जाल में लपेट लेते हैं। जिससे युवक उनकी झूठी बातों पर विश्वास करके लड़की से विवाह करने के लिए सब कुछ देने को तैयार हो जाते थे। मोहनी से विवाह करने आए रतन और उसका मित्र राजीव उनकी झूठी कहानियाँ सुनकर फँस जाते हैं। उनकी बातों से द्रवित होकर वे मनोहर को पाँच हजार रुपए देने को भी तैयार हो जाते हैं। यह बात इस नाटक के इस अंश में देखें—

**राजीव** : देखो, रतन! गैंगा वाली बात होती तो तुम्हारे सामने साधारण लड़की न प्रस्तुत की जाती, फिर पाँच हजार का ही कर्ज न बताया जाता हर वस्तु को संदेह की नजर से नहीं देखना चाहिए।

**रतन** : आप तो मेरी बात को गलत समझ गए। मैंने तो जो सुना था वह आपको बताया।

**राजीव** : मुझे तो मोहनी पर कोई ऐसा संदेह नहीं होता।

**रतन** : (सोचकर) हाँ।

**राजीव** : देखो, हाथ आए शिकार को छोड़ना निरी बेबकूफी है। जरा हिम्मत से काम लो। पाँच हजार रुपए अदा करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है।

**रतन** : तो फिर जैसा तुम उचित समझो तय कर लो। मुझे सब स्वीकार है।

अपनी कमी के चलते रतन और उसका मित्र राजीव उस गिरोह की बातों में आकर पैसा देने को भी तैयार हो जाते हैं।

## आमदनी अठन्नी, खर्चा रुपया

रुपए—पैसे के बिना मनुष्य का पारिवारिक खर्च आगे नहीं बढ़ता है। मनुष्य की आमदनी से ज्यादा खर्च हो तो वह पैसों की बचत बिलकुल नहीं कर सकता। आज के इस महंगाई के दौर पर व्यक्ति अपने खर्च के हिसाब—किताब न रखे और उसका खर्च अनियंत्रित होता है, तो उसका दिवाला जल्दी ही निकल जाता है। महंगाई के दौर पर वह पति भाग्यशाली है। जिसे अपनी पत्नी का बड़ा सहयोग मिलता है। पति जो मेहनत करके लाता है, उसे पत्नी के हाथ में जमाकर आश्वस्त हो जाता है। क्योंकि वह उनको अपने हिसाब से खर्च करके थोड़े—थोड़े पैसे जमा कर—करके रखती है, ताकि वे आड़े वक्त में काम आ सकें। उन पतियों का भाग्य खोटा है, जिनकी पत्नियाँ उन्हें सहयोग न देकर अपनी मनमर्जी से बेहिसाब खर्चे पर खर्चा करती हैं। पत्नी के इसी व्यवहार को देखकर पतिदेव परेशान हो जाते हैं।

यही स्थिति रतन की होती है, उसकी पत्नी मोहनी हर चीजों पर बेहिसाब खर्च करती है। रतन शादी के चार—पाँच दिन तक उसके खर्चे सह लेता है, जब यह मोहनी की आदत बन जाती है तब वह परेशान हो जाता है। क्योंकि मोहनी से शादी करने

टिप्पणी

से पहले रतन ने अपना घर गिरवी रखकर मोहनी के घरवालों को पैसे दिए। इस कर्ज को वह बड़ी ही मुश्किल से धीरे–धीरे चुका रहा था। ऊपर से महंगाई के दौर पर मोहनी के खर्चीले हावभाव और घर के कामों में सहयोग न देने की प्रवृत्ति के कारण रतन की हालत खराब हो जाती है। वह मोहनी से बहुत परेशान हो जाता है। यही बात नाटक के इस अंश में दिखलायी गई है–

**रतन** : हाँ! मोहनी चाहती है कि मैं उसके कहने पर चलूँ।

**जीवन** : तो इसमें क्या हर्ज है?

**रतन** : हर्ज तब नहीं, जब उसका रास्ता ठीक हो। उसके कहने पर चलने के लिए, उसे साथ लेकर मुझे, दिन–भर घूमना होगा, रात्रि में सिनेमा दिखाना पड़ेगा और होटल में खाना खिलाना होगा।

**रतन** : नौ बजे दिन चढ़े वह सोकर उठती है। सुबह की चाय मैं खुद ही अपने हाथ से बनाकर पीता हूँ। जब से आई है, शायद ही दो–चार दिन घर में खाना बना हो, होटल का खर्च संभालना मेरे वश की बात नहीं है। महंगाई का समय है, बड़े–बड़ों की हालत खराब है।

'शादी का चक्कर' में नाटककार सुरेश शुक्ल चन्द्र ने अपने इस नाटक में शादी के नाम पर समाज को लूटने वाले गिरोह से सचेत करने का प्रयास किया है। साथ ही, ऐसी शादी करने वालों की जिंदगी, घर–बार सब कुछ लुट जाता है। यह भी नाटक में निष्कर्ष रूप में बतलाया गया है।

इन दोनों नाटकों की यदि तुलना करें तो भाव एवम् विषय की दृष्टि से 'शादी का चक्कर' नाटक की अपेक्षा 'भावना के पीछे' नाटक श्रेष्ठ बन पड़ा है। इसे दर्शकों की सामान्य प्रतिक्रिया भी माना जा सकता है। वैसे इन दोनों नाटकों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से एक बात और जो निकलकर आती है, वह यह है कि इन दोनों ही ध्वनि नाटकों को मंच पर भी बहुत ही हल्के–फुल्के अंदाज में थोड़ी से अदला–बदली करके भी प्रस्तुत किया जा सकता है। कारण, यदि पार्श्व ध्वनि, पार्श्व संगीत आदि के निर्देश हटा दिए जाएं तो इन्हें पढ़कर कोई भी पाठक नहीं कह पायेगा कि ये दोनों ही नाटक ध्वनि नाटक हैं। क्योंकि इन दोनों ही नाटकों में एकांकी के सारे ही तत्त्व स्थूल रूप में विद्यमान हैं। राकेश जी के ध्वनि नाटकों में भी यही बात निखर कर आती है। अब यहाँ समीक्षकों के सामने एक टेढ़ा–सा प्रश्न खड़ा हो जाता है। वह यह कि किसी एकांकी को ध्वनि निर्देश देने मात्र से ही क्या उसे रेडियो नाटक बनाया जा सकना सम्भव है।

यहाँ यह बात भी दीगर है कि चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के नाटक 'हिन्दुस्तां से जाकर कहना', सिद्धनाथ कुमार के 'कवि और सृष्टि की एक सांझ', अमृतलाल नागर के 'चन्दन वन' में संग्रहीत ध्वनि नाटकों की शिल्पगत बारिकियों के साथ जब सुरेश शुक्ल चन्द्र के इन एकांकियों की तुलना की जाती है तो ऐसा आभास होता है कि ये एकांकी प्रकृति के आधार पर ध्वनि नाटक नहीं हैं। इन्हें किसी विवशता के रहते ध्वनि नाटकों की श्रेणी में ठूंसा गया सा लगता है।

'टूटते हुए' एकांकी संग्रह सुरेश शुक्ल चन्द्र के पिछले दो नाटक संग्रहों से आगे नहीं बढ़ पाया है। यह 'टूटते हुए' एकांकी तो उनका एकमात्र शिल्पगत और शैलीगत प्रयोग ही अधिक लगता है। यदि इस संग्रह से इसे निकाल दिया जाए तो इस संग्रह

के बाकी सभी एकांकी बहुत ही हल्के से लगते हैं। कारण, 'टूटते हुए' (एकांकी) संग्रह में ध्वनि नाटक और पाँच–पाँच किशोर तथा बच्चों के एकांकियों को संग्रह में लिए जाने के कारण भी यह संग्रह हल्का–सा पड़ गया है। अच्छा होता बच्चों और किशोरों के अपने इन नाटकों को वे अलग संग्रह में रख लेते हैं। कारण, इन पाँचों नाटकों की प्रकृति अलग है और इस संग्रह के शेष पाँचों नाटकों की प्रकृति दूसरी है। यदि वे ऐसा करते तो मूल्यांकन करने की दृष्टि से बात कुछ स्तरीय कही जा सकती थी।

**टिप्पणी**

### 'टूटते हुए' की लेखन शैली

संग्रह के नाटकों को पढ़ने से लगता है कि चंद्र जी की लेखन शैली में वह पैनापन नहीं है जो कि नाटकों की लेखन शैली में होना चाहिए। भाषा प्रवाहमयी नहीं बन पायी है। संवाद भी बिखरे–बिखरे से लगते हैं। जबकि नाटकों में संवाद चुटीले और गुदगुदाने वाले तथा प्रभाव उत्पन्न करने वाले होने चाहिएं। लेखन–शैली में वह पकड़ देखने को नहीं मिलती जो कि नाटकों की दरकार समझी जाती है। जो ताजगी नाटकों में होनी चाहिए, उसकी कमी खलती है। इन सबके पीछे जो बात उभरकर आती है, वह यह है कि सुरेश शुक्ल चन्द्र मूलतः कवि रहे हैं। नाटकों में तो उन्होंने प्रयोग भर करने की दृष्टि से लेखन किया है। ये बात उनके नाटक 'आकाश झुक गया' में स्पष्टतः देखी जा सकती है। इस नाटक की एक पात्रा का नाम वासनाकुमारी रखा गया है।

कथा–वस्तु में फूहड़ता पूरी तरह झलकती प्रतीत होती है। लेखन शैली और भाषा भी उबाऊ बन पड़ी है। कुल मिलाकर सुरेश शुक्ल चन्द्र के नाटकों की लेखन शैली, भाषा और संवाद स्तरीय नहीं बन पाएं हैं।

### अपनी प्रगति जांचिए

3. 'टूटते हुए' के अतिरिक्त निम्न में से कौन–सा एकांकी संग्रह सुरेश शुक्ल चन्द्र का है?
   (क) हरी घास पर घंटे भर    (ख) हिंडोल इगुर
   (ग) दरकती दीवारें    (घ) स्वप्न का सत्य
4. 'टूटते हुए' एकांकी संग्रह का किस समस्या पर केन्द्रित है?
   (क) मध्यमवर्गीय परिवार का टूटना
   (ख) निम्नवर्गीय परिवार की विसंगतियां
   (ग) उच्चवर्गीय परिवार की भाव–शून्यता
   (घ) इनमें से कोई नहीं

## 2.4 संक्षिप्तियां (संक्षेपण)

'संक्षेप' शब्द से 'संक्षिप्त' बना है, जिसका अर्थ है लघु या छोटा। संक्षेपण उस विधि को कहते हैं जो विस्तृत को लघु अथवा बड़े को छोटा करने की प्रक्रिया को व्यक्त करती है। संक्षिप्तीकरण से तात्पर्य किसी ऐसे लेख आदि से है जो किसी बड़े आकार वाले

लेख, निबंध तथा वक्तव्य आदि का संक्षिप्त किया हुआ अथवा सार रूप में प्रस्तुत किया हुआ रूप है।

टिप्पणी

### 2.4.1 संक्षेपण की विधि

1. मूल पाठ को सावधानीपूर्वक तब तक पढ़ा जाए ;एक, दो, तीन बार तकद्ध जब तक उसका आशय पूर्णतः स्पष्ट न हो जाए।
2. वाचन के बाद पाठ के मुख्य बिंदुओं को रेखांकित कर दिया जाए।
3. उसके बाद केंद्रीय भाव को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त शीर्षक का चुनाव किया जाए। अच्छे शीर्षक का चयन छात्र की योग्यता और बुद्धिमता का परिचायक होता है।
4. रेखांकित किए गए मूल बिंदुओं अथवा मुख्य कथनों को ध्यान में रख कर अपनी शब्दावली में उसको स्पष्ट करें।
5. मूल पाठ को अनिवार्य रूप से एक–तिहाई कलेवर में लिखने का प्रयास करें।
6. उत्तम पुरुष अथवा मध्यम पुरुष के स्थान पर अन्य पुरुष का प्रयोग किया जाए।
7. इस प्रारूपण में से भी अनावश्यक बातों और शब्दों को काट–छांट कर प्रारूप को अंतिम रूप दिया जाए।
8. संक्षेपण को अंतिम रूप देने से पहले उसका प्रारूप अथवा रूपरेखा तैयार करनी चाहिए।
9. अवतरण के मूल कथ्य की आलोचना कभी न की जाए। उदाहरणों, दृष्टांतों अथवा लोकोक्तियों व मुहावरों तथा जहां तक हो सके, विशेषणों आदि से भी बचना चाहिए और सीधे उद्धृत अंश अथवा अवतरण के मूल कथ्य पर ही ध्यान केंद्रीयद्रित रखना चाहिए। एक आदर्श संक्षेपण में, मूल कथ्य में न तो लेखक अपनी ओर से कुछ जोड़ता है और न कुछ कम करता है।
10. एक आदर्श संक्षेपण में बोधगम्यता, संक्षिप्तता तथा प्रभावोत्पादकता आदि गुणों का निर्वाह होना चाहिए।

संक्षेपण के संबंध में निम्नलिखित बातें अनिवार्य रूप से ध्यान देने योग्य हैं–

1. संक्षेपण में मूल रचना के कथ्य अथवा अभिप्राय में तनिक भी अंतर नहीं आना चाहिए।
2. मूल रचना के आकार को लगभग एक–तिहाई रूप में रह जाना चाहिए।
3. लेखक अपनी ओर से उदाहरण अथवा उद्धरण आदि न दे।
4. अनावश्यक और अप्रासंगिक बातों का समावेश नहीं होना चाहिए।
5. संक्षेपण में व्यास–शैली के स्थान पर समास–शैली का प्रयोग किया जाता है।
6. मूल रचना का संक्षिप्तीकृत रूप प्रभावशाली और आकर्षक होना चाहिए।

## 2.4.2 संक्षेपण : वैशिष्ट्य एवं प्रयोगात्मक स्वरूप

टिप्पणी

संक्षेपण में निम्नलिखित विशेषताओं या गुणों का समावेश होता है–

1. **संक्षिप्तता**– संक्षेपण का केंद्रीयद्र–बिंदु ही संक्षिप्तता है। अनावश्यक बातों के लिए संक्षेपण में कोई स्थान नहीं होता। इसमें दृष्टांत देकर व्याख्या का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, वरन मूल अनुच्छेद/अवतरण के सभी विचारों को कम–से–कम शब्दों में रखने का प्रयास किया जाता है।
2. **समाहार शक्ति**–संक्षेपण में 'गागर में सागर' समेट लेने की अद्‌भुत क्षमता होनी चाहिए। सतसई के दोहे इसका सटीक उदाहरण हैं, जो देखने में तो छोटे लगते हैं परंतु अपनी बात को स्वतः स्पष्ट करने में पूर्णतया सक्षम हैं।
3. **अभिव्यक्ति में स्पष्टता**– संक्षिप्तता का तात्पर्य यह नहीं है कि कोई ऐसी बात छूट जाए जो आवश्यक है या संक्षेपण अस्पष्ट हो जाए। यदि मूल अनुच्छेद को पढ़ने की आवश्यकता पड़े तो फिर संक्षेपण तैयार करने से लाभ ही क्या? सार लेखन की अभिव्यक्ति स्पष्ट होनी चाहिए, जिससे कि सार–लेख को पढ़ने से सब कुछ स्पष्ट हो जाए।
4. **तारतम्यता**– संक्षेपण में तारतम्यता का होना भी नितांत आवश्यक है। असंबद्ध विचारों का पाठक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अच्छे संक्षेपण में अनुच्छेद के सभी वाक्य एक दूसरे से श्रृंखलाबद्ध रूप में जुड़े रहते हैं। इसमें जहां एक विचार से दूसरे विचार में तारतम्य रहना चाहिए, वहीं मूल भाव भी सुरक्षित रहना चाहिए।
5. **विवेचनात्मकता**– संक्षेपण के लिए यह भी आवश्यक है कि संक्षेपक/सार लेखक पैनी बुद्धि का परिचायक हो। उसमें तथ्यों को परखने और उनका सही विवेचन दर्शाने की क्षमता होनी चाहिए।
7. **पूर्णता**– संक्षेपण में मूलभाव पूर्ण रूप से सुरक्षित रहना बहुत जरूरी है, यही संक्षेपण की पूर्णता है।
8. **प्रभावोत्पादकता**– संक्षेपण के भावों में जहां निश्चित क्रम बना रहना चाहिए, वहीं उसके समग्र रूप का प्रभावोत्पादक होना आवश्यक है। क्रम यदि बिखरा है तो इसके प्रभावी होने में बाधा पड़ती है। भावों में क्रमबद्धता, संक्षेपण को प्रभावशाली बनाने में सहायता करती है।

संक्षेपण विषयक कुछ अन्य उल्लेखनीय बातें–

1. कभी–कभी अवतरण में कुछ वाक्यों–वाक्यांशों या शब्दों को रेखांकित करके उनका अर्थ पूछ लिया जाता है। यह अर्थ बहुत संक्षिप्त और सटीक होना चाहिए।
2. अवतरण के संक्षेपण के लिए जो कच्चा काम (Rough-Work) करें, वह उत्तर–पुस्तिका के अंतिम पृष्ठ पर करें। बाद में उसे काट दें।
3. सारांश और संक्षेपण के अंतर को ध्यान में रखते हुए ही संक्षेपण करें।
4. जिन क्लिष्ट शब्दों का अर्थ आपको न आता हो, उनको बार–बार पढ़–कर संपूर्ण अवतरण में उनके आशय को ही लिखें।

5 पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त अवतरण के शब्दों–वाक्यों की पुनरावृत्ति न करें। पूरा लिख चुकने पर एक बार आद्योपांत पढ़ लें।

टिप्पणी

## संक्षेपण के प्रयोगात्मक स्वरूप के उदाहरण

### अवतरण (1)

प्रेमचंद के सामने एक ऐसा युगीन–परिवेश था जिसमें देश धीरे–धीरे बंटता और टूटता जा रहा था। वर्ष 1914 तक औद्योगिक विकास मंद गति से होने के कारण साम्राज्यवादी शोषण अत्यंत तीव्र और गांव की अर्थव्यवस्था पंगु हो गई थी। इसका सबसे अधिक बुरा प्रभाव कारीगरों, हरिजनों, मजदूरों और छोटे किसानों पर पड़ा। अर्थव्यवस्था की इस स्थिति ने सूदखोरों और महाजनों की कतार पैदा कर दी। किसान अपनी ही जमीन पर मजदूर होता गया। जमीन जोतने वाला भू–स्वामित्व के अधिकार से वंचित होकर खेतिहर मजदूर होने लगा। यह वर्ग भुखमरी से बचने के लिए बड़ी संख्या में रोजी–रोटी की तलाश में शहरों की ओर भागने लगा। वहां भी पूंजीपतियों ने उनका मनमाना शोषण किया। प्रेमचंद जी ने गोदान में किसानों की व्यक्तिगत तथा वर्गीय विसंगतियों व अंतर्विरोधों को बहुत तटस्थता से पहचाना है, लेकिन इस अंतर्विरोध–उद्घाटन से किसानों की बेबसी और यातना की नियति ही अधिक खुलती है। इसका कारण यह है कि यह सुविधा–भोगी वर्ग से दुहा गया है। यह वैफसी बिडंबना है कि पैसा सारी व्यवस्था के केंद्रीय में है। जमींदार, उसका कारिंदा, पटवारी, छोटे जमींदार, पुरोहित आदि बाह्य दृष्टि से भले ही अलग–अलग हों, किन्तु किसानों का शोषण करते समय इनकी एकता देखते ही बनती है।

उक्त अवतरण का संक्षेपण

### शीर्षक : प्रेमचंद के मजदूर – किसान

**संक्षेपण**– प्रेमचंद के समय का सामाजिक परिवेश ऐसा था जिसमें तीव्र साम्राज्यवादी शोषण के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गई थी। जमींदार, उसके कारिंदे पटवारी, छोटे जमींदार तथा पुरोहित आदि बड़े शोषण–तंत्र के पुर्जे थे। इनके शोषण से किसान भू–स्वामित्व से वंचित होकर अपनी ही भूमि पर मजदूरी करने लगा। गांव के शोषकों से बचकर कृषक वर्ग नगरों की ओर त्राण पाने गया, तो वहां भी पूंजीपतियों के शोषण से बच न सका।

### अवतरण (2)

कबीर के साहित्य में राम की परिकल्पना का मूल आधार भारतीय दार्शनिक चिंतन तो अवश्य है पर उसे अपनी सहज सहानुभूति में ढालकर कबीर ने जिस विशिष्ट भावना को आत्मसात किया है, वह विभिन्न 'वादों' की सीमाओं का अतिक्रमण कर उसका अपना निजी राम बन गया। इसलिए यह राम अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, इस्लामी एकेश्वरवाद, सिद्धों के शून्यवाद तथा योगियों के अलख निरंजन आदि की परम तत्व संबंधी धारणाओं से अनेक बिंदुओं पर साम्य स्थापित करता हुआ भी इन सबसे सर्वथा पृथक है। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने दार्शनिक आचार्यों की तरह राम या परमतत्व संबंधी कोई नई स्थापना की है और न यह ही, कि उन्होंने दर्शकों से थोड़ा बहुत इकट्ठा कर 'भानुमति का कुनबा' ही खड़ा किया है। वे बहुश्रुत थे और विविध मतों के अनुयायियों की संगति से उनके विचारों की स्थूल बातें ग्रहण कर ली थीं। इन्हीं विचारों को उन्होंने अपनी जीवन दृष्टि और स्वानुभूति के निष्कर्ष पर चढ़ाकर, जैसा उपयुक्त

समझा, वैसा ही सामने रखा। अतः कबीर–साहित्य का यह राम किसी दर्शन–विशेष की उत्पत्ति न होकर उनकी अपनी उपलब्धि है। इसी परिप्रेक्ष्य में कबीर की 'राम' की परिकल्पना का विचार करना युक्ति युक्त है।

टिप्पणी

### उक्त अवतरण का संक्षेपण

### शीर्षकः कबीर के राम

**संक्षेपण**–अद्वैतवाद आदि अनेक दार्शनिक मत–वादों से समानता रखते हुए भी कवि की स्वानुभूति की आंच में तपकर, वाद–मुक्त होकर 'राम', कबीर साहित्य में 'कबीर का अपना राम' बन गया है। कबीर अनेक महापुरुषों के उपदेश से लाभान्वित हुए थे। इसीलिए अनेक मतावलंबियों के मतों के सार रूप को ग्रहण कर उन्होंने अपनी अनुभूति और जीवन–दृष्टि की कसौटी पर परखते हुए अपनी नवीन दृष्टि के आलोक में राम के स्वरूप को प्रस्तुत किया।

### अवतरण (3)

साहित्य का आधार जीवन है। इस नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है। उसकी अटारियां, मीनारें और गुंबद बनते हैं, लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसको देखने को जी नहीं चाहेगा, जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिए अनंत है, अबोध है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसीलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिचित है। जीवन परमात्मा को अपने कार्यों का जवाबदेह है या नहीं, हमें मालूम नहीं, लेकिन साहित्य तो मनुष्य के सामने जवाबदेह है। इसके अपने कानून हैं, जिनसे वह इधर–उधर नहीं हो सकता। जीवन का उद्देश्य ही आनंद है। मनुष्य जीवन पर्यंत आनंद की ही खोज में लगा रहता है। किसी को वह रत्न–द्रव्य में मिलता है, किसी को भरे पूरे परिवार में, किसी को लंबे–चौड़े भवन में तो किसी को ऐश्वर्य में। लेकिन साहित्य का आनंद इससे ऊंचा है, इससे पवित्र है। उसका आधार सुंदर और सत्य है। वास्तव में सच्चा आनंद सुंदर और सत्य से मिलता है। उसी आनंद को दर्शाना, वही आनंद उत्पन्न करना साहित्य का उद्देश्य है। ऐश्वर्य या भोग के आनंद में ग्लानि छिपी रहती है। उससे अरुचि भी हो सकती है। पश्चाताप भी हो सकता है। पर 'सुंदर' से जो आनंद प्राप्त होता है, वही अखंड एवं अमर है।

ऐसे 'आनंद' साहित्य में 'नीरस' कहे गए हैं। प्रश्न होगा, वीभत्स में कोई आनंद है? अगर ऐसा न होता तो वह रसों में ही क्यों गिना जाता? हां, है। वीभत्स में सुंदर और सत्य मौजूद है। भारतेंदु ने श्मशान का वर्णन किया है, वह कितना वीभत्स है! प्रेतों और पिशाचों का अधजले मांस के लोथड़े, हड्डियों को चटर–चटर चबाना, वीभत्स की पराकाष्ठा है। लेकिन वह वीभत्स होते हुए भी सुंदर है, क्योंकि उसकी सृष्टि पीछे आने वाले स्वर्गीय दृश्य के आनंद को तीव्र करने के लिए हुई है। साहित्य तो हर एक रस में 'सुंदर' खोजता है– राजा के महल में, रंक की झोंपड़ी में, पहाड़ के शिखर पर, गंदे नालों के अंदर, ऊषा की लाली में, सावन–भादों की अंधेरी रात में और क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि रंक की झोंपड़ी में जितनी आसानी से सुंदर मूर्तिमान दिखाई देता है, उतना महलों में तो वह खोजने से भी मुश्किल से मिलता है। जहां मनुष्य अपने मौलिक, यथार्थ, अकृत्रिम रूप में है, वहीं आनंद है। आनंद कृत्रिमता और आडंबर से कोसों दूर भागता है। सत्य का कृत्रिम से क्या संबंध? अतएव हमारा विचार है कि साहित्य में केवल एक रस है, और वह श्रृंगार है। कोई रस साहित्यिक दृष्टि से रस नहीं रहता और न उस रचना की गणना ही साहित्य में की जा

टिप्पणी

सकती है जो श्रृंगारविहीन और असुंदर है। जो रचना केवल वासना–प्रधान हो, जिसका उद्देश्य कुत्सित भावों को जगाना हो, जो केवल बाह्य जगत से संबंध रखे, वह साहित्य नहीं। जासूसी उपन्यास अद्भुत होता है, लेकिन हम उसे साहित्य उसी समय कहेंगे जब उसमें सुंदर का समावेश हो।

उक्त अवतरण का संक्षेपण

**शीर्षक : सुंदर और सत्य ही आनंद**

**संक्षेपण**– जीवन ही साहित्य का आधार है, परंतु जीवन में अनेक चित्र ऐसे होते हैं, जो रम्य नहीं होते। लेकिन साहित्य में असुंदर वस्तु भी आकर्षक रूप में प्रस्तुत की जाती है, क्योंकि साहित्य का उद्देश्य ही प्रत्येक रचना को सरस रूप में प्रस्तुत करना है। सत्य एवं सुंदर का आकर्षक रूप साहित्य में प्राप्त होता है, जो सर्वथा रुचिप्रद होता है। सांसारिक ऐश्वर्यजन्य आनंद अरुचिकर एवं ग्लानिप्रद भी हो सकता है परंतु साहित्यानंद तो शाश्वत एवं रम्य है। वीभत्स दृश्य वैसे तो अरुचिकारक होते हैं, परंतु हरिश्चंद्रजी का श्मशान वर्णन भी लोकोत्तर एवं चमत्कारपूर्ण है, क्योंकि उसमें नैसर्गिकता है। साहित्य द्वारा मनुष्य के श्रेष्ठ भावों को उद्‌बुद्ध किया जाता है। जासूसी उपन्यास भी यदि सत्य एवं सुंदर हों तो वे भी चमत्कारोत्पादक एवं श्रेष्ठ साहित्य हो सकते हैं।

**अवतरण (4)**

आधुनिक संस्कृति मूलतः बुद्धिवादी और विश्लेषण–प्रिय है, जिसमें ज्ञान की अपार महिमा है, परंतु हृदय के स्रोत निरंतर सूखते जा रहे हैं। जिसे शिक्षा कहकर चलाया जा रहा है, वह सूचना मात्र है। उसमें अनुभूति को जगह नहीं मिली है। फलतः आज का शिक्षित मनुष्य व्यर्थता से भर गया है। कविता का स्रोत है–आनंद, जिज्ञासा एवं रहस्य। हमारे ज्ञान की परिधि इतनी विस्तृत हो गई है कि कुछ भी अप्रत्याशित नहीं रह गया है। काव्यरूढ़ियां आज हास्यास्पद जान पड़ती हैं। अद्भुत का थोड़ा भी स्पंदन जीवन में शेष नहीं रह गया है। वैसे, ज्ञान और कविता में निरंतर विरोध ही हो, यह आवश्यक नहीं, क्योंकि विज्ञान रहस्योन्मुखी है। इसमें जिज्ञासा और समाधान के अनेक सूत्र हैं। परंतु आज विज्ञान विशेषता के उस संसार में पहुंच गया है, जहां तालिकाओं का राज्य है और मानव–शिशु तथ्यों की मरुभूमि में खो गया है। फल यह हुआ कि हम अहं के स्तूप बन गए हैं। हम चमत्कृत होने में मानहानि समझते हैं। हमारी सहज अंतर्वृत्तियां जड़ होती जा रही हैं।

उक्त अवतरण का संक्षेपण

**शीर्षक : अनुभूति राहत शिक्षा**

**संक्षेपण**–आधुनिक शिक्षा अनुभूति–पक्ष से रहित है। इसमें बुद्धि की प्रधानता होने से मनोगत विकारों का कोई स्थान नहीं है, इसीलिए यह आकर्षक भी नहीं रही है। कविता और विज्ञान में कोई बैर–भाव नहीं, फिर भी आधुनिक विज्ञान रहस्यों का प्रतिपादन करने के कारण महत्वशाली बन गया है। अतः मानव आज सहृदय न रहकर तथ्यग्राही बन गया है।

टिप्पणी

• **वाक्य संक्षेपण अथवा संक्षिप्त शब्दावली के उदाहरण–**

| **शब्दावली/वाक्य–खंड** | **शब्द–संक्षेप** |
|---|---|
| हृदय को विदीर्ण करने वाला | हृदय–विदारक |
| दूसरों के काम में दखल देना | हस्तक्षेप |
| काम करने में चतुर | सिद्धहस्त |
| जानने की इच्छा | जिज्ञासा |
| जिसका कोई नाथ (भरण–पोषण करने वाला) न हो | अनाथ |
| जिसके हृदय में ममता न हो | निर्मम |
| जिसके समान कोई दूसरा न हो | अद्वितीय |
| जिसके आने की तिथि मालूम न हो | अतिथि |
| जिससे हानि की आशंका न हो | निरापद |
| जिस पर विचार करने की आवश्यकता हो | विचारणीय |
| जिसका कोई वारिस न हो | लावारिस |
| जिसने मृत्यु को जीता हो | मृत्युंजय |
| वह जो कम खर्च करता हो | मितव्ययी |
| जो जलकर राख हो जाए | भस्मीभूत |
| समझ में आने योग्य | बोधगम्य |
| जिसने बहुत सुना हो | बहुश्रुत |
| जैसे पहले था वैसे ही | पूर्ववत |
| वह वस्तु जिसके आर–पार दिखाई पड़े | पारदर्शी |
| कतार में बंधा/रखा हुआ | पंक्तिबद्ध |
| भले–बुरे का विचार न करने वाला | अविवेकी |
| अतिथि से सादर मिलना | अगवानी |
| ऐसे स्थान पर रहना जहां कोई पता न पा सके | अज्ञातवास |
| नीचे की ओर जाने वाला | अधोमुखी |
| जिसके बिना काम न चल सके | अनिवार्य |
| जो अवश्य हो, टले नहीं | अवश्यंभावी |
| जो नियत समय से पहले या पीछे हो | असामयिक |
| आज्ञा मानने वाला | आज्ञाकारी |
| किसी घटना का अचानक हो जाना | अकस्मात |
| संकट का समय | आपातकाल |
| वह जो किसी के न रहने पर उसकी संपत्ति का मालिक हो | उत्तराधिकारी |
| जिसका चित्त उदार हो | उदारमना |
| बहुत जगने के कारण अलसाया हुआ | उनींदा |

टिप्पणी

| | |
|---|---|
| दूसरे के सहारे पर गुजर करने वाला | उपजीवी/परजीवी |
| अन्य स्थान से आए हुए लोगों की बस्ती | उपनिवेश |
| एक ही पर श्रद्धा रखने वाला | एकनिष्ठ |
| काम करने के लिए कमर बांधे हुए | कटिबद्ध |
| सब लोगों के प्रयोग में आने योग्य | सार्वजनिक |
| वर्तमान समय से संबंध रखने वाला | समसामयिक |
| सब–कुछ जानने वाला | सर्वज्ञ |
| मेहनत कर पेट भरने वाला | श्रमजीवी |
| जो वेतन लेकर काम करता है | वेतनभोगी |
| एक स्थान से दूसरे स्थान को हटाया हुआ | स्थानान्तरित |
| जो दूसरे के स्थान पर अस्थायी रूप से कार्य करे | स्थानापन्न |
| जिसकी आशा न की गई हो | आशातीत |
| जो भेदा न जा सके | अभेद्य |
| कम बोलने वाला | मितभाषी |
| जो स्मरण रखने योग्य हो | स्मरणीय |
| जो सबके आगे रहता है | अग्रणी |
| जिसे देख/सुन कर दुःख हो | दुःखद |
| युग का निर्माण करने वाला | युग निर्माता |
| जिसका मन किसी दूसरी ओर हो | अन्यमनस्क |
| जहां तक हो सके यथासाध्य/यथासंभव | |
| आदि से अंत तक | आद्योपांत, आद्यंत |
| तर्क के द्वारा माना जा चुका हो | तर्कसम्मत |
| जिस पर विश्वास किया गया हो/किया जा सके | विश्वस्त |
| क्षण भर में नष्ट होने वाला | क्षणभंगुर |
| नियत समय पर किया जाने वाला कार्य | समयबद्ध |

## अपनी प्रगति जांचिए

5. विस्तृत को लघु करने की प्रक्रिया क्या कहलाती है?
   (क) संक्षेपण (ख) टिप्पण
   (ग) पल्लवन (घ) विस्तारण
6. 'सब लोगों के प्रयोग में आने योग्य' का संक्षेपण क्या होगा?
   (क) सर्व–प्रयोगी (ख) बहु–उपयोगी
   (ग) सार्वजनिक (घ) वैयक्तिक

## 2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

| | | |
|---|---|---|
| 1. (ख) | 2. (क) | 3. (घ) |
| 4. (क) | 5. (क) | 6. (ग) |

## 2.6 सारांश

साधारण शब्दों में कहा जाए तो, वे साधन, जिनके द्वारा जनसंचार का कार्य संपन्न किया जाए, जनसंचार के माध्यम कहलाते हैं।

संचार एक ऐसी प्रक्रिया है, जो प्रेषक, प्राप्तकर्ता और संदेशक के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। यह एक–दूसरे से संबंध जोड़ने का एक बहुत बड़ा और सुदृढ़ माध्यम है, जो एक को दूसरे से, दूसरे को तीसरे से, इस तरह यह समूहों के समूह को एक–दूसरे का जानकार बना देता है अर्थात यह सामाजिक प्रक्रिया है।

सुरेश शुक्ल चन्द्र ने 'टूटते हुए' में मध्यमवर्गीय परिवार की टूटन दर्शाया हे। आपने अपने नाटकों में समाज, परिवार यहाँ तक कि राजनीति में फैले भ्रष्टाचार को भी मुद्दा बनाया है।

सुरेश शुक्ल चन्द्र मूलतः कवि रहे हैं। नाटकों में तो उन्होंने प्रयोग भर करने की दृष्टि से लेखन किया है।

'संक्षेप' शब्द से 'संक्षिप्त' बना है, जिसका अर्थ है लघु या छोटा। संक्षेपण उस विधि को कहते हैं जो विस्तृत को लघु अथवा बड़े को छोटा करने की प्रक्रिया को व्यक्त करती है। संक्षिप्तीकरण से तात्पर्य किसी ऐसे लेख आदि से है जो किसी बड़े आकार वाले लेख, निबंध तथा वक्तव्य आदि का संक्षिप्त किया हुआ अथवा सार रूप में प्रस्तुत किया हुआ रूप है।

संक्षिप्तता का तात्पर्य यह नहीं है कि कोई ऐसी बात छूट जाए जो आवश्यक है या संक्षेपण अस्पष्ट हो जाए। यदि मूल अनुच्छेद को पढ़ने की आवश्यकता पड़े तो फिर संक्षेपण तैयार करने से लाभ ही क्या? सार लेखन की अभिव्यक्ति स्पष्ट होनी चाहिए, जिससे कि सार–लेख को पढ़ने से सब कुछ स्पष्ट हो जाए।

## 2.7 मुख्य शब्दावली

- **मुद्रित** – कागज पर प्रकाशित
- **पद्धति** – विधि, प्रक्रिया
- **उपकरण** – औजार, यंत्र
- **परिवेश** – माहौल, वातावरण
- **दृष्टव्य** – देखने योग्य
- **रिपोर्ट** – प्रतिवेदन
- **आशातीत** – आशा से परे

- **दृष्टांत** – उदाहरण
- **समीक्षक** – आलोचक
- **मुखौटा** – ओढ़ा गया चेहरा।

**टिप्पणी**

## 2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. जनसंचार के मुद्रण माध्यम क्या है?
2. इन्टरनेट से क्या आशय है?
3. भारत में हिन्दी पत्रकारिता का उदय कब और कहां हुआ?
4. सुरेश शुक्ल चन्द्र का परिचय एवं कृतित्व लिखिए।
5. स्वातंत्रयोत्तर युगीन नाटकों ने किस पहलू को प्राथमिकता दी?
6. संक्षिप्तीकरण में ध्यातव्य बातें क्या हैं?

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की पृष्ठभूमि व विशिष्टताओं का रेखांकन कीजिए।
2. सोशल मीडिया से आप क्या समझते हैं? विवेचनात्मक उत्तर दीजिए।
3. 'टूटते हुए' एकांकी संग्रह की मूल संवेदना को अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।
4. 'टूटते हुए' एकांकी संग्रह को आधार मानते हुए सुरेश शुक्ल चन्द्र की नाट्य लेखन शैली का विस्तृत विश्लेषण कीजिए।
5. संक्षिप्तीकरण का प्रयोगात्मक स्वरूप समझाइए।

## 2.9 सहायक पाठ्य सामग्री


1. सौन्दर्य की नदी नर्मदा, अमृतलाल वेगड़, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1992.
2. साइबर स्पेस और मीडिया–सुधीश पचौरी, प्रवीन प्रकाशन, दिल्ली, 2000.
3. जनसंचार : प्रकृति और परम्परा, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, ट्राईडेंट पब्लिशर्स, दिल्ली, 2009.
4. नया मीडिया : अध्ययन और अभ्यास, शालिनी जोशी, शिव प्रसाद जोशी, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2015.
5. मध्य प्रदेश की कला एवं संस्कृति, गोपाल भार्गव, कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2011.
6. मीडिया और हिन्दी : बदलती प्रवृत्तियां, सं. रविन्द्र जाधव, केशव मोरे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016.
7. प्रयोजनमूलक हिन्दी, सं. डॉ. रामप्रकाश, डॉ. दिनेश गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006.

# इकाई 3 हिन्दी भाषा

टिप्पणी

## संरचना


3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 पत्रकारिता के विभिन्न आयाम
 3.2.1 पत्रकारिता के प्रकार
 3.2.2 पत्रकारिता की भाषा–शैली
3.3 मध्य प्रदेश का लोक साहित्य
 3.3.1 लोक साहित्य : परिभाषा, क्षेत्र, वैशिष्ट्य एवं महत्व
 3.3.2 मध्य प्रदेश के लोक साहित्य के विविध रंग एवं लोक कवि
 3.3.3 बुंदेलखंड अथवा बुंदेली का लोक साहित्य
 3.3.4 बघेलखंड अथवा बघेली का लोकसाहित्य
 3.3.5 निमाड़ अथवा निमाड़ी का लोक साहित्य
 3.3.6 मालवा अथवा मालवी का लोक साहित्य
3.4 पत्र लेखन
 3.4.1 पत्र–लेखन : गुण, वैशिष्ट्य एवं प्रकार
 3.4.2 आवेदन एवं प्रारूपण
 3.4.3 आदेश परिपत्र, ज्ञापन एवं अनुस्मारक
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री


## 3.0 परिचय

विभिन्न समाचार पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो, दूरदर्शन अथवा किसी अन्य चैनल से संबद्ध रहकर या स्वतंत्र रूप से समाचार संप्रेषण, समाचार संपादन, आलेख लेखन व वैचारिक लेखन आदि कार्य पत्रकारिता के अंतर्गत आते हैं या इन कार्यों को सही व व्यवस्थित ढंग से करने की क्रिया को ही पत्रकारिता कहते हैं।'

पत्रकारिता एक कला है, एक वृत्ति है, जनसेवा है और सूचना, ज्ञान एवं मार्गदर्शन का माध्यम है। प्राचीन भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के समय यह पत्रकारिता, जो एक मिशन थी, आज एक बहुत तेज गति से फलता–फूलता उद्योग है, जिसमें व्यावसायिकता सर्वोपरि है। मध्यकालीन भारत में इस दृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

'साहित्य' शब्द के पूर्व 'लोक' अभिधान लगाने के बाद उसका अर्थ होता है–लोक का साहित्य। 'लोक' का अर्थ है–जनता। 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'FOLK' का हिंदी रूपांतर है। अंग्रेजी में 'फोक' शब्द का प्रयोग अशिक्षित, अर्धशिक्षित, असभ्य, अर्धसभ्य आदि वर्ग के लिए प्रयुक्त होता है। विद्वान व्यक्ति 'लोक' शब्द का प्रयोग सरल ग्रामीणों के लिए करते हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार– "'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और गांव में फैली हुई वह समस्त जनता है,

जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं।" 'लोक' शब्द के लिए हिंदी में 'ग्राम' और 'जन' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है, किन्तु इनसे लोक की समग्रता का बोध नहीं होता।

**टिप्पणी**

पत्र लेखन में क्षमता प्राप्त करना प्रत्येक सभ्य एवं शिष्ट व्यक्ति की कामना होती है। पत्र को हम विश्वबंधुत्व का एक प्रबल माध्यम भी कह सकते हैं। दुनिया के अनेक साधारण और असाधारण व्यक्तियों ने पत्रों के द्वारा मित्र बनाकर जीवन में महती सफलता प्राप्त की है।

इस इकाई में हम पत्रकारिता के विविध आयामों, मध्य प्रदेश के लोक साहित्य के विविध पक्षों ओर पत्र लेखन के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करेंगे।

## 3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- पत्रकारिता के विविध आयामों से परिचित हो पाएंगे;
- मध्य प्रदेश के लोक साहित्य विश्लेषण कर पाएंगे;
- पत्र लेखन एवं तत्संदर्भित विविध तथ्यों से अवगत हो पाएंगे।

## 3.2 पत्रकारिता के विभिन्न आयाम

'पत्रकारिता' के लिए अंग्रेजी में 'जर्नलिज्म' शब्द का प्रयोग किया जाता है। हिंदी का 'पत्रकारिता' शब्द 'पत्र' या 'पत्ता' से व्युत्पन्न है। प्राचीनकाल में भारत में लेखन कार्य के लिए 'भोजपत्रों' का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार 'पत्र' से एक लिखित सामग्री का बोध होता था।

अंग्रेजी का 'जर्नलिज्म' व्युत्पत्तिक दृष्टि से मूलतः फ्रैंच शब्द 'जर्नी' से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है– प्रतिदिन का कार्य और उसका विवरण प्रस्तुत करना। सत्रहवीं–अठारहवीं शताब्दी में इसके लिए लैटिन शब्द 'डियूरनल' भी प्रयुक्त किया जाता था। इसी समयावधि में 'जर्नल' शब्द का प्रयोग शुरु हुआ जिससे कालांतर (बीसवीं शताब्दी) में इसी शब्द 'जर्नल' से 'जर्नलिज्म' शब्द का निर्माण हुआ। जर्नलिज्म का हिन्दी रूपाांतर पत्रकारिता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अर्थ– वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस 'पत्रकारिता' या 'जर्नलिज्म' का मतलब– समाचार पत्र, पत्रिका, रेडियो, टेलीविजन आदि प्रसार–साधनों से है, जिनका सीधा संबंध समाचार, लेख व विचार आदि के द्वारा जनता से होता है।

आजकल पत्रकारिता का दायरा समाचार, विचार, लेख व संदेश लेखन, संपादन के अलावा विज्ञापन कला, साज–सज्जा, पृष्ठ–विन्यास आदि तक बढ़ गया है। इस प्रकार आजकल पत्रकारिता में समाचार संप्रेषण से लेकर संपादन, प्रकाशन व प्रसारण तक समकालीन गतिविधियों के संचार से संबद्ध समस्त साधन समाहित हैं।

**परिभाषा**— पत्रकारिता के संदर्भ में उपर्युक्त वर्णन के पश्चात 'पत्रकारिता' की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है—

टिप्पणी

इसके अर्थ और स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने पत्रकारिता को अपने—अपने ढंग से इस प्रकार परिभाषित किया है—

1. 'मॉडर्न जर्नलिज्म' में सी.जी. मुलर ने कहा है— 'सामयिक ज्ञान का व्यवसाय ही पत्रकारिता है। इसमें तथ्यों की प्राप्ति, उनका मूल्यांकन और समुचित प्रस्तुतीकरण होता है।'
2. 'मानविकी पारिभाषिक कोश' में डॉ. नगेंद्र के शब्दो में— 'पत्रकारिता का अभिप्राय है— समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन आदि द्वारा प्रसारित करने के लिए समाचारों का संग्रह अथवा प्रेषण अथवा उनका लेखन, संपादन या नियोजन।'
3. 'चैंबर एवं न्यूज वेब्स्टर्स डिक्शनरी' के अनुसार – 'प्रकाशन, संपादन, लेखन और प्रसारण युक्त समाचार माध्यम का व्यवसाय ही पत्रकारिता है।'
4. श्री कमलापति त्रिपाठी ने 'पत्रकारिता के सिद्धांत' में लिखा है— 'समाज एवं समय के संदर्भ में सजग और सचेत या जागरूक रहकर नागरिकों में दायित्व बोध कराने की कला को पत्रकारिता कहते हैं।'
5. 'परिभाषा कोश' में डॉ. बदरीनाथ कपूर ने कहा है— 'पत्रकारिता पत्र—पत्रिकाओं के लिए समाचार, लेख आदि एकत्रित तथा संपादित करने, प्रकाशन आदेश देने का कार्य है।'
6. 'आधुनिक पत्रकार—कला' में रामकृष्ण रघुनाथ खाडलकर के शब्दों में— 'ज्ञान और विचार शब्दों एवं चित्रों के रूप में दूसरे तक पहुंचना ही पत्रकला, पत्रकार—कला या पत्रकारिता है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि

## 3.2.1 पत्रकारिता के प्रकार

1. **अनुसंधानात्मक/अन्वेषी पत्रकारिता**— अन्वेषी पत्रकारिता के द्वारा समसामयिक विषयों, घटनाओं, स्थितियों और तथ्यों का क्रमबद्ध, सूक्ष्म—सर्वेक्षण, अध्ययन और अनुसंधान के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है। इस प्रकार समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार संबंधी बातों के रहस्योद्‌घाटन और प्रकाशन के द्वारा इन पर नियंत्रण किया जाता है। अमेरिका में ऐसी पत्रकारिता को अन्वेषणात्मक पत्रकारिता कहा जाता है।
2. **ग्रामीण पत्रकारिता**— भारत की अधिकांश जनता गांवों में निवास करती है, इसलिए इसे ग्राम प्रधान देश भी कहा जाता है। ग्रामीण जीवन के विषय, शहरी जीवन से पूरी तरह अलग होते हैं। अतः देश की ग्रामीण जनता की समस्याओं, उसकी आशाओं को पत्रकारिता के माध्यम से प्रस्तुत करना ग्रामीण पत्रकारिता कहलाता है। आज भी अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्रों के पिछड़ेपन का कारण संचार

टिप्पणी

का अभाव है। गांवों में नई चेतना और वैधानिक विकास के स्वर को पत्रों द्वारा ही पहुंचाया जा सकता है।

प्रायः गांवों में कृषि प्रमुख उद्योग के रूप में होती है। कृषि के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों एवं नये वैज्ञानिक उपकरणों से किसानों को परिचित करवाना पत्रकारिता का प्रमुख लक्ष्य है। इसलिए कुछ लोग इसे कृषि पत्रकारिता भी कहते हैं।

ग्रामीण पत्रकारिता के लिए पत्रकार को आवश्यक रूप में ग्रामीण परिवेश की अच्छी और जीवंत जानकारी होनी चाहिए और साथ ही साथ कृषि का अनुभव भी होना चाहिए। सहज भाषा का प्रयोग कम पढ़े–लिखे पाठकों हेतु अनिवार्य रूप से हो और आवश्यकतानुसार ग्रामीण शब्दावली प्रयुक्त की जानी चाहिए।

3. **संदर्भ पत्रकारिता**– मानव मस्तिष्क की एक सीमा होती है। पूर्व में घटित सभी घटनाक्रमों को तिथि और समयानुसार याद रख पाना मानव मस्तिष्क की क्षमता से परे होता है। ऐसे में संदर्भों की आवश्यकता होती है, इसलिए आधुनिक पत्रकारिता को संदर्भ सेवा अथवा संदर्भ पत्रकारिता की आवश्यकता रहती है। संदर्भ सेवा का अभिप्राय संदर्भ सामग्री की उपलब्धता है। इस प्रकार की पत्रकारिता के लिए पुस्तकालय विज्ञान में प्रशिक्षित व्यक्ति अत्यंत सहायक सिद्ध होते हैं। यह श्रम–साध्यता और धैर्य का कार्य है। आज कम्पयूटर तथा इंटरनेट ने इसे आसान कर दिया है। इसकी सहायता से पलक झपकते ही विभिन्न संदर्भ प्राप्त किए जा सकते हैं।
4. **विकासात्मक पत्रकारिता**–आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों के बारे में रचनात्मक लेखन को विकासात्मक पत्रकारिता के रूप में माना जा सकता है। पत्रकार का मुख्य कार्य अपने पाठकों को तथ्यों की सूचना देना है जहां संभव हो वहां निष्कर्ष भी दिया जा सकता है। विकासात्मक पत्रकारिता की भाव–भूमि यह है कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि विभिन्न स्तरों पर आ रहे बदलाव को स्पष्टतः उद्घाटित किया जाए। विकासात्मक पत्रिका का ध्यान विकास पर केंद्रित होना चाहिए।
5. **व्याख्यात्मक पत्रकारिता**– आज प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन हो रहा है। अतः पाठकों की रुचि भी अब परिवर्तित हो गई है और वे घटनाओं के प्रस्तुतीकरण मात्र से संतुष्ट नहीं होते। अतः घुमक्कड़ पत्रकार के स्थान पर समाचार समितियां कार्यरत हैं, जो पलक झपकते ही सुदूरवर्ती स्थलों की सूचनाएं एक मेज पर एकत्रित करके दे देती हैं। इन ऐजेंसियों से प्राप्त सूचनाओं की पृष्ठभूमि और कारणों की खोज करके संवाददाता समाचार का विश्लेषण भी करता है, भावी परिणामों की ओर संकेत भी करता है। सूचनाओं और तथ्यों के यथार्थ परिवेश में उसका विश्लेषण एवं मूल्यांकन करना ही ऐसी पत्रकारिता का लक्ष्य है।
6. **आर्थिक पत्रकारिता**– तेजी से होते औद्योगिकीकरण ने विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है। कुछ वर्षों पूर्व भारत में आर्थिक समाचारों के प्रति न तो पत्र

संपादकों की रुचि थी और न ही पाठकों की, परंतु आज अर्थ से संबंधित क्रिया–कलापों को उजागर करने के लिए आर्थिक पत्रकारिता विकसित हो रही है।

आर्थिक पत्रकारिता का पूरा आधार आंकड़े ही होते हैं। अतः आर्थिक पत्रकारिता के लिए पत्रकार को देश–विदेश की आर्थिक योजनाओं की गहरी और तथ्यात्मक समझ का होना अत्यावश्यक है। इस क्षेत्र का मूल उद्देश्य आंकड़ों को जनता के समक्ष प्रस्तुत करना ही नहीं होता, वरन् कभी–कभी आवश्यकतानुसार सरकार को सुझाव देना भी होता है।

7. **खेल पत्रकारिता**– स्वास्थ्य और मनोरंजन से संबद्ध होने के कारण खेलों से मानव जीवन का काफी पुराना और गहरा संबंध है। समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में खेल संबंधी समाचार प्रकाशित होते हैं। 'खेल खिलाड़ी' 'क्रिकेट सम्राट' 'स्पोर्ट्स वीकली' और 'खेल युग' जैसी कई पत्रिकाएं आज खेल प्रतियोगिताओं को प्रोत्साहित कर रही है।

   आज प्रतिदिन विश्वभर में कहीं–न–कहीं किसी–न–किसी खेल का आयोजन होता रहता है। अतः खेलों के प्रति जनता की रुचि को देखकर पत्र–पत्रिकाएं खेलों से संबद्ध समाचार नियमित स्तंभों के अंतर्गत देती हैं। बड़े और लोकप्रिय समाचार पत्रों में प्रायः पूरा पृष्ठ–खेल–समाचारों का दिया जाता है।

8. **संसदीय पत्रकारिता**– समाचार पत्रों के लिए संसद, विधानमंडल आदि समाचारों के प्रमुख स्रोत हैं। इन सदनों की कार्यवाही के दौरान समाचार पत्रों के पृष्ठ संसदीय समाचारों से भरे रहते हैं। देश तथा राज्य की राजनीतिक, सामाजिक आदि गतिविधियां और यहां की कार्यवाही प्रकट होती रहती है, जिसे समाचार पत्र ही जनता तक पहुंचाकर उनका पथ–प्रदर्शन करते हैं। संसदीय पत्रकारिता का कार्य जितना महत्वपूर्ण है, उससे कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण तथा सावधानी बरतने वाला है, क्योंकि संसद की अवमानना संबंधी प्रश्न पत्रकार के लिए घातक हो सकते हैं। अतः संसदीय कार्यवाही की रिपोर्टिंग में विशेष दक्षता, और सावधानी की आवश्यकता होती है। इसलिए संसद की पत्रकार–दीर्घा में सुप्रतिष्ठित पत्रकार को राष्ट्र के 'चौथे स्तंभ' के रूप में जाना जाता है।

9. **फोटो पत्रकारिता**– फोटो पत्रकारिता से अभिप्राय सचित्र विवरणयुक्त समाचारों से है। फोटो पत्रकार वैज्ञानिक उपकरणों, पशुओं, ऐतिहासिक भवनों और स्थलों, प्राकृतिक दृश्यों और समारोहों के चित्र लेकर उनकी प्रिंटिंग, एनालाइजिंग, फोटो फिनिशिंग एवं रसायनिक क्रियाओं के ज्ञान के साथ चित्रों के लिए उपयुक्त शीर्षक लिखते हैं। इस सारी प्रक्रिया को फोटो–पत्रकारिता की संज्ञा दी जाती है। शीर्षकयुक्त चित्र में दृश्य और श्रव्य दोनों प्रकार के गुण होते हैं। फोटो पत्रकारिता का प्रयोग ऐतिहासिक महत्व की इमारतों, प्राकृतिक दृश्यों, पशु–पक्षियों आदि से संबद्ध विचारों के प्रस्तुतिकरण के लिए किया जाता है।

10. **साहित्यिक–सांस्कृतिक पत्रकारिता**– पत्रकारिता साहित्यकार की पहली सीढ़ी होती है। साहित्यकार अपनी फुटकर रचनाओं को पत्र–पत्रिकाओं में छपवाकर ही प्रसिद्धि प्राप्त करता है, इसलिए सर्वोत्तम पत्रकारिता को साहित्यिक पत्रकारिता कहा जाता है।

टिप्पणी

वर्तमान समय में देखा गया है कि पत्रकारिता पर राजनीति हावी हो चुकी है। अतः साहित्यिक, सांस्कृतिक समारोहों को स्थान या तो मिलता ही नहीं, मिलता भी है तो बहुत कम। अतः आवश्यकता इस बात की है कि समय–समय पर आयोजित प्रमुख विचार गोष्ठियों, साहित्यकार सम्मेलनों, पुस्तक विमोचन आदि विभिन्न साहित्यिक–सांस्कृतिक गतिविधियों को पत्रकारिता के माध्यम से उचित प्रोत्साहन दिया जाए।

11. **रेडियो पत्रकारिता**– वर्तमान में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने पत्रकारिता के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया है। रेडियो पत्रकारिता का ऐसा श्रव्य माध्यम है, जिसकी पहुंच समाज के सभी वर्गों तक है। समसामयिक घटनाओं, समस्याओं, आवश्यकताओं के समाधान एवं पूर्ति हेतु रेडियो का प्रयोग किया जाता है। समाचार प्रसारण, समाचार दर्शन, सामूहिक समीक्षा, व्याख्यात्मक सामग्री, ध्वनि संपादन एवं विविध प्रकार की प्राविधिक जानकारी रेडियो पत्रकारिता के अंतर्गत आती है। मनोरंजन भी इसका एक भाग है, परंतु पत्रकारिता–जनजागरण के उद्देश्य को लेकर चलती है।

12. **टेलीविजन पत्रकारिता**–सूचना क्रांति के रूप में आज टेलीविजन ने समाचार पत्र–पत्रिकाओं के समक्ष चुनौती खड़ी कर दी है। टेलीविजन की पत्रकारिता प्रिंट मीडिया और रेडियो पत्रकारिता से अधिक सशक्त और तीव्रगामी है। टेलीविजन पत्रकारिता में देश–विदेश की ज्वलंत और समसामयिक घटनाओं पर तथा गंभीर समस्याओं पर विशेषज्ञों की वार्ताएं दिखाकर समाचार प्रसारण तथा जीवन की वैविध्यपूर्ण समस्याओं/आवश्यकताओं के बारे में जानकारियां उपलब्ध करवाना निहित है।

13. **वृत्तांत पत्रकारिता**–वृत्तांत पत्रकारिता से तात्पर्य है, वह पत्रकारिता जिसके द्वारा दृश्य–श्रव्य के माध्यम से एक स्थान पर आयोजित विशेष प्रतियोगिता, समारोह उत्सव आदि से संबंध संवाद का प्रसारण। 'आंखों देखा हाल' अथवा 'सीधा प्रसारण' जो टी.वी., रेडियो से संप्रेषित होता है, वृत्तांत पत्रकारिता के अंतर्गत आता है। इन पत्रकारों में आवाज की गुणवत्ता, भाषा पर अधिकार, निष्पक्षता घटना ज्ञान एवं उत्तरदायित्व बोध अन्यों से अधिक होता है।

14. **विज्ञान पत्रकारिता**–विज्ञान की प्रगति और प्रसार ने दैनिक जीवन को बहुत प्रभावित किया है। विज्ञान संबंधी अनुसंधान तथा विज्ञान जगत में नित्य–प्रति हो रही क्रांति ने विज्ञान पत्रकारिता को महत्वपूर्ण बनाया है। आम पाठक तक विज्ञान संबंधी विभिन्न सूचनाएं पहुंचाना इसका लक्ष्य है। वर्तमान समय में विज्ञान संबंधी पत्र–पत्रिकाओं ने विज्ञान पत्रकारिता के विकास में विशेष योगदान दिया है।

15. **नारी जीवन के विषयों से जुड़ी पत्रकारिता**–संसार की लगभग आधी जनसंख्या नारियों की है और आधी जनसंख्या पुरुषों की। लेकिन इन दोनों के बीच असमानता की एक गहरी खाई अभी भी बनी हुई है। 21वीं सदी में भी स्त्री अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है, जो निश्चित ही सभ्य समाज के लिए एक प्रश्नचिह्न है। बहुत से देशों और समाजों में स्त्री के साथ आज

भी अमानवीय व्यवहार किया जाता है। दुनिया के चिंतकों, विचारकों, समाजशास्त्रियों, शिक्षाविदों ने स्त्री और पुरुष के बीच की खाई कम करने के लिए निरंतर प्रयास किए हैं। उन्हीं प्रयासों का यह प्रतिफल है कि अब स्त्रियां पहले की तुलना में अधिक स्वछंद एवं स्वावलंबी बनी हैं, लेकिन इस दिशा में अभी भी बहुत काम करने की जरूरत है। इस जरूरत की पूर्ति के लिए पत्रकारिता अपनी अहम् भूमिका निभा रही है। आजकल पत्रकारिता के क्षेत्र में स्त्रियों का भी दबदबा बढ़ा है, जो एक सुखद पक्ष है।

स्त्री और पुरुष के जीवन की आवश्यकताएं एक जैसी होते हुए भी बहुत भिन्न हैं। जैसे–जैसे विज्ञान ने मानव शरीर की संरचना की परतें खोली हैं वैसे–वैसे स्त्री के मनोजगत और शारीरिक आवश्यकताओं तथा मानसिक धरातल के रहस्य भी उद्घाटित हुए हैं। इसीलिए आज 'गृहशोभा', 'मेरी सहेली', 'वनिता', 'वामा', 'नायिका', 'मधुरिमा' जैसी अनेक पत्रिकाएं केवल नारी से जुड़े विषयों पर पत्रकारिता कर रही हैं। इन पत्रिकाओं की संपादिकाएं भी स्त्रियां हैं जो स्त्री की पीड़ा को बखूबी समझकर उन्हें पाठकों तक पहुंचाने का निरंतर प्रयास कर रही हैं।

इस प्रकार की पत्रकारिता का उद्देश्य जहां स्त्री के स्वास्थ्य संबंधी विषयों को उठाना है वहीं नारी के सशक्तिकरण के उद्देश्य को भी पूरा करना है।

16. **स्वास्थ्य पत्रकारिता**– एक प्राचीन कहावत है कि 'जान है तो जहान है'। स्वास्थ्य मनुष्य को प्रकृति की दी हुई वह अमूल्य निधि है, जिसकी तुलना किसी अन्य निधि से नहीं की जा सकती और स्वास्थ्य खराब हो जाने की स्थिति में जीवन का सारा आनंद तिरोहित होने लगता है। संसार के सारे कार्य–कलाप अच्छे स्वास्थ्य पर ही संपादित होते हैं। राष्ट्रों के विकास की आधारशिला नागरिकों के अच्छे स्वास्थ्य पर ही निर्भर होती है। इसीलिए विश्व भर के देशों में जो संविधान लिखे गए हैं, उनमें वहां के नागरिकों के स्वास्थ्य की देखभाल का दायित्व सरकारों पर डाला गया है। भारत में स्वास्थ्य को समवर्ती सूची में रखा गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की तमाम योजनाओं को लागू करने का काम पत्रकारिता के माध्यम से पूरा होता है। पिछले दिनों भारत में पल्स पोलियो अभियान चलाया गया। पल्स पोलियो से होने वाली विकलांगता का आकलन पत्रकारिता के द्वारा जनसाधारण तक पहुंचाया गया। यह पत्रकारिता की सफलता का ही प्रमाण है कि आज देश के लगभग सभी क्षेत्रों में यह संदेश पहुंच चुका है कि इस घातक बीमारियों से बचा जा सकता है। इससे आज स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं को क्रियान्वित करने में मदद मिल रही है।

इस प्रकार की पत्रकारिता बहुत अधिक सावधानी की मांग करती है, क्योंकि गलत जानकारी उपलब्ध करवा देने से पाठकों के स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ सकता है, जो स्वास्थ्य पत्रिकारिता के उद्देश्य के ठीक विपरीत होगा। स्वास्थ्य पत्रकारिता करने वाले पत्रकार को मानव शरीर की संरचना की गहरी जानकारी होनी चाहिए। इस प्रकार स्वास्थ्य संबंधी पत्रकारिता की भूमिका राष्ट्र को विकसित करने में बहुत महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी

17. **विदेश नीति की पत्रकारिता**— आज जब पूरी दुनिया सिमटकर एक गांव के रूप में तब्दील हो रही हो और विकास के लिए एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर निर्भर हो रहा हो तो ऐसे में विदेश नीति एवं दूसरे देशों के समाजों की गतिविधियों का ब्यौरा अपने देश तक पहुंचाने का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है। पहले कोई राष्ट्र अपने आप विकास का रास्ता तय करके जीवित रह सकता था, लेकिन आज यह संभव नहीं है, क्योंकि विश्व स्तर की संस्थाएं अस्तित्व में आ चुकी हैं, जो समूचे संसार को ध्यान में रखकर निर्णय लेती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व श्रम संगठन, संयुक्त राष्ट्रसंघ, विश्व बैंक जैसी संस्थाएं विश्व के विकसित, विकासशील, अविकसित राष्ट्रों को ध्यान में रखकर अलग–अलग नीति निर्धारित करती हैं। उन संस्थाओं के साथ राष्ट्र किस तरह की योजनाएं बनाए तथा दूसरे राष्ट्रों के साथ किस तरह के कूटनीतिज्ञ, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों का निर्माण करें, इन बातों पर प्रकाश डालना विदेश नीति की पत्रकारिता के अंतर्गत आता है। विदेश नीति की पत्रकारिता वही पत्रकार कर सकता है जो दोनों देशों की भौगोलिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आवश्यकताओं को गंभीरता से जानता समझता हो।

    यह भी प्रकाश में आया है कि अनेक बार राष्ट्रीय सरकारें विदेश नीति के बारे में सब पत्रकारों को बुलाकर विचार–विमर्श करती है। विदेश नीति के पत्रकार बहुत बड़े विद्वान, चिंतक और विचारक होते हैं, जो बहुत विचार–विमर्श कर एक रास्ता तय करते हैं, जो राष्ट्र को आगे ले चलने में मददगार होता है। प्रायः ऐसे आलेख समाचार पत्रों के संपादकीय पृष्ठ पर छापे जाते हैं।

18. **व्यावसायिक पत्रकारिता**— आज का समय औद्योगिकीकरण का समय है, पहले कुछ पूंजीपति लोग उद्योगों को चलाकर राष्ट्रीय उत्थान का काम करते थे, लेकिन आज बदली हुई बाजार व्यवस्था में शेयर मार्केट तथा वायदा बाजार जैसी प्रणालियां अस्तित्व में आ गई हैं, जिनकी प्रतिदिन की जानकारी जनता तक पहुंचना अनिवार्य हो गया है। 'द इकॉनॉमिक टाइम्स' एवं 'फाइनेंशियल एक्सप्रेस' जैसे समाचार पत्र विशुद्ध व्यावसायिक पत्रकारिता के उत्तम और श्रेष्ठ उदाहरण हैं, जो वस्तुओं, शेयरों के उतरते और चढ़ते दामों की जानकारी के साथ–साथ बाजार में उनकी उपलब्धता की जानकारी भी जनता तक पहुंचाते हैं। लगभग प्रत्येक समाचार पत्र में हर रोज एक पृष्ठ बाजार की पत्रकारिता को समर्पित होता है। जो आयात–निर्यात स्थिति का खुलासा करता है तथा बाजार से जुड़े हुए लोगों को इस आशय की जानकारी उपलब्ध करवाता है कि आज उन्हें किस तरह के व्यापारिक उतार–चढ़ाव से गुजरना है।

    शेयरों की खरीद–फरोख्त आज का मध्यवर्गीय समाज भी कर रहा है। देश की बाजार व्यवस्था में मध्यवर्गीय समाज की पूंजी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है और बाजार व्यवस्था की पूरी जानकारी देने में इस प्रकार की पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान है। बाजार पत्रकारिता में कल्पना के लिए कोई स्थान

नहीं होता। सभी तथ्य आंकड़ों के आधार पर प्रस्तुत किए जाते हैं। बाजार पत्रकारिता में वही पत्रकार सफल हो सकता है, जो बाजार की गतिविधियों एवं आर्थिक विषयों की गहरी जानकारी रखता हो।

टिप्पणी

19. **फिल्म एवं मनोरंजन जगत से जुड़ी पत्रकारिता**—आज समाज में फिल्मों का भी अपना एक प्रभाव एवं अस्तित्व है। आज संसार में जितनी फिल्में बनाई जा रही हैं उतनी पहले कभी नहीं बनाई गईं। आज की बढ़ती शहरी व्यवस्था में फिल्म मनोरंजन का एक प्रमुख साधन बन गई है। इसलिए समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में अब फिल्मों के लिए भी अलग से पृष्ठ एवं कॉलम निर्धारित किए जाते हैं, जिनके प्रभारी संपादक फिल्मों की गहरी समझ रखने वाले होते हैं। इन पृष्ठों पर फिल्म जगत की हलचलों का सही आकलन प्रस्तुत किया जाना चाहिए। फिल्मों से जुड़ी खबरों की बढ़ती हुई मांग को ध्यान में रखते हुए आज कई समाचार पत्रों में फिल्मी विशेषांक भी निकाले जाते हैं।

    वैसे फिल्म स्वयं भी एक तरह की पत्रकारिता है। विशेष साहित्यकारों की कृतियों पर बड़ी संख्या में फिल्में बनती हैं, जिनका उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों और विसंगतियों को समाप्त करना होता है, जो स्वयं पत्रकारिता के उद्देश्यों में आता है। मनोरंजन की दृष्टि से आजकल टी. वी. पर प्रसारित हाने वाले अनेक धारावाहिकों की समीक्षाएं पत्र–पत्रिकाओं में छापी जाती हैं। ऐसे में जब कोई एक समाचार पत्र फिल्म और मनोरंजन पर केंद्रित पृष्ठ निकालता है तो बाजार में बने रहने के लिए दूसरे पत्र को भी परिशिष्ट निकालने पड़ते हैं।

20. **अन्य**— पत्रकारिता के इन विभिन्न प्रकारों/क्षेत्रों के अतिरिक्त भी कई प्रकार/क्षेत्र है; जैसे–
    - बाल पत्रकारिता
    - छात्रोपयोगी पत्रकारिता
    - विधि पत्रकारिता
    - सर्वोदय पत्रकारिता
    - हास्य-व्यंग्य पत्रकारिता आदि।

### 3.2.2 पत्रकारिता की भाषा–शैली

आज समाचार का महत्व बताने की शायद ही आवश्कता हो। जेम्स रस्टन ने ठीक ही कहा है कि, 'उन्नीसवीं सदी कथाकारों की थी, तो बीसवीं सदी पत्रकारों की है। लोकतंत्र में पत्रकारिता को 'चौथी सत्ता' माना जाता है। समाचार पत्रों के बिना लोकतंत्र संभव नहीं है।'

समाचार पत्र में हम अधिकतर समाचार पढ़ते हैं। इसके अलावा दैनिक समाचार पत्र में संपादकीय और अन्य स्तंभ तथा विज्ञापन होते हैं। लेकिन समाचार दैनिक समाचार पत्र का मुख्य आधार है। समाचार पत्र–रहित दैनिक समाचार पत्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इन समाचारों को दूसरे शब्दों में 'घटी हुई घटनाओं का विवरण

अथवा वृतांत कहा जा सकता है। यह वृतांत तैयार करने वालों को संवाददाता (रिपोर्टर) कहते हैं। इस प्रकार, संक्षेप में कहें, तो समाचार–लेखन समाचार पत्र का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है। नादिग कृष्णमूर्ति इसे 'Sum and substance of a newspaper' (समाचार पत्र का मूलभूत तत्व) कहते हैं।

**टिप्पणी**

अब प्रश्न उठता है कि समाचार लेखन किसे कहेंगे? व्यापक अर्थ में कहा जाए तो समाचार–लेखन किसी समाचार माध्यम द्वारा 'किसी कहे हुए, सुने हुए अथवा किसी तरह प्राप्त किए संदेश को पुनः प्रस्तुत करना है।' दूसरे शब्दों में कहें, तो जो हो चुका है, अथवा होने की संभावना है, उसके विषय में सही, संपूर्ण, तटस्थ और समय पर जानकारी देने की प्रक्रिया को समाचार–लेखन कहा जा सकता है।

समाचार पत्रों में समाचार लेखन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मानव की जिज्ञासा का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है और भविष्य में और विस्तृत होता जाएगा। स्वाभाविक ही है कि इस प्रक्रिया के साथ–साथ समाचार लेखन का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। इस क्षेत्र में नए–नए विषय प्रवेश करते जा रहे हैं।

1800 से पूर्व समाचार लेखन के लिए कोई वैज्ञानिक पद्धति नहीं थी। संवाददाता दैनिक घटनाओं का काल क्रमानुसार रखकर अपना कार्य चला रहे थे। धीरे–धीरे समाचार पत्रों का प्रसार होता गया। समाचार पत्रों में स्थान का महत्व बढ़ा और मूल्य का भी। अतः समाचारों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जाने लगा। वर्ष 1894 में एडविन एल. शूमैन ने 'प्रैक्टिकल जर्नलिज्म' नामक पुस्तक में पत्रकारिता के इन विशिष्ट तथ्यों की ओर संकेत किया।

समाचार लेखन के सिद्धांत–5 डब्ल्यू और एक एच (5-W/H– what, where, when, who, why, and, how)। हिंदी में छह ककार–क्या, कहां, कब, कौन, क्यों और कैसे।

रुडयार्ड किपलिंग ने सर्वप्रथम समाचार लेखन के लिए 5 डब्ल्यू और 1 एच का उल्लेख किया। इन्हें हिंदी में छह ककार कहते हैं। ये छह ककार आज भी केवल समाचार संकलन जगत के नहीं, बल्कि पत्रकारिता–जगत के आधार स्तंभ हैं–

1. क्या हुआ, अर्थात क्या घटना हुई?
2. कहां हुआ, अर्थात घटना कहां हुई?
3. कब हुआ, अर्थात किस समय घटना घटी?
4. कौन–सी घटना हुई, अर्थात किसके साथ क्या हुआ?
5. क्यों घटना हुई, अर्थात किसके साथ क्या हुआ?
6. कैसे घटना घटित हुई?

अंग्रेजी में इन्हें– What, Where, When, Who, Why और How कहा जाता है (अर्थात 5 डब्ल्यू. और 1 एच.) 1 पाठक इन ककारों का उत्तर इसी क्रम से चाहता है। सबसे पहले 'क्या' और सबसे बाद 'कैसे' का उत्तर देना चाहिए। सामान्य नियम यह है कि अत्यंत महत्व के तथ्य सबसे पहले देना चाहिए और सबसे कम महत्व के अंश को सबसे बाद में देना चाहिए। एक समाचार देखिए–

टिप्पणी

### सिक्किम : भूस्खलन से 21 लोगों की मौत

गंगटोक, 23 सितंबर। उत्तरी सिक्किम में भारी बारिश और भूस्खलन से 21 लोगों की मौत हो गई। इसमें इंडो–तिब्बत सीमा पुलिस (आईटीबीपी) के दो जवान और उनके दो परिजन शामिल हैं। सीमा सड़क संगठन के 12 जूनियर अफसर भी मारे गए हैं। बाकी मृतक मजदूर थे। जिले के डिप्टी कमिशनर टी.डब्ल्यू कांगशेरपा ने बताया कि ज्यादा लोगों की मौत रंगमा रेंज में हुई है। चुंगतांग क्षेत्र में सीमा सड़क संगठन का शिविर लगा था। लाचेन नदी में आई बाढ़ में यह लोग बह गए। कई लोग अभी भी लापता हैं। राहत सामग्री से लदे ट्रक सड़कों के क्षतिग्रस्त हो जाने से बीच में फंसे हुए हैं।

इनमें हमें प्रायः छह ककारों का उत्तर मिल जाता है–

1. क्या? भूस्खलन
2. कहां? सिक्किम
3. कब? 23 सितंबर
4. कौन? 21 लोग मरे
5. क्यों? भूस्खलन के कारण
6. कैसे? भारी बारिश और भूस्खलन से

संवाददाता को समाचार–लेखन से पूर्व तय कर लेना चाहिए कि समाचार की शुरुआत कैसे करनी है। कौन–सी जानकारी पहले देनी हैं और किस क्रम से देनी है। मन में इस तरह का खाका बना लेने से ब्यौरे तरतीब से सजाए जा सकते हैं एवं सुगठित और तराशा हुआ समाचार लिखा जा सकता है। समाचार–लेखन के लिए निम्न प्रक्रिया जरूरी है– 1. समाचार तथ्यों को संकलित करना, 2. कथा की कार्य योजना बनाना एवं लिखना, 3. आमुख लिखना, 4. परिच्छेदों का निर्धारण करना, 5. वक्ता के कथन को अविकल रूप से प्रस्तुत करना, 6. सूत्रों के संकेत को उद्धृत करना।

### विलोम पिरामिड

समाचार–लेखन के लिए कुछ पारंपरिक नियम हैं, जिनका कमोबेश आज भी प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए 'विलोम पिरामिड' (Inverted Pyramid) शैली। पिरामिड का आधार आयताकार होता है और शीर्ष पहाड़ की चोटी की तरह नुकीला। पिरामिड को उलटकर नोक के बल पर खड़ा कर दिया जाए तो उसका आधार ऊपर की तरफ होगा। समाचार के संदर्भ में इसका अर्थ है कि समाचार का सार संक्षेप आरंभ में ही दे दिया जाए ताकि पाठक को एक ही नजर में पता लग जाए कि आगे क्या–क्या जानकारी मिलने वाली है। पाठक में आगे पढ़ने की उत्सुकता जागेगी और ज्यों–ज्यों वह खबर पढ़ता जाएगा जानकारी की परतें एक–एक करके उघड़ती चली जाएंगी।

विलोम पिरामिड शैली से पाठक को शुरु में ही ज्ञात हो जाता है कि समाचार में क्या है? दूसरा यदि पेज का मेकअप करते समय मैटर या समाचार बढ़ जाता है यानी जगह कम रहती है तो आखिर के दो–तीन अनुच्छेद आसानी से काटे जा सकते हैं, क्योंकि अंत में गौण तथ्य ही होंगे।

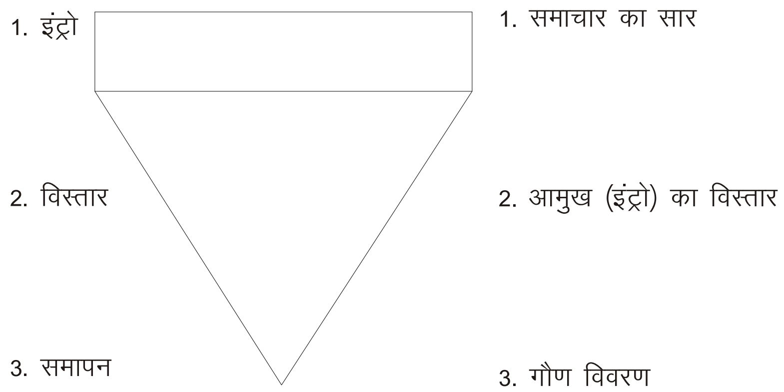


विलोम पिरामिड

विलोम पिरामिड शैली में कुछ खामियां भी हैं। जैसे समाचार के आरंभिक भाग (इंट्रो) में जानकारी ठूंसने की कोशिश मे वाक्य रचना के बोझिल होने का खतरा रहता है। दूसरा, समाचार की शुरुआत रोचक ढंग से नहीं होती। तीसरी बात यह है कि शीर्षक और इंट्रो में विषय या जानकारी की पुनरावृत्ति होती है। आगे चलकर अन्य तथ्य देते समय उसका फिर से उल्लेख करना पड़ जाता है। इन खामियों के वाबजूद विलोम पिरामिड शैली समाचारों को कम से कम स्थान या पंक्तियों जोड़ने की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी है। समाचारों में पूरी तरह और बड़ी घटनाओं की खबरों में काफी हद तक विलोम पिरामिड का अनुसरण किया जाता है।

## ऊर्ध्व पिरामिड शैली

ऊर्ध्व (Upright Pyramid) शैली विलोम पिरामिड शैली से एकदम उलटी है। ऐसे समाचारों के आरंभ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश को शुरु में न देकर उसका आरंभ सबसे कम महत्व के विवरण में किया जाता है। लेकिन धीरे–धीरे महत्वपूर्ण विषय को लिया जाता

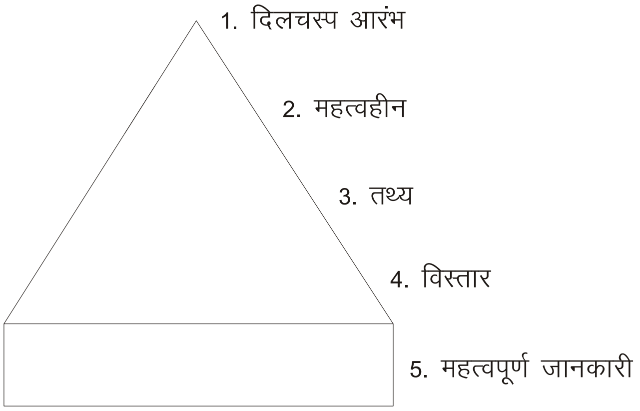


*ऊर्ध्व पिरामिड*

है और समाचार सर्वाधिक महत्व वाले विवरण पर समाप्त किया जाता है। इन्हें निलंबित अभिरुचि वाला समाचार भी कहा जाता है। ऊधर्व पिरामिड का उपयोग फीचर, मानवीय, अभिरुचि के समाचारों में प्रयुक्त किया जाता है। इसमें दी जाने वाली सामग्री का क्रम कुछ इस प्रकार रहता है–

1. सबसे कम महत्वपूर्ण सूचना, लेकिन जो पाठक में उत्सुकता पैदा करे।
2. समाचार से जुड़े तथ्य।
3. विस्तार, जिसमें समाचार की पृष्ठभूमि भी शामिल हो।
4. महत्वपूर्ण जानकारी।
5. सर्वाधिक महत्वपूर्ण जानकारी जिसे समाचार का चरमोत्कर्ष भी कहा जा सकता है।



### समाचार लेखन की नई शैली

मीडिया के विभिन्न माध्यमों में समाचार लेखन के लिए विलोम पिरामिड शैली का सर्वाधिक प्रयोग होता है। लेकिन समाचार लेखन की अनेक शैलियों का प्रचलन बढ़ा है। नई शैली में लोकप्रिय शैली कथात्मक या वर्णनात्मक शैली है। इसमें समाचार विलोम पिरामिड के बजाय कथात्मक/वर्णनात्मक शैली में समाचार लिखा जाता है। इसमें समाचार पढ़ने में एक निरंतरता बनी रहती है। समाचार को कहीं भी संपादित नहीं किया जा सकता है। अंग्रेजी के समाचार पत्रों–टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्तान टाइम्स, इंडियन एक्सप्रेस आदि में कथात्मक या वर्णनात्मक शैली में लिखे समाचारों का चलन लगातार बढ़ रहा है। हिंदी के समाचार पत्रों 'नवभारत टाइम्स', 'दैनिक हिंदुस्तान', 'जनसत्ता', 'जागरण', 'राजस्थान पत्रिका' आदि में इस शैली में लिखे गए समाचार दिखाई देते हैं।

### अपनी प्रगति जांचिए

1. इनमें से क्या पत्रकारिता से संबंधित नहीं है?
   (क) प्रकाशन (ख) संपादन
   (ग) लोक शिक्षण (घ) लेखन–प्रसारण
2. 'रेडिया पत्रकारिता' का कैसा माध्यम है?
   (क) दृश्य माध्यम (ख) श्रव्य माध्यम
   (ग) दृश्य–श्रव्य माध्यम (घ) प्रिंट/पाठ्य माध्यम

## 3.3 मध्य प्रदेश का लोक साहित्य

लोक साहित्य हमें तीन रूपों में प्राप्त होते हैं, एक–कथा, दूसरा–गीत, तीसरा–कहावतें आदि। लोककथाओं की विभेदता भी तीन रूपों में मानी जाती है– धर्मगाथा, लोकगाथा तथा लोक कहानी। धर्मगाथा (माईथालॉजी) पृथक अध्ययन का विषय है। शेष कथा के दो भाग रह जाते हैं, लोकगाथा तथा लोक कहानी। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इन दोनों का पृथक–पृथक अस्तित्व स्वीकार करते हुए लोक साहित्य को चार रूपों में बांटा है, एक–गीत, दूसरा–लोकगाथा, तीसरा–लोककथा तथा चौथा–प्रकीर्ण साहित्य, जिसमें अवशिष्ट समस्त लोकाभिव्यक्ति का समावेश कर लिया गया है।

**टिप्पणी**

वैसे तो धर्मगाथाएं पृथक अध्ययन का विषय हैं, किन्तु लोक–कहानी और धर्मगाथा में जो विशेष अन्तर आ गया है, उसे समझ लेना अहितकर न होगा। धर्मगाथा अपने निर्माण काल में एक सीधी–सादी लोक–कहानी ही होती है, परन्तु उस कहानी में धर्म का एक विशेष पुट लग जाता है, जो उसे लोक–कहानी के वास्तविक आधार से पृथक कर देता है। डॉ. सत्येन्द्र ने इस ओर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि धर्मगाथा स्पष्टतः तो होती है एक कहानी, पर उसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्राकृतिक व्यापार का वर्णन, जो उसके स्रष्टा ने आदिम काल में देखा था, और जिसमें धार्मिक भावना का पुट होता है। ये धर्म गाथाएं हैं तो लोक साहित्य ही, किन्तु विकास की विविध अवस्थाओं में से होती हुई वे गाथाएं धार्मिक अभिप्रायः से संबद्ध हो गयी हैं। अतः लोक साहित्य के साधारण क्षेत्र से इनका स्थान बाहर हो जाता है और यह धर्मगाथा संबंधी अंश एक पृथक ही अन्वेषण का विषय है।

लोकगाथाएं (अवसाद, किस्से या साके) वे काव्यमय कहानियां हैं, जिनका आधार इतिहास है अथवा जिन्हें कालक्रम से ऐतिहासिक महत्व हासिल हो चुका है। लोक मानस की वे घटनाएं जो कोरी कल्पना–जन्य हैं, वे आगे चल कर ऐतिहासिक रूप प्राप्त कर जाती हैं। जिन जातियों का मानसिक विकास नहीं हुआ है, उनमें थोड़े से चमत्कारपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति युग–पुरुष अथवा ऐतिहासिक पुरुष की भांति पूजे जाते हैं। किस्सों की परख से यह स्पष्ट है कि इनमें इतिहास के अवशेषों को ही मरने से नहीं बचाया गया है, पर साम्प्रतिक पुरुषों के किस्से भी चमत्कृत रूप में मिले हैं। अतः साके प्राचीन प्रवीरों और सिद्ध महात्माओं के ही हों ऐसी बात नही है, ये साके सामयिक पुरुष संबंधी भी हो सकते हैं, बल्कि होते भी हैं। सर आर. सी टेम्पल ने 'लीजेंड्स ऑफ दि पंजाब' में इन किस्सों को छः भागों में बांटा है। इन छः चक्रों में से एक चक्र उन कथाओं का भी है, जो स्थानीय वीरों से संबंध रखती हैं।

हमने लोक गाथाओं को अवदान, साका, राग या किस्सा के नाम से अभिहित किया है। इस साहित्यिक विद्या का एक नाम राजस्थानी में ख्यात भी प्रचलित है। ये ख्यातें रासो से भिन्न वस्तु हैं। रासो साहित्यिक वीर कथाएं हैं ओर ख्यातें मौखिक कथाएं हैं। ये लोक गाथाएं दो रूपों में मिलती हैं। एक प्राचीन पुरुषों की शौर्य की कहानियां हैं, जिन्हें वीरकथा कहा जा सकता है। इन्हें ही 'पंवारा' भी कहते हैं यथा 'जगदेव का पंवारा।' इनमें पुराण पुरुषों का अस्तित्व निर्विवाद मान लिया जाता है। दूसरे–साके। ये उन पुरुषों के शौर्य से सम्बन्धित हैं, जिनका इतिहास साक्षी है। साके में जीवन तथा शौर्य का विस्तार अपेक्षित है।

लोककथा निस्संदेह लोकगाथा से भिन्न वस्तु है। जो विद्वान इन दोनों को एक लोक कहानी के ही लघु और विशाल रूप कहते हैं, उन्होंने उनके मर्म को पहचानने का प्रयास नहीं किया। लोक साहित्य के ये दोनों रूप आपस में भिन्न हैं। लोक कथाओं में कहानियों के दोनों तत्व–मनोरंजन एवं शिक्षा पाये जाते हैं। जो कहानियां केवल शिक्षा के लिए ही निर्मित हुई हैं, उनके लिए अलग नाम भी दिया गया है। इन कहानियों को भारतीय साहित्य में तंत्राख्यान या पशु पक्षियों की कहानियां कहा गया है। अंग्रेजी में ऐसी कहानियों का नाम फेबिल दिया गया है। भारतीय कथा साहित्य में इस प्रकार के आख्यानों की कमी नहीं है। विष्णु शर्मा का पंचतंत्र और हितोपदेश जीवनोपयोगी

आख्यान ही तो हैं। भारत के ये आख्यान संसार के श्रेष्ठतम फेबिल्स में से हैं। इनकी यही विशेषता है कि इनमें किसी न किसी प्रकार की शिक्षा अवश्य मिलती है।

टिप्पणी

लोक साहित्य के कथा भाग पर विचार कर चुकने पर लोकगीत और लोक कहावतें, पहेलियां आदि रहती हैं। लोकगीत लोक मानस के वे अजस्र एवं निश्छल प्रवाह है, जिनका प्रतिभा के द्वारा विभिन्न अवसरों पर निर्माण होता है एवं गायन होता है। संक्षेप में लोकगीत लोक द्वारा लोक के लिये गाया गया गीत होता है। लोकगीतों की संख्या उतनी हो सकती है जितने जीवन के पहलू हैं।

प्रकीर्ण साहित्य में उस समस्त लोकाभिव्यक्ति का समावेश होता है, जो लोककथा, लोकगाथा और लोकगीत की परिधि से बाहर पड़ जाती है। इस प्रकार इनमें लोक के वे सभी अनुभव जो समय–समय पर होते हैं, आ जाते हैं। पहेलियां, सूक्तियां, बुझौवल, कहावतें, बालकों के खेलकूद के वाणी विलास आदि सब इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। इनका विवेचनात्मक वर्णन भी यथास्थान दिया गया है।

## 3.3.1 लोक–साहित्य : परिभाषा, क्षेत्र, वैशिष्ट्य एवं महत्व

डॉ. इन्दु यादव के मतानुसार–"सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, जीवन–मरण, लाभ–हानि, सुख–दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है उसे 'लोक–साहित्य' कहते हैं।" इस प्रकार लोक–साहित्य वह साहित्य है जो जनता द्वारा, जनता के लिए रचा गया हो। दूसरे शब्दों में कहें तो लोक सहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसकी रचना लोक करता है। संक्षेप में लोक–संस्कृति और लोक–साहित्य का मूल अत्यंत प्राचीन है, जिसकी धाराएं प्राचीन काल से ही प्रवाहित होती आ रही हैं।

डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार– "लोक का अर्थ संसार, प्रजा और लोग होता है।"

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार–"वास्तव में लोक–साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक–समूह अपना मानता है।"

डॉ. मीनाक्षी बोरणा के मतानुसार– "नवजात बच्चे की प्रथम किलकारी की अभिव्यक्ति लोक साहित्य है।"

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार– "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।"

लोक–साहित्य के अंतर्गत वह समस्त बोली या भाषागत विशेषताएं आती हैं, जिसमें–

1. आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों।
2. परंपरागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और लोकमानस की प्रवृत्ति में समायी हो।
3. वह कृतित्व हो, किन्तु वह लोकमानस के सामान्य तत्त्वों से ऐसे युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी लोक उसे अपने व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।

**टिप्पणी**

डॉ. पूर्णिमा श्रीवास्तव के मतानुसार– "हिंदी में 'लोक' अंग्रेजी शब्द 'Folk' का पर्यायवाची है। आंग्लभाषी प्रयोग की दृष्टि में थ्वसा असंस्कृत और मूढ़ समाज अथवा जाति का द्योतक है, पर सर्वसाधारण और राष्ट्र के सभी लोगों के लिए इसका प्रयोग होता है। इस प्रकार लोक–साहित्य का बोध एक ऐसे साहित्य से होता है, जिसकी रचना जनता याने लोक द्वारा होती है। इस प्रकार जिस साहित्य की रचना एक जन–समूह द्वारा की जाती हो, उसे लोक–साहित्य कहा जाता है। लोक–साहित्य उतना ही प्राचीन है, जितना कि मानव, इसलिए उसमें जन–जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है। जन–समूह की जो भावनाएं, हर्ष, विषाद, भय, प्रेम, शोक आदि होती हैं, उनकी सामूहिक अभिव्यक्ति गीत, कथा आदि के रूप में हुई होगी। किसी ने एक पंक्ति की मौखिक रचना की दूसरे ने उसमें एक पंक्ति और जोड़ दी और तीसरे ने तीसरी पंक्ति रच कर गीत को आगे बढ़ाया होगा। इस प्रकार परवर्ती पीढ़ियों ने भी इस गीत में सुधार किया होगा और अनेक लोगों के रचना सहयोग से यह साहित्य प्रकाश में आया होगा, जिसे बाद में 'लोक–साहित्य' कहा गया।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर लोक–साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएं निश्चित होती हैं–

1. लोक–साहित्य मौखिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होता रहता है।
2. लोक–साहित्य लोक–मानस द्वारा रचित होता है।
3. लोक के द्वारा, लोक के लिए निर्मित साहित्य लोक–साहित्य कहलाता है।
4. लोक साहित्य संपूर्ण लोक का संगी होता है।
5. लोक–साहित्य सरल, सहज और स्वयंस्फूर्त होता है। लोक–साहित्य लोक–कंठ से फूटता है। लोक–साहित्य में लोक मानव ह्रदय बोलता है।
6. लोक–साहित्य शास्त्रों के नियमों को अस्वीकार करता है।
7. इसमें छंद, अलंकार आदि नहीं होते।
8. लोक–साहित्य पर आदिम सभ्यता, अर्ध सभ्य या सभ्य लोगों या समाजों की भावनाओं, जीवन, रहन–सहन आदि का प्रभाव होता है।
9. लोक–साहित्य का जुडाव मानव के अंतरमन से होता है न कि बाह्य आडम्बरयुक्त रूप से।
10. साधारण जनता से संबंधित साहित्य को लोकसाहित्य कहना चाहिए।
11. लोक–साहित्य में निहित सौंदर्य का मूल्यांकन सर्वथा अनुभूतिजन्य होता है।
12. लोक–साहित्य किसी जनपदीय बोली के माध्यम से व्यक्त होता है।

इस प्रकार साधारण जनता से संबंधित साहित्य को लोक साहित्य कहना चाहिए। साधारण जनजीवन विशिष्ट जीवन से भिन्न होता है, अतः जनसाहित्य (लोक–साहित्य) का आदर्श विशिष्ट साहित्य से पृथक् होता है। किसी देश अथवा क्षेत्र का लोकसाहित्य वहां की आदिकाल से लेकर अब तक की उन सभी प्रवृत्तियों का प्रतीक होता है, जो साधारण जनस्वभाव के अंतर्गत आती हैं। इस साहित्य में जनजीवन

टिप्पणी

की सभी प्रकार की भावनाएं बिना किसी कृत्रिमता के समायी रहती हैं। अतः यदि कहीं की समूची संस्कृति का अध्ययन करना हो तो वहां के लोक–साहित्य का विशेष अवलोकन करना पड़ेगा। यह लिपिबद्ध बहुत कम और मौखिक अधिक होता है। वैसे हिंदी लोक–साहित्य को लिपिबद्ध करने का प्रयास इधर कुछ वर्षों से किया जा रहा है और अनेक ग्रंथ भी संपादित रूप में सामने आये हैं, किंतु अब भी मौखिक लोक–साहित्य बहुत बड़ी मात्रा में असंगृहीत है।

## लोक–साहित्य का क्षेत्र

लोक–साहित्य का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। जहां–जहां लोक है, वहां–वहां लोक–साहित्य है। आदिम लोगों का लोक से घनिष्ठ संबंध था। आदिम जीवन लोक–साहित्य का संस्कार–विधाता है। लोक–जीवन का प्रत्येक क्षण लोक–साहित्य से किसी न किसी प्रकार संबद्ध रहता है। जिस प्रकार मनुष्य का जीवन बहुआयामी है, उसी प्रकार लोक–साहित्य का क्षेत्र भी बहुत व्यापक है।

लोक–साहित्य के क्षेत्र के बारे में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का कहना है–"लोक–साहित्य का विस्तार अत्यंत व्यापक है, साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हंसती है, खेलती है, उन सबको लोक–साहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है। पुत्र जन्म से लेकर मृत्यु तक, षोड्ष संस्कारों का विधान जो प्राचीन ऋषियों ने किया, विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है, उसका प्रभाव जनसाधारण के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता। अतः बाह्य जगत में इस परिवर्तन को देख कर ह्ृदय में उल्लास या आनंद की अनुभूति होती है, वह लोकगीतों के रूप में प्रकट होती है। खेतों की बोआई, निपाई, लुनाई के समय भी गीत गाये जाते हैं। पीढ़ियां अपने पूर्व पुरुषों के शौर्यपूर्ण कार्यों को गा–गाकर आनंद प्राप्त करती है। उनका यशोगान कर श्रोताओं के हृदय में वीर–रस का संचार करती है। ये गीत लोककथाओं की कोटि में रखे जा सकते हैं।

इस प्रकार लोक–साहित्य की व्यापकता मानव से जन्म से लेकर मृत्यु तक तथा स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान तथा बूढ़े सभी लोगों की सम्मिलित संपत्ति है। इस प्रकार लोक–साहित्य के विषय क्षेत्र में लोक–जीवन, लोक–संस्कृति और लोक–परंपरा, प्रथाओं का सामावेश होता है। तो इसके अंतर्गत आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, नैतिक, भाषा–शास्त्रीय जैसे विषयों का समावेश होता है। लोक–साहित्य में भौगोलिक एवं आर्थिक दशा का चित्रण उपलब्ध होता है। लोक–साहित्य के द्वारा आर्थिक भूगोल का पता चलता है। लोक–गीतों तथा लोक–कथाओं में प्रयुक्त शब्दों द्वारा तत्कालीन समाज की अर्थव्यवस्था की जानकारी प्राप्त होती है। लोक–साहित्य में समाज के अध्ययन की बहुत सारी सामग्री मिलती है। लोक–कथाओं एवं लोक–गीतों में समाज का वर्णन अत्यधिक होता है, जिससे समाज के मनुष्यों का रहन–सहन, आचार–विचार, खान–पान, रीति–रिवाज, आदान–प्रदान, मान्यताएं, रूढ़ियां, लोक–विश्वास व परंपराओं, उनका पशु–पक्षी–प्रकृति से संबंध, उनकी बोली–बानी आदि का पता चलता है। संक्षेप में कहें तो लोक–साहित्य मानवशास्त्र, भाषा–विज्ञान व समाजशास्त्र के अध्ययन की प्रामाणिक व ठोस सामग्री का भंडार होता है। इस प्रकार लोक–साहित्य का ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र से गहरा संबंध होता है।

## लोक साहित्य की विशेषताएं

टिप्पणी

लोक साहित्य जिसके रूपादि का ऊपर वर्णन हुआ है, उसकी विशेषताओं पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा। लोक साहित्य को कुछ विद्वानों ने लोक श्रुति (वेद) कहा है। वेद का नाम श्रुति इसी विशेषता के कारण पड़ा है कि यह शिष्य परंपरा से चलता आया है। लोक साहित्य भी इसी कर्ण परम्परा से आगे बढ़ता है। वह दादी से पोती तक, नानी से धेवती तक श्रुति मार्ग से आया है। यही इसकी प्रथम एवं प्रमुख विशेषता मानी जाती है। इसके विपरीत प्रणीत साहित्य मौखिक परम्परा की अपेक्षा लेखनी परम्परा पर गर्व करता है। यदि लेखबद्धता का वह गौरव लोक–साहित्य को मिल जाये तो वह एक प्रकार से निष्प्राण हो जायेगा। लिपि का प्रसाद भले ही गीतों, गाथाओं, कथा–कहानियों को सुरक्षित रख ले, परन्तु उनकी प्राणषक्ति उसी क्षण नष्ट हो जाती है, जब वे लेखनी की नोक पर सवार होकर कागज की भूमि पर उतरना आरंभ करते हैं। उनको सुरक्षा, सौन्दर्य एवं सम्मान भले ही मिल जाये, किन्तु उनमें वह स्वाभाविक उन्मुक्त प्रवृत्ति नहीं रहती, जिसमें वे जन्मे हैं, पनपे और पुष्ट हुए हैं। वह गमले के पौधे की भांति हरा–भरा रहता हुआ भी अशक्त और भविष्यत् की उन्नति से विमुख रहता है। फ्रेंक सिजविक के ये शब्द कितने तथ्यपूर्ण हैं कि लोक साहित्य का लिपिबद्ध होना ही उसकी मृत्यु है। वस्तुतः लोक साहित्य की मौखिकता ने ही उसे व्यापकता एवं अनेकरूपता प्रदान की है।

इसी बात को प्रो. किटरेज ने 'अंग्रेजी और स्कॉटिश बैलेड्स की भूमिका' में इस प्रकार कहा है– लोक–साहित्य का शिक्षा से कोई उपकार नहीं होता...... जब कोई जाति पढना सीख लेती है, तो सबसे पहले वह अपनी परंपरागत गाथाओं का तिरस्कार करना सीखती है। परिणाम यह होता है कि जो एक समय सामूहिक जनता की संपत्ति थी, वह अब केवल अशिक्षितों की पैतृक संपत्ति मात्र रह जाती है।

एक दूसरी विशेषता, जो लोक साहित्य के पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है, वह है उसकी अनलंकृत शैली। शिष्ट साहित्य में सालंकारता के प्रति विशेष आग्रह होता है। यत्र–तत्र अनलंकृत भी क्षम्य है–'अनलंकृतिः पुनः क्वापि' (मम्मट–काव्य प्रकाश, काव्य का लक्षण)। पर लोक साहित्य में बनावट, सजावट, कृत्रिमता और अलंकरणप्रियता का आग्रह नहीं है। यह तो उस वन्य कुसुम के सदृश है जो बिना संवारे हुए भी अपनी प्राकृतिक आभा से दीप्तिवान है। इसमें नैसर्गिक रूक्षता (खुरदरापन) है, किन्तु है एक लावण्य एवं सौन्दर्य से संयुक्त। सालंकार काव्य से लोक–गीतों का वैशिष्ट्य प्रदर्शित करते हुए पं. रामनरेश त्रिपाठी के ये शब्द चिरस्मरणीय रहेंगे–'ग्राम–गीत और महाकवियों की कविता में अंतर है। ग्राम–गीतों में रस है, महाकाव्य में अलंकार। ग्रामगीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं, इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।' दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इनमें दंडी का पद लालित्य, भारवी का अर्थ–गौरव और कालिदास की अनूठी उपमाएं न देखने को मिलें–बेशक, पर इनमें रस का एक पारावार लहरा रहा है जो सहृदय संवेद्य है।

लोक साहित्य की तीसरी प्रमुख विशेषता है रचयिता और रचना काल का अज्ञात होना। दादी नानी से चली आती हुई दंतकथाओं और गीतों आदि की परंपरा किस युग से चली और किस कृति के पुण्यों का परिणाम है, इसका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं।

टिप्पणी

यों तो सभी रचनाएं किसी न किसी व्यक्ति की प्रतिभा का प्रसाद हैं, किन्तु उनका व्यक्तित्व इस परंपरा में अज्ञातावस्था में है। वास्तव में, इन गीतादिकों के कर्ता वे निरीह जन हैं, जिन्होंने अपने नाम और ग्राम की चिंता न करते हुए समाज के लिए अपनी प्रतिभा की भेंट दी है। कालक्रम से अज्ञातनामा व्यक्ति विशेष की रचना में समुदाय ने भी अपना योगदान दिया और यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि वह वस्तुतः समुदाय की है और समुदाय के लिये है। समुदाय का योग मिलना आवश्यक है। इसी से कविता के आरंभ पर विचार करते हुए कुछ विद्वानों ने कहा है कि आदि में कविता समस्त समुदाय के प्रयत्नों से बनी। किसी ने कुछ जोड़ा, किसी ने कुछ और एक पद बना। इसी प्रक्रिया से कविता आगे बढ़ी है। इससे एक कठिनाई अवश्य हुई है कि लोक साहित्य का कोई मूल पाठ नहीं मिलता। यह भी कहा जा सकता है कि संभवतः कोई निश्चित मूल पाठ रहा भी न हो। इसका एक विपरीत परिणाम यह भी हुआ है कि कई लोगों को घाघ, भंगरी आदि की कहावतों को लोक साहित्य कहने में आपत्ति हुई है। किन्तु इन लोक कलाकारों का व्यक्तित्व इतना व्यापक और महान हो चुका था कि इनके नाम भी एक समुदायवाची बन गये हैं। इन्होंने स्कूल का रूप ले लिया है। सच पूछा जाये तो इन नामों में नाम की गंध न रह गयी है। ये तो आप्त पुरुष के रूप में शेष हैं। लोक साहित्य की अन्य विशेषता यह है कि यह प्रचार या उपदेशात्मक प्रवृत्तियों से अछूता है। विशुद्ध लोक साहित्य में प्रचार, प्रोपैगेन्डा अथवा उपदेश का अभाव रहता है। उसमें तो विरह, वीरता, करुणादि के सात्विक भाव भरे होते हैं, जो जन–जन को एक रूप से प्रिय एवं ग्राह्य हैं। विचारने पर प्रतीत होगा कि लोकोक्ति साहित्य का प्राण कोरा उपदेश ही नहीं है। लोकोक्ति तो वह विट् एवं चमत्कार है, जो शत–शत अनुभवों के द्वारा प्राप्त हुआ है। इसलिए लोकोक्ति केवल अभिव्यक्ति पर जीवित है उपदेश पर नहीं। उपदेश तो वहां एक गौण तत्व है।

लोक साहित्य की एक और विशेषता यह भी है कि उसमें साम्प्रदायिकता के लिए स्थान नहीं है। वह पक्षी व पवन के सदृश स्वच्छंद है। अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यदि कविता का कार्य पाठक को संवेदनशील बनाना, सोचने समझने की शक्ति देना और जीवन की रसमय व्याख्या करना है, तो निश्चय ही शास्त्रीय कविताएं अधिकांश में असफल रही हैं। लोकगीत चाहे जिस देश व जाति के हों, कविता के वास्तविक उत्तरदायित्व को बहुत अंश में पूरा करते हैं, निभाते हैं।

## लोक साहित्य का महत्व

लोकसाहित्य का महत्व बहुविध है। विचार करने पर पाठ के धर्मगाथा (माइथोलॉजी), नृविज्ञान (एन्थ्रोपोलॉजी), जाति विज्ञान (एथनोलॉजी) और भाषा विज्ञान (फाइलोलॉजी) आदि क्षेत्रों में लोक साहित्य की महत्ता विशेष रूप से अनुभव होगी। यदि हम कहें कि लोक साहित्य के सम्यक विवेचन के बिना इन क्षेत्रों का अध्ययन अपूर्ण एवं अर्द्धपूर्ण होगा तो कोई अत्युक्ति न होगी। लोक साहित्य धर्मगाथादिकों के अध्ययन के लिये आधारशिला का कार्य करता है। भाषा–विज्ञान के क्षेत्र में तो लोक साहित्य की महत्ता सर्वविदित है।

विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने के लिये, उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिये और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिये जहां इतिहास

टिप्पणी

के पृष्ठ मूक हैं, शिलालेख और ताम्रपत्र मलिन हो गये हैं, वहां उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोक साहित्य ही दिशा निर्देश करता है। लोक साहित्य का गंभीर अध्ययन जीवन और जगत की मौलिक एवं प्राणाणिक खोज के लिये अत्यन्त आवश्यक है। आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों को जानने का सबसे सरल, प्रामाणिक एवं रोचक साधन लोक साहित्य ही तो है। इस स्थल पर एक और बात भी विचारणीय है कि सभ्य कही जाने वाली जातियों के वास्तविकतावादी लेखकों की भांति अनेक असंस्कृत जातियों के मौखिक साहित्य में भोग व लिप्सा की दुर्गन्ध नहीं है। इनके गीतों में जीवन की निकृष्ट दशा को छोड़ जीवन के रमणीय पक्ष का प्रदर्शन हुआ है।

1. **ऐतिहासिक महत्व** – किसी देश व समाज के प्राचीन रूप को झांक देख लेने का अनुपम साधन लोक साहित्य है। वर्णनात्मक दोहे जो ग्रामीण जनता के मुख में आसीन हैं, बड़ी पते की बातें बतलाते हैं और पिछले इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। हरियाणा के विषय में गुरु गोरखनाथ के पर्यटन से सम्बन्धित यह दोहा देखें–

*'कंटक देश, कठोर नर, भैंस मूत्र को नीर।*
*करमां का मारा फिरे, बांगर बीच फकीर।।'*

यह नाथकालीन इस प्रदेश के इतिहास को अपने में समेटे हुए है। यह संस्कृत में प्राप्त उस वर्णन के प्रतिकूल है, जहां हरियाणे को 'बहुधान्यकभूः' कहा गया है। इस स्थिति में पाठक एक विचिकित्सा में पड़ जाता है कि राजाश्रित किसी कवि की वह संस्कृतोक्ति सत्य है अथवा रमते राम बाबा गोरखनाथ की यह ठेठवाणी। सामयिक परिस्थिति एवं वातावरण को देखते हुए गोरख बाबा वाली बात ही यथार्थ बैठती है। ऐसे ही अन्य अनेक तत्व इतिहास की खोज में सहायक होते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय साहित्य में यह कमी बतलायी है कि इसमें इतिहास विषयक सामग्री का एक तरह से अभाव है। परन्तु उनका यह आक्षेप शिष्ट और लोक साहित्य दोनों पर लागू नहीं होता। लोक मस्तिष्क ने अपने इतिहास की कड़ियां अपने गीतों में, अपनी कथाओं में जोड़ी हैं। लोकगाथाएं तो एक रूप से इतिहास की प्रचुर सामग्री से समपन्न हैं। उनमें अतिरंजना भले ही हो किन्तु इतिहास के विद्यार्थी को कुछ ऐसे तथ्य अवश्य मिल जायेंगे जो प्रसिद्ध इतिहास लेखकों की दृष्टि से छूट गये हैं।

2. **सामाजिक महत्व** – लोक साहित्य का सामाजिक मूल्य बहुत अधिक है। समाजशास्त्र के समुचित अध्ययन के लिए लोक साहित्य की महत्ता सुविदित है। भारतीय समाज का ढांचा किस प्रकार का रहा है, यह लोक–गीतों, लोककथाओं और लोकोक्तियों से भली–भांति समझ में आ जाता है। सास बहू का कटु संबंध, ननद भौजाई का वैमनस्य, विप्रयुक्ता तथा विधवा की दशा का मार्मिक एवं यथातथ्यपूर्ण वर्णन किसी लिखित रूप में उतना मार्मिक नहीं मिलेगा। भाई–बहन के निरीह निश्छल कोमल प्रेम और शिशु जन्म पर होने वाले सामाजिक कृत्यों के प्रति क्या इतिहास लेखकों का ध्यान कभी गया है? इन सबके समीचीन अध्ययन के लिए लोक साहित्य ही तो एक मात्र साधन है।

3. **शिक्षा विषयक महत्व** – ज्ञान एवं नीति की दृष्टि से यह साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। ग्रामों में चाहे स्कूल, कॉलेज एवं उच्च शिक्षा का समुचित प्रबंध न हो, चाहे ग्रामीण जनता को अक्षर ज्ञान की कोई सुविधा न हो, परन्तु जनता के ज्ञान में बराबर वृद्धि होती

टिप्पणी

रहती है। इस ज्ञान को ग्रामीण जनता आंखों द्वारा न लेकर कानों द्वारा ग्रहण करती है। ग्राहक को इस शिक्षा के हृदयंगम करने के लिए किसी विशेष वातावरण एवं परिस्थिति की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह कहना अनुचित न होगा कि ग्रामों में मौखिक विष्वविद्यालय खुले हुए हैं। परस (चौपाल) और पूअर (अलाव) इस ज्ञान–वितरण के लिए बड़े उपयुक्त स्थल हैं। इन संस्थाओं में शिक्षा के अलग–अलग स्तर हैं जहां आबालवृद्ध को आयु के अनुसार शिक्षा मिलती है। शिक्षार्थी को समयानुसार सब चीजें सीखने को मिलेंगी। कोर्स (पाठ्यक्रम) आयु के अनुसार चलता है। बचपन में बालसुलभ और बुढ़ापे में वृद्धसुलभ।

इस शिक्षा वितरण के सर्वोत्तम साधन लोक–कथाएं हैं। बालक की शिक्षा जननी की गोद में ही आरम्भ होती है। माता–पिता, भाई–बहन, दादी–दादा, अड़ोसी–पड़ोसी अबोध बालक की ज्ञान झोली में कोई न कोई रत्न बिना मांगे डालते रहते हैं। बालक कुछ बड़ा होता है तो दादी–नानी की घरेलू कहानियां बालक को हुंकारे के साथ कभी आश्चर्य, कभी उत्साह और कभी उदारता के पाठ पढ़ाती चलती हैं। इन कहानियों में बालक के लिए परिचित कुत्ता, बिल्ली, कौंआ, मोर, तोता, सारस, गीदड़ और लोमड़ी आदि पात्र जीवन की व्याख्या बालक की मातृभाषा में करते चलते हैं। ये कहानियां श्रोता को सामाजिक व्यवहार का ज्ञान भी देती रहती हैं। डॉ. वैरियर एलविन ने एक स्थान पर लोक गीतों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि 'इनका महत्व इसलिये नहीं है कि इनके संगीत, स्वरूप और विषय में जनता का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित होता है, प्रत्युत इनमें मानवशास्त्र (सोशियोलॉजी) के अध्ययन की प्रामणिक एवं ठोस सामग्री हमें उपलब्ध होती है।'

4. **आचारिक महत्व** – लोक में आचार का बड़ा महत्व है। लोक साहित्य में आचार संबंधी बातें यत्र–तत्र बिखरी मिलेंगी। यहां आचार संबंधी कितने ही अध्याय खुले पड़े हैं, जिनमें एक लोकोत्तर नैतिक एवं आचारिक अवस्था का वर्णन है। लोक साहित्य में जिन उच्चादर्शों का वर्णन है, जिन लोकोत्तर चरित्रों की कल्पना है, उनमें राम, कृष्ण, शिव और सीता, राधा, पार्वती को नहीं भुला सकते। वे हमारे आचार के केन्द्र हैं। इन्हीं आदर्शों को अपना कर भारत भारत रह सकता है।

5. **भाषा वैज्ञानिक महत्व** – यह सत्य बात है कि 'भाषा–शास्त्री के लिए शिष्ट साहित्यिक भाषाएं उतनी उपयोगी नहीं हैं जितनी कि बोलचाल की भाषाएं। इसलिए लोक साहित्य लोक–भाषा की वस्तु हाने के कारण भाषा–वैज्ञानिकों के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। यही वह धरातल है जहां पर भाषातत्ववेत्ता भाषा की परतों को उघाड़ कर देखते हैं और गंभीर से गंभीर स्तरों में प्रवेश पाते हैं।

अर्थ परिवर्तन को समझने के लिये तथा शब्दों के इतिहास की खोज के लिये लोक साहित्य सर्वाधिक उपादेय है। पं. रामनरेश त्रिपाठी का यह कथन पूर्णतया सत्य है कि 'आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता गांव वाले हैं और उनका साहित्य इस भाषा को गढ़ने के लिये टकसाल का काम दे रहा है। संस्कृत के शब्द किस प्रकार साधारण जन के लिए उपयोग सुलभ हुए हैं, यह सब इस टकसाल का ही परिणाम है।' जब एक साधारण ग्रामीण किसी नयी वस्तु या किसी नूतन प्राकृतिक व्यापार को देखता है तो उसे अपनी समझ से कोई न कोई नाम देना चाहता है। इसके लिए किसी पंडित व पुरोहित की अपेक्षा उसे नहीं होती। उसने साइकिल देखी और देखा कि वह पैर से

टिप्पणी

चलती है, तो वह सहसा कह बैठा 'पैरगाड़ी'। यह एक साधारण शब्द है लेकिन कितना सार्थक एवं उपयोगी है।

लोकमानस की शब्द निर्माण शक्ति की परख प्रायः क्रिया–विशेषण बनाने में सरलतया हो जाती है। जोर से गिरने के लिए 'धड़ाम से गिरा' अधिक सार्थक एवं स्वतःबोधक है आदि। यदि हम किसी ग्रामीण जन को बोलता सुनें तो हमें सहज ही ज्ञात हो जायेगा कि वह कितने ही ऐसे शब्द प्रयोग में लाता है जो भारतीय वातावरण में पनपे हैं यथा पौन (पवन) पौरख (पौरुष) वार (वारि) आदि ऐसे शब्द हैं जिनके अन्तस् में भारतीय वातावरण हिलोरें ले रहा है। एक सरल विवेचन से हम यह देख पायेंगे कि लोकभाषा शिष्ट भाषा से अधिक सम्पन्न और सरल भी है।

6. **सांस्कृतिक महत्व** –लोक साहित्य का सांस्कृतिक पक्ष बड़ा विशद है। विष्व की संस्कृतियां कैसे उद्भूत हुई, कैसे पनपी, इस रहस्य की कहानी अथवा इतिहास हमें लोक साहित्य के सम्यक् अध्ययन से मिलता है। संस्कृतियों के इतिहास की परख अनेकांश में लोक साहित्य से संभव है। सच पूछा जाये तो लोक साहित्य ही संस्कृति की अमूल्य निधि है।

अंत में यदि हम यह कहें कि लोक साहित्य जन–संस्कृति का दर्पण है तो अत्युक्ति न होगी। संस्कृति की आधारशिला पुरातन होती है। इसके मूल तत्वों के संबंध में जो तत्व सबसे महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है, वह है विगत का प्रभाव। आज भी हमारा आदर्श हमारा अतीत है। झूला–झूलते, चाकी पीसते, यात्रा करते हमारे आदर्श राम–लक्ष्मण के मिथकीय चरित्र ही हैं। यही लोक साहित्य का सांस्कृतिक पक्ष है।

## 3.3.2 मध्य प्रदेश के लोक साहित्य के विविध रंग एवं लोक कवि

महर्षि व्यास ने सत्य ही लिखा है कि 'प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः' अर्थात् लोकजीवन का प्रत्यक्ष ज्ञान ही जीवन को, उसके मंगलकलश रूपी अन्तःबाह्य को जानने का एक आधार है। लोकजीवन मानव जीवन को सम्पूर्णता से समझने का माध्यम है। लोकजीवन भौतिक और अध्यात्म दोनों को साधता है। छोटे–छोटे लोकजीवन के कर्म भले ही व्यवहारिक रूप में सामान्य हों लेकिन लोक विष्वासों में इनके गहरे अर्थ छिपे होते हैं।

लोक साहित्य में किसी भी अंचल के लोक का जीवन जीवन्त रहता है। लोक साहित्य भारतीय साहित्य की आत्मा है, यदि इसे साहित्य से अलग कर दिया जाये तो निश्चय ही भारत का साहित्य निष्प्राण हो जाएगा। यह वह लोक साहित्य है, जो विभिन्न संवेदनाओं, भावनाओं, अनुभूतियों और कल्पनाओं के सम्मिश्रण से जन–जन के हृदय को सदियों से आनन्दित करता रहा है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोक को स्पष्ट करते हुए टिप्पणी की है कि– लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों या ग्रामों में फैली हुई समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में रहने वाले परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिये जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।

टिप्पणी

लोक साहित्य लोकजीवन का अभिन्न अंग है। लोक साहित्य का उद्देश्य लोकरंजन के साथ–साथ लोक शिक्षण करना होता है। प्रायः गांव के लोग अपनी दिन भर की दिनचर्या से निवृत्त होकर मनोरंजन के लिए घर से बाहर चौपालों में गांव के बड़े–बूढ़ों के साथ अलाव के पास घेरा बना कर बैठ जाते थे, फिर कथा, कहानियां, गीत, लोकगीत, सुनाना प्रारम्भ करते थे। आज भी व्रत, त्योहार या देवीपूजन के समय पंडित या परिवार की वरिष्ठ महिलाओं द्वारा कहानियां कही जातीं हैं। घर के भीतर बूढ़ी महिलाएं या माताएं परिवार के बच्चों को रात में कहानियां सुनाती हैं और ये सभी कहानियां लोककथा के रूप में जानी जाती हैं। इनमें पौराणिक प्रसंगों से लेकर उपदेशपरक सहित मनोरंजक कथानक होता है। कई कथाएं तिलिस्म या रोमांच से भरपूर होती हैं। कुछ कथाएं समाज कल्याण का जीवंत चित्र बड़ी स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत कर देती हैं। इन लोक कथाओं से क्षेत्रीयता का सामाजिक परिवेश पूरी तरह समझा जा सकता है। इन कथाओं से आपसी स्नेह और आत्मीयता तो बढ़ती ही है, साथ ही संस्कार, रीति–रिवाज, परम्पराएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में आसानी से हस्तांतरित हो जाती हैं। वाचिक परम्परा के कारण इनका स्वरूप भी बदलता रहता है। विशेष रूप से ये कथाएं तीज़ त्योहार के अवसरों पर बड़े विधि–विधान नियमों से कही जाती हैं, जैसे हरछठ, ऋषि पंचमी, महालक्ष्मी, वटसावित्री, सुअटा, झैंझी, टेसू, अहोई, गोवर्द्धन पूजा, भइयादूज, करवाचौथ, दीवाली, तुलसी व्रत आदि।

लोक साहित्य में मानव मन का इतिहास अंकित रहता है। इनमें बड़ी सहजता, सरलता, मृदुता होती है और मानव अपने मनोजगत में जो कुछ भी वैचारिक मंथन करता है, कल्पनाएं करता है, वह सब कुछ इस लोक साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। भले ही ये लोक कथाएं मनोरंजन का आधार हों, पर इनका अस्तित्व बहुत पुराना है। संस्कृत साहित्य की समृद्ध परम्परा में कथा साहित्य ने बहुत लम्बी यात्रा की है। वेद–उपनिषद एवं नीति ग्रन्थों की कथाएं सदैव कर्तव्यबोध, परोपकार, सेवाभाव की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

## मध्य प्रदेश के प्रमुख लोक कवि

मध्य प्रदेश में कई ऐसे लोक कवि हुए हैं, जिनकी रचनाएं उत्तर भारत के लोक जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी हैं। उनमें से कुछ की चर्चा यहां समीचीन होगी।

जगनिक 'परमाल रासो' या 'आल्हखंड' के रचयिता थे। इनकी मूल कृति अप्राप्त हैं, परन्तु वाचिक परंपरा में बुंदेलखंड में उनकी रचना का गान होता रहा है जिसे सर्वप्रथम इलियट ने एवं कालांतर में श्यामसुंदर दास ने संकलित किया।

जगनिक का परमाल रासो या आल्हाखंड वीर रस की भावना से ओतप्रोत अत्यंत ओजपूर्ण आख्यानात्मक ग्रंथ है, जिसमें वीर सैनिक आल्हा एवं ऊदल की वीरता का वर्णन है।

जगनिक हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल के प्रतिनिधि कवि थे। वे कालिंजर के राजा परमाल चंदेल के दरबारी कवि और हिन्दी के आदिकवि चंदबरदाई के समकालीन थे।

**टिप्पणी**

जगनिक ने महोबा के दो वीर योद्धाओं आल्हा और ऊदल के वीर चरित्र का वर्णन वीर गीतात्मक काव्य के रूप में लिखा और उसके आधार पर प्रचलित गीत हिंदी भाषी प्रांतों के ग्रामीण अंचलों में सुनाई पड़ते हैं। ये गीत 'आल्हा' कहलाते हैं, और इन्हें बरसात में गाया जाता है।

जगनिक दरबारी कवि होने के साथ ही स्वयं वीर योद्धा भी थे। कहा जाता है जब आल्हा और ऊदल महोबा छोड़कर जयचंद्र के पास कन्नौज चले गए तब जगनिक को ही दूत बनाकर उन्हें फिर से महोबा बुलाने के लिए भेजा गया था। पृथ्वीराज चौहान भी जागनिक का शौर्य और पराक्रम देखकर दंग रह गये थे। उनके पराक्रमों का वर्णन चंदबरदाई ने ओजस्वी भाषा में किया है और लड़ते–लड़ते वीरगति पाने का उल्लेख किया है। अतः जगनिक पौरूष और पराक्रम के प्रतीक होने के साथ ही एक ओजस्वी कवि भी थे।

आल्हाखंड में आल्हा और ऊदल द्वारा लड़ी हुई 52 (बावन) लड़ाइयों का संपूर्ण वर्णन है, आल्हा एक वीर छंद है जिसमें पूरा 'आल्हाखंड' लिखा गया है। आल्हा प्रायः वर्षा ऋतु में गाया जाता है। यह ब्रज, राजस्थान, मालवा, बुदेंलखंड और बघेलखंड में गाया–बजाया जाता है। आल्हा गायन में ढोलक, टिमकी, झीका और मंजीरे का उपयोग होता है।

आल्हा उदल की 52 लड़ाइयों में शौर्य और श्रृंगार के अनेक प्रंसग लोक ऊर्जा के साथ समाहित है।

आल्हा को गाना और सुनना दोनों जातीय गौरव का हिस्सा बन गया है। प्रेम और नफरत मान और सम्मान, साहस और दुःसाहस, उत्सर्ग और स्वार्थ, स्वाभिमान और खुदगर्जी, चमत्कार और जादुई असर, धोखा और विश्वासघात आदि मानवीय कमजोरियों और विशेषताओं का आल्हा–ऊदल की कथा में प्रभावकारी तरीकों से वर्णन किया है।

आल्हाखंड विश्व की सबसे लंबी लोक कथा है इस ग्रंथ में शौर्य और शृंगार के अनेक प्रसंग मिलते हैं।

कुछ अंश–

*बारह बरस लै कुकुर जीवे, अरू तेरह लो जिये सियार*
*बरस अठारह क्षत्रिय जीवे, आगे जीवन को धिक्कार।*

आज भी आल्हा गायक शूर–वीर योद्धा की वेशभूषा में सजकर तथा हाथ में तलवार लेकर इस वीर काव्य का जनमंचों पर प्रदर्शन करते हैं। मौखिक रूप से प्रचलित होने के कारण अनुमान लगाना सरल नहीं है तथापि वीर गाथा काल की यह रचना प्रमाणिकता की दृष्टि से विवादास्पद ही है। एक उदाहरण दर्शनीय है। जैसे–

*'पैदल के संग पैदल आ भिड़े और असवारन से असवार*
*होद के संग हौदा मिल गये, हाशिन अड़े दांत से दांत*
*सात कोस लौ चले सिरोही चारों तरफ चले तलवार।*
*पैग–पैग पर पैदल गिरि गये उनके दुदई असवार।*

**साहित्य में स्थान**– 'आल्हाखण्ड' जगनिक की कालजयी रचना सिद्ध हुई। यद्यपि यह लोक कथा लिखित रूप में उपलब्ध नहीं है। तथापि यह काव्य मौलिक परम्परा में

जीवित रहकर निरंतर लोकप्रिय बना रहा। आज भी जब इस वीरगाथा का जनमंचों पर प्रदर्शन होता है तब श्रोतागत रोमांचित हो उठते हैं शताब्दियों पश्चात भी आल्हा गायन लोक कण्ठ पर छाया हुआ है। अज यह रचना जगनिक की कृति न होकर जनमानस की धरोहर बन गयी है। अतः जगनिक वीर काव्यधारा के कवियों में नक्षत्रों में सूर्य के समकक्ष है।

## ईसुरी

बुंदेली फाग में चौकड़िया छंद का आरंभ करने वाले बुंदेली लोक कवि का जन्म एक गरीब ब्राह्मण परिवार में ग्राम मेंडकी में हुआ, आपका पूरा नाम 'ईश्वरी प्रसाद अड़जरिया (तिवारी) था। पं. भोलानाथ तिवारी आपके पिता थे, बाल्यावस्था में ही माता–पिता के देहांत के बाद मामा भूधर नायक के घर उनका पालन–पोषण हुआ। ईसुरी अपनी प्रेमिका रजउ के सौंदर्य से प्रभावित थे, उनका प्रेम एवं विरह उनके काव्य की प्रेरणा रही है।

बुंदेली के सर्वप्रथम कवि, जिन्होंने बुंदेली फाग में चौकड़िया का आरंभ किया। ईसुरी बुंदेली के मानक कवि हैं, उनकी काव्य प्रतिभा असाधारण और आशु काव्य प्रवृत्ति विलक्षण थी।

ईसुरी का अधिकांश जीवन ग्राम नगौरा में बीता, उन्होंने छतरपुर नरेश के राजकवि का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। उनकी काव्य प्रतिभा असाधारण और आशु काव्य प्रवृत्ति विलक्षण थी यही कारण है कि वे बुंदेली के शिखर पुरुष के रूप में समादृत हैं व बुंदेलखण्ड के जयदेव कहलाते हैं। वे न तो बौद्धिक व्यक्ति थे और न भक्त या दार्शनिक वरन ग्रामीण लोकहृदय के पारखी थे। ईसुरी न तो हिमालय थे और न हिमालय बनने की कोशिश उन्होंने की वे तो गांव के किसी टीले से फूटने वाले धार थे जो आखिरी दम तक फागों की कलकल से गांव की तहरीर सुनाते रहे।

ईसुरी का एक कवि के रूप में पहचान करवाने का श्रेय मुंशी उजमेरीजी को जाता है। इसके अतिरिक्त बाबू कृष्णानंद गुप्त द्वारा 'ईसुरी की फीग' नामक पुस्तकें सामने आईं। तथा गुणसागर सत्यार्थी ने 'ईसुरी सतसई' नामक संग्रह तैयार किया।

ईसुरी की काव्य चेतना एक उत्कृष्ट प्रेमी की थी। ईसुरी ने प्रेम और शृंगार के समस्त शिखरों को छू लिया था। ईसुरी के काव्य में लोक समष्टि को विगलित करने की अपार उर्जा है। ईसुरी ने लोक जीवन के विविध पक्षों के साथ ही अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को अपना काव्य विषय बनाया है। उन्होंने अगणित फागों की रचना की साथ ही, राम, कृष्ण वैरागय और वेदांत जैसे गूढ़ विषयों पर भी रचनाएं की हैं तथापि अग्रप्रिय विषय प्रेम, सौन्दर्य और शृंगार था।

ईसुरी ने चार चरण या कड़ियों वाले चौकड़ियां फागों का अविष्कार भी किया है। जो फड़बाजी और गायकी दोनों को आधार देने में समर्थ हुई है।

ईसुरी की फागें–ईसुरी की फागे बुंदेली रचना संस्कृति और कला की थाती हैं। भावों की सघनता और संक्षिप्तता उनकी फागों की विशेषता है, दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता फागों की सांगीतिक प्रस्तुति है।

ईसुरी ने नेत्र, केश, मुख आदि के आंगिक सौन्दर्य, बारह आभूषण और सोलह शृंगार तथा प्रकृति भक्ति आदि विभिन्न रंगों की फाग लिखी है, यह उनकी फड़ चेतना का असर था।

**टिप्पणी**

कृष्ण भक्त कवियों में जो राधा–मोहन का भाव झलकता है, वह ईसुरी के बुंदेली बोलों में कुछ इस तरह प्रकट होता हे।

*सारी चोर–बोर कर डारी, कर डारी गिरधारी।*
*गिरधारी पकरन के काजै, जुर आई ब्रजनारी।*
*नारी भेस करो मोहन कौ*
*पैराई तन सारी*
*सारी पैर नार भए मोहन*
*नाचै दै–दै तारी*
*तारी लगा ग्वाल सब हंस रय,*
*ईसुर कयं बलहारी।*

**भावार्थ**– गिरधारी ने गोपी की साड़ी झकझोकर कर चीर डाली है। ब्रजनारियां एकत्रित होकर मोहन को पकड़ रही हैं और उन्हें साड़ी पहना कर उनका नारी भेष बना रही है। वे कृष्ण को नारी रूप में देखकर ताली बजाकर नचा रही हैं ग्वाल बाल यह दृश्य देखकर हंस रहे हैं।

ईसुरी की रचनाएं मुख्यतः शृंगार रस पर आधारित होती थीं। इसलिए कतिपय विद्वानों ने उन पर यह आरोप लगाया था कि उनकी फागों में सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय भावना के तत्व शामिल नहीं है, किन्तु यह आरोप पूरी तरह निराधार है। ईसुरी की अनेक फागें हैं, जिनमें या तो सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया गया है या जिनसे देश प्रेम झलकता है।

ईसुरी की फाग में उनकी प्रेमिका रजऊ, के प्रति उनकी तीव्र आसक्ति, उनकी मानसिक स्थिति सिद्ध करती है–

*जो जी 'रजऊ' 'रजऊ' के लाने*
*का काऊ में काने।*
*जौं लो जीने जियत जिंदगी*
*रजऊ के हेत कमाने।*

इसके अतिरिक्त फाग गीतों की परिपाटी और फड़ की विशिष्ट शैली भी कवित की प्रेरक रही है।

**चौकड़िया का आविष्कार**– ईसुरी ने चार चरण या कड़ियों वाला चौकड़िया फाग का आविष्कार किया जो फड़बाजी और गायकी दोनों में व्यापक आधार देने में सक्षम हुआ।

उन्होंने लोक में प्रचलित 'लाल फाग' में विशिष्ट परिवर्तन कर चौकड़िया को जन्म दिया था।

टिप्पणी

*तन कौ कौन भरोसा करने आखिर एक दिन मरने*
*जो संसार ओंस कौ बूंदा पवन लगे से दुरनें*
*जौ लो जी की जियन जोरिया की खां जे दिन मरने*
*ईसुर ई संसार में आकें बुरे काम खां डरने।*

ईसुरी की चौकड़ियों में बार–बार रजऊ का नाम आता है। उन्होंने इसका उपयोग चौकड़ियों में आकर्षण पैदा करने के लिये किया है।

*हो गयो संग हमारे तेरो,*
*प्यारी मुख न फेरो*
*'ईसुर' जो मन पूरो हो गओ*
*'रजउ' तुमारे चेरो।*

उनकी चौकड़ियों की चमक ही सब कुछ नहीं है उनकी अभिधा का सौंदर्य गजब का है। ईसुरी की अभिधा में ही व्यंजनों छिपी रहती है। जिनकी परख से ही शिल्प के सौंदर्य का पता चलता है।

**भाषा शैली**– ईसुरी ने बुंदेली शब्दों का इतना सरल और स्वाभाविक प्रयोग किया है कि कोई शब्द खटकता नहीं है, अपितु शब्द गायकी की सौन्दर्य वृद्धि करने में सक्षम है। ईसुरी का शब्द संयोजन हर किसी की स्मृति में समा जाता है। ईसुरी ने श्रृंगार के संयोग–वियोग ही नहीं ममत्व एवं सखत्व भाव से फागों को लालित्य एवं चारुत्व प्रदान किया है।

**साहित्य में स्थान**– जिस तरह विद्यापति को मैथिली काव्य का प्रतिनिधि कवि माना जाता है, ठीक उसी तरह ईसुरी बुंदेली भाषा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यूं तो बुंदेलखंड की माटी में केशव, कवि पदमाकर आदि भी हुए हैं, पर सच्चा पृथ्वी पुत्र ईसुरी को ही माना जाता है क्योंकि ईसुरी ने अपनी माटी की बोली में अपनी धरती की भाषा में ही गीत रचे।

बुंदेलखंड में ईसुरी की फागें व चौकड़ियां जन–जन की जुबान पर हैं आज की इस यांत्रिकता, कुण्ठाग्रस्त मानसिकता तथा बोझिल बौद्धिकता की मरू भूमि जैसी मनस्थिति में ईसुरी की फागें अपनी सार्थकता सिद्ध करती हैं।

**सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना**– ईसुरी के फाग–काव्य पर यह आरोप लगाए जा रहे हैं कि ईसुरी सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना को अपनी रचनाओं में स्थान नहीं दे सके। जैसे 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम की न तो कोई चर्चा है न कोई उल्लेख।

किंतु गांव के परिवेश में रमकर गांव की चेतना प्रतिबिम्बित कर गांव के प्रति एक निष्ठा प्रेम की भावना भी राष्ट्रीयता का अंग ही है।

एक खास गांव का नाम लेने का अर्थ यह नहीं है कि दूसरे गांव उनके लिए पराये थे। गांव की प्रकृति, पनघट, उत्सव, वस्त्राभरण आदि वर्णनों में उनकी दृष्टि सौंदर्य मुखी रही है। गांव के परिवारों की समस्याएं जैसे परनारी से प्रेम, कारे–गोरे रंग का भेद, बच्चों की अधिकता आदि से गांव की भीतरी तस्वीर उभरती है।

**फड़बाजी और गायकी का उत्कर्ष**– ईसुरी से पूर्व, फाग की फड़बाजी मंथर थी। कयोंकि उसकी सीमित विषय वस्तु दीर्घ कालावधि तक उसे शिथिल बनाये थी। ईसुरी ने उसे जड़ता से उबार कर व्यापकता तथा गति प्रदान की, जिससे एक तरफ फागकाव्य की समृद्धि का द्वार खुल गया और वहीं दूसरी और फड़ों में नया उत्साह भर गया।

बुंदेलखण्ड के अंचल में ही नहीं, सुदूर अंचलों तक ईसुरी की फागें इतनी लोकप्रिय हैं कि लोककाव्य की दूसरी विधाएं उसकी बराबरी नहीं कर पातीं। इसका कारण है बुंदेली की मिठास या ईसुरी की सहजता, व्यंजकता, रसवत्ता और लोकधर्मी चेतना का ऐसा योग जो उनकी जीवन शक्ति को बराबर बनाये रखता है, बौद्धिकता के बावजूद उसमें तादम्य कर रसभोग करने में नहीं चूकता। ईसुरी का काव्य बुंदेलखण्ड के जनमानस को सुख–दुख, प्रेम सौंदर्य और साहस को एक साथ प्रकट करने की कला का बोध कराता है।

## घाघ दुबे

कृषि पंडित एवं व्यावहारिक पुरुष होने के नाते घाघ का नाम भारत के विशेषतः उत्तरी भारत के कृषकों की जिह्वा पर रहता है। चाहे बैल खरीदना हो या खेत जोतना, बीज बोना हो अथवा फसल काटना, घाघ की कहावतें उनका पथ प्रदर्शन करती हैं। ये कहावतें मौखिक रूप से उत्तर भारत भर में प्रचलित हैं।

घाघ का निवास क्षेत्र स्पष्ट नहीं है उन्हें गोंडा, चम्पारण, गोरखपुर, कानपुर आदि का निवासी बताया जाता है। संभवतः हुमायूं और अकबर के दरबार में इन्हें संरक्षण मिला और अकबर ने प्रसन्न होकर उन्हें एक गांव दिया जो सराय घाघ कहलाता है, वे ब्राह्मण थे और धार्मिक विश्वास में कट्टर थे, इसी कारण मुगल दरबार से हटना पड़ा। इनकी मृत्यु कन्नौज में हुई थी।

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने घाघ के बारे में काफी शोध करके 'घाघ और भड्डरी' में लिखा है कि घाघ देवकली के दुबे थे।

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने घाघ की रचनाओं को मौखिक परम्परा से संग्रहीत करके सर्वप्रथम 1931 में हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद से प्रकाशित किया था। 'घाघ और भड्डरी' नामक संकलन घाघ की रचनाओं का एकमात्र प्रामाणिक संकलन है।

घाघ की रचनाएं सूक्तियों, नीतिकथनों, कहावतों और तुकबंदियों की श्रेणी में आती हैं। मौसम, वर्षा, खेती, भोजन, स्वास्थ्य और लोक व्यवहार के संबंध में घाघ का मार्गदर्शन अत्यंत महत्वपूर्ण है। खेती के संदर्भ में उनके कथन आज भी किसी कृषि वैज्ञानिक की सलाह से कम महत्व के नहीं हैं। इन्हें अस्वीकार करना सरल नहीं है। घाघ ने मूलतः कहावतें कही हैं। कहावतें भी छंद में हैं उनकी कहावते किसानों के कण्ठ में विराजमान है।

- वर्षा के संबंध में घाघ कहते हैं–

*'करिया बादर जी डरवावे,*
*भूरा बादर पानी लावें।'*

- सिंचाई के संबंध में घाघ कहते हैं–

*''धान पान अरू केरा, तीनों पानी के चेरा।'*

- कम पानी से धान की फसल पर क्या असर होता है?

*काले फूल न पाया पानी*
*धान मरा अधबीच जवानी।*

खादों के संबंध में घाघ के विचार अत्यंत स्पष्ट थे। उनहोंने गोबर, कूड़ा, हड्ड़ी, नील, सनई आदि की खाद को कृषि में प्रयुक्त किये जाने के लिए वैसा ही सराहनीय प्रयास किया है। जैसे कि 1980 ई. के आस–पास जमीन के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक लिबिग ने यूरोप में कृत्रिम उर्वरकों के संबंध में किया था।

*खाद पड़े तो खेत, नहीं तो कूड़ा रेत।*
*गोबर राखी पाती सड़ै, फिर खेती में दाना पड़े।*

- घाघ ने गहरी जुताई को सर्वोत्तम बताया है।

*'छोड़े खाद जोत गहराई, फिर खेती का मजा दिखाई'*

- बैल कैसा खरीदना चाहिए। इस संबंध में घाघ की सलाह–

*छोटे सींग और छोटी पूंछ,*
*ऐसा बरदा लो वे पूंछ।*
*छोटा मुंह और एंठा कान।*
*यही बैल की है पहचान।*

- मूर्खता का उदाहरण–

*धर घोड़ा पैदल चले, तीर चलावे बीन।*
*थाती धरै दामाद घर, जग में भकुआ तीन।*

**साहित्य में स्थान**– घाघ का नाम लेते ही एक ऐसे कवि का स्मरण होता है जो लोक का कवि है, जिसकी व्यापक प्रतिष्ठा है। उन्होंने जो कुछ भी कहा वह सार्थक कहा।

आजकल दालों की खेती पर विशेष बल दिया जाता है, क्योंकि उनसे खेतों में नाइट्रोजन की वृद्धि होती है। घाघ ने सनई, नील, उड़द, मेथी, आदि दालों को खेत में जोतकर खेतों की उर्वरता बढ़ाने का स्पष्ट उल्लेख किया है। खेतों की उचित समय पर सिंचाई की ओर भी उनका ध्यान था।

वे व्यवहारिक ज्योतिषी थे। उन्हें मौसम के बारे में कहां से हवा चले तो कितनी वर्षा हो, कितनी वर्षा पर्याप्त है, कितनी हानिकारक, इसका अच्छा व्यावहारिक ज्ञान था।

बैल ही खेती का मूलाधार है, अतः घाघ ने बैलों के आवश्यक गुणों का सविस्तार वर्णन किया है। हल तैयार करने के लिए आवश्यक लकड़ी एवं उसके परिमाण का भी उल्लेख उनकी कहावतों में मिलता है।

उपलब्ध कहावतों के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है, कि घाघ के भारतीय कृषि संबंधी ज्ञान से आज भी अनेकानेक किसान लाभ उठाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से उनकी ये समस्त कहावतें अत्यंत सारगर्भित हैं अतः भारतीय कृषि विज्ञान में घाघ का विशिष्ट स्थान है।

## सिंगाजी

टिप्पणी

निमाड़ अंचल के लोक कवि तथा अलोकिक पुरुष के रूप में पूज्य सिंगाजी निर्गुण भक्तिधारा के कवि थे। सिंगाजी के जीवन एवं कार्यों का उल्लेख खेम रचित 'परचूरी' नामक पुस्तिका में मिलता है। सिंगाजी का जन्म बैसाख सुदी नवमीं संवत् 1576 को हुआ था। वे पशुपालक गवाल जाति के थे स्वामी मनरंगगीर के मुख से स्वामी ब्रह्मगीर के भजन सुनकर उन्हें 24 वर्ष की आयु में आत्मज्ञान हुआ। सावन शुक्ल नवमी संवत् 1616 को समाधि लेकर उन्होंने देह त्याग किया। उनकी स्मृति में उसी वर्ष (संवत् 1616) शरद पूर्णिमा पर मेला लगाया गया। तब से प्रतिवर्ष शरद पूर्णिमा को ग्राम पीपल्या में उनकी समाधि पर मेला लगता है।

सिंगाजी के साहित्य का अभी तक कोई व्यवस्थित प्रकाशन नहीं हुआ है। उनके जीवन परिचय की प्रमाणिक पुस्तक उनके शिष्य खेमदास द्वारा 'परचूरी' नाम से लिखी गई। श्री सुकुमार पगारे ने सिंगाजी के पदों के संकलन कार्य हेतु 1934 में 'सिंगाजी साहित्य शोधक मण्डल' की स्थापना की। सन् 1958 में 'संत सिंगाजी की वाणी' पुस्तक प्रकाशित हुई।

भजनों के अतिरिक्त उनकी रचनाएं है—साखी, भजन, दृढ़ उपदेश, आत्मध्यान, दोषबोध, नरद, शरद, देश की वाणी, बाणावली सातवार, पंद्रह तिथि और बारहमासी।

मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद भोपाल द्वारा 1996 में डॉ. श्री राम परिहार की पुस्तक 'कहे जन सिंगा' का प्रकाशन हुआ, जिसमें सिंगाजी के 108 प्रमाणिक लोकपदों का संकलन व अनुवाद भी किया गया।

सिंगाजी की रचनाओं को कबीर के दर्शन की नई अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। वे निर्गुण, निराकार, परब्रह्म, का वर्णन करते हुए कहते है—

'रूप नाहिं रेखा नाहिं, नाहिं है कुल गोत रे, बिन देहि को साहब, मेरा झिलमिल देखे जोन रे।'

अर्थात् जिसका न कोई रूप है, न रेखा है न कुल है न गौत्र है, ऐसा मेरा साहिब यानी ईश्वर बिना देह का निर्गुण निराकार है।

जिस निर्गुण निराकार, परब्रह्मा की कल्पना सिंगाजी ने की है वह भारतीय संत साहित्य में अतुलनीय है। सिंगाजी प्रथम संत कवि हैं जिन्होंने खेती गृहस्थी संबंधी प्रतीकों को लेकर अपना आध्यात्मिक संदेश जन–जन को दिया है।

मध्य प्रदेश के बुन्देलखण्ड, बघेलखंड, निमाड़ और मालवा अंचलों की संस्कृति प्राचीन तथा समृद्ध है। माना जा सकता है कि उपर्युक्त सभी अंचलों की लोक संस्कृति का विकास मुख्यतः स्थानीय स्तर पर हुआ है। लोक संस्कृति की इस विकास यात्रा में अनेक महत्वपूर्ण पड़ाव आये होंगे जब समाज ने प्रकृति, पर्यावरण, जल, भूमि और वायु के रहस्यों को समझ कर अपनाया होगा। उन्हें जीवनशैली का हितैषी अंग बनाने के लिये जुगत की होगी। कुप्रभावों को त्याज्य बनाने के लिये वर्जनाएं विकसित की होंगी। यही समझ लोक विज्ञान बनी। इसी लोक विज्ञान में वे सभी तत्व मौजूद हैं जो स्वीकार्य और अस्वीकार्य घटकों और भिन्नता को उजागर करते हैं। संत कबीर ने मालवा के बारे में कहा है—

*देश मालवा, गहन गम्भीर।*
*डग डग रोटी, पग पग नीर।।*

कबीर का यह दोहा मालवा की गहरी काली मिट्टी, भोजन की सहज उपलब्धता एवं पानी के बारहमासी स्रोतों को दर्शाता है। मध्यप्रदेश के लोक साहित्य का अवगाहन करने के लिये हमें यहां के कुछ प्रमुख और समृद्ध सांस्कृतिक अंचलों के लोकजीवन की चर्चा करनी होगी। इसकी शुरुआत हम बुंदेलखंड से कर सकते हैं–

टिप्पणी

## 3.3.3 बुंदेलखंड अथवा बुंदेली का लोक साहित्य

भारत का हृदयस्थल बुंदेलखंड त्याग और बलिदान का क्षेत्र है। यह क्षेत्र अपनी संस्कृति, कला और भाषायी अस्मिता के लिए विशिष्ट महत्व रखता है। संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठतम ग्रंथ रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि, अष्टादश पुराण और महाकाव्य के रचनाकार वेदव्यास भी इसी बुंदेली भूमि की देन हुें। बुंदेलखंड के शासक स्वयं कवि तथा कविता प्रेमी रहे। इसीलिए उनके राजदरबारों में कवियों को सम्मान और आश्रय प्राप्त था। राजा छत्रसाल, इंद्रजीत सिंह, मधुकरशाह, वीरसिंह, जगतसिंह, हिंदूपति, हिम्मत बहादुर तथा पन्ना नरेश इन गुणग्राही शासकों में प्रमुख थे।

बुंदेलखंड की दूसरी साहित्यिक परंपरा को पहचान बाद में मिली। अभी भी यह बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि रीतिकाल में जब ब्रजभाषा साहित्य की मुख्य भाषा के रूप में पूरे हिंदी क्षेत्र में प्रचलित थी और साहित्य मुख्यतः काव्य में रचा जा रहा था, गद्य की भाषा की अभी पड़ताल भी नहीं हो पायी थी और खड़ी बोली का अभ्युदय गद्य भाषा के लिए नहीं हुआ था, उस समय बुंदेली गद्य यहां की राजभाषा थी। इतिहास में राजाओं के अनेकों पत्र सुरक्षित हैं, जिनमें ललित गद्य का प्रयोग मिलता है।

बुंदेली लोकगीतों का भी साहित्यिक परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक स्थान पर लिखा है 'ग्राम्य गीत आर्येतर सभ्यता के वेद (श्रुति) हैं। (छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय, भूमिका पृ 5) लोकगीत रचने वाले का नाम भी नहीं प्राप्त होता। लोक ने सामूहिक रूप में ही इन्हें रचा और लोक को ही समर्पित कर दिया। किसी व्यक्ति को अपना नाम आगे करने की लालसा नहीं। यह विशेषता भक्त कवियों में भी मिलती है। इनमें आस्था है, विश्वास है और ईर्ष्या–द्वेष नहीं है। लोक की यह बहुत बड़ी विशेषता है, गीत–संगीत ही नहीं, समूची संस्कृति में यह लोक अपना बहुमूल्य योगदान देता है और कोई व्यक्ति इसका श्रेय नहीं लेता। लोकगीतों के प्रखर संप्रेषण के कारण लोक से पृथक विरक्त संन्यासियों के लिये लोकगीत सुनने का निषेध तक किया गया 'न शृणुयाद् ग्राम्यगीतानि', लेकिन लोक की जो व्याप्ति और स्वीकार्यता है, उसका महत्व भी शास्त्रकारों ने निरूपित किया है और इसीलिए कहा है 'यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्ध ना कथनीयम् नाचरणीयम्'। आचार्य चाणक्य ने लोक की महिमा गायी है कि जो शास्त्र को जानता है; लोक को नहीं जानता, वह मूर्खतुल्य है'– शास्त्रज्ञोऽप्य लोकज्ञो भवेन्मूर्खतुल्यः।

लोकगीत अपने को कला, काव्य, नृत्य अथवा संगीत के नियमों में नहीं बांधता। इनमें कृत्रिमता नहीं होती। लोकजीवन का सुंदर प्रतिबिंब इनमें दिखता है। बुंदेलखंड के लोकगीतों ने प्रकृति को सुकुमार सौंदर्य एवं प्रेम को तो वाणी दी ही है, वे व्यक्ति

**टिप्पणी**

के विविध संस्कारों और अवसरों को तद्युगीन परिवेश के साथ उपस्थित कर देते हैं। इनमें वेदना के कई रूप प्रकट होते हैं। विदा के समय एक बेटी कहती है–

*कच्ची ईंट बाबुल देहरी न धरियो बेटी न दियो परदेस मोरे लाल।*
*डोला में बैठी बन्नी बिसूरे, का हमने कीने कसूर मोरे लाल।*
*भइया भाभी खों दीनी चंदन अटरियां, हमखों दई परदेस मोरे लाल।*
*रोवत रोवत डोला उठा लए, घर सें दए हैं निकार मोरे लाल।*
*गैला में मिल गए गांव के बरेदी, एक संदेशो लयं जाव मोरे लाल।*
*जा कइयो तुम हमरी माई सों, करो जिन सोच बिचार मोरे लाल।*
*हमरे खेलत की धरी हैं पुतरियां, गंगा में दैहें सिराय मोरे लाल।*
*इतनी सोच बहनी मन मे न ल्याओ, काए देहें गंगा बहाय मोरे लाल।*
*अपनी पठाई बहनी और की बुलाई, दुनिया की जेई है रीत मोरे लाल।*

हर त्योहार और मांगलिक अवसर पर बुंदेली में ऐसे भावप्रवण लोकगीत उपलब्ध हैं, ईसुरी की फागों से बुंदेलखंड में भला कौन अपरिचित होगा–

*रामायण तुलसी कही तानसेन ज्यों राग।*
*सोई या कलिकाल में कही ईसुरी फाग।।*

ईसुरी की परंपरा को गंगाधर व्यास ने आगे बढ़ाया। इनके अतिरिक्त राठ के ख्यालीराम भी हुए, फागो के क्षेत्र में यह बुंदेली त्रयी के नाम से विख्यात है। ठेठ बुंदेली का पुनर्जागरण रामचरण हयारण 'मित्र' की कविता में देखा जा सकता है।

बुंदेलखंड की मुख्य बोली बुंदेली है। अनेक बुन्देली लोक कथाएं महाभारत एवं पौराणिक ग्रंथों से जुड़ी हुई हैं। झैंझी बुन्देली का बहुत प्रसिद्ध पर्व है। इसकी कथा महाभारत से जुड़ी हुई है। कहा जाता है कि यह झैंझी नरकासुर दैत्य की कन्या थी। जब बब्रुवाहन (टेसू) महाभारत का युद्ध लड़ने चला, तो रास्ते में झैंझी से उसकी भेंट हुई। झैंझी को देख कर टेसू ने झैंझी से विवाह करने की प्रतिज्ञा ली। यह कौरव सेना का सबसे अधिक बलशाली योद्धा था। कृष्ण को यह पता चला तो उन्होंने विवाह से पूर्व ही उस बब्रुवाहन का सिर काट दिया। मरने से पूर्व टेसू ने युद्ध देखने की इच्छा प्रकट की थी। प्रभु ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर उसका कटा हुआ सिर टेसू के पेड़ पर रख दिया। तभी से बब्रुवाहन का नाम टेसू पड़ गया। वहीं से वह महाभारत का युद्ध देखता रहा। टेसू से ही झैंझी की कथा जुड़ी है। यहां लड़कियां झैंझी खेलती हैं और लड़के टेसू बनते हैं। कहा जाता है कि महाभारत काल में टेसू घटोत्कच का बेटा था, इसलिये झैंझी टेसू का ब्याह दीवार पर मिट्टी या गोबर से बने घटोत्कच के समक्ष किया जाता है। लोक गीत गाकर ब्याह हिन्दू रीति रिवाज से किया जाता है। इसी क्रम में एक और कथा "सुअटा राक्षस" की है, जो कन्याओं का अपहरण करता था। कन्याएं इस राक्षस से बचने के लिए पार्वती का व्रत किया करती हैं।

इन कथाओं के जरिये बड़े ही साधारण तरीके से रीति रिवाज, तौर–तरीके खेल–खेल में लड़कियों को मिल जाया करते। कितना भी समय व्यतीत हो जाये, पर ये लोक कल्याण की भावना से जुड़ी कथाएं सदैव हृदय में विद्यमान रहती हैं। इन कथाओं में प्रकृति भी हम मनुष्यों की भांति वाचन परम्परा का निर्वहन करती है। नदियां,

टिप्पणी

पहाड़, पशु, पक्षी, पेड़, चिड़िया आदि मुहावरे भी यहां प्रयुक्त होते हैं। इन कथाओं को व्याकरण के दायरे में कैद नही किया जा सकता। अपने रंग–ढ़ंग में सजी–संवरी ये कथाएं बहुत ही आनंद प्रदान करती हैं। ये साहित्य सर्जना होकर भी केवल साहित्य नहीं हैं, ये यथार्थ के साथ स्वप्न में भी यात्रा कराती हैं। समय के साथ–साथ कालातीत हो जाती हैं।

बुन्देलखण्ड में लोक साहित्य की समृद्ध वाचिक परम्परा है। बुन्देली भाषा की रचनाओं का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। इस सहस्राब्दी के कालखण्ड में लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं का सृजन और विकास हुआ है। मूल रचनाकारों द्वारा रचा गया साहित्य अपनी प्रासंगिकता तथा लोकाभिरुचि के कारण लोककंठ में बस कर लोक की थाती बनता गया। काल के प्रवाह में लोक की सीमाओं और परिवर्तित परिस्थितियों के परिणामस्वरूप मूल रचना में परिवर्तन होते रहे। इसी लिए विभिन्न स्थानों पर एक की रचना के अनेक पाठान्तर मिलते हैं। लोक साहित्य की इस वैविध्यपूर्ण विरासत में लोकगीत, लोकगाथाएं, लोककथाएं एवं लोकसुभाषित (लोकोक्तियां अर्थात कहावतें, मुहावरे तथा बुझौअल अर्थात पहेलियां) सम्मिलित हैं।

## लोकगीत

जनमानस अपना उल्लास और कसक लोक गीतों कें माध्यम से व्यक्त करता है। सौन्दर्य, मधुरता, करुणा और वेदना से सराबोर ये गीत सैकड़ों वर्षों की परम्परा में जन–मन में इतने बस गये हैं कि किसी को इन गीतों में 'उत्स' का पता नहीं होता है। यदि किसी गीत का रचनाकार ज्ञात होता है तो उसे लोकगीत की श्रेणी में परिगणित नहीं किया जाता है।

इन गीतों का लोकत्व यह है कि इनकी अपनी विशिष्ट धुनें यमुना से नर्मदा तक और चम्बल से टौंस तक सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में एक जैसी गायी जाती रही हैं। स्थान–स्थान पर होने वाले भाषागत या उच्चारणगत परिवर्तनों के अलावा उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। स्वर, रागरागिनी वही रहती है, केन्द्रीय भाव वही हैं, एक दो पंक्तियों को छोड़कर गीत ज्यों के त्यों मिलते हैं।

ये गीत लिखित में कम, वाचिक परम्परा में अधिक हैं। ये गीत उन महिलाओं के कंठों में सबसे अधिक सुरक्षित हैं, जिन्होंने न तो पोथी पढ़ कर अक्षर ज्ञान पाया और न जो कागज का एक अक्षर बांच सकती हैं परन्तु उनमें स्मरण शक्ति गजब की है। उन्होंने परम्परा से इसे सुना, सुन कर याद किया और वे अपनी पीढ़ियों को देने को तैयार हैं।

बुन्देलखण्ड में घर–घर होने वाले पारिवारिक समारोह तथा मांगलिक आयोजन इन्हीं गीतों और संगीत के साथ आयोजित होते हैं। हृदय की कोमल भावनाएं इन गीतों में सहजता के साथ व्यक्त हुई हैं। इस क्षेत्र में प्राप्त लोकगीतों को अधोलिखित कोटियों में विभाजित किया जा सकता है –

1. **देवी–देवताओं के पूजा–विषयक गीत–** बुन्देलखण्ड आस्था और भक्ति का प्रदेश है। यहां आदर्शों के प्रति आस्था ने लाला हरदौल जैसे मनुष्य को देवत्व प्रदान किया है। विष पीकर भी भावज के चरित्र की निष्कलंकता उन्होंने प्रमाणित की, बहिन की याचना की रक्षा की और इसने उन्हें अमरत्व दिया। हरदौल यहां के लोकदेवता हैं।

टिप्पणी

गीत हर विवाह या मांगलिक कार्य में गाये जाते हैं। हनुमान जी पवन के पुत्र हैं, आंधी–अंधड़ से विनाश को रोकने वाले हैं, उनकी निर्विध्नता के प्रति यह आस्था लोकगीतों में मुखरित हुई है। राम और कृष्ण तो यहां घर–घर बसे हैं। हर कार्य अवसर पर उनकी पूजा का विधान है, उनके जीवन का अनुरक्षण है। कार्तिक–स्नान पर्व में महिलाएं उनके चरित्र विषयक गीत प्रभात बेला में झुण्डों में निकल कर गाती है।

महिषमर्दिनी दुर्गा तथा शारदा यहां की अधिष्ठात्री हैं। महिषासुर को लोकभाषा में मइखासुर या मइकासुर भी कहते हैं। उनका मर्दन करने वाली मां यहां विपत्तियों से रक्षा के लिए विशेष पूज्य हैं। देवी के प्रति यह आस्था 'अचरियों' में व्यक्त होती हैं। अचरियाँ धुनों के आधार पर छह प्रकार की मिलती हैं। झूला की अचरी, शब्द बानी, (भजन) डंगइया, अमान, जिकड़ी तथा मां वाली अचरी। शारदीय तथा बासंतिक दोनों नवरात्रियों में हर गांव नगर अचरियों के इस मंगल गायन से भक्तिमय हो जाता है।

अचरियां केवल दुर्गा मां की ही नहीं, सीता, राधाजू, कालका और उनके आगे चलने वाले भैरव बाबा की भी मिलती हैं। इसी क्रम में लांगुरिया गीत आते हैं। शक्ति पूजा में 'माई का मार्ग' पूजने का विधान है। इस पूजा में शक्ति और गणेश के 'मायले' गाये जाते हैं। कारसदेव की गोटें भी पशुरक्षा की पूजा में कथा के रूप में गाई जाती हैं। इन गीतों पर पुरुषों तथा महिलाओं का समान अधिकार है। 'कार्तिक गीत' केवल महिलाएं गाती हैं। गोटें केवल पुरुष गाते हैं।

**संस्कार गीत**– बुन्देलखण्ड का लोक जीवन सुसंस्कृत है। हिन्दू शास्त्रों में वर्णित सभी संस्कार यहां विधि–विधानपूर्वक करके जातक (व्यक्ति) को संस्कारित किया जाता है। यह मांगलिक संस्कार संगीत की लय और ताल पर लोकगीतों के साथ होते हैं। कुछ संस्कार इस प्रकार हैं– गर्भाधान संस्कार, पुंसवन संस्कार, सीमन्तोन्नयन (सीमन्त संस्कार), जातकर्म संस्कार, नामकरण संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार, उपनयन संस्कार, कर्णवेधन संस्कार, विवाह संस्कार, वानप्रस्थ संस्कार, संन्यास संस्कार और अन्त्येष्टि संस्कार आदि।

उक्त संस्कारों में कुछ जन्म–पूर्व के हैं। अतः इनके अन्तर्गत माता का संस्कार किया जाता है। शेष संस्कार जन्मोपरान्त जातक के किये जाते हैं। किसी माता की कितनी भी संतानें हों, उसका संस्कार प्रथम संतान होने के पूर्व होता है। परवर्ती संतानों के होने पर माता के यह संस्कार नहीं कराये जाते हैं। इन सभी संस्कारों के अवसर पर अनेक प्रकार के लोकगीत गाये जाते हैं। यह गीत प्रायः महिलाएं गातीं हैं। अन्य लोकवाद्यों के साथ ढोलक का प्रयोग प्रचुरता के साथ होता है।

अनेक संस्कार कर्मकाण्डी पण्डितों के बजाय महिलाओं के स्वरों से अभिसिंचित होते हैं। आश्चर्य यह है कि इन गीतों के गायन में रुचि रखने वाली महिलाएं और पुरुष निरक्षर या अल्पशिक्षित हैं किन्तु ये लोकगीत उनकी स्मृतियों में इस तरह बस गये हैं कि उनके तार छेड़ते ही उनके बोल अपने आप फूट पड़ते हैं। स्मृतियों की यह अविचल और लोक व्याप्त परम्परा ही लोक संस्कृति को जीवित रखे है।

**क्रीड़ात्मक–उपासना गीत**– बालक–बालिकाओं में प्रारम्भिक अवस्था में ही जीवन–यात्रा की दीर्घकालिक तैयारी, कला और संगीत के प्रति अभिरुचि, सौन्दर्यबोध का विकास, संघर्ष के साथ भी मृदुल समरसता एवं समृद्धि का समन्वय तथा जीवन के अनेक

भावी कार्यों के क्रीड़ात्मक ढंग से प्रशिक्षण की भावना से कुछ खेल बुन्देली लोकजीवन का महत्वपूर्ण अंग बन गये हैं। इनमें अकती तथा सुआटा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अकती, अक्षय तृतीया के रूप में पूरे देश में पूजित है, किन्तु उस दिन बुन्देली बालक–बालिकाओं द्वारा कलात्मक ढंग से बनाई गई पुतरा पुतरियां सौन्दर्यबोध, सृजन–क्षमता, कलाप्रियता का अद्‌भुत उदाहरण हैं। आजकल 'डॉल मेकिंग आर्ट' का फैशन आ रहा है किन्तु बुन्देलखण्ड में यह कला युगों–युगों से विकसित हो चुकी है। इस अवसर पर अक्ती के गीत गाये जाते हैं–वे विवाहोन्मुख कुमारियों की सलज्जता, शालीनता तथा प्रिय के प्रति सर्वाधिक अनुराग का प्रतिबिम्बन करते हैं।

**टिप्पणी**

सुआटा एक दीर्घकालिक क्रीड़ात्मक उपासना विधान है। यह भाद्रपद पूर्णिमा से आष्विन पूर्णिमा तक चलता है। मामुलिया, नौरता सुआटा, टेसू तथा झिंझिया के पांच अंगों से समन्वित यह खेल बालकों में उनकी कल्पनाशीलता विकसित करने, प्रकृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करने, सौन्दर्यबोध तथा कला प्रेम बढ़ाने का उपक्रम है। बेर की कंटीली टहनी को भी नारी के रूप में सजाने का प्रयास–जापान के इकेबाना की शैली का है। इसमें कांटे, फल और फूल संघर्ष, सृजनात्मक उपलब्धि तथा अनुरागात्मक माध्यम का प्रतीक है। एक ओर यह खेल प्राचीन कथा पर आधारित है, जिसका पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है, दूसरी ओर यह अंधविष्वासों में जकड़ी मान्यताओं की ओर संकेत करता है। यह बुन्देलखण्ड का विशिष्ट लोकोत्सव है। इसमें लोकगाथात्मक तथा सामान्य, दोनों प्रकार के गीत मिलते हैं।

**ऋतु विषयक गीत**– लोकजीवन में हर मौसम का अपना आनन्द है। बरसात, जाड़ा, फगुनाई भरा बसंत या ग्रीष्म; हर माह के अपने त्यौहार हैं, अपने सुख–दुख हैं। सावन तो बहिनों का माह है, बहिनों के लिए भाई की प्रतीक्षा का माह। बहिन की हर टकटकी भाई के आने की बाट जोहती है। घर के बाहर या बाग बगीचों में झूलों पर पैंगें मारती बहिनों को भी अपना परदेश में रहना अखरता है। वे भाई के आगमन की प्रतीक्षा करती हैं।

फागुन प्रेम का उत्कर्ष काल है। बसंत की बहार, फगुनाई का मौसम एक विशेष भावोद्रेक करता है। बुन्देलखण्ड में हर स्थान पर फागें और रसिया गाने का रिवाज है। ये फागें शृंगार और आध्यात्मिकता का अद्‌भुत काव्य हैं। फागें छन्दयाऊ, खड़ी तथा चौकड़ी तीन कोटियों में विभक्त होती हैं। इन संवेदनाओं से जुड़े गीत मनोरम होते हैं।

**शृंगार गीत**– बुन्देलखण्ड के लोक साहित्य में शृंगार की समृद्ध परम्परा है। मनोभावों की सरस अभिव्यक्ति इन गीतों में हुई है। ये गीत तन्मयता का अद्‌भुत उदाहरण हैं। बुन्देली बालाएं अपने प्रिय के साथ इतनी तन्मय हैं कि उन्हें 'भुनसारे चिरैयों' का बोलना प्रेम में व्यवधान लगता है।

नारी नहीं चाहती है कि उसका प्रिय किसी और को चाहे। कुएं पर, बाग में, चौपर में वह हर स्थान पर प्रिय के साथ रहना चाहती है। वह तो ढिमरिया और मलिनियां तक बनने को तैयार है। पारस्परिक समर्पण का कैसा भावपूर्ण संयोग है–'नजरिया मोई सों लगइयों।'

प्रेम आर्थिक सीमाएं नहीं देखता। वह गरीब है तो क्या हुआ? वह अपने पति को संदेश भेजना चाहती है। कागज, स्याही और कलम नहीं तो छिंगुरिया को कलम बना

टिप्पणी

कर संदेश भेजने को व्याकुल रहती है। उसकी इच्छा है कि वह भी 'लिखदऊं दो दस बोल'। प्रेयसी कितनी आशावान और मानिनी है, उसे प्रिय के आगमन से खेतों में दूबा हरी होती दिखती है, रीते कुएं भरते नजर आते हैं। यह प्रतीक विलक्षण है। वह मोतियों का चौक पूर कर और स्वर्ण कलश की मांगलिकता के साथ प्रिय का स्वागत करने को उत्सुक है।

यहां की नारी अपने पति को परेशान नहीं देखना चाहती है। चाहे वह अपनी लाखों की इज्जत गिरवी रख दे किन्तु सीधेपन के कारण कोई उसके पति को परेशान न करे। यह बुंदेली बाला का आदर्श 'जो ररिया हमसे कर लेऔ' गीत में व्यक्त हुआ है। नायिका प्रिय के लिये, जो खेत में कृषि कार्य कर रहा है, कलेवा लेकर जाती है किन्तु उसकी तन्मयता इतनी है कि उसे कलेवा देखने की फुरसत नहीं। यहां नायिका की अधीरता द्रष्टव्य होती है।

बुन्देलखण्ड में महिलाएं बांहों में 'गोदना' गुदवा कर तथा हाथों में मेंहदी रचा कर सौन्दर्य वृद्धि करती हैं। गोदना गुदवाने में बड़ी पीड़ा होती है किन्तु सुन्दर बनने की ललक उन्हें यह करने को भी मानसिक रूप से तैयार करती है। इस पीड़ा को कम करने में गुदना गीत सहायक होते हैं।

**श्रम के गीत**– व्यक्ति चाहे हल चलायें, बुआई करें, फसल काटें, कोल्हू में तेल पेरें या चक्की पीसें, इन क्षणों में उसकी तन्मयता के लिए गीत सहायक होते हैं। स्वरलहरी में तन्मय होकर वह अपनी थकान भूल जाता है। इन्हीं व्यस्त क्षणों में, खेती में, कटाई या अन्य कृषि कार्य करते समय, बिलवारी तथा दिनरी और महिलाओं द्वारा चक्की पीसते समय 'जंतसार' के गीत लोकजीवन में रच–बस गये हैं। इनकी अपनी धुनें हैं और अपनी संगीतात्मकता।

**जातियों के गीत**– विभिन्न जातियों, विशेष कर अति पिछड़ी जातियों में विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले अपने लोकगीत तथा उनकी लोकधुनें हैं। उन्हें उनके जातिगत गीत या गारी के नाम से जानते हैं। यथा–ढिमरियाऊ गारी, कछियाऊ गारी, धुवियाऊ गारी, गड़रियाऊ गारी, कहरवा (कहार गीत) आदि। इन जातियों के लोग प्रायः अपने पारम्परिक लोकगीतों, गोटें आदि को न तो लिपिबद्ध करने देते हैं और न उन्हें रिकॉर्ड करने देते हैं। सर्वेक्षकों द्वारा आग्रह करने के बावजूद उसे लिपिबद्ध कराने को तैयार नहीं होते हैं। उनकी मान्यता है कि ऐसा करने से कारसदेव नाराज हो जायेंगे। किन्तु उन्हीं जातियों के शिक्षित या शोधोन्मुख युवक–युवतियों के माध्यम से वे गीत प्रकाश में आ रहे हैं।

**शौर्य/प्रशस्ति गीत**– समकालीन महापुरुषों ऐतिहासिक पात्रों, आंचलिक ख्याति के व्यक्तियों की प्रशंसा में अथवा उनके शौर्य को बखानते हुए अनेक गीत मिलते हैं। ये गीत शौर्यपरक होने पर रासो परम्परा में गिने जाते हैं। राछरे तथा पंवारे बुन्देलखण्ड में गाये जाने वाले ऐसे ही लोकगीत हैं। इनमें कथात्मक गीतों को तकनीकी दृष्टि से लोकगाथा की श्रेणी में गिना जाता है।

**स्फुट गीत**– इसके अतिरिक्त विविध विषयों पर जो गीत मिलते हैं, उन्हें इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

टिप्पणी

## लोकगाथाएं

लोकजीवन में लोकगाथाएं बड़े प्रेम और तन्मयता से गायी तथा सुनीं जाती हैं। ये कथापरक गीत होते हैं। इनमें कहानी गीत के माध्यम से आगे बढ़ती है। इस प्रकार लोकगाथाओं को इतिवृत्तात्मक लोककाव्य कहा जा सकता है। इनका आकार सामान्य लोकगीतों से अधिक बड़ा होता है। अनेक लोकगाथाएं तो महाकाव्य की भांति 600–700 पृष्ठों में मिलती हैं। आल्हा बुन्देलखण्ड में गायी जाने वाली सर्वप्रिय लोकगाथा है। जगनिक ने जब आल्हखण्ड लिखा होगा तब वह सीमित पृष्ठों का रहा होगा, किन्तु समय की गति के साथ गायकों ने उसमें क्षेपक जोड़ कर उसे इतना विस्तृत कर दिया कि खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित आल्हखण्ड 940 पृष्ठों में छपा है, किन्तु बुन्देलखण्ड क्षेत्र में गाया जाने वाला आल्हा उससे भी बृहत् है। इसमें आल्हा ऊदल द्वारा लड़ी गई 52 लड़ाइयों की विस्तृत कहानी है। बरसात के दिनों में कृषि कार्य से निश्चिन्त होकर ग्रामवासी हर गांव में आल्हा गाते सुनते मिल जायेंगे। कई लोकगाथाएं छोटे आकार में भी मिलती हैं।

बुन्देलखण्ड की प्रमुख लोकगाथाओं में, अमान सिंह की राछरा, प्रान सिंह का राछरा, जागी का राछरा, भरथरी, सरवन गाथा, सीताबनवास, सुरहिन गाथा, हरिश्चन्द्र गाथा, सन्तवसन्त की गाथा, रमैनी आदि चालीस से अधिक लोकगाथाएं प्राप्त होती हैं।

## लोककथाऐं

लोककथाएं लोकजीवन का अभिन्न अंग है। घर के भीतर बूढ़ी महिलाएं या माताएं परिवार के बच्चों को रात में कहानियां सुनाती हैं। घर के बाहर चौपालों में आग जला कर अलाव के सामने कहानियां सुनाने की परम्परा है। प्रत्येक व्रत, त्योहार या पूजन के समय पंडित जी या परिवार की वरिष्ठ महिलाओं द्वारा कहानियां कही जातीं हैं। ये सभी कहानियां लोककथा के रूप में जानी जाती हैं। इनमें पौराणिक प्रसंगों से लेकर उपदेशपरक तथा मनोरंजक कथानक होता है। कई कथाएं तिलिस्म या रोमांच से भरपूर होती हैं। अनेक में लड़ाइयों का विवरण होता है। अधिकांश में समाज कल्याण का जीवंत चित्र बड़ी स्वाभाविकता के साथ बखाना जाता है।

इस क्षेत्र की लोककथाओं के संकलन तथा अध्ययन से इस क्षेत्र के सामाजिक परिवेश का पूरा चित्र समझा जा सकता है। व्रतकथाओं का विषय प्रायः यह होता है कि अमुक ने यह व्रत किया तो उसे क्या लाभ हुआ? अमुक ने नहीं किया तो उसे क्या कष्ट सहना पड़ा? इस प्रकार वे कथा सुनने वालों को व्रत तथा धार्मिक आचरणों के प्रति आकृष्ट करने वाले होते हैं। घर के भीतर बच्चों को सुनाई जाने वाली या अलाव पर कही जाने वाली लोककथाओं की विशेषता यह है कि उनमें मर्यादित शब्दावली में ज्ञानवर्द्धक सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है। कहानियों के अंत में लोकमंगल की भावना इन शब्दों में व्यक्त होती है– 'जैसी भगवान ने इनकी सुनी, तैसी सबकी सुनै', 'सबकौ भलौ करै', 'सुख में रख्खै' और 'दूधन भरौ, पूतन फरौ' आदि। इन लोककथाओं को कहने के पूर्व उनकी भूमिका भी बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत की जाती है।

टिप्पणी

## लोकसुभाषित और लोकोक्तियां

बुन्देलखण्ड निवासियों का वाग्चातुर्य यहां प्रचलित लोकोक्तियों, मुहावरों तथा बुझौअलों (पहेलियों) में झलकता है। किसी भी सुन्दर कथन के लिए सूक्ति या सुभाषित शब्द का प्रयोग मिलता है। जब यह सूक्ति या सुभाषित लोकव्याप्त होकर जन–जन में प्रचलित हो तो उसे 'लोकोक्ति' कहते हैं। इन लोकोक्तियों की सबसे बड़ी विशेषता संक्षिप्तता होती है, जिसमें बड़ी से बड़ी बात को कम शब्दों में कहने का सामर्थ्य है। इनमें गागर में सागर भरा है।

ये कहावतें ग्राम्य–कथन या ग्राम्य–साहित्य नहीं हैं। यह लोकजीवन का नीतिशास्त्र हैं। यह संसार के नीतिसाहित्य का विशिष्ट अध्याय हैं। विष्व–वांगमय में जिन सूत्रों को प्रेरक, अनुकरणीय तथा उद्धरणीय माना गया है, उनका सार प्रकारान्तर से इनमें मिल जायेगा। समान अनुभव से प्रसूत इन कहावतों से अधिकांश सूत्र सार्वभौमिक सत्य होते हैं। कुछ सूत्र स्थानीय या आंचलिक वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हैं।

ये कहावतें जनमानस के लिए आलोक स्तम्भ हैं। इनके प्रकाश में हम जीवन के कठिन क्षणों में लोकानुभव से मार्गदर्शन प्राप्त कर सफलता का मार्ग ढूढते हैं। यह वह चिनगारी है, जिनमें अनन्त ऊष्मा है। जो जनमानस को मति, गति और शक्ति प्रदान करती है। हम किसी भी प्रसंग की चर्चा छेड़ दें, उससे जुड़ी कहावतें लोगों की जुबान पर आ जाती हैं। यही इनकी लोकव्याप्ति का प्रमाण है। इन्हें पढ़ कर इनके गढ़ने वालों की सूझबूझ, सूक्ष्म पर्यवेक्षण क्षमता तथा वाक्विदग्धता पर आश्चर्य होता है। वे सचमुच जीवनदृष्टा थे।

ये कहावतें नदी के उन अनगढ़ शिलाखण्डों की तरह हैं, जो युग युगान्तर तक काल के प्रवाह में थपेड़े खा–खाकर शालिग्राम बन शिवत्व को प्राप्त करते हैं। इनमें लोक का बेडौलपन है, छन्दों की शास्त्रीयता नहीं है, तथापि इनमें काव्य का सा सहज प्रवाह है, वे सहज स्मरणीय हैं।

### बुझौअल

सांकेतिक ढंग से रहस्यात्मक बात कहना तथा दूसरे से पूछना और सही अर्थ जानना, यह बुन्देली में बुझौअल कहलाता है। बुझौअल बूझने (पूछना) से बना है। यह संस्कृति के प्रहेलिया शब्द का पर्यायवाची है। हिन्दी या अन्य लोकभाषाओं में इसे पहेली भी कहते हैं।

### मुहावरे

वाक्य को आकर्षक एवं चुस्त बनाने के लिए विलक्षण अर्थपरक वाक्यांश प्रयोग करते हैं, यह मुहावरे कहलाते हैं। मुहावरेदार भाषा का प्रयोग व्यक्ति की विद्वता तथा वाग्चातुर्य का प्रतीक है। यह वाक्य का अंश होता है, अतः इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं किया जा सकता है, किन्तु किसी वाक्य में यथोचित स्थान पर रख देने से उसका अर्थ महत्व बढ़ जाता है। बुन्देली लोकजीवन में मुहावरों का प्रयोग बहुतायत में होता है।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड का लोक साहित्य बहुआयामी है तथा हमें इसमें बुन्देलखण्ड की संस्कृति के विविध पक्षों की झलक देखने को मिलती है।

## 3.3.4 बघेलखंड अथवा बघेली का लोक साहित्य

बघेली या बाघेली हिन्दी की एक बोली है, जो मध्य प्रदेष के बघेलखण्ड क्षेत्र में बोली जाती है। बघेले राजपूतों के आधार पर रीवा तथा आसपास का क्षेत्र बघेलखंड कहलाता है और वहां की बोली को बघेलखंडी या बघेली कहते हैं। इसके अन्य नाम मन्नाडी, रिवाई, गंगाई, मंडल, केवोत, केवाती बोली, केवानी और नागपुरी हैं।

बघेली बोली का उद्‌भव अर्धमागधी अपभ्रंश के ही एक क्षेत्रीय रूप से हुआ है। यद्यपि जनमत इसे अलग बोली मानता है, किंतु भाषा–वैज्ञानिक स्तर पर पर यह अवधी की ही उपबोली ज्ञात होती है, और इसे दक्षिणी अवधी भी कह सकते हैं। बघेली बोली के क्षेत्र के अंतर्गत रीवां अथवा रीवा, नागोद, शहडोल, सतना, मैहर तथा आसपास का क्षेत्र आता है। इसके अतिरिक्त बघेली बोली महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और नेपाल में भी बोली जाती है। भारत में इसके बोलने वालों की संख्या 3,96,000 है। कुछ अपवादों को छोड़ कर बघेली में केवल लोक–साहित्य है। सर्वनामों में 'मुझे' के स्थान पर म्वां, मोही; तुझे के स्थान पर त्वां, तोही; विशेषण में –हा प्रत्यय (नीकहा), घोड़ा का घ्वाड़, मोर का म्वार, पेट का प्टवा, देत का द्यात आदि इसकी कुछ विशेषताएं हैं। इसकी मुख्य बोलियां तिरहारी, जुड़ार, गहोरा आदि मानी जाती हैं।

बघेली में देवनागरी तथा कैथी दोनों लिपियों का प्रयोग होता है।

मिर्जापुर जिले के सोन–पार भाग में प्रचलित बघेली बोली में उक्त जिले के मध्य में बोली आने वाली पश्चिमी भोजपुरी के शब्द और प्रयोग अधिकता से मिलते हैं जैसे–

भैल – हुआ। पश्चिमी भोजपुरी से आया है।

जाब – मैं जाऊंगा। "

कहब – मैं कहूंगा। "

### पश्चिमी मिश्रित बोलियां

बघेली की कई बोलियां इसके पश्चिम में बोली जाती है। इनमें से एक तिरहारी (तीरहारी) है। यमुना के किनारे पर प्रयुक्त होने के कारण इसका यह नाम पड़ा है। फतेहपुर, बांदा तथा हम्मीरपुर में इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ढाई लाख है। बांदा की बोली में शब्दों की वर्त्तनी परिनिष्ठित बघेली से कुछ भिन्न हो जाती है, जैसे;

**गदेल से (लड़का) गद्याल।**

इसमें क्रिया के रूप अवधी के समान चलते हैं। केवल यह अन्तर है कि भूतकाल की सकर्मक क्रिया के पूर्व संज्ञा के रूप करण कारक में पश्चिमी हिंदी तथा बुन्देली के साथ प्रयुक्त होता है। जैसे;

**सब भड़ै–ने आपन सब लैया–पुँजियॉ द्वानौ गद्यालन का बाँटि दिहिस।**

कभी–कभी करण का प्रयोग तिर्यक् में होता है, जिसका अंत 'ऐ' में होता है। जैसे; बापै अथवा बावै। यह उक्त स्थान की प्राकृत भाषा के प्रयोग का रूप है, जो उसमें अब तक सुरक्षित है।

टिप्पणी

हम्मीरपुर की तिहारी पर बुन्देली का अधिक प्रभाव है। बालिजर के आसपास की बोली ने भी बघेनी और बुन्देली के प्रयोग मिलते हैं। बांदा जिले की अन्य बोलियां, गहोरा, पठा और ततरपटा, जुरार, कुंडी, बगरावल तथा अगहर हैं, जो तिहारी बघेली में साम्य रखते हुए भी बुन्देली भाषा से अधिक प्रभावित है।

**वनाफरी** : बुन्देलखण्ड के एक बड़े भू–भाग में वन फर राजपूत निवास करते हैं। उन्हीं के नाम पर बघेली का इस बोली का नाम वनाफरी अथवा वा री पड़ा हैं यह हम्मीरपुर के दक्षिण–पूर्वी भाग बुन्देलखण्ड में चन्दल (बरखारी), लौरी (छतरपुर), धर्मपुर (पन्ना) नयगयॉ, रेवाई, गौरिहार, बेरी, अजयगढ़, बावनी और बघेलखण्ड के अंतर्गत नागौद तथा मैघर के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। वनाफरी पर बुन्देली भाषा का पर्याप्त प्रभाव है। इसके बोलने वालों की संख्या अनुमानतः साढ़े तीन लाख है।

**गौंडवानी अथवा मण्डलाहा** : मध्यप्रदेश में गौंड राजाओं के चार राज्यों की गौंडवाना नाम से पुकारा जाता था। इनमें से गढ़ा–कण्डला प्रमुख राज्य था, जिसकी राजधानी मण्डला नगर थी। इस भू–भाग की भाषा गौंडवानी अथवा मण्डलाहा नाम से विख्यात है। इसके बोलने वालों की संख्या अनुमानतः 25 लाख है। यह पूर्वी भाषा की एक बोली है; पर इसका रूप बघेली से अधिक मिलता जुलता है। गौंडवानी पर छत्तीसगढ़ी भाषा का पर्याप्त प्रभाव है।

## दक्षिणी मिश्रित बोलियां

1–2. **मरारी तथा पवारी** : ये दोनों बोलियां बालाघाट और बण्डरा में बोली जाती है। इन बघेली बोलियों पर अन्य निकटवर्ती भाषाओं का अत्यधिक प्रभाव है। उक्त दोनों जिलों के आसपास आर्य–परिवार की छत्तीसगढ़ी, बघेली, बुन्देली तथा मराठी एवं द्रविड़ परिवार की कई भाषाएं मिलती हैं। ऊपर की दोनों बोलियों को इन सभी भाषाओं ने प्रभावित किया है। मरारी मरार जाति के लोगों की बोली है, जो माली का काम करते हैं। पंवारी बोली का प्रयोग पंवार जाति के क्षत्रिय प्रमुख रूप से करते हैं मरारी बोलने वालों की संख्या लगभग 53 हजार तथा पंवारी बोलने वालों की संख्या लगभग 42 हजार है।

3. **कुम्हारी** : यह बोली कुम्हार जाति के लोगों द्वारा बोली जाती है। यह छिन्दवाड़ा, बांदा तथा मांडरा जिलों में बोली जाती है। इस पर मराठी का अधिक प्रभाव है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग डेढ़ लाख है।

4. **ओझी** : ओझी का प्रयोग ओझा लोग करते हैं। ये द्रविड़ जाति के गौंड हें और ये उसके भाट होते हैं। यह छिन्दवाड़ा में इस भाषा का प्रयोग करते हैं। इस बोली के बोलने वाले अनुमानतः छह हजार हैं।

इस प्रकार बघेली की विभिन्न बोलियां अधिक विस्तृत क्षेत्र में फैली है।

## साहित्य

पूर्वी हिन्दी की बोलियों में केवल अवधी भाषा में ही पुष्कल मात्रा में प्रौढ़ एवं उच्च कोटि के साहित्य की सर्जना हुई है। बघेली में साहित्यिक रचनाओं का प्रायः अभाव है। फिर भी, बघेलखण्ड का राजदरबार विद्यानुरागी, कला–प्रेमी और कवियों का आश्रयदाता रहा है। स्वयं यहां के महाराजाओं ने महत्वपूर्ण ग्रंथों का निर्माण किया है। उदाहरणार्थ,

टिप्पणी

महाराज जयसिंह (1765–1834 ई.) ने 28 ग्रंथों की रचना की हे, जिनमें से 'कृष्ण–सिंगार–तरंगिनी' तथा 'हरिचरित्र–चंद्रिका' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें कवित्व, काव्य–वैष्ठव, तथा सरसता विद्यमान है। महाराजा विश्वनाथसिंह (सन् 1789–1854 ई.) की साहित्य–सर्जना का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने संस्कृत में 28 तथा हिन्दी में 58 ग्रंथों की रचना की है। इनका 'आनन्द–रघुनन्दन' नाटक भारतेंदु द्वारा हिन्दी का नाटक स्वीकार किया गया है। इनकी कविता अधिकतर वर्णनात्मक अथवा उपदेशात्मक है। महाराज रघुराजसिंह (1823–1879 ई.) ने संस्कृत में 12 और हिन्दी में 17 पुस्तकें लिखी हैं। इनमें से 'रामस्वयंवर' मर्मस्पर्शिनी है।

नरेशों के समान ही रीवां की महारानियों ने भी साहित्य–सेवा की है। महाराज रघुराजसिंह की महारानी शिवादानी कुंवरि का 'सिया स्वयंवर' ग्रंथ उल्लेखनीय है। इनकी राजकुमारी विष्णुमुमारी ने 'पदममुक्तावली' तथा 'श्याम–आनन्दी' की रचना की है। महाराज व्यंकटरमणसिंह की छोटी महारानी द्वारा रचित 25 ग्रंथ हैं, जिनमें ज्ञान, भक्ति और शक्तियों का सुन्दर समन्वय है।

इन समस्त रचनाओं के लिए प्रमुख रूप से ब्रजभाषा को अपनाया गया है। कृष्ण की जन्म–भूमि की भाषा होने के कारण भक्तकवियों द्वारा ब्रजभाषा में काव्य की रचना स्वाभाविक थी। इसके अतिरिक्त मुगल–साम्राज्य का केन्द्र आगरा ब्रजभाषा के क्षेत्र में था। अन्तः, मुगल–दरबार में ब्रजभाषा को आश्रय मिला, ऐसा अनुमान लगाना, अप्रासंगिक न होगा। उधर अवधी राम की जन्मभूमि की भाषा थी। इसलिए राम–भक्त कवियों ने उसमें रचनाएं की। दूसरे, जायसी आदि सूफी कवि मूलतः अवध के थे। उसके द्वारा अवधी की काव्य–भाषा के रूप में स्वीकार करना स्वाभाविक ही था। अभिप्राय यह कि बघेली को ब्रजभाषा, अवधी तथा खड़ी बोली के समान साहित्यिक भाषा बनने का न तो अवसर ही मिला और न सुविधाएं ही प्राप्त हुईं। वह ब्रजभाषा से दबी रही। फलतः, बघेली साहित्यिक दृष्टि से उपेक्षित रही है। इसमें बहुत कम ग्रंथ लिखे गये हैं। महाराज विश्वनाथसिंह की रचनाओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उनमें केवल 'परमधर्मनिर्णय' तथा 'विश्वनाथप्रकाश' (अमृत–सागर) नामक कृतियां बघेली भाषा में लिखी गई है। इनकी भाषा के उदाहरण इस प्रकार हैं–

**मांस केर यह अर्थ है कि जेकर मांस हम खात हैं, ते हमारौ मांस खाई। और वर्ष वर्ष मां जे अश्वमेघ करत है, सो वर्ष भर औ जो मांस नहीं खात तेका बराबर पुन्य है**–परमधर्मनिर्णय : पृष्ठ 55, बस्ता नं. 13, स्टॉक 116।

**अथ प्रथम रोग विचार। रोग केंका कही। जेका अनेक प्रकार की पीड़ा होई तेका रोग कही। सोग रोग दुई प्रकार का है–एक तो कायक है, दूसरा मानस है। सरीर मॉ है सो कायक। तेका व्याधि कही। मन ते जो उत्पन्न होई तेका मानसिक व्याधि कही। सो ये दोऊ रोग बात पित कफ से उपजत है।**–विश्वनाथप्रकाश (अमृतसागर), पृष्ठ 1।

स्वर्गीय पं. भवानीदीन शुक्ल ने बाल्मीकिरामायाण की टाका बघेली में की है। यह पं. रामदास पयासी (देवराजनगर, सतना) के पास सुरक्षित है।

बघेलखण्ड के शासकों एवं निवासियों ने अपने दैनिक कार्यों में बघेली भाषा का प्रयोग किया है। शासन–कार्य में भी इसका उपयोग यथासंभव होता रहा है। अधिकांश दान–पत्र बघेली में लिखे हुए सुरक्षित है।

डॉ. वेलॉग कृत 'ए ग्रामर ऑव दि हिन्दी लैंग्वेज' पुस्तक में बघेलखड़ी भाषा के व्याकरण का विवेचन किया गया है। डॉ. वेरी ने बाइबिल का अनुवाद बघेली भाषा में किया था; जो सिरामपुर–मिशन के द्वारा सन् 1621 ई. में प्रकाशित किया गया था।

टिप्पणी

## लोक–साहित्य

बघेली में विविध विषयक लोक–साहित्य प्रचुर मात्रा में रखा गया है। यह दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–गद्य तथा काव्य। गद्य के अन्तर्गत लोक–कथाओं का विशिष्ट स्थान है। इनमें देवी–देवता, राजा–रानी, पशु–पक्षी, भूत–प्रेत, साधु–संत आदि का वर्णन किया गया है। इन कथाओं का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन तथा उपदेश–प्रदान करना है। कहनूत अथवा उक्खान (कहावतों) तथा मुहावरों की दृष्टि से बघेली साहित्य अत्यंत संपन्न है। नीचे कुछ कहावतों और मुहावरों का उल्लेख किया जा रहा है :

## कहावतें

1. **आंखी न कान, कजरोटा नौ नौठे** : अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह।
2. **आवै न जाय, दादा गुलेल लइदे** : उपयोग न जानते हुए भी किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए हठ करना।
3. **घर के लड़का गोही चाटें, मामा खायँ अमावट** : घरवालों का अनादर और संबंधियों का सत्कार।
4. **नाम लखेसुरी, मुंह कुकुरकस** : नाम के अनुरूप गुण न होना।
5. **सेत का चन्दन धिस मोरे नंदन** : दूसरे की वस्तु का अपव्यय करना।

## मुहावरे

1. आंखी निपोरब – आंख दिखाना।
2. लोखरी आय – बहुत लाड़–प्यार दिखाना।
3. सटज लगाउच – बराबरी करना।
4. लुरखुरिया करव – चापलूसी करना।
5. लउनी लग उव – प्रलोभन देकर अपने पक्ष में लाने का प्रयास करना।

बघेली लोक–काव्य विभिन्न विधाओं में लिखा गया है। इनमें पंवारों का प्रमुख स्थान है। धार्मिक संस्कार, देवी–देवता आदि विभिन्न विषय–परक गीतों का अक्षय भण्डार बघेली भाषा की श्रीसम्पन्नता का द्योतक है। इसकी पहेलियां बघेली भाषा–भाषियों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशा पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। यह निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट है–

1. सरकत आवै, सरकत जाय।<br>साप न होय वश दँदइर आय।। – रस्सी
2. एक सींग के गोली गाय।<br>जेतनै खवायै, ओतनै खाय।। – चक्की।
3. एक लीन्हिन, दुई फेंकिन। – दातौन

4. तज्जर बिलैया,ख हरियर पूंछ।
   तुम जाना महतारी पूत।। – मूली
5. एक बाल घर भर भूसा। – दीया (दीपक)

टिप्पणी

बघेली में बहुतेरे कवि लोक–साहित्य की सर्जना करते रहे हैं यहां उनमें से कुछ का संक्षिप्त परिचय देना समीचीन प्रतीत होता है।

1. **पंडित हरिदास** : बघेली के लोक–कवियों में पं. हरिदास का प्रमुख स्थान है। इनका जन्म सन् 1877–78 ई. में गुढ़ (रीवां) में हुआ था। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। रीवां राज्य की ओर से इन्हें दो रुपये मासिक वृत्ति मिलती थी। रीवां राज्य में इनका काम था–कष्टहर महादेव के मंदिर में स्थापित वीणा–पुस्तक–धारिणी भगवती के आलय में दीप जलाना। यह अपनी कविता में अपने निवास स्थान की दैनिक घटनाओं तथा ग्राम–निवासियों के स्वभाव का चित्रण प्रमुख रूप से किया करते थे। इनकी रचना में हास्यरस का अधिक पुट रहता था।
2. **नजीरुद्दीन सिद्दीकी 'उपमा'** : इनका जन्म सन् 1896 ई. में रामनगर (रीवां) में हुआ था। इनकी मृत्यु सन् 1942 ई. में हुई। 1. 'उपमा–भजनावली', 2. 'वहारे–कजली' तथा 3. बेईमान परोसी'–ये 'उपमा' जी की प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इनकी भक्ति–विषयक भावनाएं अधिक उदार थीं। इन्होंने सरल और सुबोध भाषा का प्रयोग किया है, जिस पर उर्दू भाषा की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है।
3. **बैजनाथ प्रसाद 'बैजू'** : इनका जन्म सतगढ़ (रीवां) में सन् 1910 ई. को हुआ। 'बैजू' की रचनाओं का संग्रह 'बैजू की सूक्तियां' नाम से विख्यात है। इनकी कविता मेमं ग्रामीण जनता की भावनाओं एवं लोक–जीवन का सजीव चित्रण हुआ है। 'बैजू' की शैली प्रवाहमयी तथा भाषा शुद्ध बघेली है। इनकी 'किसानी' कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में वर्षा के आने पर साधनहीन कृषक की उद्विग्नता द्रष्टव्य है–

   जउने दिन में बरसा पानी, तब किसान चौआने।

   का कारी अव का करी अब, अइसन कहि बिललाने।।

   मनई भगिगैं सगले आसौं, बरदौ कम है दुहठे।

   सुना सपूनराम, कुछ करिहा, गुजर नहीं है बइठे।।
4. **पं. गुरुरामप्यारे अग्निहोत्री** : इनका जन्म सन् 1915 ई. को ग्राम 'करी' (सतना) में हुआ। इन्होंने संस्कृत, पुरातत्व तथा इतिहास का विशेष अध्ययन किया है। विंध्य–प्रदेश सरकार ने इनकी कई रचनाएं पुरस्कृत की हैं। इन्होंने लगभग 21 पुस्तकों की रचना की है। इनमें से 'विंध्य–प्रदेश का इतिहास', 'सोहावल राज्य का इतिहास', 'प्रलय' (कविता–संग्रह), 'रिमहाई बोली' (व्याकरण) तथा 'रानी कै रिम' (खण्ड काव्य) विशेष उल्लेखनीय हैं। 'रानी कै रिस' काव्य में महारानी कुंदनकुमारी के साहस का वर्णन है।
5. **सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू'** : इनका जन्म रामनगर (रीवां) में सनफ 1923 ई. में हुआ। 1. सैफूविनोद, 2. श्रीकुंदनकुंवरि, 3. आदर्श त्यागी, 4. भजनावली,

टिप्पणी

5. चरणसिंह—ये इनकी मुख्य रचनाएं हैं। सैफू विनोद में 'आजकल के मेसेरुअन की दशा' का चित्रण किया गया है। 'कलेऊ केर अनेत' कविता में कलियुग के अन्याय और अनाचार का वर्णन किया है। इनकी रचनाओं में ग्राम्य—जीवन की यथार्थ स्थिति प्रतिबिम्बित होती है।

6. **ब्रजकिशोर निगम 'आजाद'** : इनका जन्म 15 जून, सन् 1928 ई. को रीवां में हुआ। इन्होंने बहुत—सी कहानियां, प्रहसन आदि लिखे हैं। 'आजाद' की 'चुनाव—घोषणा—पत्र' तथा 'अउंठा छाप बनाम चुनाव' नामक कविताएं अत्यंत लोकप्रिय हैं। इन रचनाओं में नेताओं के झूठे आश्वासनों और चुनाव की घटनाओं का सजीव एवं व्यंग्यपूर्ण शैली में वर्णन हुआ है।

7. **मोहनलाल श्रीवास्तव** : इनका जन्म शहडौल (मध्य प्रदेश) में सन् 1934 ई. में हुआ। इन्होंने बी.ए. तक शिक्षा पाई है। 1. 'मन्सुख के महिमा', 2. 'सजन आवत होहहिं', 3. कोइलिया बोलै', 4. 'घुमड़ आई कारी बदरिया' शीर्षक इनकी कविताएं विशेष रूप से विख्यात हैं आपकी रचनाओं में ग्रामीण जीवन, प्रकृति—चित्रण तथा जीवन की सच्ची अनुभूतियों की सजीव झांकी देखने को मिलती है।

8. **रामबेटा पांडेय 'आदित्य'**: आपका जन्म ग्राम 'किटहरा' (सतना) में सन् 1938 ई. में हुआ। ये प्रतिभा—संपन्न कवि हैं 'बुढ़ऊ के बात' कविता में आधुनिक सभ्यता के प्रति इन्होंने गहरा व्यंग्य किया है। इनकी भाषा सुबोध और शैली प्रवाहपूर्ण है।

उपर्युक्त विवचेन से यह निष्कर्ष निकलता हे कि बघेनी में विविध—विषयक लोक—साहित्य प्रचुर मात्रा में रख गया है। इसके संग्रह, पर्यवेक्षण, अध्ययन और अनुशीलन की महती आवश्यकता है, जिससे इसके लोक—साहितय का सुव्यवस्थित एवं प्रामाणिक रूप प्रकाश में आ सके। यह कार्य हो जाने पर बघेली भाषा और साहित्य के अध्ययन को अधिक विस्तृत, प्रौढ़ तथा ज्ञानवर्द्धक बनाया जा सकता है।

## 3.3.5 निमाड़ अथवा निमाड़ी का लोक साहित्य

निमाड़ मध्य प्रदेश के पश्चिमी ओर स्थित है। इसकी भौगोलिक सीमाओं में निमाड़ के एक तरफ विन्ध्य पर्वत और दूसरी तरफ सतपुड़ा हैं, जबकि मध्य में नर्मदा नदी है। पौराणिक काल में निमाड़ अनूप जनपद कहलाता था। बाद में इसे निमाड़ की संज्ञा दी गयी। फिर इसे पूर्वी और पश्चिमी निमाड़ के रूप में जाना जाने लगा। निमाड़ का जिले के रूप में गठन ब्रिटिशराज में नेरबुड्डा डिवीजन में हुआ, जिसका प्रशासनिक मुख्यालय खण्डवा में था, जोकि मुस्लिम शासको के दिनों में बुरहानपुर हुआ करता था। निमाड़ में हजारों वर्षों से उष्म जलवायु रहा है। निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास अत्यन्त समृद्ध और गौरवशाली है। विष्व की प्राचीनतम नदियों में एक नदी नर्मदा का विकास निमाड़ में ही हुआ। नर्मदा—घाटी—सभ्यता का समय महेश्वर नावड़ाटौली में मिले पुरासाक्ष्यों के आधार पर लगभग ढाई लाख वर्ष पूर्व माना गया है। विन्ध्य और सतपुड़ा अति प्राचीन पर्वत हैं। प्रागैतिहासिक काल के आदिमानव की शरणस्थली सतपुड़ा और विन्ध्य की उपत्यिकाएं रही हैं। आज भी विन्ध्य और सतपुड़ा के वन—प्रान्तों में आदिवासी समूह निवास करते हैं। नर्मदा तट पर आदि अरण्यवासियों का निमाड़ पुराणों में वर्णित है। उनमें गौण्ड, बैगा, कोरकू, भील, शबर आदि प्रमुख हैं।

**टिप्पणी**

निमाड़ का जनजीवन कला और संस्कृति से सम्पन्न रहा है, जहां जीवन का एक दिन भी ऐसा नहीं जाता, जब गीत न गाये जाते हों, या व्रत–उपवास, कथावार्ता न कही–सुनी जाती हो। निमाड़ की पौराणिक संस्कृति के केन्द्र में ओंकारेश्वर, मांधाता और महिष्मती हैं। वर्तमान महेश्वर प्राचीन महिष्मती ही है। कालिदास ने नर्मदा और महेष्वर का वर्णन किया है। निमाड़ की अस्मिता के बारे में पद्मश्री रामनारायण उपाध्याय लिखते हैं– "जब मैं निमाड़ की बात सोचता हूं तो मेरी आंखों में ऊंची–नीची घाटियों के बीच बसे छोटे–छोटे गांव से लगा जुवार और तूअर के खेतों की मस्तानी खुशबू और उन सबके बीच घुटने तक धोती पर महज कुरता और अंगरखा लटका कर भोले–भाले किसान का चेहरा तैरने लगता है। कठोर दिखने वाले ये जनपद जन अपने ह्रदय में लोक साहित्य की अक्षय परम्परा को जीवित रखे हुए हैं।

निमाड़ी बोली में रचे लोकगीत तथा कहावतें और कहानियां एक अनोखे सौंधेपन का एहसास कराती हैं। लोककथाओं और गीतों के जरिये प्राचीन समय से कहा और सुना चला आ रहा साहित्य निमाड़ का असली रूप प्रस्तुत करता है।

मराठी एवं गुजराती भाषा तथा राजस्थानी बोली का मिश्रण निमाड़ी में ध्वनित होता है। इसके लोकगीतों में भी उक्त तीनों ही की अद्‌भुत मिठास प्रतिध्वनित होती है। निमाड़ी साहित्य वैसे भी खास तौर पर लोकगीतों के लिये ही जाना जाता है। परंपरागत गीत इसकी पहली पहचान हैं। इनमें संतों द्वारा गाये जाने वाले भक्ति गीत तथा जनसाधारण द्वारा गाये जाने वाले विभिन्न त्योहारों तथा महत्वपूर्ण अवसरों के लिए रचे गये गीत मुख्य तौर पर शामिल हैं। निमाड़ में हुए कई संतों के रचे दोहे–चौपाइयां सामान्य होते हुए भी जीवन–दर्शन की गहरी झलक दे जाती हैं। इसका एक उदाहरण देखिये–

*"हेत प्रीत की राबड़ी, मिलकर पीजे वीर।*
*हेत बिना कालू कहे, कड़वी लागे खीर म"*

यह संत सिंगाजी के पुत्र संत कालूजी का कहा दोहा है, जिसका मतलब है– प्रेम से पिलायी गयी राबड़ी (एक प्रकार का मक्के तथा छाछ का व्यंजन) भी मिल–जुलकर पीने से स्वादिष्ट लगती है, लेकिन बिना स्नेह के परोसी गयी खीर भी कड़वी लगती है।

निमाड़ी लोक साहित्य में साहित्यकारों ने निमाड़ की समस्त जीवन शैली का वर्णन किया है। यहां के रीत–रिवाज़, परंपरा, तीज त्यौहार, वेशभूषा, यहां के पर्यटन स्थल व यहां जन्मे साधु–संतों विशेषकर सिंगा जी महाराज, लोक कला और महेश्वर में बनाई जाने वाली महेश्वरी साड़ियों का वर्णन साहित्यकारों ने अपने साहित्य में किया है। निमाड़ में गीतों का विशेष महत्व है। जन्म से मृत्यु तक गाने गाये जाते हैं। हर अवसर पर, तीज त्यौहार पर, गातों की वर्षा होती है। निमाड़ जिले की आम जनता द्वारा बोली जाने वाली निमाड़ी ऐसी एक लोक भाषा है। समूचे निमाड़ पर इसका एकछत्र आधिपत्य है। निमाड़ी मुख्यतः उत्तर में मालवे की सीमा को छूते हुए नर्मदा के आस पास ओंकारेश्वर, मंडलेश्वर, मध्य में खरगोन पश्चिम में जोबट, अलीराजपुर, धार, बड़वानी तथा पूर्व में होशंगाबाद के नजदीक हरदा और हरसूद को लेकर दक्षिण सुदूर, खंडवा और बुरहानपुर के आस पास खानदेश की सीमा तक बोली जाती है। भौगोलिक

टिप्पणी

सीमा की दृष्टि से उत्तर में विन्ध्याचल, दक्षिण में सतपुड़ा, पूर्व में छोटी तवा नदी और पश्चिम में हरिणफाल के पास सुदूर धार व बड़वानी को लेकर इसकी सीमायें बनती हैं। यह एक संयोग है कि उत्तर और दक्षिण में यदि दो पर्वत सजग प्रहरी की तरह इसके दो किनारों पर खड़े हैं, तो पूर्व और पश्चिम में दो नदियां इसकी सीमा रक्षा करती हैं। अन्य भाषा भाषी प्रांतों की दृष्टि से उत्तर में मालवा, दक्षिण खान देशख पूर्व में होशंगबाद व पश्चिम में सुदूर गुजरात की सीमा छूती है।

संस्कृति की दृष्टि से निमाड़ एक संपूर्ण जनपद है। किसी भी जनपद अथवा सांस्कृतिक अंचल को बनने में हजारों वर्ष लगते हैं उससे कहीं अधिक लोकमनीषा की प्रखर प्रतिभा ऊर्जा का अजस्त्र स्रोत भी लगता है, जिससे संस्कृति का ताना–बाना बुना जाता है। निमाड़ की लोक संस्कृति में लोक की समस्त शक्तियों विद्यमान हैं लोक संस्कृति एक ऐसी प्रबल धारा है, जिसमें समय, संस्कृति, जीवन निरंतर प्रभाव मान होते हैं संस्कृति संपन्न व्यक्ति अनुभवजन्य शब्द में से अपना काम चला लेता है। उसे अक्षर ज्ञान की जरूरत नहीं है। लोक की वाचिक परंपरा के प्रत्येक शब्द और अर्थ में लोक का समस्त ज्ञान–विज्ञान समाहित है। हजारों वर्षों से संस्कृति शब्द के माध्यम से जीवन के अर्थ गौरव को संधारित करती आई हैं। मनुष्य संस्कृति का निर्माता है और उसका संवाहक भी है। प्रकृति उसके इस कार्य की प्रमुख सहभागी है। निमाड़ का लोकजन परंपरा से इस लोक निष्कर्ष से परिचित ही नहीं है, बल्कि वह जीवन में उसे चरितार्थ करता है। इसे निमाड़ी जन की परिप्रेक्ष्य में भोलई निमाड़ कहा है। एक समर्पित सहज विश्वास करने वाले जन के रूप पहचाने जाने वाला निमाड़ का आदमी अपनी धरती प्रकृति और संस्कृति से गहरा स्नेह रखता है। उसे परंपरा से चले आ रहे आर्ष आप्त वचनों के सत्य पर पूरा भरोसा है। वह उसे आंख भींचकर स्वीकार कर चलने में जरा भी हिचक नहीं महसूस करता। उसे पता है, उसके पूर्वजों ने जो राह खोजी है वह सत्य की आनंद की राह है उस पर चलने पर कोई गड्डा नहीं आयेगा। जिसमें उसे गिरने का भय हो, अनंत काल से लोक 'महाजन येन गतः सो पन्था' का मार्ग अपनाये हुए है और उसे इस मार्ग में कोई हानि नहीं उठानी पड़ी है। आज भी लोकजन इसी विश्वास का रास्ता अपनाये हुए हैं। निमाड़ जन भी इसी भरपूर विश्वास के साथ जीता है और अपनी संस्कृति के दाय को पूरा करता है। वह अपनी देहरी पर अपने वाले को आदरपूर्वक आव और विदा होते हुए को 'अरू आवजौ' पुनः पधारने का अनुरोध आज भी करता है। यह निमाड़ी संस्कृति का अभिन्न अंग है। लोकसाहित्य ग्रामीण जनता की संपत्ति है। लोक–कथानकों, लोक–गीतों, अंधविश्वासों, प्रोदशिक निजंधरी कथाओं, लोकोक्तियों और पहेलियों को इस साहित्य में विवेच्य विषय माना जाता है। साधारणतः मौखिक परंपरा से प्राप्त और दीर्घकाल तक स्मृति के बल पर चले आते हुये गीत और कथानक ही लोक–साहित्य कहे जाते हैं। लोक–साहित्य की लोक–परंपरा से एकात्मता है। लोक की गंगा युग–युग से बह रही है। लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। उसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित रहते हैं निमाड़ की लोक संस्कृति, सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं से परिपूर्ण है। यहां के लोक–साहित्य में लोकगीत अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते हैं।

निमाड़ी लोक–साहित्य में लोकगीतों का स्थान सर्वापरि और महत्वपूर्ण है। इस कारण लोक–साहित्य का सहज परिचय देते हुए लोकगीतों को भी गंभीरता से विचारा

टिप्पणी

है। निमाड़ की आत्मा है रनुबाई, जो जन–जन के हृदय में देसी रूप में वास करती हैक। निमाड़ के गणगौर गीतों में रनु–धणियर के परिवार और उनके जीवन का सहज चित्रण मिलता है। निमाड़ का जनमानस असीम धार्मिक विश्वास से जुड़ा होने के कारण निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में ईश्वर की आराधना करता है। विविध धार्मिक पर्व, गणगौर के झालरिया में अद्भुत सुखानुभूति का प्रदर्शन, वियोग, प्रेम, करूणा, उत्साह और साहिस आदि बिन्दुओं से किया है। निमाड़ का जन–जीवन नर्मदा को अपने हृदय में बसाने के कारण धार्मिक अधिक है। यहां विविध देवी–देवताओं की स्तुति के साथ–साथ नर्मदा की स्तुति अध्कि है। जिनमें धार्मिक मूल्यों के साथ–साथ मन को आल्हादित कर देने वाले भाव रहते हैं। लोकगीत और संगीत में नृत्य का अपना विशिष्ट महत्व है। नृत्य के अनेक रूप निमाड़ में प्रचलित हैं। काठी नृत्य, गैर, स्वांग, गम्मत, गणगौर, गरबा इत्यादि को लोकगीतों के लोकनाट्यों को भी उनके साथ जोड़ा है। निमाड़ की सांस्कृतिक चेतना भी चित्रकला और वास्तु शिल्प का अपना महत्व है। निर्मित चित्र और वास्तुशिल्प लोकजीवन की अद्भुत झांकी प्रस्तुत करते हैं। निमाड़ में लोककला में भित्ति चित्रों का प्राधान्य है। जिनमें कुलदेवी, जिरोती, नाग, विविधपर्वो के मांडणे आदि शामिल हैं।

लोक में जन्म मरण, विवाह, गीत, कथा, नृत्य, संगीत, कला, संस्कृति, साहित्य के साथ–साथ मनुष्य के पल–पल के व्यवहार, हंसना, बोलना, सोना–बैठना, चलना–फिरना, श्रम–आराम, लड़ना–भिड़ना, वाद–विवाद, ध्वंस–निर्माण, आस्था–अनास्था, अतीत–वर्तमान, सुख–दुख आदि सभी आ जाते हैं। प्रकृति की वह सत्ता भी आ जाती है जो प्रकृति और पुरुष की परिपूरक है। चिर सहचरी है। निमाड़ी लोकजीवन में परंपराओं और प्रथाओं का अत्यधिक महत्व है। ऊपर से जीवन कितना ही बदल गया हो, लेकिन आंतरिक मानस लोपों का अभी भी अपनी परंपराओं, प्रथाओं और लोकविश्वासों के साथ है। निमाड़ी लोक साहित्य, निमाड़ी लोक जीवन का साहित्य है। इसमें ग्रामीण जीवन की समस्त विशेषताएं विद्यमान हैं।

## निमाड़ी के लोकगीत

आदिम युग से चली आ रही लोकगीतों की अजस्त्र लोकधारा भी कितनी ही संस्कृतियों के सभी तेजस्वी तत्व मौजूद हैं, जो मनुष्य को परंपरा से बेहतर तत्व मौजूद हैं, जो मनुष्य को परंपरा से बेहतर बनाने में समर्थ हैं। लोकगीतों में भारतीय संस्कृति की धड़कनें समाई हैं लोकगीत समय और शब्द के सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं, जिनमें जातीय स्मृतियों के इतिहास चिन्ह् सुरक्षित और संरक्षित हैं। डॉ. श्याम परमार ने लिखा है–"गीतों की यह परंपरा तब तक जीवित हैं, जब तक मानव का अस्तित्व विद्यमान है। यदि मानव के कण्ठ से जो विगत भाव कभी निकले थे, कालांतर में वे गीत बन गये।" आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोकगीतों को वेद की संज्ञा दी है।

लोकगीत लोक की पारंपरिक छोटी–छोटी कवितायें हैं, जिनमें जीवन के समस्त सुख–सौन्दर्य, हर्षो–उल्लास, दुःख तनाव, प्रतिबिंबित होते है। लोक काव्य की यह जीवन धारा लोक के सांस्कृतिक जीवन में निरंतर बहती है। लोक समाज में प्रचलित विभिन्न संस्कार, अनुष्ठान और रीतिरिवाज लोककविता की अभिव्यक्ति के अवसर है। जन्म, विवाह, द्वार गमन आदि मांगलिक अवसरों के गीत, गाथाएं या ऋतु, पर्व, त्यौहारों

टिप्पणी

के गीतों के रूप में लोक काव्य की उपस्थिति मूलतः परंपरागत है। लोकगीत संस्कृति के संवाहक है। लोकगीतों में संस्कृति के समस्त संवेदी स्वर मौजूद होते हैं। लोकगीत किसी जाति, समूह और देश की लोक संस्कृतियों के परिचायक होते हैं। उनमें जीवन की प्रत्येक गतिविधियों का एहसास देखा जा सकता है। मनुष्य के जन्म–मरण, मंगनी–विवाह, जनेउ–मुंडन, पर्व–त्यौहार, हर्ष–उल्लास, हास–परिहास, सुख–दुःख, आचार–विचार, लोक–व्यवहार, प्रथाएं, रीति–रिवाज, परंपरा–प्रथा, रूढ़ियां, धर्म–कर्म, अध्यात्म और अनुष्ठान, अतीत तथा और वर्तमान के सारे संस्कार लोकगीतों में सहज रूप में मिलते हैं।

लोकगीत लोकण्ठों की धरोहर है। एक कंठ से दूसरे कंठ, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने वाले लोकप्रिय शब्द और स्वर के दोहराव से संचरित होते हैं। दोहराव लोकगीतों का दोष नहीं, गुण है, उसकी शक्ति है, जिसके कारण नयी पीढ़ी सरलता से अपनी स्मृति में गीतों और उनके अर्थ ग्रहण करने में सक्षम होती है।

## निमाड़ी लोकगीतों में परंपरा और संस्कृति

निमाड़ अंचल में विभिन्न प्रकार की लोक काव्य चेतना पायी जाती है। निमाड़ी मध्य प्रदेश की एक प्रमुख बोली है। निमाड़ी राजस्थानी, गुजराती के साथ मराठी शब्द संपदा की सम्पृक्ति में संपूर्ण बोली के रूप में प्रचलित है, जिसकी अपनी समग्र लोक संस्कृति की पृथक प्रतिष्ठा भी है। निमाड़ी ने विन्ध्य और सतपुड़ा मे मध्य बहती नर्मदा और तपती काली मिट्टी के कारण खड़ी बोली की संज्ञा धारण कर ली है। निमाड़ी लोकगीत गरम जलवायु के उष्म गीत है। निमाड़ी के अनाम लोकगीतकार जीवन के उन समस्त तेजस तत्वों को समाहित करने में सफल हुए है, जिनमें लोक चेतना के सारे मंत्र और मिथक अक्षुण्ण है। निमाड़ के सांस्कृतिक लोक जीवन में लपोकगीत की संख्या सबसे अधिक है। विशेषकर संस्कारों के समय पर लोकगीत सबसे अधिक गाये जाते हैं। जिनकी अपनी पारंपरिक लोक धुन और लोक संगीत है। लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका रचनाकार कोई अकेला व्यक्ति नहीं होता, बल्कि समूह होता है, इसीलिए इन गीतों समूचे समाज के सुख और दुःख की अभिव्यक्ति सहज मिल जाती है। निमाड़ी लोक गीत या लोक कविता कठिन जीवन की तपस्या और संघर्ष की खरी अभिव्यक्ति है। जन्म, विवाह, मृत्यु, त्यौहार, देवता, यात्रा अन्य संस्कार के लोकगीतों में निमाड़ की समूची लोक संस्कृति का समावेश हुआ है। जिनके लोकगीतों में लोक कविता कथा–नाट्यों, कथा–वार्ताओं आदि में लोकगीतों की समृद्ध परंपरा दिखाई देती है। निमाड़ की पारंपरिक लोक विधाओं कलगी, तुरी, काठी, मसाण्या गीत, गम्मत लोरी, बारामासा, पर्व–त्यौहार आदि से संबंधित लोकगीत निमाड़ी संस्कृति के परिचायक है। निमाड़ी लोकगीत निमाड़ी लोक संस्कृति की सारभूत और रसमयी आख्यायें हैं।

निमाड़ी लोक–साहित्य में सबसे अधिक संक्ष्या गीतों की है। यहां के लोक–जीवन की तरह ही यहां के लोकगीत भी भावना प्रधान है। भाव, भाषा उपमा एवं अलंकार सभी दृष्टि से लोकगीत अत्यंत समृद्ध रहा है। इसमें देवी–देवता के माध्यम से भी मानव जीवन की कहानी कही गई है। चाहे सूर्य हो या ब्रह्मा–सावित्री, वे सब यहां मानवीय स्वरूप लेकर बाते और पारिवारिक प्रतीकों के सहारे सामाजिक जीवन को समृद्ध बनाने में अपना योगदान देते हैं। एक ओर यदि इनके विवाह के गीतों में कन्य की सगाई से लेकर बिदाई तक के प्रत्येक क्षण का वर्णन है तो दूसरी और गणगौर के गीतों में किशोर

बालिका से लगाकर वयस्क ग्राम वधु होने तक की मनोभावाओं का अंकन है। निमाड़ में गणगौर गातों को सामाजिक जीवन की मांगलिक अभिव्यक्ति कह सकते है। स्वभाव के अनुसार निमाड़ी के कुछ गीत स्त्री प्रवृत्ति के हैं और कुछ पुरुष प्रवृत्ति के। गणगौर, विवाह, व्रत, त्यौहार, तीर्थ तथा ऋतुओं के गीत स्त्री प्रवृत्ति के हैं और ये सब स्त्रियों द्वारा सामूहिक रूप से गाए जाते हैं।

टिप्पणी

### लोकगीतों का महत्व

निमाड़ में लोक गीतों का विशेष महत्व है। लोक साहित्य में लोकगीत अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते हैं निमाड़ी लोकगीत भारतीय भाषाओं, उपभाषाओं, बोलियों, उपबोलियों में अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं निमाड़ी लोकगीतों की धार्मिक अभिव्यक्ति सामाजिक उत्सव पर्व व्रत त्यौहार, अवसर, मेले इत्यादि के रूप में विवेचित किये गये हैं। निमाड़ी लोकगीत निमाड़ की संपूर्ण संस्कृति को समेटे हुए हैं। धार्मिक लोकगीतों में निमाड़ के समकालीन परंपरावाही समाज का रूप दृष्टिगोचर होता है। लोकगीतों का संस्कृतिक मूल्य और उसकी उपादेयता मानव मन को सहज आकर्षित करती है। लोकगीतों में मनुष्य के सुख–दुःख, प्रेम अनुराग, हर्ष, उल्लास सभी दिखाई देता है।

निमाड़ी लोकगीत निमाड़ी लोक साहित्य की आत्मा है। निमाड़ी लोकगीतों से समूचे निमाड़ की संस्कृति के दर्शन होते हैं। निमाड़ी लोकगीतों में निमाड़ की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, परंपराएं, रीति–रिवाज के सहज ही दर्शन होते हैं। लोक साहित्य में लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। निमाड़ी लोकगीत निमाड़ की जीवन शैली को चित्रित करते हैं। निमाड़ के लोकगीत अपने आप में एक धरोधर है।

## 3.3.6 मालवा या मालवी का लोक साहित्य

मालवी भारत के मालवा क्षेत्र की भाषा है। मालवा भारतभूमि के हृदय–स्थल के रूप में सुविख्यात है। मालवा क्षेत्र का भू–भाग अत्यंत विस्तृत है। पूर्व दिशा में बेतवा (वेत्रवती) नदी, उत्तर–पश्चिम में चम्बल (चर्मण्यवती) और दक्षिण में पुण्यसलिला नर्मदा नदी के बीच का प्रदेश मालवा है। मालवा क्षेत्र मध्य प्रदेश और राजस्थान के लगभग बीस जिलों में विस्तार लिये हुए है। इन क्षेत्रों के दो करोड़ से अधिक निवासी मालवी और उसकी विविध उपबोलियों का व्यवहार करते हैं।

प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा की पुस्तक 'मालवी भाषा और साहित्य' के अनुसार वर्तमान में मालवी भाषा का प्रयोग मध्यप्रदेश के उज्जैन संभाग के आगर मालवा, नीमच, मन्दसौर, रतलाम, उज्जैन, देवास एवं शाजापुर जिलों, इन्दौर संभाग के धार, झाबुआ, अलीराजपुर, हरदा और इन्दौर जिलों, भोपाल संभाग के सीहोर, राजगढ़, भोपाल, रायसेन और विदिशा जिलों, ग्वालियर संभाग के गुना जिले, राजस्थान के झालावाड़, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा एवं चित्तौड़गढ़ जिलों के सीमावर्ती क्षेत्रों में होता है। मालवी की सहोदरा निमाड़ी भाषा का प्रयोग बड़वानी, खरगोन, खंडवा, हरदा और बुरहानपुर जिलों में होता है। मध्य प्रदेश के कुछ जिलों में मालवी तथा अन्य निकटवर्ती बोलियों जैसे निमाड़ी, बुंदेली आदि के मिश्रित रूप प्रचलित हैं। इन जिलों में हरदा, होशंगाबाद, बैतूल, छिन्दवाड़ा आदि उल्लेखनीय हैं। सातवीं शती में जब व्हेनसांग भारत आया था, तो वह मालवा के पर्यावरण और लोकजीवन से गहरे प्रभावित हुआ था। तब उसने दर्ज भी किया, 'इनकी भाषा मनोहर और सुस्पष्ट है।'

टिप्पणी

मालवा समृद्धि एवं सुख से भरपूर क्षेत्र माना जाता है। 'देश मालवा गहन गंभीर, डग–डग रोटी पग–पग नीर' जैसी उक्ति लोकजीवन में प्रचलित है। जीवन की यही विशिष्टताएं मालवा के इतिहास, संस्कृति, साहित्य, कला आदि में प्रतिबिम्बित हुई हैं। लोककलाओं के रस से मालवांचल सराबोर है। सुदूर अतीत से यहां प्रवहमान नदियों, स्थानीय भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधता के रहते मालवी की अलग–अलग छटाएं लोकजीवन में दिखाई देती हैं। इन्हीं से मालवी के अलग–अलग क्षेत्रीय रूप या विविध उपबोलियां अस्तित्व में आयी हैं। एक प्रसिद्ध उक्ति भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है, "बारा कोस पे वाणी बदले, पांच कोस पे पाणी।"

मालवी का केन्द्र उज्जैन, इंदौर, देवास और उसके आसपास का क्षेत्र है। इसी मध्यवर्ती मालवी को आदर्श या केन्द्रीय मालवी कहा जाता है, जो अन्य निकटवर्ती बोलियों के प्रभाव से प्रायः अछूती है। आगर मालवा जिला तो प्रसिद्ध ही मालवा उपनाम से है, क्योंकि जानकारों के अनुसार बहुत हद तक केन्द्रीय या आदर्श मालवी इस जिले में ही बोली जाती है। केन्द्रीय या आदर्श मालवी के अलावा मालवी के कई उपभेद या उपबोलियां भी अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं। मालवी के प्रमुख उपबोली रूप हैं–

**केन्द्रीय या आदर्श मालवी**

हाड़ौती मिश्रित मालवी, जो राजस्थान के झालावाड़, झालरापाटन और मध्यप्रदेश के सोयत क्षेत्र में बोली जाती है।

सोंधवाड़ी

रजवाड़ी

दशोरी या दशपुरी

उमठवाड़ी और

भीली।

मालवा क्षेत्र की सदा से राजनीतिक पहचान रही है। भौगोलिक समशीतोष्णता का आकर्षण रहा है। धार्मिक उदारता, सामाजिक समभाव, आर्थिक निश्चिन्तता, कलात्मक समृद्धि से सम्पन्न विक्रमादित्य, भर्तृहरि, भोज जैसे महानायकों की यह भूमि रही है, जहां कालिदास, वराहमिहिर जैसे दैदीप्यमान नक्षत्रों ने साधना की। मालवा के वसुमित्र ने विदेशी ग्रीकों को, विक्रमादित्य ने शकों तथा प्रकाश धर्मा और यशोधर्मा ने हूणों को पराजित कर स्वतंत्रता संग्राम की परंपरा पुरातनकाल से ही स्थापित कर दी थी। मालवा का अपना सर्वज्ञात विक्रम संवत् भी है। यहां भीमबेटका जैसे विष्वविख्यात पुरातत्व के स्थान हैं।

उज्जयिनी, विदिशा, महेश्वर, धार, मन्दसौर जैसे यहां पारम्परिक सांस्कृतिक केन्द्र हैं, जहां निरन्तर जीवन संस्कार पाता रहा।

मालवा की बोली मालवी की चिरकाल से समृद्धि होती रही, जो अब क्रमशः उजागर होती जा रही है। मालवी का लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध है। लोक नाट्य माच, लोकगीत, कथा वार्ताएं, पहेलियां, कहावतें आदि मालवी की अपनी शक्ति हैं। इसकी शब्द सम्पदा अत्यंत समृद्ध है तथा इसकी उच्चारण पद्धति नाट्शास्त्र युग से

आज तक वैसी ही है। मालवा की परम्पराएं समूचे भारत से प्रभावित हुई हैं और पूरे भारत को मालवा की संस्कृति ने किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है।

टिप्पणी

मालवा का बाहरी रूप जितना मनोरम है, उतना ही सुन्दर, कोमल और आत्मीय है इसका अंतरंग। मालवा क्षेत्र के जल, पर्यावरण और सदैव सुकाल की अवस्था पर संत कवि सुन्दरदास लिखते हैं–

*'वृच्छ अनन्त सुनीर वहंत सुसुन्दर संत बिराजे तहीं ते*
*नित्य सुकाल पड़ै न दुकाल सुमालवं देस भलो सबहीं ते।'*

मालवा भारत का हृदय अंचल है। आज का मालवा संपूर्ण पश्चिमी मध्यप्रदेश और उसके साथ सीमावर्ती पूर्वी राजस्थान के कुछ जिलों तक विस्तार लिए हुए हैं। इसकी सीमा रेखा के सम्बन्ध में एक पारम्परिक दोहा प्रचलित है–

*'इस चम्बल उस बेतवा, मालव सीमं सुजान।*
*दक्षिण दिसि है नर्मदा, यह पूरी पहचान।।'*

मालवा के लोग इसकी संस्कृति को अपने सुख–दुःख, संस्कार, व्रत–त्योहार, वार, अनुष्ठान के मौकों पर गीत, कथा, गाथा से लेकर विविध लोकाभिव्यक्तियों के जरिये जिंदा रखे हुए हैं। महज मालवी भाषा और साहित्य की दृष्टि से ही नहीं, वेशभूषा, शृंगार–प्रसाधन, लोकाचार, खान–पान, चित्र, मूर्ति, संगीत आदि सभी क्षेत्रों में मालवा की खास पहचान शताब्दियों से बनी हुई है। यहां का लोकमानस अतीत ही नहीं, अपने वर्तमान से भी सीधे संवाद करता है। यथा–

*'बीरा थारा कारणे वोट का भिखारी उबारे द्वार।*
*एक बोट का मांगे दान, बेनड़ी रखजे म्हारो मान।।'*

मालवा लोक–साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। जीवन का ऐसा कोई प्रसंग नहीं है, जब मालवजन अपने हर्ष–उल्लास, सुख–दुःख को दर्ज करने के लिये लोक–साहित्य का सहारा न लेता हो।

*'छोटी–छोटी नानी होण ने मांडी संजा प्यारी।*
*संजा बइका गीत उगेरया या धुन सबसे न्यारी।।*
*ई हिकी–मिकी ने जीवने को संगीत गुंजाणे लागी*
*म्हणे लाल–गुलाबी संजा देखी, तो दूर उदासी भागी।*
*इनने जग का सुख–दुख गाया कई भीनी राख्यो है सेस।*
*यो हंसतो–गातो म्हारो देस।*

धार्मिक चेतना के विकास के फलस्वरूप लोक–कथाओं, लोकगीतों, लोकनाट्यों, लोकनृत्यों आदि का निर्माण सुगम हो गया। जातीय रीति–रिवाज का निर्माण हुआ और अन्त में सामाजिक मूल्यों के निर्धारण में लोक साहित्य समृद्ध होकर समाज की दिशा और दशा निर्धारित करने लगा।

लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकगीतों की भी कई शैलियां प्रचलित हैं। इनमें वसन्त–ऋतु के गीत जैसे–फगुआ, होरी, रसिया, कबीर चैती, वर्षा–ऋतु के गीत, जैसे सावन, हिण्डोला, कजरी, चौमासा, बारहमांसा, मल्हार, व्रत–पूजा के गीत जैसे लंगुरियां, छठीमाता के गीत, देवी गीत, भजन, श्रमगीत जैसे–सोहनी, रोपनी के गीत, कोल्हू के

गीत, चरखा गीत, जतसार, चांचर, जाति गीत, जैसे–बिरहा (अहीरों के गीत), कहरवा (कहारों के गीत), पचरा (दुसाधों के गीत), तेलियों के गीत, धोबियों के गीत, चमारों के गीत आदि। बच्चों के गीत जैसे–लोरी, ओक्का–बोक्का, चन्दामामा, चुटकुले आदि, अन्य गीत–जैसे दादरा, पुरबी, नयारी, झूमर आदि खूब प्रचलित हैं।

**टिप्पणी**

भारतीय समाज में संस्कारों का बड़ा महत्व माना गया है। गर्भधान से लेकर मृत्यु तक संस्कारों का क्रम चलाता रहता है। इस समय व्यक्ति को इन समस्त संस्कारों के शास्त्रीय तथा लौकिक अनुष्ठानों के बीच से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक संस्कार के अपने गीत हैं, जो उत्सवों पर गाये जाते हैं। जन्म–संस्कार के गीत, जैसे साथ, सरिया, रोचना, सोहर, खेलावना, मंगल, बधाई, नेग–निछावर, जच्चा–बच्चा की देखभाल से संबंधित गीत, छठी नामकरण के गीत, मुण्डन तथा जनेऊ के गीत जैसे–बरुआ, विवाह के गीत, जैसे सगुन, लगन, कोहवर, बन्ना–बन्नी, नहछू, घोड़ी, सेहरा, सोहाग, जोग, नकदा, गाली, विदाई, भात भांवर, अत्येष्टि–संस्कार के गीत आदि के माध्यम से लोक जीवन ही अभिव्यक्त होता है।

विज्ञान और तकनीकी के इस भौतिक दौर में आज लोक साहित्य की परम्पराओं का काफी ह्रास हुआ है। परिवार में नाना–नानी और दादा–दादी अपने नातियों–नतनियों और पोते–पोतियों को कहानियां सुना कर तथा उनके यक्ष–प्रश्नों का उत्तर देकर जिस परम्परा का पालन और रस का अनुभव करती थीं, वह परम्परा ही खोखली हो गयी है। आधुनिकता की आंधी ने उन्हें इस प्रकार के सरोकारों से दूर कर दिया है। बालसुलभ मानवीय उत्सुकता के साथ जुड़ कर अधिक उम्र का अनुभव एक वृद्ध के जीवन में जो चाव पैदा करता था, आज वह नहीं है। बच्चे के भीतर आत्मविष्वास का जो संचार इससे होता था, आज वह गायब है। वाचिक–परम्परा केवल बोली जाने वाली भाषा ही नहीं है, अपितु वह जीवन–दर्शन भी है। लेकिन बदलते परिवेश ने इस जीवन दर्शन का सर्वाधिक अवमूल्यन किया है।

उपभोक्तावादी संस्कृति और हर वस्तु के खरीदे जाने की मानसिकता ने लोक साहित्य की परम्पराओं पर कुठाराघात किया है, जिसके तले हमारी लोक संस्कृति दबी जा रही है। आज इसके सूख रहे खेतों पर प. विद्यानिवास मिश्र ने अपनी चिन्ता को इन शब्दों में व्यक्त किया है–''साहित्यकारों, शास्त्रकारों और कलाकारों–सबको अपनी जड़ों का रस चाहिये। वह रस कभी लोकसाहित्य में मिलता है, कभी लोकाचार में मिलता है, लोक–कला, लोक–संगीत में मिलता है, लोक नृत्य में मिलता है, लोक–गीत में मिलता है और कभी केवल ऐसे आदमी के साथ बैठ कर मिलता है, जो स्मृतियों में जीता नहीं, स्मृतियों को जीता है, स्मृतियों को व्यतीत नहीं मानता, अपने जीवन और जातीय जीवन से अविलग देखता है।''

आज का कोई भी सभ्य मानव यह दावा नहीं कर सकता कि उसने अपने अंदर से आदिम संस्कारों के बीजों को नष्ट कर दिया है। लोक साहित्य में सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की भावना प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। लोक–साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है, जिसमें लोकमानस का अविरल तथा विराट स्वरूप पूर्णरूपेण दिखाई पड़ता है। लोक संस्कृति के वास्तविक रूप को देखने के लिए हमें लोक–साहित्य का ही अनुसंधान करना होगा।

**अपनी प्रगति जांचिए**

3. लोक साहित्य के मूलरूपों में इनमें से क्या शामिल नहीं है?
   (क) कथा (ख) गीत
   (ग) कहावते (घ) सूक्तियां
4. निमाड़ी लोकगीतों में किस का मिश्रण ध्वनित होता है?
   (क) मराठी भाषा (ख) गुजराती भाषा
   (ग) राजस्थानी बोली (घ) उपरोक्त सभी

## 3.4 पत्र लेखन

पत्र मानव सभ्यता के विकास के वाहक हैं। आज के वैज्ञानिक युग में संचार–माध्यमों के विकास के द्वारा पत्राचार से हजारों मील दूर बैठे आत्मीयों से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। पत्र आज की दुनिया में वैचारिक प्रगति के पहिए हैं। लिपि के विकास से पूर्व चित्रों अथवा विभिन्न संकेतों के माध्यम से सूचना–संप्रेषण का काम किया जाता था। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में इन पत्रों से जुड़ा हुआ है। किसी भी महापुरुष, नेता, साहित्यकार द्वारा लिखे गए पत्रों के द्वारा हम उसकी चिंतनकला, विचारधारा, जीवन दर्शन, देश–विदेश नीति तथा अन्य बहुत–सी उपयोगी क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

### 3.4.1 पत्र–लेखन : गुण, वैशिष्ट्य एवं प्रकार

1. **स्पष्टता :** पत्र किसी भी प्रकार का हो, उसमें स्पष्टता होनी चाहिए, यदि कोई पत्र–प्राप्तकर्ता पत्र लिखने वाले के मंतव्य को स्पष्ट रूप से ग्रहण न कर पाए तो ऐसी स्थिति में पत्र का उद्देश्य खत्म हो जाता है।
2. **संक्षिप्तता :** संक्षिप्तता एक आदर्श पत्र–लेखन का मूलभूत गुण है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक शब्दों का प्रयोग ही करना चाहिए। एक अच्छा पत्र तभी संक्षिप्त माना जाता है, जब उसमें प्रयुक्त किया गया एक–एक शब्द उपयोगिता और आवश्यकता लिए हुए हो।
3. **मौलिकता :** पत्र की प्रस्तुति नवीन और मौलिक ढंग से होनी चाहिए। ऐसा करने से जहां कही हुई बात पत्र–प्राप्तकर्ता के हृदय को प्रसन्न करती है, वहीं उस पर अपना एक विशेष प्रभाव भी छोड़ती है।
4. **सुसंबद्धता :** पत्र लिखते समय जिस विषय का पत्र प्राप्तकर्ता तक पहुंचता है, प्रेषक उसी को मुख्य रूप से प्रस्तुत करे। पत्र में मुख्य विषय से हटकर कही गई कोई अन्य बात पत्र की एकान्विति या सुसंबद्धता को भंग कर देती है। पत्र में निर्दिष्ट सभी बातें एकसूत्रता या तारतम्यता में कही गई होनी चाहिए।
5. **यथार्थता :** इस गुण का संबंध मुख्य रूप से औपचारिक पत्रों से है, क्योंकि इस प्रकार के पत्रों में तथ्य–प्रस्तुति का होना आवश्यक होता है। औपचारिक पत्रों

टिप्पणी

के व्यावसायिक और कार्यालयी– दोनों रूपों के पत्रों में यह गुण अहम् भूमिका निभाता है।

6. **संपूर्णता** : पत्र लिखने वाले के लिए यह जरूरी होता है कि वह अपने कथ्य या मंतव्य को संपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करे। उसे पढ़ने के उपरांत पत्र प्राप्तकर्ता के मन में किसी भी प्रकार की जिज्ञासा या शंका नहीं रहनी चाहिए।
7. **सहजता और सरलता** : सहजता का अर्थ है– स्वाभाविकता। पत्र में लिखी हर बात सहज और अकृत्रिम होनी चाहिए। सरलता से अभिप्राय भाषा की सरलता से है। पत्र की भाषा में संप्रेषणीयता का गुण होना चाहिए।
8. **शालीनता** : शालीनता का गुण औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार के पत्रों में आवश्यक है। इसमें पत्र के लिखने वाले के व्यक्तित्व, प्रतिष्ठा, पद, व्यावहारिक आचरण और स्वभाव की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।
9. **प्रभावान्विति** : उत्कृष्ट पत्र–लेखन का महत्वपूर्ण गुण उसका समग्र प्रभावान्वित होना है। पत्र की भाषा, शैली और प्रस्तुतीकरण इस प्रकार होना चाहिए कि पत्र प्राप्तकर्ता के ह्रदय पर विशेष छाप छोड़े।

## पत्र लेखन में विशेष उल्लेखनीय बातें

पत्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो लिखने वाले के हाथ से छूटकर किसी अन्य के हाथ में जाता है। उसका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग भी हो सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि बोलते समय एक बार सोचो और लिखते समय तीन बार। भावावेश में कभी मत लिखो। क्रोध, द्वेष आदि के आवेश में लिखे गए पत्रों के लिए बड़े–बड़े दिग्गजों को क्षमायाचना करते हुए देखा गया है। लिख चुकने के बाद संपूर्ण पत्र को एक बार सावधानी से पढ़ लेना चाहिए, जिससे शीघ्रता में लिखी गई वर्तनी आदि की अशुद्धियों को ठीक किया जा सके तथा फालतू बातों को पत्र से काट दिया जाए।

एक सफल पत्र तैयार करने के लिए, उसे काट–छांट आदि से बचाने के लिए समझदार लोग पत्र की कच्ची रूपरेखा पहले तैयार कर लेते हैं। प्राप्तकर्त्ता का पता लिफाफे आदि पर सावधानीपूर्वक लिखा जाना चाहिए, जिसमें जनपद, प्रांत तथा पिन कोड आदि का उल्लेख पत्र को उसके गंतव्य तक पहुंचाने के लिए अत्यंत अनिवार्य है। यदि पत्र में प्रमाण स्वरूप कुछ प्रमाण–पत्र लगाने पड़ें, तो उन पर पहले क्रमांक डालें, फिर पत्र के अंत में बांईं ओर उनका उल्लेख करें, जैसे–

संलग्नक– 1. हाई स्कूल प्रमाण–पत्र, 2. चरित्र प्रमाण–पत्र आदि

## पत्र लेखन के प्रकार

पत्र व्यवहार विभिन्न प्रकार से किया जाता है, समय और स्थान के अनुसार उनका प्रारूप परिवर्तित हो जाता है। पत्रों के मुख्य प्रकारों का वर्णन यहां किया जा रहा है।

1. **कार्यालयी पत्र**–राजकीय सहायता प्राप्त संस्थाओं एवं कार्यालयों द्वारा किसी भी संस्था, व्यक्ति या अन्य कार्यालयों को जो पत्र लिखे जाते हैं उन्हें कार्यालयी पत्र कहते हैं। कार्यालयी पत्रों की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

(क) **स्पष्टता**—पत्र की विषय—वस्तु बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए, जिससे पत्र को पाने वाला उसके सही रूप को ग्रहण कर सके। पत्र—लेखक को पत्र की स्पष्टता का ध्यान रखना चाहिए।

**टिप्पणी**

(ख) **अचूकता**—पत्र लिखने वाले को कार्यालयी पत्र लिखते समय उसमें प्रस्तुत विधान, अवतरण, संदर्भ और उसके तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए। इसके लिए बहुत सावधानी से उसका मसौदा तैयार करना चाहिए।

(ग) **संक्षिप्तता**—पत्र लिखते समय अनावश्यक शब्द—प्रयोग, एक ही बात को बार—बार न लिखकर पत्र को संक्षिप्त व केवल आवश्यक जानकारी देते हुए लिखना चाहिए।

(घ) **परिपूर्णता**—परिपूर्ण पत्र हम उसे कहेंगे जिसमें पत्र के विषय और उद्देश्य से संबंधित सारी जानकारियां उस पत्र में आ जाएं। पूर्णता के लिए हस्ताक्षर, दिनांक, क्रमांक का होना आवश्यक है।

(ङ) **भाषा**—व्याकरण की दृष्टि से कार्यालयी पत्र की भाषा शुद्ध, सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए

## कार्यालयी पत्र के रूप

केंद्र सरकार के विभिन्न कार्यालयों में अनेक स्तर पर पत्राचार होता है जिसके अनेक रूप होते हैं, जिनका संक्षिप्त रूप में विवरण किया जा रहा है। ये पत्र निम्न प्रकार के होते हैं—

### • सरकारी पत्र

कार्यालयी पत्रों में सरकारी पत्रों का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है। इन्हें आधिकारिक एवं नियमित पत्र भी कहते हैं। सरकारी पत्रों का प्रयोग एक सरकार द्वारा दूसरी सरकार को, उसके अधीन राज्य सरकार को, निर्वाचन आयोग को, संघ लोक सेवा आयोग, योजना आयोग, अर्ध सरकारी आयोगों एवं निकायों को, विभिन्न अर्धसरकारी/गैर सरकारी संघों, संरचनाओं, प्रांतीय सरकारों प्रमुख मामलों में भारत सरकार को तथा अपने क्षेत्र के उच्च न्यायालयों, आयोगों एव निगमों, विभागीय अध्यक्षों एवं अधिकारियों को, सरकार से अलग सार्वजनिक प्रतिष्ठानों एवं स्वतंत्र कार्यालयों आदि के लिए किया जाता है।

इसके निम्नलिखित अंग माने गए हैं जिनका सरकारी पत्र लिखते समय ध्यान रखना चाहिए—

1. पत्र की संख्या
2. कार्यालय का नाम
3. प्रेषक का नाम एवं पद
4. प्राप्तकर्ता का नाम, पद एवं पता
5. दिनांक
6. संबोधन
7. पत्र की मुख्य विषय वस्तु
8. स्वनिर्देश

9. हस्ताक्षर
10. संलग्नक, यदि हो तो



**उदाहरण**— सरकारी पत्र के कुछ उदाहरण आगे दिए जा रहे हैं जो निम्न प्रकार से हैं—

**उदाहरण 1**

नई दिल्ली
दिनांक : 6 जुलाई, 2013

प्रेषक :

विनोद कुमार शर्मा
डेस्क अधिकारी
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
नई दिल्ली।

सेवा में

अध्यक्ष
महाराष्ट्र हिंदी परिषद
पुणे–38

**विषय** : हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता योजना के तहत दिए जाने वाले अनुदान के संबंध में।

महोदय,

आपके दिनांक 12 मई, 2012 के पत्र संख्या 1/10/05 के संबंध में मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि आप अपना प्रस्ताव निर्धारित प्रपत्र में सभी आवश्यक विवरण/दस्तावेज के साथ इस मंत्रालय को यथाशीघ्र प्रेषित करें, ताकि इस संबंध में कार्यवाही की जा सके।

संलग्न : योजना की प्रति

भवदीय
हस्ताक्षर
विनोद कुमार शर्मा
डेस्क अधिकारी

- **अर्ध सरकारी पत्र**

सरकारी कार्यों के लिए अर्ध सरकारी पत्रों का प्रयोग निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया जाता है—

(क) पत्र पाने वाले का ध्यान किसी भी विषय की तरफ व्यक्तिगत रूप से आकर्षित करना।

(ख) किसी भी सरकारी कार्य को करने की विधि के बारे में अधिकारियों द्वारा बिना किसी औपचारिकता के आपस में विचार–विमर्श करना।

(ग) यदि कोई समस्या सरकारी अनुस्मारक देने पर भी नहीं सुलझती, तो उसे जल्दी निपटाने के लिए किसी विशेष अधिकारी का ध्यान आकर्षित करना।

टिप्पणी

अर्ध सरकारी पत्र अधिकतर विशेष अधिकारी को ही लिखा जाता है। इसमें भेजने वाले की भाषा सरल, स्पष्ट एवं विनम्र होनी चाहिए। पत्र के अंत में भेजने वाले के केवल हस्ताक्षर ही होते हैं, उसके पद का नाम आदि नहीं लिखा जाता है।

**उदाहरण 1**

**भारतीय साधारण बीमा निगम**

दिनांक 25 जून, 2013

प्रहलाद शर्मा
उपप्रबंधक
प्रधान कार्यालय
मुंबई

**संदर्भ सं./6(अ स प) 2011**

प्रिय श्री महेश

आपके आंचलिक प्रबंधक के पत्र से ज्ञात हुआ है कि आपने हाल ही में पी.एचडी. की उपाधि प्राप्त कर ली है। आपके द्वारा अर्जित इस उच्च स्तरीय शैक्षिक उपाधि पर हमें गर्व है। इस अवसर पर हमारे प्रबंधक महोदय एवं समस्त कर्मचारियों की ओर से हार्दिक बधाई स्वीकार करें। आशा है, आपका अर्जित ज्ञान निगम में हिंदी के प्रयोग में वृद्धि के लिए सहायक सिद्ध होगा।

शुभ कामनाओं सहित

आपका
हस्ताक्षर
(प्रहलाद शर्मा)

प्रति :

डॉ. सौरभ जोशी
राजभाषा अधिकारी
भारतीय साधारण बीमा निगम
आंचलिक कार्यालय, पुणे–24

## • कार्यालय आदेश

कार्यालय आदेश का प्रयोग किसी अधिकारी के द्वारा मंत्रालय, विभाग, प्रभाग, अनुभाग एवं कार्यालय के कर्मचारियों के लिए संबंधित कार्य करने के लिए किया जाता है। अधिकारी द्वारा दिए गए आदेशों का पालन करना संबंधित कर्मचारियों का कर्तव्य हो जाता है। अधिकतर ये कार्यालय आदेश कर्मचारियों की वेतन–वृद्धि जारी करने, पदोन्नति करने या उसे रोकने के लिए छुट्टी मंजूर करने के लिए, प्रयोग किए जाते हैं।

**उदाहरण 1**

क्रम संख्या 100/1

दिनांक 10 जुलाई, 2013

टिप्पणी

भारत सरकार
रेल मंत्रालय
नई दिल्ली

**कार्यालय आदेश**

भारतीय रेल सेवा में अधीक्षक के पद पर नियुक्त डॉ. नरेंद्र को, उनकी पदवृद्धि पर दिनांक 1 अगस्त, 2012 से रेल मंत्रालय के सचिवालय से स्थानापन्न रूप में प्रशासन अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया है। अगले आदेश तक उनकी नियुक्ति सामान्य अनुभाग 'अ' में कर दी गई है।

रीना कुमारी
अपर सचिव, भारत सरकार

**पृष्ठांकन सं. 8/6/76**

10 जुलाई, 2013

प्रतिलिपि निम्नलिखित को सूचनार्थ भेजी जाती है–
1. मंत्रालय के सभी विभाग, अनुभाग
2. डॉ. सुरेशचंद्र, प्रशासन अधिकारी
सामान्य अनुभाग 'अ'

कृते

अपर सचिव, भारत सरकार

- **सूचना**

कई बार सरकार जन–साधारण को या किन्हीं संबंधित व्यक्तियों को सूचित करने के लिए, नौकरी हेतु रिक्त स्थानों की, नीलामी की, निविदा की, न्यायालयीन नोटिस की, कार्यालय के स्थान परिवर्तन की सूचनाएं प्रायः समाचार–पत्रों में प्रकाशित करवाती है। लेकिन इन सूचनाओं का रूप प्रेस नोट व प्रेस विज्ञप्तियों से बिल्कुल अलग होता है। इसमें सूचना प्रकाशित करने वाले कार्यालयों का नाम और अंत में हस्ताक्षर कर्ता का नाम व पता लिखा जाता है। ये सूचनाएं संक्षिप्त, स्पष्ट व सुनिश्चित होती हैं।

**उदाहरण 1**

मध्य रेलवे
सूचना

यात्रियों की सुविधा के लिए थाना (मुंबई) स्टेशन पर पूछताछ कार्यालय में टेलीफोन की व्यवस्था की गई है, जिसके नंबर इस तरह हैं–

पूछताछ कार्यालय : 6667129, 6667130, 6667031

## • प्रेस विज्ञप्ति या प्रेस नोट

सरकार के किसी भी निर्णय को विस्तृत रूप में प्रचारित करने के लिए प्रेस विज्ञप्ति या प्रेस नोट का प्रयोग किया जाता है। इन्हें समाचार–पत्रों में ही प्रकाशित किया जाता है। प्रेस विज्ञप्ति किसी विषय पर सरकार का नपा–तुला बयान है और प्रेस नोट सरकार की ओर से दी जाने वाली जानकारी है।

### उदाहरण

**विषय** : भारत तथा पाकिस्तान के बीच राजनैतिक संबंध।

भारत सरकार और पाकिस्तान की सरकार इस बात पर सहमत हो गई हैं कि दोनों के बीच मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित किए जाएं। आशा है कि इस व्यवस्था से दोनों देशों में पारस्परिक संबंध और भी अधिक सुदृढ़ हो जाएंगे, जो दोनों के लिए लाभकारी होंगे।

मुख्य सूचना अधिकारी, प्रेस ब्यूरो, नई दिल्ली को प्रेस विज्ञप्ति जारी करने तथा उसे विस्तृत रूप से प्रसारित करने के लिए प्रेषित।

हस्ताक्षर<br>
ललित पांडे<br>
अपर सचिव, भारत सरकार<br>
विदेश मंत्रालय<br>
नई दिल्ली, दिनांक 15 जुलाई 2013

**(प्रेस नोट)**

पूर्वोत्तर रेलवे<br>
गोरखपुर (उ.प्र.)<br>
दिनांक 22 सितंबर, 2013

पूर्वोत्तर रेलवे ने अपने कर्मचारियों और अधिकारियों में हिंदी का प्रचार–प्रसार बढ़ाने के लिए इस दिशा में अनेक प्रभावशाली प्रयास किए हैं, जैसे 17 हिंदी प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना, हिंदी टंकण और आशुलिपि प्रशिक्षण, हिंदी में परीक्षा–विशेष योग्यता के लिए पुरस्कार।

हिंदी का ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों को अपने आवेदन–पत्र हिंदी में देने और हिंदी में प्राप्त होने वाले पत्रों के उत्तर हिंदी में भेजने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।

### उदाहरण 1 (प्रेस विज्ञप्ति)

(इसके प्रारंभ में यह निर्देश होता है कि इसे कब छापा जाए। यह निर्देश नकारात्मक होता है)

सोमवार, दिनांक 2 अगस्त, 2013 को सायंकाल 5.00 बजे से पूर्व प्रसारित, प्रकाशित न किया जाए।

## • अन्य कार्यालयों के पत्र

सरकारी कार्यालयों के अलावा अन्य कार्यालय भी होते हैं। इनमें बस इतना ही अंतर होता है कि सरकारी कार्यालयों के पत्रों की एक निश्चित रूपरेखा होती है, जबकि अन्य

टिप्पणी

कार्यालयों के पत्रों को लिखते समय आवश्यकतानुसार छूट ली जा सकती है। अन्य कार्यालयों में– सेवाभावी संस्थाओं के कार्यालय, विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों के कार्यालय तथा व्यावसायिक प्रचार/विस्तार/शर्तों आदि के लिए स्थापित किए गए कार्यालय आते हैं। इनमें अधिकतर सरकारी पत्र, अर्ध सरकारी पत्र, ज्ञापन, परिपत्र, सूचना, तार आदि का प्रयोग किया जाता है।

**उदाहरण 1. (पूछताछ संबंधी पत्र)**

दिनांक 12 जून, 2013
विद्या बुक्स
(विद्यालयी एवं महाविद्यालयी पुस्तकों के वितरक व विक्रेता)

58, नेता जी सुभाषचंद्र मार्ग,
तार : विद्या बुक्स, अहमदाबाद
दूरभाष 3517

सेवा में
श्री सन्मार्ग प्रकाशन
दिल्ली–110007

प्रिय महोदय,

कृपया लौटती डाक से अपने प्रकाशनों का नवीनतम सूचीपत्र भिजवाने का कष्ट करें, साथ ही अपनी व्यावसायिक शर्तें भी लिखें। यदि आपकी शर्तें संतोषजनक और आकर्षक पाई गईं तो आपके प्रकाशन की पुस्तकें हम अपनी दुकान में विक्रय के लिए रखना चाहते हैं।

आपका पत्र मिलने पर आपको पुस्तकों के लिए आदेश भेजा जाएगा।

धन्यवाद
भवदीय
व्यवस्थापक
विद्या बुक्स
अहमदाबाद

## 2. व्यावसायिक पत्र

### व्यावसायिक पत्रों के प्रकार

ऐसे पत्रों का संबंध व्यक्ति के अपने व्यवसाय से संबंधित होता है। एक व्यापारी/व्यापारिक संस्था की ओर से दूसरे व्यापारी दूसरी व्यापारी संस्था के नाम लिखे जाने वाले पत्र को व्यावसायिक पत्र कहते हैं। इसमें व्यापारी माल भेजने संबंधी निर्देश, नया माल मंगवाने के लिए, राशि के भुगतान के विषय में जानकारी देता है। इनकी भाषा सरल, सहज व स्पष्ट होती है।

पत्र लिखना अपने–आप में एक कला है। यह प्राचीन समय से चली आ रही है, व्यावसायिक जगत में मौखिक शब्दों की अपेक्षा लिखित शब्दों का महत्व अधिक है, क्योंकि व्यावसायिक क्षेत्रों में पत्र अपना अलग ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अतः इस क्षेत्र में भी पत्र लिखने की अपनी ही एक कला होती है, ऐसे पत्र बड़ी सूझ–बूझ के साथ

लिखे जाते हैं। इस सूझ–बूझ के बिना हम अपनी समस्या और कार्य सही रूप में नहीं करवा सकते। व्यावसायिक क्षेत्र में मूल्य–पत्र, विज्ञापन–पत्र, क्रयादेश–पत्र, विक्रय–पत्र, अनुरोध–पत्र एवं निविदा पत्र आदि आते हैं। वर्तमान समय में व्यावसायिक क्षेत्र में पत्रों का अपना अलग ही महत्व है।

**टिप्पणी**

पत्र कई प्रकार के होते हैं। व्यक्ति, संदर्भ, विषय और क्षेत्र के अनुसार पत्रों को लिखने का तरीका भी अलग–अलग होता है। व्यावसायिक पत्रों को लिखते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(क) **प्रेषक का नाम व पता**–व्यावसायिक पत्रों में सबसे ऊपर प्रेषक का नाम व पता लिखा होता है, जिससे पत्र पाने वाले को पत्र देखते ही पता चल जाता है कि पत्र किसने भेजा है तथा कहां से आया है। प्रेषक का नाम व पता ऊपर दाएं कोने में लिखा जाता है। साथ में फोन नं., फैक्स नंबर तथा ई–मेल आदि भी लिखा जाता है।

(ख) **पत्र पाने वाले का नाम व पता**– पत्र के बाईं ओर पत्र प्राप्त करने वाले का नाम व पता लिखा जाता है तथा कभी–कभी उसका केवल नाम या पदनाम या दोनों भी दिए जाते हैं। जैसे–नाम, पदनाम, कार्यालय का नाम, स्थान, जिला, शहर व पिन कोड आदि।

(ग) **विषय संकेत**– व्यावसायिक पत्रों में यह आवश्यक है कि पत्र पाने वाले के नाम व पते के पश्चात बाईं ओर जिस विषय में पत्र लिखा गया हो, उस विषय को संक्षेप में लिखा जाए, ताकि जिससे पत्र को देखते ही पता चल जाए कि पत्र किस विषय में है और उसे आगे की कार्यवाही के लिए उससे संबंधित अधिकारी के पास भेजा जा सके। उदाहरण के लिए विषय–नियुक्ति पत्र।

(घ) **संबोधन**–पत्र भेजने वाला सबसे पहले, पत्र पाने वाले के लिए आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार के संबोधन सूचक शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे– प्रिय महोदय या प्रिय महोदया, माननीय/मानवीय, महामहिम आदि।

(ङ) **पत्र की मुख्य सामग्री**– संबोधन के बाद हम पत्र के मूल विषय पर आते हैं। यह नये पैराग्राफ से शुरू किया जाता है। यदि व्यावसायिक पत्रों में किसी विषय पर पहले पत्राचार हो चुका हो या हो रहा हो तो उसके संदर्भ में सबसे पहले संकेत दिया जाना चाहिए; जैसे– उपर्युक्त विषय पर कृपया दिनांक.......... का अपना पत्र सं........देखें। कोई भी नया तथ्य, नवीन तर्क, नई मांग तथा नया स्पष्टीकरण अलग अनुच्छेद से ही शुरू करना चाहिए। व्यावसायिक पत्रों में विषयों को एक–दूसरे से अलग रखना चाहिए, आपस में मिलाना नहीं चाहिए।

(च) **अभिव्यक्ति शैली**– हमारे पत्र लिखने की शैली स्पष्ट होनी चाहिए, इसकी भाषा स्पष्ट, सरल व सहज होनी चाहिए। वाक्य छोटे होने चाहिए। पत्र पूरी तरह स्पष्ट होना चाहिए, जिससे प्राप्त करने वाले के मन में संदेह न रहे। अगर यह सब बातें पत्र में नहीं होंगी तो पत्र प्राप्त करने वाला पत्र पढ़कर संतुष्ट नहीं हो पाएगा। इससे उसे नाराजगी भी हो सकती है।

(छ) **समापनसूचक शब्द**– पत्र समाप्त होने पर भेजने वाला अपने हस्ताक्षर से पहले प्राप्तकर्ता से अपने संबंध के विषय में कुछ शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे–

आपका आज्ञाकारी, विनीत, शुभाकांक्षी आदि। व्यावसायिक पत्रों में अधिकतर 'भवदीय' शब्द का प्रयोग होता है। आज के समय में ऐसे पत्रों में बाएं कोने में यह सब लिखा जाता है। पहले दाहिने तरफ लिखा जाता था।

टिप्पणी

(ज) **हस्ताक्षर और नाम**– पत्र समाप्ति के बाद नीचे भेजने वाले के हस्ताक्षर और फिर उसका पूरा नाम कोष्ठक में दिया जाता है। कभी–कभी बड़े अधिकारी की ओर से कोई अन्य अधिकारी या कर्मचारी पत्र पर हस्ताक्षर करता है तो ऐसे में 'कृते' प्राचार्य, 'कृते' निदेशक आदि लिखा जाता है।

(झ) **संलग्नक**– मूल पत्र के साथ कभी–कभी जरूरी कागजात भी भेजने पड़ते हैं। उन्हें ही पत्र में 'संलग्न' या संलग्नक कहते हैं। 'संलग्नक' भवदीय शब्द के ठीक बाईं ओर लिखा जाता है। यहां पर 'संलग्न पत्र' शीर्षक लिखकर सब पत्रों या कागजों का विवरण संकेत के रूप में लिखा जाता है। ये संकेत संख्या 1, 2, 3 के द्वारा क्रमशः देनी चाहिए।

(ञ) **पुनश्च**– 'पुनश्च' शब्द का अर्थ होता है– 'एक बार पुनः'। कभी–कभी पत्र लिखते समय कोई महत्वपूर्ण बात छूट जाती है। पत्र पूरा टाइप होकर आ जाता है। तब जो बात छूट गई है, उसको लिखने के लिए समापनसूचक शब्द, हस्ताक्षर, संलग्नक आदि लिखने के बाद अंत में सबसे नीचे 'पुनश्च' शीर्षक देकर छूटा हुआ अंश लिख दिया जाता है, फिर एक बार अपने हस्ताक्षर कर दिए जाते हैं।

### व्यावसायिक पत्र का नमूना

रबर स्टाम्प

| | |
|---|---|
| प्रेषक का नाम : | पता |
| पद नाम | फैक्स संख्या ............... |
| पत्र संख्या / संदर्भः............. | टेलीफोन नं. ................. |
| पाने वाले का नाम | दिनांक : ........................ |

पद नाम
कार्यालय
पूरा पता

**विषयः** ...................................................

प्रिय महोदय / महोदया

पत्र की विषय–वस्तु

आभार या धन्यवाद ज्ञापन

समापनसूचक शब्द

भवदीय

हस्ताक्षर

(पूरा नाम)

पद नाम

संलग्नक : 1.

2.

3.

टिप्पणी

सूचनार्थ प्रतिलिपि

1. नाम व पता...........
2. नाम व पता ...........

पुनश्चः छूटा हुआ अंश लिखना

हस्ताक्षर

व्यावसायिक पत्रों को हम निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं–

1. दर (मूल्य) जानने के लिए
2. मूल्य–सूची मंगाने के लिए
3. वस्तु–विशेष का नमूना मंगाने के लिए
4. विक्रय–प्रस्ताव संबंधी पत्र
5. क्रयादेश संबंधी पत्र
6. व्यापारिक संदर्भ संबंधी पत्र
7. भुगतान संबंधी पत्र
8. बीमा–पत्र
9. बैंक पत्र
10. निविदा पत्र
11. एजेंसी लेन–देन संबंधित पत्र

व्यावसायिक पत्रों में संबोधन के लिए महोदय, प्रिय महोदय, मान्यवर व श्रीमान आदि का प्रयोग किया जाता है।

### 3. व्यावहारिक पत्र

**पुत्र का माता के नाम पत्र**

दिनांक : 5 अप्रैल, 2013
बी.आर. अंबेडकर होस्टल
महाराजा कालेज, दिल्ली

आदरणीय माता जी,

सादर चरण स्पर्श।

आपका पत्र मुझे समय पर मिल गया था, लेकिन विश्वविद्यालय परीक्षा में व्यस्त होने के कारण मैं पत्र का उत्तर तुरंत नहीं दे पाया। मेरी चिंता बिलकुल भी न करें, मैं ठीक प्रकार से हूं। अब मेरा स्वास्थ्य भी ठीक है। यहां मेरी पढ़ाई ठीक चल रही है। सभी प्रोफेसर अच्छे और छात्रों के शुभचिंतक हैं। वे खूब मन लगाकर पढ़ाते हैं और छात्रों की समस्याओं पर भी अच्छी तरह से ध्यान देते हैं।

**टिप्पणी**

होस्टल के वार्डन तो हम लोगों की फिक्र अपने बच्चों की तरह करते हैं। वे हमेशा इस बात का ध्यान रखते हैं कि छात्रों को किसी प्रकार का कष्ट न हो। मेरे कमरे का साथी भी बहुत अच्छा है। वह जयपुर का रहने वाला है। वहां उसके पिता जी का सोने–चांदी का कारोबार है। उसका व्यवहार मेरे प्रति भाई जैसा है। सायंकाल को हम लोग विश्वविद्यालय के क्रीड़ा मैदान पर हॉकी और वॉलीबाल खेलते हैं। विश्वविद्यालय की हॉकी की टीम में सदस्य के रूप में मेरा चयन हो गया है। टीम शीघ्र ही अंतर–विश्वविद्यालयी हॉकी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए कोलकाता जाएगी। आप आशीर्वाद दें कि हमारी टीम विजयी होकर लौटे। मैं दशहरे की छुट्टियों में घर आऊंगा।

आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें तथा पत्र का उत्तर शीघ्र देने की कृपा करें। रामू एवं राजी को आशीर्वाद। पिता जी को चरण स्पर्श।

आपका प्यारा बेटा

शिवांश

**4. सामाजिक पत्र**

**पुरस्कार प्राप्ति पर बधाई पत्र**

55/35 रेलवे रोड सहारनपुर

दिनांक : 3 अप्रैल, 2013

प्रिय योगेश,

आज के समाचार–पत्र में यह पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई कि तुम्हें अपनी श्रेष्ठ रचना 'क्षितिज के पार' पर वर्ष 2008 का 'साहित्य श्री' पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा भाषा साहित्य सम्मेलन द्वारा की गई। मेरे विचार से हिंदी–साहित्य जगत में यह श्रेष्ठ पुरस्कार है। इसे प्राप्त करना वास्तव में असामान्य प्रतिभा का द्योतक है। इस दृष्टि से यह स्पृहणीय भी है। यह तुम्हारे अनवरत अध्ययन एवं अध्यवसाय का सुफल है। इसके लिए हार्दिक बधाई स्वीकार करो। ईश्वर से प्रार्थना है कि भविष्य में तुम्हें इससे भी उच्चतर श्रेणी का पुरस्कार व सम्मान मिले।

तुम्हारे इस प्रकार पुरस्कृत होने पर हमारे समस्त मित्र एवं शुभचिंतक अपने–आपको गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

हिंदी के प्रति की गई तुम्हारी सेवाएं चिरस्मणीय रहेंगी। हमारी हार्दिक कामना है कि तुम अधिकाधिक उत्साह से मां भारती के भंडार को भरने में संलग्न रहो।

तुम्हारा शुभाकांक्षी

मनोज

**5. वैवाहिक पत्र**

मान्यवर

श्रीमती एवं श्री.............................................

20/2, शास्त्री नगर मेरठ

टिप्पणी

अपनी सुपुत्री

सौभाग्याकांक्षिणी ......................

एवं

चिरंजीव ......................

(सुपुत्र श्रीमती एवं श्री ......................)

के

विवाह के शुभ अवसर पर

आपको सपरिवार सादर निमंत्रित करते हैं। कृपया कार्यक्रमानुसार सपरिवार सम्मिलित होकर उत्सव की शोभा बढ़ाएं और नव–युगल को आशीर्वाद प्रदान कर हमें कृतार्थ करें।

| उत्तराकांक्षी | दर्शनाभिलाषी |
|---|---|
| ............ ............ | ............ ............ |
| ............ ............ | ............ ............ |

**वैवाहिक कार्यक्रम**

दिनांक .....................................

स्वागत बारात.......................6 बजे सायः

वर स्वागत ......................... 10 बजे रात्रि

दिनांक ................................

विदा.............................तारों की छांव में

**6. व्यक्तिगत पत्र**

**ऋण के लिए आवेदन पत्र**

सेवा में

वरिष्ठ शाखा प्रबंधक
पूजा फाइनेंस कंपनी
चौमू

महोदय

सप्रेम नमस्कार।

निवेदन है कि मैं निजी क्षेत्र की कंपनी अमर सेल्स कारपोरेशन चौमू में स्थायी तौर पर सहायक निरीक्षक के पद पर कार्यरत हूं। मैं पिछले 30 वर्ष से उक्त कंपनी में नौकरी कर रहा हूं।

मैं अपनी बेटी की शादी के लिए आपकी कंपनी से दो लाख रुपए का ऋण लेने का इच्छुक हूं, जिसकी अदायगी मैं किश्तों में निर्धारित समय पर करता रहूंगा। ऋण की प्रतिभूति स्वरूप मैं अपनी भूमि और मकान के कागजात आपके पास रखने के लिए तैयार हूं। कृपया कंपनी के नियम व शर्तों के अनुरूप मुझे यथाशीघ्र ऋण देने की कृपा करें ताकि मैं ठीक प्रकार से अपनी बेटी का विवाह संपन्न करा सकूं।

कृपया इस संबंध में अपने निर्णय से शीघ्र अवगत कराने का कष्ट करें।

सधन्यवाद।

आवेदक

टिप्पणी

.......................

.......................

पता........................

दिनांक................

### 3.4.2 आवेदन एवं प्रारूपण

आवेदन पत्र को प्रार्थना पत्र, अनुरोध पत्र भी कहा जा सकता है। इसमें किसी तरह की प्राप्ति/अनुमति के लिए निवेदन किया जा सकता है।

## (अ) आवेदन

### कर्मचारियों के आवेदन–पत्र

कार्यालयीन आवेदन पत्रों के अन्तर्गत निम्न पत्रों को सम्मिलित किया गया है–

(क) अनुभव प्रमाण–पत्र प्राप्त करने सम्बन्धी आवेदन–पत्र

(ख) स्थानान्तरण सम्बन्धी आवेदन–पत्र

(ग) त्याग पत्र सम्बन्धी आवेदन–पत्र

(घ) कर्मचारी सम्बन्धी अन्य पत्र (अवकाश, पदोन्नति अथवा वेतन वृद्धि के सम्बन्ध में)

### (क) अनुभव प्रमाण–पत्र प्राप्त करने सम्बन्धी आवेदन–पत्र

जब आप एक कम्पनी अथवा संस्था को छोड़ कर किसी दूसरी कम्पनी में नौकरी के लिये आवेदन करते हैं, तब यह नयी कम्पनी आपसे पूर्व अनुभवों के प्रमाण–पत्र की मांग करती है। यह अनुभव प्रमाण–पत्र आपको वह कम्पनी अथवा संस्था देती है, जहां आपने पूर्व में अपनी सेवाएं दी हैं। अनुभव प्रमाण–पत्र को प्राप्त करने के लिये कम्पनी/संस्था के किसी मुख्य कार्यकर्ता या मैनेजर को पत्र लिखा जाता है।

उदाहरण– आप अपने कार्यालय में प्रूफरीडर के पद पर कार्यरत हैं, वहां से अनुभव प्रमाण–पत्र लेने के लिये आवेदन–पत्र लिखिये।

452, सुभाष नगर,

मेरठ।

दिनांक 8 अप्रैल, 2019

सेवा में,

श्रीमान ब्यूरो चीफ महोदय,

दैनिक जागरण,

नोएडा, उत्तर प्रदेश।

टिप्पणी

विषय— अनुभव प्रमाण—पत्र लेने हेतु आवेदन—पत्र।

महोदय,

मैं आपके प्रतिष्ठित संस्थान में प्रूफरीडर के पद पर मार्च 2016 से कार्यरत हूं। मैंने गत दिनों साहित्य अकादमी, दिल्ली में प्रूफरीडर के पद हेतु आवेदन किया था। कल मेरे पास वहां से 'निमन्त्रण—पत्र' (कॉल लेटर) आया हैं। पत्र में मुझसे मेरी शैक्षिक योग्यताओं के प्रमाण—पत्रों की मूल प्रति एवं पिछले कार्यों का अनुभव प्रमाण—पत्र लेकर 15 जनवरी, 2020 को साहित्य अकादमी के कार्यालय में रिपोर्ट करने को कहा गया है।

मैंने अपनी शैक्षिक योग्यताओं की मूल प्रति तो रख ली है, किन्तु मेरे पास अनुभव प्रमाण—पत्र नहीं है। अतः आपसे निवेदन है कि आप मुझे 15 जनवरी, 2020 से पहले मेरा अनुभव प्रमाण—पत्र देकर मुझे अनुगृहीत करें।

धन्यवाद।

भवदीय

हस्ताक्षर ......

मनमोहन कुमार

कार्ड नं. 1244

## (ख) स्थानान्तरण सम्बन्धी आवेदन—पत्र

अत्यधिक परिश्रम एवं कोशिशों के बाद नौकरी मिल तो जाती है, किन्तु संस्थान यदि ज्यादा दूर है, आने—जाने में परेशानी होती है, या फिर परिवार से दूर रह कर नौकरी करनी पड़ रही है, तब इस नौकरी से स्थानान्तरण की बाबत सोचा जाता है। नौकरी से ट्रान्सफर (स्थानान्तरण) लेने के लिये जो पत्र लिखा जाता है, वही स्थानान्तरण सम्बन्धी आवेदन—पत्र कहलाता है।

उदाहरण— शारीरिक रूप से स्वस्थ न होने की स्थिति से अवगत कराते हुए शिक्षा निर्देशक को स्थानान्तरण कराने हेतु पत्र लिखिए।

ए—210, प्रीतमपुरा,

कुण्डली,

सोनीपत।

दिनांक 26 मई, 2019

सेवा में,

श्रीमान निदेशक,

शिक्षा निदेशालय,

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र,

दिल्ली सरकार

नयी दिल्ली।

**विषय**– स्थानान्तरण सम्बन्धी आवेदन–पत्र।

टिप्पणी

महोदय,

सविनय निवेदन यह हैं कि मैं रा.उ.मा. बालिका विद्यालय, करोलबाग, दिल्ली में टी.जी.टी. अंग्रेजी के पद पर कार्यरत हूं। मैं सोनीपत, हरियाणा में रहती हूं एवं एक पैर से विकलांग हूं। अपने घर से करोलबाग स्थित स्कूल पहुंचने में मेरा काफी समय नष्ट हो जाता है। कई बार स्कूल पहुंचने में देरी भी हो जाती है। यह देरी कभी ट्रेन के समय पर न आने के कारण होती है, तो कभी भीड़ के कारण ट्रेन छूट जाने से।

अतः मैं आपसे निवेदन करती हूं कि मेरा स्थानान्तरण सोनीपत के पास नरेला, दिल्ली के किसी स्कूल में कर दिया जाए। मैंने वहां के एक स्कूल में पता किया है, टी.जी.टी. अंग्रेजी का पद रिक्त भी है। चूंकि नरेला मेरे घर से मात्र तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है, अतः स्कूल पहुंचने में मुझे आसानी होगी।

आशा करती हूं कि आप मेरी मजबूरियों को ध्यान में रख कर मेरा स्थानान्तरण कर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

धन्यवाद।

भवदीया

हस्ताक्षर ......

श्यामा कुमारी

(टी.जी.टी. अंग्रेजी)

### (ग) त्याग–पत्र सम्बन्धी आवेदन–पत्र

प्रतिस्पर्धा के इस दौर में जहां एक नौकरी मिल पाना मुश्किल है, वहीं बहुत–से लोग एक नौकरी छोड़ कर दूसरी नौकरी के लिए कोशिश करते रहते हैं। जब यह दूसरी नौकरी मिल जाती है, तब इसे ग्रहण करने से पूर्व एक व्यक्ति को अपनी पहली कम्पनी अथवा संस्थान में एक त्याग–पत्र, जिसे अंग्रेजी में 'रेजिगनेशन लैटर' कहा जाता है, देना पड़ता है। इस पत्र में सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा उन बातों का उल्लेख किया जाता है, जिस कारण से वह नौकरी छोड़ रहा होता है।

उदाहरण– महाविद्यालय में स्थायी चयन हो जाने के कारण अपने संस्थान को इस स्थिति से अवगत कराते हुए सेवा–परित्याग पत्र लिखिये।

464, सोनीपत,

हरियाणा।

दिनांक 15 अप्रैल, 2019

सेवा में,

श्रीमान प्रधानाचार्य,

भगवान महावीर कॉलेज ऑफ एजुकेशन,

सोनीपत,

हरियाणा।

विषय– सेवा–परित्याग सम्बन्धी पत्र।

महोदय,

सविनय निवेदन यह है कि मैं आपके संस्थान में 'तकनीकी शिक्षा' के मेहमान प्रवक्ता के रूप में कार्यरत हूं। किन्तु अब मेरा चयन 'रामजस कॉलेज ऑफ एजुकेशन', सोनीपत में स्थायी रूप से हो गया है। अतः अब मैं आपके कॉलेज में अपनी सेवाएं देने में असमर्थ हूं।

मैं अब संस्थान को अपने पद से त्याग–पत्र सौंप रहा हूं। कृपया मुझे शीघ्रातिशीघ्र कार्य–भार से मुक्त करने की कृपा करें, ताकि मैं अपनी नयी नौकरी का कार्यभार संभाल सकूं।

आपके सहयोग के लिए धन्यवाद।

भवदीय

हस्ताक्षर ......

शिवकुमार गुप्ता

## (घ) कर्मचारी सम्बन्धी अन्य पत्र

उदाहरण 1. अपनी कम्पनी के प्रबन्ध निदेशक को पत्र लिखिये, जिसमें आपने अपनी पदोन्नति के लिये प्रार्थना की है।

145, मुखर्जी नगर,

दिल्ली।

दिनांक 12 मार्च, 2018

सेवा में,

प्रबन्ध निदेशक,

अरुणोदय पब्लिकेशन्स (इण्डिया) लिमिटेड,

दरियागंज,

दिल्ली।

विषय– पदोन्नति के सम्बन्ध में।

महोदय,

सादर निवेदन यह है कि मैं आपकी प्रतिष्ठित कम्पनी में एक वर्ष से कार्यरत् हू।। इस एक वर्ष के कार्य के दौरान मेरे द्वारा किये गये कार्य में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आई। मैं सभी प्रोजेक्ट में समय की मांग के अनुरूप अतिरिक्त समय भी देती हूं तथा नियमानुसार व प्रतिबद्धता के साथ समय पर कार्य पूर्ण करती हूं। कम्पनी को मेरे व्यवहार से कभी कोई शिकायत नहीं हुई। मैं अपने कार्य के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हूं तथा आगे भी इसी समर्पण के साथ कम्पनी के सभी नियमों का पालन करूंगी एवं अपने कार्य को और अधिक निष्ठापूर्वक करने का प्रयास करूंगी।

अतः आपसे प्रार्थना है कि मेरा मनोबल बढ़ाने के लिये मुझे उचित पदोन्नति प्रदान की जाये जिससे मैं अपना कार्य और अधिक लगन व निष्ठा के साथ कर सकूं।

धन्यवाद।



भवदीया

सुलोचना

## (ब) प्रारूपण

प्रारूपण अंग्रेजी के Drafting शब्द का हिंदी अनुवाद है। इसे 'आलेखन' या 'मसौदा तैयार करना' भी कहा जाता है। वैसे अंग्रेजी शब्द Draft के लिए हिंदी में 'प्रारूप', 'आलेख' और 'मसौदा' तीनों शब्द प्रचलित हैं परंतु 'प्रारूप' शब्द सर्वथा उपयुक्त है और इसी कारण Drafting के लिए हिंदी का 'प्रारूपण' शब्द सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। प्रारूपण का अभिप्राय सरकारी या गैर सरकारी कामकाज में आने वाले पत्र, परिचय या सूचना आदि के कच्चे रूप को तैयार करने से है। प्रायः सरकारी या गैर–सरकारी कर्मचारी अथवा अधिकारी किसी पत्र या परिचय को अपने उच्च अधिकारी के पास अनुमोदन के लिए भेजने से पहले उसका कच्चा रूप या प्रारूप तैयार करते हैं। जब वह प्रारूप उच्च अधिकारी के पास पहुंचता है, तब वह उसमें उचित संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन के साथ अनुमोदन करके फिर अपने अधीनस्थ कर्मचारी या अधिकारी के पास भेज देता है और तदुपरांत उस संशोधित तथा अनुमोदित प्रारूप को टंकित, साइक्लोस्टाइल या मुद्रित कराकर जहां आवश्यक होता है वहां भिजवा दिया जाता है। इस प्रकार 'प्रारूपण' की सर्वमान्य परिभाषा यह हो सकती है–

सरकारी या गैर–सरकारी कामकाज में प्रयुक्त पत्र, परिचय पत्र, ज्ञापन, सूचना, आदेश आदि को अंतिम रूप देने से पहले उनका जो कच्चा रूप तैयार किया जाता है, उसे प्रारूपण कहते हैं।

### प्रारूपण के प्रकार

सरकारी या गैर–सरकारी कार्यालयों में पत्र व्यवहार करते समय विविध प्रकार के प्रारूपणों का प्रयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त प्रस्ताव पारित करने, तार देने, सूचना भेजने, आदेश देने, उद्घोषणा करने आदि के लिए भी प्रारूप तैयार किए जाते हैं। अतएव प्रारूपण का विविध रूपों में प्रयोग होने के कारण उसके अनेक प्रकार हैं, जिनमें से कुछ ये हैं–

1. सरकारी पत्रों का प्रारूपण
2. कार्यालय–ज्ञापन का प्रारूपण
3. परिपत्र का प्रारूपण
4. स्वीकृति पत्र का प्रारूपण
5. कार्यालय–आदेशों का प्रारूपण
6. अर्द्धसरकारी पत्रों का प्रारूपण
7. अशासनिक पत्रों का प्रारूपण

8. अनुस्मारक का प्रारूपण
9. पृष्ठांकन का प्रारूपण
10. अधिसूचना का प्रारूपण
11. प्रस्ताव या संकल्प का प्रारूपण
12. प्रैस–विज्ञप्ति या प्रैस–नोट का प्रारूपण
13. तार का प्रारूपण
14. सूचना का प्रारूपण
15. उद्घोषणा का प्रारूपण
16. प्राप्ति–स्वीकार का प्रारूपण

टिप्पणी

## प्रारूपण के नियम

1. प्रारूपण सदैव शुद्ध एवं सही होना चाहिए। उसमें संदर्भ, क्रमांक, दिनांक एवं साक्ष्य की तनिक भी भूल नहीं होनी चाहिए क्योंकि ऐसी भूल सदैव बड़ी हानिकारक होती है।
2. प्रारूपण की भाषा और प्रस्तुतीकरण में किसी तरह की कमी नहीं होनी चाहिए। उसमें अंकित तथ्य, सूचनाएं, संदर्भ आदि अपने–आप में पूर्ण और स्पष्ट होने चाहिए, साथ ही प्रारूपण तैयार करते समय 'विषय' उल्लेख भी इस तरह होना चाहिए कि पत्र लेखक का आशय उससे स्पष्ट पता चल जाए और नये कर्मचारी को भी फाइल को देखते ही मामला शीघ्र समझ में आ जाए।
3. सरकारी पत्रों, परिपत्रों, आदेशों, उद्घोषणाओं आदि की भाषा कभी आलंकारिक एवं कवित्वपूर्ण नहीं होनी चाहिए।
4. सभी प्रकार के प्रारूपण तथ्यों पर आधारित होने चाहिए, उनका विश्लेषण सुव्यवस्थित होना चाहिए तथा एक तर्क की दूसरे तर्क से एवं एक अनुच्छेद की दूसरे अनुच्छेद से संगति रहनी चाहिए।
5. प्रारूपण की रचना अधिकतर अन्य पुरुष में ही होनी चाहिए। जहां 'मैं' या 'हम' का प्रयोग हो वे व्यक्तिबोधक न होकर पदबोधक होने चाहिए।
6. प्रारूपण सदैव सत्यनिष्ठ, पूर्वाग्रहहीन एवं पक्षपातरहित होने चाहिए।
7. प्रारूपण की शैली संक्षिप्त, सरल एवं सुबोध होनी चाहिए। इसमें कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कहने की क्षमता होनी चाहिए।
8. प्रारूपण की अपनी निश्चित प्रणाली होती है, निर्धारित वाक्यावली होती है और निश्चित नियम होते हैं। अतः इनका उल्लंघन करके अनौपचारिक पद्धति का प्रयोग सर्वथा अवांछनीय है।
9. प्रारूपण में सबसे ऊपर बाईं ओर पत्र–क्रमांक, दाईं ओर प्रशासकीय संस्थान का नाम, उसके नीचे दिनांक, बाईं ओर ही पत्र–क्रमांक के नीचे पत्र–प्रेषक का नाम, पद एवं पता अवश्य होना चाहिए।

टिप्पणी

10. प्रारूपण आरंभ करने से पहले विषय का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए, फिर संबोधन के रूप में महोदय/महोदया, प्रिय महोदय/प्रिय महोदया, माननीय मान्यवर, श्रीमन् आदि लिखना चाहिए और तत्पश्चात् विषय–विवेचना करते हुए तर्कपूर्ण एवं शिष्ट वाक्यावली का प्रयोग करना चाहिए।
11. यदि कोई सरकारी या गैर–सरकारी पत्र किसी व्यक्ति, संस्था, मंत्रालय, अनुभाग आदि के पत्र के उत्तर में लिखा जाना हो, उसका प्रारूपण तैयार करते समय उस पत्र की क्रम संख्या, दिनांक तथा संदर्भ का उल्लेख आरंभ में ही अवश्य कर देना चाहिए।
12. यदि कोई प्रारूपण कई अनुच्छेदों में करना हो तो प्रत्येक अनुच्छेद पर 1, 2, 3 क्रम से संख्या अवश्य डाल देनी चाहिए। इसके लिए क, ख, ग या अ, आ, इ आदि अक्षरों का प्रयोग भी हो सकता है।
13. यदि आवश्यक हो तो प्रारूपण में अपने तर्क की पुष्टि हेतु नियमों, उपनियमों, उच्चाधिकारियों के स्थानों, उद्धरणों, विनियमों आदि का उल्लेख भी अवश्य करना चाहिए।
14. प्रारूपण की समाप्ति पर स्वनिर्देश का संकेत अर्थात 'भवदीय', 'भवदीया', 'आपका', 'आपका आज्ञाकारी' आदि के रूप में अवश्य होना चाहिए। उसके नीचे अपने हस्ताक्षर और तत्पश्चात अपने पद का उल्लेख भी अवश्य करना चाहिए।
15. प्रारूपण द्वारा तैयार पत्र के साथ अपनी बात स्पष्ट करने के लिए अथवा किसी अन्य पत्र की सूचना देने के लिए या कोई हवाला देने के लिए कुछ पत्र या मूल पत्र अथवा कोई कागज भेजना जरूरी हो, तो उसके नीचे 'संलग्नक' शीर्षक देकर जितने भी पत्र या कागज हों उनको क्रम संख्या देकर नत्थी कर देना चाहिए और उनका उल्लेख संलग्न के नीचे क्रमशः कर देना चाहिए।
16. यदि किसी पत्र की प्रतियां अन्य अधिकारियों या कार्यालयों को भेजनी हों तो प्रारूपण के नीचे पहले पृष्ठांकन संख्या डालनी चाहिए और फिर 'प्रतिलिपि निम्नलिखित को प्रेषित' लिखकर उसके नीचे क्रमशः उन सभी अधिकारियों के नाम व पते लिखने चाहिए जिनको प्रतिलिपियां भेजी जा रही हैं।
17. यदि किसी पत्र को कोई अधिकारी अपने वरिष्ठ अधिकारी की ओर से भेजना चाहता है तो प्रारूपण के अंत में पहले उसी वरिष्ठ अधिकारी के पत्र का उल्लेख होना चाहिए, फिर 'कृते' शब्द का प्रयोग करके उस अधिकारी के पद को लिखना चाहिए जिसके हस्ताक्षर से पत्र जा रहा है।
18. पहले उच्च अधिकारी या संबंधित अधिकारी से परामर्श करके प्रारूपण की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए, फिर उसका कच्चा रूप तैयार करके 'अनुमोदनार्थ' अपने अधिकारी के पास भेजना चाहिए और जब अधिकारी उसमें आवश्यक संशोधन कर दे या वैसे ही अनुमोदन करके लौटा दे, तब उसे टंकित करके यथास्थान भेजना चाहिए।

## सरकारी पत्रों का प्रारूपण

शासन की ओर से विविध प्रकार के पत्रों का आदान–प्रदान नित्यप्रति होता है। जैसे, भारत सरकार की ओर से विदेशी सरकारों, विभिन्न दूतावासों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, विदेश स्थित

टिप्पणी

अपने कार्यालयों, स्वदेश स्थित सरकारी कार्यालयों, प्रांतीय सरकारों, सहकारी संगठनों, कर्मचारी संघों, सार्वजनिक निकायों, राज्यों के अन्य या गैर–सरकारी व्यक्तियों आदि को जो भी पत्र लिखे जाते हैं या उनके पत्रों के उत्तर दिए जाते हैं, वे सब 'सरकारी पत्र' कहलाते हैं। मंत्रालयों के बीच होने वाले पारस्परिक पत्र–व्यवहार या अंतर्विभागीय पत्र–व्यवहार के लिए प्रयुक्त पत्रों को 'सरकारी पत्र' नहीं माना जाता। जब कोई अधिकारी सरकार की ओर से पत्र लिखता है, तब वह सरकारी आदेश या निर्देश को सूचित करने के लिए प्रथम पुरुष, एकवचन में ही पत्र लिखता है और इस वाक्य का प्रयोग करता है– 'मुझे आपको यह सूचित करने का आदेश हुआ है अथवा मुझे आपसे यह अनुरोध करने का निर्देश हुआ है।' जब कोई स्वायत्त संस्था या स्थानीय निकाय का अधिकारी पत्र लिखता है, तब वह उक्त वाक्य का प्रयोग न करके 'निवेदन है कि' अथवा 'सादर निवेदन किया जाता है कि' आदि वाक्य लिखा करता है क्योंकि वह जन साधारण से अधिक संपर्क रखता है और वह सरकार के सीधे अधीनस्थ भी नहीं होता।

## 3.4.3 आदेश परिपत्र, ज्ञापन एवं अनुस्मारक

### (क) आदेश परिपत्र

आदेश परिपत्र के माध्यम से मंत्रालयों व विभिन्न विभागों द्वारा उनके अधीनस्थ कार्यालयों, विभागों तथा अनुभागों को सूचना, निर्देश और आदेश भेजे जाते हैं।

**उदाहरण 1**

ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स
विभागीय कार्यालय

दिनांक : 25 मार्च, 2010, संदर्भ परि / 10 / 85

शाखा प्रबंधक,
ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स

**विषय :** प्रस्तावित शाखाओं के लिए कर्मचारियों से स्थानांतरण के आवेदन–पत्र की मांग।

सूचित किया जाता है कि निम्नलिखित स्थानों पर हमारे बैंक की शाखाएं खोलने का प्रस्ताव है–

1. हबीबगंज (लखनऊ)
2. सीतापुर
3. कटरा रामजस
4. भाटापारा

अतः बैंक के कार्यरत कर्मचारियों से टंकक, लिपिक, खजांची तथा अधीनस्थ पदों के लिए आवेदन–पत्र आमंत्रित किए जा रहे हैं। इच्छुक कर्मचारी अपना आवेदन–पत्र शाखा–प्रबंधक के माध्यम से निम्नलिखित बातों की जानकारी देते हुए भेज सकते हैं–

1. आवेदक का नाम व पता
2. बैंक में सेवा आरंभ की तिथि

3. वर्तमान कार्य का स्वरूप

4. आहरित विशेष भत्ते, यदि हों

5. चुने गए स्थानों के क्रम

टिप्पणी

आवेदन पत्र इस कार्यालय में दो सप्ताह के अंदर पहुंच जाने चाहिए।

भवदीय
सहायक विभागीय प्रबंधक
(प्रशासन)

## (ख) ज्ञापन

सरकारी कार्यालयों में ज्ञापन का प्रयोग कर्मचारियों की नियुक्तियों, अधिकारियों की नियुक्तियों, तैनातियों, स्थानांतरण, वेतनवृद्धि, प्रार्थनापत्रों, याचिकाओं, आवेदन–पत्रों की स्वीकृति के लिए किया जाता है। इसके अलावा, कार्यालयों को आवश्यक आदेश आदि भेजने के लिए भी ज्ञापन का प्रयोग किया जाता है। इसमें संबोधन और स्वनिर्देश नहीं होता तथा ज्ञापन के अंत में भेजने वाले का पद व हस्ताक्षर होते हैं।

### उदाहरण

क्रम संख्या 27 / 13 / 86 अ.ब.

भारत सरकार
स्वास्थ्य मंत्रालय
नई दिल्ली 23 जून, 2013

**विषय** : प्राथमिक पाठशालाओं के छात्रों के स्वास्थ्य की जांच संबंधी व्यवस्था।

भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय ने यह निर्णय लिया है कि सभी राज्यों में प्राथमिक शाला में पढ़ने वाले छात्रों के स्वास्थ्य की जांच की जाए।

इसीलिए सभी राज्य सरकारों से यह अनुरोध है कि वे इस दिशा में शीघ्र कदम उठाएं।

पी.एल. माथुर

अवर सचिव, भारत सरकार

प्रतिलिपि प्रेषित :
भारत की सभी राज्य सरकारों को।

### कार्यालय ज्ञापन

कार्यालय ज्ञापन का प्रयोग सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के बीच आपस में संपर्क करने एवं सूचना देने के अलावा मंत्रालयों के अधीन कार्यालयों, विभागों तथा अधिकारियों के पास कोई सूचना भेजने के लिए किया जाता है। इस तरह के पत्र अन्य पुरुष में लिखे जाते हैं।

**उदाहरण–1**

दिनांक : 10 नवम्बर, 2013

सं. 10 / 12 / 75
भारत सरकार
रक्षा मंत्रालय
नई दिल्ली

**विषय** : राष्ट्रीय सैनिक स्कूल पूना में हिंदी की पाठ्य–पुस्तकों का अभाव

इस मंत्रालय के दिनांक 2 सितंबर, 2013 के पत्र संख्या 4 / 13 / 70 के संदर्भ में अधोहस्ताक्षरी को यह निवेदन करने का निर्देश हुआ है कि रक्षा मंत्रालय द्वारा संचालित सैनिक स्कूलों में शिक्षा मंत्रालय द्वारा तैयार की गई हिंदी की पाठ्य–पुस्तकें समान रूप से निर्धारित की गई हैं। इस मंत्रालय को यह सूचना मिली है कि राष्ट्रीय सैनिक स्कूल, पूना को वे पाठ्य–पुस्तकें अभी प्राप्त नहीं हुई हैं।

अतः अनुरोध किया जाता है कि सैनिक स्कूल, पूना को हिंदी की पाठ्य–पुस्तकें यथाशीघ्र भिजवाने की व्यवस्था की जाए, ताकि जनवरी में स्कूल खुलते ही छात्रों को पुस्तकें प्राप्त हो सकें।

हस्ताक्षर

भाग चंद

अवर सचिव, भारत सरकार

सेवा में
अपर सचिव, शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली।

## (ग) अनुस्मारक

जब किसी मंत्रालय या कार्यालय से, पूर्व पत्र में मांगी गई सूचना, निर्णय या टिप्पणी समय पर प्राप्त नहीं होती उस समय अनुस्मारक का प्रयोग किया जाता है। अनुस्मारक सरकारी और अर्धसरकारी पत्र के रूप में लिखा जा सकता है।

**उदाहरण 1**

दिनांक 6 जुलाई, 2013 — अ.स. पत्र संख्या 6 / 12 / 24
सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया
प्रधान कार्यालय, मुंबई

प्रिय विकास जी,

हम आपका ध्यान इस कार्यालय के दिनांक 4 दिसंबर, 2012 के परिपत्र सं. / प्र. / हिंदी / 100 की ओर आकृष्ट कराते हैं, जिसमें बैंक की हिंदी प्रयोग संबंधी रिपोर्ट तुरंत भेजने के निर्देश दिए गए थे। हमें खेद है कि आपके अंचल क्षेत्र की रिपोर्ट हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। कृपया उक्त रिपोर्ट तुरंत भेज दें।

भवदीय
संजय त्यागी
वरिष्ठ हिंदी अधिकारी

टिप्पणी

**प्रति :**
श्री विकास गुप्ता
हिंदी अधिकारी
क्षेत्रीय कार्यालय

**अपनी प्रगति जांचिए**

5. इनमें से किसे पत्र लेखन के गुणों में शामिल नहीं किया जा सकता है?
   (क) संक्षिप्तता (ख) स्पष्टता
   (ग) क्लिष्टता (घ) मौलिकता
6. आदेश परिपत्र इनमें से किससे संबंधित नहीं है?
   (क) अनुरोध (ख) सूचना
   (ग) निर्देश (घ) आदेश

## 3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग) 2. (ख) 3. (घ)
4. (घ) 5. (ग) 6. (क)

## 3.6 सारांश

अंग्रेजी का 'जर्नलिज्म' व्युत्पत्तिक दृष्टि से मूलतः फ्रैंच शब्द 'जर्नी' से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है– प्रतिदिन का कार्य और उसका विवरण प्रस्तुत करना। सतरहवीं–अठारहवीं शताब्दी में इसके लिए लैटिन शब्द 'डियूरनल' भी प्रयुक्त किया जाता था। इसी समयावधि में 'जर्नल' शब्द का प्रयोग शुरू हुआ जिससे कालांतर (बीसवीं शताब्दी) में इसी शब्द 'जर्नल' से 'जर्नलिज्म' शब्द का निर्माण हुआ। जर्नलिज्म का हिन्दी रूपांतर पत्रकारिता है।

समाचार पत्रों में समाचार लेखन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मानव की जिज्ञासा का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है और भविष्य में और विस्तृत होता जाएगा। स्वाभाविक ही है कि इस प्रक्रिया के साथ–साथ समाचार लेखन का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। इस क्षेत्र में नए–नए विषय प्रवेश करते जा रहे हैं।

साधारण जनता से संबंधित साहित्य को लोक साहित्य कहना चाहिए। साधारण जनजीवन विशिष्ट जीवन से भिन्न होता है, अतः जनसाहित्य (लोक–साहित्य) का आदर्श विशिष्ट साहित्य से पृथक् होता है। किसी देश अथवा क्षेत्र का लोकसाहित्य वहां की आदिकाल से लेकर अब तक की उन सभी प्रवृत्तियों का प्रतीक होता है, जो

साधारण जनस्वभाव के अंतर्गत आती हैं। इस साहित्य में जनजीवन की सभी प्रकार की भावनाएं बिना किसी कृत्रिमता के समायी रहती हैं। अतः यदि कहीं की समूची संस्कृति का अध्ययन करना हो तो वहां के लोक–साहित्य का विशेष अवलोकन करना पड़ेगा।

**टिप्पणी**

लोकसाहित्य का महत्व बहुविध है। विचार करने पर पाठ के धर्मगाथा (माइथोलॉजी), नृविज्ञान (एन्थ्रोपोलॉजी), जाति विज्ञान (एथनोलॉजी) और भाषा विज्ञान (फाइलोलॉजी) आदि क्षेत्रों में लोक साहित्य की महत्ता विशेष रूप से अनुभव होगी। यदि हम कहें कि लोक साहित्य के सम्यक विवेचन के बिना इन क्षेत्रों का अध्ययन अपूर्ण एवं अर्द्धपूर्ण होगा तो कोई अत्युक्ति न होगी। लोक साहित्य धर्मगाथादिकों के अध्ययन के लिये आधारशिला का कार्य करता है। भाषा–विज्ञान के क्षेत्र में तो लोक साहित्य की महत्ता सर्वविदित है।

पत्र मानव सभ्यता के विकास के वाहक हैं। आज के वैज्ञानिक युग में संचार–माध्यमों के विकास के द्वारा पत्राचार से हजारों मील दूर बैठे आत्मीयों से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। पत्र आज की दुनिया में वैचारिक प्रगति के पहिए हैं।

पत्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो लिखने वाले के हाथ से छूटकर किसी अन्य के हाथ में जाता है। उसका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग भी हो सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि बोलते समय एक बार सोचो और लिखते समय तीन बार। भावावेश में कभी मत लिखो। क्रोध, द्वेष आदि के आवेश में लिखे गए पत्रों के लिए बड़े–बड़े दिग्गजों को क्षमायाचना करते हुए देखा गया है। लिख चुकने के बाद संपूर्ण पत्र को एक बार सावधानी से पढ़ लेना चाहिए, जिससे शीघ्रता में लिखी गई वर्तनी आदि की अशुद्धियों को ठीक किया जा सके तथा फालतू बातों को पत्र से काट दिया जाए।

## 3.7 मुख्य शब्दावली

- **विधिक** – कानून से संबंधित
- **वैविध्यपूर्ण** – विविधता से भरा
- **लिपिबद्ध** – लिखित
- **बोआई** – खेत में बीज बोना
- **अभ्युदय** – उदय, जन्म
- **प्रतिबिंब** – छाया
- **वार्ता** – बातचीत
- **गंतव्य** – पहुचंने हेतु चयनित स्थान
- **प्रतिलिपि** – मूल प्रति की प्रति
- **पुनश्च** – एक बार फिर

## 3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

टिप्पणी

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. पत्रकारिता शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालिए।
2. लोक साहित्य की विशेषताएं बताइए।
3. सिंगाजी कौन थे?
4. पत्रलेखन की महत्ता स्पष्ट कीजिए।

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. पत्रकारिता के विविध प्रकारों का परिचय दीजिए।
2. लोक साहित्य के स्वरूप एवं क्षेत्र की विवेचना कीजिए।
3. मध्य प्रदेश के लोकसाहित्य के विविध रंगों एवं दो प्रमुख लोक कवियों का परिचय दीजिए।
4. पत्र लेखन के गुण, वैशिष्ट्य एवं प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
5. प्रारूपण एवं आदेश परिपत्र से क्या आशय है? सोदाहरण समझाइए।

## 3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. सौन्दर्य की नदी नर्मदा, अमृतलाल वेगड़, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1992.
2. साइबर स्पेस और मीडिया–सुधीश पचौरी, प्रवीन प्रकाशन, दिल्ली, 2000.
3. जनसंचार : प्रकृति और परम्परा, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, ट्राईडैंट पब्लिशर्स, दिल्ली, 2009.
4. नया मीडिया : अध्ययन और अभ्यास, शालिनी जोशी, शिव प्रसाद जोशी, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2015.
5. मध्य प्रदेश की कला एवं संस्कृति, गोपाल भार्गव, कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2011.
6. मीडिया और हिन्दी : बदलती प्रवृत्तियां, सं. रविन्द्र जाधव, केशव मोरे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016.
7. प्रयोजनमूलक हिन्दी, सं. डॉ. रामप्रकाश, डॉ. दिनेश गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006.

# इकाई 4 हिन्दी भाषा

टिप्पणी

## संरचना


4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक एवं व्यावहारिक स्थिति
4.2.1 संघ की राजभाषा
4.2.2 न्यायालयों की भाषा
4.2.3 हिंदी के व्यावहारिक विकास के लिए निर्देश
4.2.4 राजभाषा अधिनियम 1963, 1967 एवं 1976
4.3 दूरभाष और मोबाईल
4.3.1 दूरभाष : अर्थ, प्रकार, लाभ और नुकसान
4.3.2 मोबाइल फोन : अर्थ–महत्व, लाभ एवं नुकसान
4.4 हिन्दी की शब्द–संपदा
4.4.1 शब्दों के प्रकार एवं शब्द–भंडार की संपन्नता
4.4.2 शब्द संपदा के प्रमुख स्रोत
4.5 अनुवाद : अर्थ, प्रकार एवं अभ्यास
4.5.1 अनुवाद : सिद्धांत एवं व्यवहार
4.5.2 अनुवाद : प्रकार एवं प्रक्रिया
4.5.3 अनुवाद के अभ्यास एवं जटिलताएं
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री


## 4.0 परिचय

भारतीय संविधान के 5, 6 तथा 17 इन तीन भागों में राजभाषा संबंधी प्रावधान हैं। इनके 17वें भाग के चार अध्यायों में राजभाषा संबंधी उपबंध प्रस्तुत किए गए हैं। प्रथम अध्याय में संघ की भाषा के रूप में अनुच्छेद 343 और 344, द्वितीय अध्याय में अनुच्छेद 345 अनुच्छेद 346 और 347 में राजभाषा के रूप में प्रांतीय भाषाओं के प्रयोग के संबंध में निर्देश हैं। तृतीय अध्याय के अनुच्छेद 348, 349 में उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय की भाषा के संबंध में निर्देश हैं। चौथे अध्याय के अनुच्छेद 350, 351 में अन्याय निवारण के लिए अभिवेदन में प्रयुक्त भाषा का निर्देश है। अनुच्छेद 351 में हिंदी भाषा के विकास के संबंध में निर्देश हैं।

शब्द एक भाषायी संकेत है, अर्थात यह यादृच्छिक प्रतीक है जो किसी वस्तु के अर्थ; जैसे– 'मेज'; अथवा किसी संकल्पना को दर्शाता है। शब्द का वही अर्थ होता है, जो समाज उसे देता है। 'पारिभाषिक' शब्द भले ही नया प्रतीत होता हो, पर 'शब्दावली' प्रत्येक विषय के पाठकों के लिए चिर परिचित शब्द है। 'शब्दावली' (Vocabulary) का अर्थ शब्दों के उस समूह से है, जो भाषा–विशेष में प्रयोग किए जाते हैं। कुछ विद्वान 'शब्दकोश' शब्द का प्रयोग भी 'शब्दावली' का अर्थ व्यक्त करने के लिए करते हैं।

'अनुवाद' शब्द संस्कृत 'वद्' धातु में 'घञ' प्रत्यय तथा 'अनु' उपसर्ग लगाने से संपन्न हुआ। 'वद्' धातु का अर्थ है 'पश्चात्' अतः अनुवाद का अर्थ है–कही हुई बात को फिर से कहना। कोश के अनुसार 'पहले कहे गए अर्थ को फिर से कहना 'अनुवाद' है।'



अनुवाद का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आज विश्व एक इकाई हो गया है। ऐसी स्थिति में हर क्षण यह जानने की आवश्यकता होती है कि किसने क्या कहा, किसने क्या लिखा? यह सब अनुवाद के द्वारा ही संभव है। दिन–प्रतिदिन इसकी आवश्यकता बढ़ती जा रही है।

इस इकाई में हम राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक एवं व्यावहारिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए दूरभाष एवं मोबाईल तथा हिन्दी की शब्द संपदा से परिचित होगें। अनुवाद के अर्थ, प्रकार एवं अभ्यास को भी इस इकाई का विषय बनाया गया है।

## 4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक–व्यावहारिक स्थिति से अवगत हो पाएंगे;
- हिन्दी भाषा के संदर्भ में दूरभाष एवं मोबाईल की भूमिका समझ पाएंगे;
- हिन्दी की शब्द संपदा से परिचित हो पाएंगे;
- अनुवाद के अर्थ प्रकार और अभ्यास को समझ पाएंगे

## 4.2 राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक एवं व्यावहारिक स्थिति

भारतीय संविधान के भाग 5, 6 और 17 राजभाषा संबंधी उपबंध हैं। इसमें भाग 17 का शीर्षक 'राजभाषा' है। भारतीय संविधान में कहीं भी 'राजभाषा' शब्द की कोई परिभाषा या व्याख्या नहीं दी गई है। इसका प्रारंभिक उल्लेख 343 (1) में यह कहकर हुआ है– "संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।"

### 4.2.1 संघ की राजभाषा

अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

खंड (1) के अनुसार किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के प्रारंभ से 15 वर्ष की कालावधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए प्रारंभ के ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी। इस संबंध में आगे कहा गया है– राष्ट्रपति उक्त अवधि (26 जनवरी, 1950, से 25 जनवरी, 1965 के दौरान) अपने आदेश से संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी) रूप का प्रयोग अधिकृत कर सकेंगे। अनुच्छेद 343 (3) में कहा गया है– "इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, संसद उक्त पंद्रह वर्ष की अवधि के पश्चात विधि द्वारा–

(क) अंग्रेजी भाषा अथवा (ख) अंकों के देवनागरी रूप का, ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जैसा कि ऐसी विधि में उल्लिखित हो।

**टिप्पणी**

## राजभाषा के लिए आयोग और संसदीय समिति

**अनुच्छेद 344 (1)** में कहा गया है– "राष्ट्रपति इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष (अर्थात् 26 जनवरी, 1955 ई.) की समाप्ति पर और तत्पश्चात ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा, एक आयोग का गठन करेंगे। इस आयोग में एक अध्यक्ष तथा आठवीं अनुसूची में बताई गई विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य प्रतिनिधि होंगे जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा। राष्ट्रपति के इस आदेश में आयोग द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया भी निर्दिष्ट की जाएगी।

अनुच्छेद 344 (1) में इस आयोग के पांच कर्तव्य बताए गए हैं–

1. संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग की सिफारिश।
2. संघ के सभी या किसी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधनों की सिफारिश।
3. अनुच्छेद 348 में उल्लिखित सभी या किन्हीं प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा की सिफारिश।
4. संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप की सिफारिश।
5. संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच पत्रादि की भाषा और उनके प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे गए किन्हीं अन्य विषय में सिफारिश।

## अनुच्छेद 344 (2)

भारत के संविधान 1949 में अनुच्छेद 344(2) में कहा गया है कि यह आयोग का कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को इस रूप में सिफारिशें करे–

1. संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग;
2. संघ के राजकीय प्रयोजनों के सभी या किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर प्रतिबंध;
3. अनुच्छेद 348 में उल्लिखित भाषा का सभी प्रयोजनों के लिए या किसी के लिए इस्तेमाल किया जाएगा;
4. अंकों का रूप संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जाएगा।
5. संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच पत्रादि की भाषा और प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को भेजा गया विषय।

टिप्पणी

### अनुच्छेद 344 (3)

अनुच्छेद 344 (3) में उपर्युक्त आयोग के लिए यह कहा गया है कि "आयोग अनुच्छेद–344(2) के अधीन अपनी सिफारिशें करते समय भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगति का और लोक सेवाओं के संबंध में अहिंदी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों के न्यायसंगत दावों और हितों का सम्यक ध्यान रखेगा।

### अनुच्छेद 344 (4)

इस अनुच्छेद में राजभाषा संबंधी संसदीय समिति के गठन के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है– इसमें कुल तीस सदस्य होंगे जिनमें से बीस लोकसभा के सदस्य होंगे। शेष दस सदस्य राज्यसभा से होंगे। इन सदस्यों का निर्वाचन लोकसभा और राज्यसभा के सदस्यों द्वारा प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाएगा।

### अनुच्छेद 344 (5)

इसमें इस संसदीय समिति के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें कहा गया है– "समिति अनुच्छेद 344(1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की जांच करके, उस पर अपनी राय राष्ट्रपति को देगी।" खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करना तथा उन पर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को करना ही समिति का कार्य होगा।

### अनुच्छेद 344 (6)

इसमें स्पष्ट कहा गया है– "अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति अनुच्छेदों– 344(5) के अधीन समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् उस सारे प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश/आदेश जारी कर सकेंगे।

### एक राज्य, अन्य राज्य अथवा राज्य और संघ के बीच संचार के लिए राजभाषा

संविधान के अनुच्छेद 345 में कहा गया है– "किसी राज्य का विधानमंडल अनुच्छेद 346 और 347 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, विधि द्वारा उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिंदी को, उस राज्य के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार कर सकेगा। इसी अनुच्छेद 345 में आगे कहा गया है– "परंतु जब तक राज्य का विधानमंडल, विधि द्वारा कोई अन्य उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतरी उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए वह इस संविधान से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।"

### एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच अथवा राज्य और संघ के बीच संचार हेतु राजभाषा

संविधान के **अनुच्छेद 346** में कहा गया है– "संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने हेतु जो भाषा उस समय प्राधिकृत होगी, वही एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच और किसी राज्य तथा संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा होगी।

परंतु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि उन राज्यों के बीच पत्रादि की राजभाषा हिंदी भाषा होगी तो ऐसे पत्रादि के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।

### किसी राज्य के जन समुदाय के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध

संविधान के **अनुच्छेद 347** में यह व्यवस्था की गई है– "यदि किसी राज्य के जन समुदाय का कोई भाग अपने द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध की मांग करता है और जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए और राष्ट्रपति को यह तसल्ली हो जाए कि यह मांग युक्तिसंगत है तो राष्ट्रपति यह निर्देश कर सकते हैं कि ऐसी भाषा को भी राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में प्रयोजनार्थ जिसे वे विनिर्दिष्ट करें, शासकीय मान्यता दी जाए।

## 4.2.2 न्यायालयों की भाषा

संविधान के भाग 17 में उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों तथा अधिनियमों, विधेयकों आदि में प्रयोग की जाने वाली भाषा के संबंध में **अनुच्छेद 348** में निर्देश दिए गए हैं–

### अनुच्छेद 348(1)

इसमें कहा गया है– "जब तक संसद विधि द्वारा कोई और उपबंध न करे तब तक निम्नलिखित कार्यकलापों के प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में होंगे–

(क) उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियां।

(ख) 1. संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन में प्रस्तुत किए जाने वाले सभी विधेयक या उनके प्रस्तावित संशोधन;

2. संसद या किसी राज्य के विधानमंडल द्वारा पारित सभी अधिनियम और राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा जारी किए गए अध्यादेश;

3. इस संविधान के अधीन अथवा संसद या किसी राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन जारी किए गए सभी आदेश, नियम, विनियम और उपविधियां।

### अनुच्छेद 348(2)

इसमें किसी राज्य के राज्यपाल को राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से, संबंध राज्य के उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में हिंदी भाषा या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली किसी अन्य भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत करने का अधिकार दिया गया है, परंतु यह बात संबद्ध उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, डिक्री या आदेश पर लागू नहीं होगी। कहने का अभिप्राय यह है कि किसी राज्य के राज्यपाल उच्च न्यायालय में हिंदी भाषा के प्रयोग को तो प्राधिकृत कर सकते हैं किंतु न्यायाधीश को अपना निर्णय हिंदी में देने/सुनाने के लिए बाध्य नहीं कर सकेंगे।

### अनुच्छेद 348(3)

इसमें कहा गया है कि किसी राज्य के विधान मंडल में प्रस्तुत विधेयकों तथा उनसे संबंधित संशोधनों में यदि राज्यपाल के प्रयोग की अनुमति है तो उसका अंग्रेजी प्राधिकृत पाठ वही माना जाएगा जो राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया होगा।

टिप्पणी

संविधान की आठवीं अनुसूची में निम्नलिखित अठारह भाषाएं सम्मिलित हैं–

| | | |
|---|---|---|
| 1. असमिया | 2. उड़िया | 3. उर्दू |
| 4. कश्मीरी | 5. कन्नड़ | 6. कोंकणी |
| 7. गुजराती | 8. तमिल | 9. तेलुगु |
| 10. नेपाली | 11. पंजाबी | 12. बंगला |
| 13. मणिपुरी | 14. मराठी | 15. मलयालम |
| 16. संस्कृत | 17. सिंधी और | 18. हिंदी |

(बाद में समय–समय पर संशोधनों द्वारा इस सूचि में अन्य भाषाएं भी जोड़ी जाती रही हैं।)

### भाषा संबंधी कुछ विधियों को अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया

**अनुच्छेद 349** संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्षों की कालवधि तक अनुच्छेद 348 खंड (1) में वर्णित प्रयोजनों में से किसी के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपबंध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की मंजूरी के बिना पुनः स्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जाएगा तथा ऐसे किसी विधेयक के पुनः स्थापित अथवा ऐसे किसी संशोधन के प्रस्तावित सिफारिशों पर उस अनुच्छेद 344 के खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर तथा उस अनुच्छेद के खंड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात ही राष्ट्रपति देगा, अन्यथा नहीं।"

### विशेष निर्देश : व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा

**अनुच्छेद 350** के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।

(क) प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

(ख) भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष अधिकारी

(1) भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करें और उन विषयों के संबंध में ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करें, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दें और राष्ट्रपति ऐसे प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और संबंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

## 4.2.3 हिंदी के व्यावहारिक विकास के लिए निर्देश



**अनुच्छेद 351**– संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि निश्चित करें।

### अष्टम अनुसूची (अनुच्छेद 344(1) और 351)

| | | |
|---|---|---|
| 1. असमिया | 2. उड़िया | 3. उर्दू |
| 4. कश्मीरी | 5. कन्नड़ | 6. कोंकणी |
| 7. गुजराती | 8. तमिल | 9. तेलुगु |
| 10. नेपाली | 11. पंजाबी | 12. बंगला |
| 13. मणिपुरी | 14. मराठी | 15. मलयालम |
| 16. संस्कृत | 17. सिंधी | 18. हिंदी |
| 19. मैथिली | 20. संथाली | 21. बोडो |
| 22. डोगरी | | |

### संवैधानिक प्रावधान का स्वरूप

1. संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी, लिपि देवनागरी तथा अंक भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप होंगे–

   जैसे 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 एवं 10
2. संविधान के अनुच्छेद 343 (2) में प्रावधान है कि संविधान लागू होने के आरंभ के पंद्रह वर्ष की कालावधि अर्थात् 26 जनवरी 1950, 26 जनवरी 1965 तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग सरकारी कामकाज में जारी रहेगा।
3. संविधान के अनुच्छेद 344 में राजभाषा के लिए आयोग और संसदीय राजभाषा समिति के गठन एवं कार्य संबंधी प्रावधान भी हैं।
4. अनुच्छेद 345 में विभिन्न राज्यों के राजभाषाओं संबंधी प्रावधान हैं। उसके अनुसार संबंधित राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा उस राज्य की किसी एक अथवा अनेक भाषाओं को अपनी राजभाषा के रूप में अंगीकार कर सकता है। इस प्रावधान की यह विशेषता है कि संघ का प्रत्येक राज्य विधि द्वारा अपने राज्य की राज्यभाषा को अपनाने में सक्षम और स्वतंत्र है।
5. अनुच्छेद 346 में एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच अथवा राज्य और संघ के बीच संचार के लिए राजभाषा के प्रयोग के संदर्भ में उल्लेख किया गया है अर्थात् इसके अनुसार किसी एक राज्य और दूसरे राज्य और संघ के बीच संचार की भाषा 'तत्समय प्राधिकृत भाषा' होगी।

टिप्पणी

6. अनुच्छेद 347 में किए गए प्रावधान में किसी राज्य के विशिष्ट जनसमुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष प्रावधान किया गया है। इसके अनुसार यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाता है कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त समूह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली किसी भाषा को मान्यता दी जाए तो वैसा करने के लिए संबंधित राज्य को आदेश दे सकते हैं।
7. अनुच्छेद 348 में उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों आदि की भाषा के बारे में प्रावधान करते हुए स्पष्ट किया गया है कि जब तक संसद विधि द्वारा उपबंध न करे तब तक उच्चतम न्यायालयों की सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होगी और संसद एवं राज्यों के विधानमंडलों में पारित विधेयक तथा राष्ट्रपति एवं राज्यपालों द्वारा जारी सभी अध्यादेश, आदेश, विनिमय एवं नियम आदि सब के प्राधिकृत पाठ भी अंग्रेजी भाषा में ही माना जाएगा।
8. अनुच्छेद 349 के अनुसार संविधान के लागू होने के पंद्रह वर्षों की अवधि तक अंग्रेजी के अलावा किसी भी दूसरी भाषा का पाठ प्राधिकृत पाठ नहीं माना जाएगा लेकिन किसी अन्य भाषा के प्राधिकृत पाठ हेतु राजभाषा आयोग तथा संसदीय राजभाषा समिति के प्रतिवेदनों एवं सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति प्रदान कर सकता है।
9. अनुच्छेद 350 के अनुसार किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ अथवा राज्य के किसी भी अधिकारी या प्राधिकारी को संघ अथवा राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभिवेदन देने का प्रत्येक व्यक्ति का हक होगा। इसमें यह भी प्रावधान है कि प्राथमिक स्तर पर बालकों को मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं संबंधित राज्य उपलब्ध कराएगा।
10. अनुच्छेद 351 अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके अनुसार राजभाषा हिंदी के बहुमुखी विकास तथा प्रचार–प्रसार का कानूनी दायित्व केंद्र सरकार को सौंपा गया है। और किसी प्रकार हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार तथा विकास किया जाएगा इसके लिए स्पष्ट निर्देश दिए गए हैं।

### राष्ट्रपति के आदेश सन् 1952, 1955 एवं 1960

भारतीय संविधान 1952 के अनुच्छेद 343 खंड 2 के अनुसार राष्ट्रपति को प्रदत्त अधिकार के अधीन राष्ट्रपति ने 27 मई, 1952 को एक आदेश जारी किया, जिसके द्वारा राज्यों के राज्यपालों, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्तियों के अधिपत्रों में संघ के राजकीय प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ–साथ हिंदी भाषा और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के साथ–साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत किया गया।

महामहिम राष्ट्रपति ने संविधान 1952 के अनुच्छेद 343(2) के द्वारा प्राप्त अधिकार का दूसरी बार प्रयोग 3 दिसंबर, 1955 को किया। यह संविधान आदेश सरकारी प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा से संबंधित था। इसके अनुसार संघ के निम्नलिखित सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया–

1. जनता के साथ पत्र व्यवहार।
2. प्रशासनिक रिपोर्ट, सरकारी पत्रिकाओं तथा संसद में प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट।
3. सरकारी संकल्प और विधायी (लेजिस्लेटिव इनैक्टमेंट्स) अधिनियमितताएं।
4. जिन राज्य सरकारों ने हिंदी को अपनी राजभाषा मान लिया है, उनके साथ पत्र–व्यवहार।
5. संधिपत्र और करारनामे।
6. अन्य देशों की सरकारों तथा उनके दूतों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में भारत के प्रतिनिधियों को जारी किए जाने वाले महत्वपूर्ण दस्तावेज।

विभिन्न मंत्रालयों में हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए गृह मंत्रालय ने 1955 में एक विज्ञप्ति जारी करके सभी मंत्रालयों को निम्नवत् सुझाव दिए–

1. जनता से प्राप्त पत्रों का उत्तर यथासंभव हिंदी में दिया जाए। पत्र की भाषा सरल होनी चाहिए।
2. प्रशासनिक रिपोर्टों, सरकारी पत्रिकाओं, संसद को प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्टों आदि को यथा संभव अंग्रेजी और हिंदी में दोनों में प्रकाशित किया जाए।
3. सरकारी संकल्पों, विधायी अधिनियमों आदि को यथा संभव अंग्रेजी–हिंदी में जारी किया जाए, किंतु यह स्पष्ट कर दिया जाए कि अंग्रेजी पाठ ही प्रामाणिक माना जाएगा।
4. जिन राज्यों ने हिंदी को राजभाषा स्वीकार कर लिया है, उनके साथ पत्र व्यवहार में हिंदी का अनुवाद भी भेजा जाए ताकि संविधानिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

संविधान के अनुच्छेद 344(6) राजभाषा आयोग के अनुसरण में सन् 1955 में राजभाषा आयोग की नियुक्ति की गई और उसकी रिपोर्ट पर एक संसदीय समिति ने विचार किया। राज भाषा आयोग की सिफारिशों पर संसदीय समिति द्वारा प्रकट किए गए मंतव्य के संदर्भ में 27 अप्रैल, 1960 को राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया था। इसमें निहित निर्देश इस प्रकार से हैं–

1. अखिल भारतीय सेवाओं और उच्चतर केंद्रीय सेवाओं में भरती के लिए परीक्षा का माध्यम अभी अंग्रेजी बनी रहे और कुछ समय बाद हिंदी वैकल्पिक माध्यम के रूप में अपना ली जाए। बाद में किसी प्रकार की नियत कोटा प्रणाली अपनाए बिना परीक्षा के माध्यम के रूप में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग करने की व्यवहार्यता की जाए।
2. प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के लिए अंग्रेजी और हिंदी दोनों ही परीक्षा का माध्यम रहें।
3. निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के निर्माण एवं समन्वय का प्रयत्न किया जाए तथा इसके लिए शिक्षा मंत्रालय आवश्यक व्यवस्था करते हुए एक आयोग का निर्माण करे।

टिप्पणी

4. सभी प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद किया जाए तथा उसमें एकरूपता हो। असांविधिक अनुवाद शिक्षा मंत्रालय द्वारा किया जाए और सांविधिक अनुवाद विधि मंत्रालय करे।
5. शिक्षा मंत्रालय हिंदी प्रचार की व्यवस्था करे और इस कार्य में लगी गैर सरकारी संस्थाओं की भी सहायता करे।
6. केंद्रीय सरकार के विभागों के स्थानीय कार्यालय अपने आंतरिक कार्यों के लिए हिंदी का प्रयोग करें और जनता से पत्र व्यवहार में प्रादेशिक भाषा का प्रयोग किया जाए। कर्मचारियों की भर्ती तथा विकेंद्रीकरण आदि में इस आवश्यकता को ध्यान में रखा जाए।
7. संसदीय अधिनियम और विधेयक अंग्रेजी में बनते रहें, किंतु उनका प्राधिकृत हिंदी अनुवाद उपलब्ध कराया जाए। यह विधि मंत्रालय का उत्तरदायित्व होगा।
8. उच्चतम न्यायालय की भाषा अंततः हिंदी होनी चाहिए। उच्च न्यायालय के निर्णयों, आज्ञप्तियों और आदेशों के लिए हिंदी और राज्यों की राजभाषाओं का प्रयोग विकल्पतः किया जा सकेगा। इस संबंध में विधि मंत्रालय को आवश्यक कार्यवाही करनी चाहिए।
9. तृतीय श्रेणी से नीचे के कर्मचारियों, औद्योगिक संस्थाओं के कर्मचारियों और कार्य प्रभावित कर्मचारियों को छोड़कर उन सभी केंद्रीय कर्मचारियों के लिए हिंदी का सेवाकालीन प्रशिक्षण अनिवार्य बना दिया जाए, जिनकी आयु 01 जनवरी, 1961 को 45 वर्ष से कम हो। गृह मंत्रालय टंककों और आशुलिपिकों को हिंदी टंकण तथा आशुलेखन में प्रशिक्षण देने के लिए भी प्रबंध करे।
10. एक मानक विधि शब्दकोश बनाने, हिंदी में कानून बनाने और कानूनी शब्दावली के निर्माण के लिए विभिन्न राष्ट्रीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले कानून के विशेषज्ञों का एक स्थायी आयोग स्थापित किया जाए।

इस आयोग ने 1956 में जो रिपोर्ट प्रस्तुत की वह इस प्रकार थी—

1. प्रजातंत्रिक व्यवस्था की सफलता के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को चलाना ठीक नहीं है। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। केवल कतिपय अंतर्राष्ट्रीय मामलों, विज्ञान एवं अनुसंधान के क्षेत्रों में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है, शेष शिक्षा, प्रशासन, सार्वजनिक जीवन एवं सामान्य कार्यों में विदेशी भाषा का व्यवहार अनुचित है।
2. भारत की सभी भाषाओं को साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध मानते हुए भी हिंदी को सारे देश के लिए सामूहिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।
3. पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में स्पष्टता, अर्थ की शुद्धता, सरलता, देशज और लोकप्रिय शब्दों के प्रयोग पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार थोड़े हेर–फेर के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए। पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण कार्य में तेजी लाई जाए।

टिप्पणी

4. 14 वर्ष तक की आयु सीमा में आने वाले सभी विद्यार्थियों के लिए हिंदी का ज्ञान अनिवार्य कर दिया जाए जिससे वे सार्वजनिक जीवन के कार्य–कलापों और सरकारी कार्यवाहियों को समझने में समर्थ हो सकें।
5. सारे देश में माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर हिंदी का शिक्षण अनिवार्य कर दिया जाए।
6. जो परीक्षार्थी हिंदी के माध्यम से परीक्षाओं में बैठना चाहें, उनके लिए विश्वविद्यालय उचित प्रबंध करे।
7. वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा संस्थाओं के छात्र जब किसी एक भाषा वर्ग के हों तो उन्हें शिक्षा उसी भाषा में दी जाए और जहां छात्र विभिन्न भाषा वर्ग के हों, वहां हिंदी को सामान्य माध्यम बनाया जाए।
8. सरकारी प्रकाशनों के हिंदी अनुवाद में एकरूपता लाई जाए और इसकी देखरेख का कार्य केंद्रीय सरकार के एक अधिकरण को दिया जाए।
9. सभी प्रशासनिक कर्मचारियों को निश्चित अवधि में हिंदी का ज्ञान कराया जाए और इसके लिए नियम लागू किया जाए। प्रोत्साहन के लिए कर्मचारियों को पुरस्कृत किया जाए।
10. जनता के संपर्क में आने वाले विभागों और कार्यालयों के आंतरिक कार्य हिंदी में हों और जनता के साथ संपर्क स्थापित करने में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग हो। ऐसे विभागों के कर्मचारियों की भर्ती के लिए क्षेत्रीय भाषा के ज्ञान के साथ–साथ हिंदी की योग्यता का स्तर निर्धारित किया जाए और ऐसे कर्मचारियों की प्रशिक्षण द्वारा हिंदी में योग्यता बढ़ाई जाए।
11. केंद्रीय सरकार के सांविधिक प्रकाशनों में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए और हिंदी की प्रगति के लिए सरकारी प्रबंध किए जाएं।
12. संसद और विधानसभाओं की कार्यवाही हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं में की जाए, केवल विशेष परिस्थितियों में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाए। कानून हिंदी में हों लेकिन क्षेत्रीय जनता के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में इन्हें जारी किया जाए। हिंदी माध्यम अपनाए जाने पर सभी विधिसम्मत पुस्तकें हिंदी में होनी चाहिए।
13. न्याय की भाषा देश की भाषा हो। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की कार्यवाही अभिलेखों, निर्णयों और आदेशों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद रखा जाए। इनमें अभिव्यक्तियों के लिए क्षेत्रीय भाषाएं काम में लाने की स्वीकृति प्राप्त हो। कई क्षेत्रों के लिए लागू निर्णय और आदेश हिंदी में लिखे जाने चाहिए।
14. केंद्रीय सेवाओं की प्रतियोगिता परीक्षाओं के लिए हिंदी की कुछ योग्यता अनिवार्य हो और हिंदी का एक प्रश्न पत्र हो। समानता की दृष्टि से हिंदी भाषियों से इतर भाषाओं पर वैकल्पिक प्रश्न पूछे जाएं। हिंदी को अंग्रेजी के साथ–साथ वैकल्पिक माध्यम के रूप में ग्रहण किया जाए। राज्यों के लोक सेवा आयोग हिंदी भाषा का ज्ञान रखने वालों को प्रोत्साहन दें।
15. हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए सरकार ठोस कदम उठाए और हिंदी सेवी संस्थाओं के बीच सामंजस्य स्थापित कर हिंदी को बढ़ावा दे तथा ऐसी संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करे।
16. सभी भाषाओं के लिए यदि एक लिपि बनाने की बात हो तो उसके लिए देवनागरी लिपि को मान्यता दी जाए। रोमन लिपि इसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त होगी। देवनागरी में यथावश्यक सुधार के लिए कार्यवाही की जाए।

17. भारतीय भाषाओं में समाचार पत्रों को हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं की शब्दावली तथा मानकीकरण की दृष्टि से विशेष सुविधाएं दी जाएं और इसके लिए समाचार संस्थाओं का निर्माण करने का प्रयास किया जाए।
18. संघ की राजभाषा हिंदी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के संवर्धन तथा विकास के लिए "भारतीय भाषाओं की राष्ट्रीय अकादमी" की स्थापना करना विशेष उपयोगी होगा।
19. भारतीय भाषाओं के बीच की दूरी कम करने तथा देश के भाषागत एवं सांस्कृतिक ढांचे में समानता लाने के लिए बहुभाषिकता के सिद्धांत को प्रोत्साहित किया जाए और इस उद्देश्य के लिए शिक्षा पद्धति में समुचित व्यवस्था की जाए।

## 4.2.4 राजभाषा अधिनियम 1963, 1967 एवं 1976

उन भाषाओं का जो संघ की राजकीय प्रयोजनों, संसद में कार्य के संव्यवहार, केंद्रीय और राज्य अधिनियमों और उच्च न्यायालयों में कतिपय प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाई जा सकेंगी, उपबंध करने के लिए अधिनियम।

### (क) राजभाषा अधिनियम 1963

भारत गणराज्य के चौदहवें वर्ष में संसद द्वारा यह अधिनियमित हो–

**धारा (1)** संक्षिप्त नाम– यह अधिनियम राजभाषा अधिनियम, 1963 होगा।

धारा 3, 26 जनवरी, 1965 को प्रवृत्त होगी और इस अधिनियम के शेष उपबंध उस तिथि को प्रवृत्त होंगे जिसे केंद्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और इस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के लिए विभिन्न तारीखें रखी जा सकेंगी।

**परिभाषाएं**– इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो–

(क) 'नियत दिन से, धारा 3 के संबंध में, 26 जनवरी, 1965 का दिन है और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में वह दिन है जिस दिन वह उपबंध प्रवृत्त होता है।

(ख) 'हिंदी' से वह हिंदी है जिसकी लिपि देवनागरी है।

**संघ के राजकीय प्रयोजनों और संसद में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा का रहना–**

1. संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालावधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा नियत दिन से ही–
   (क) संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए वह उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लाई जाती थी, तथा
   (ख) संसद के कार्य व्यवहार के प्रयोग में लाई जाती रह सकेगी।
   परंतु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच, जिसने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, पत्र व्यवहार के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग में लाई जाएगी। ऐसे पत्रों के साथ–साथ उनका हिंदी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिंदी को राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ जिसने हिंदी को राजभाषा के रूप में अपनाया है, या किसी

अन्य के साथ सहमति से पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिंदी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है, और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग बाध्यकर न होगा।

**टिप्पणी**

**धारा (2)** उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिंदी या अंग्रेजी भाषा–

1. केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के बीच,
2. केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण में किसी निगम या कंपनी या उनके किसी कार्यालय के बीच,
3. केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी अन्य ऐसे निगम या कंपनी या कार्यालय के बीच, प्रयोग में लाई जाती है वहां उस तारीख तक जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग, कार्यालय या विभाग या कंपनी का कर्मचारीवृंद हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, ऐसे पत्रादि का अनुवाद यथास्थिति अंग्रेजी भाषा या हिंदी में दिया जाएगा।

**धारा (3)** उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, हिंदी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही–

1. संकल्पों, सामान्य आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए जो केंद्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी के द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं,
2. संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागज–पत्रों के लिए,
3. केंद्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा उसकी ओर से या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञा पत्रों, सूचनाओं और निविदा प्रारूपों के लिए प्रयोग में लाई जाएगी।

**धारा (4)** उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि केंद्रीय धारा 8 के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या उन भाषाओं का उपबंध कर सकेगी जिसके अंतर्गत किसी मंत्रालय, विभाग, अनुभाग या कार्यालय का कार्यकरण है, प्रयोग में लाया जाता है और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य की शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे का तथा जनसाधारण के हितों का सम्यक ध्यान रखा जाएगा। और इस प्रकार बनाए गए नियम विशिष्टतया यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ के कार्यकलाप के संबंध में सेवा कर रहे हैं और जो या तो हिंदी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण हैं, वे प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें और यह भी केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं हैं, उनका कोई अहित नहीं होता है।

टिप्पणी

**धारा (5)** उपधारा (1) के खंड (क) के उपबंध और उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यों के विधानमंडलों द्वारा जिन्होंने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया, संकल्प पारित नहीं कर दिए जाते और तब तक पूर्वोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए संसद के हर एक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता।

इस धारा में केंद्रीय अधिनियम आदि के अधिकृत हिंदी अनुवाद के संबंध में बताया गया है कि राष्ट्रपति द्वारा अधिकृत हिंदी अनुवाद मान्य होगा।

**धारा (6)** में, राज्य के विधानमंडल के नियमों, अधिनियमों आदि के हिंदी–अनुवाद का वही रूप मानने की बात कही गई है जिसे राज्यपाल द्वारा अधिकृत किया जाएगा।

**धारा (7)** में उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में हिंदी या अन्य राज भाषा के वैकल्पिक प्रयोग का प्रावधान है। इसमें बताया गया है कि हिंदी या अन्य राज भाषा में दिए गए निर्णय का उच्च न्यायालय द्वारा अधिकृत अंग्रेजी अनुवाद देना आवश्यक होगा।

**धारा (8)** में केंद्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि राज भाषा अधिनियम (1963) के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी जिन्हें शासकीय गजट में अनुसूचित किया जाएगा। ऐसे नियम संसद के प्रत्येक सदन के सत्र के समय शीघ्र कुल मिलाकर तीन दिन के लिए उसके सामने रखे जाएंगे।

**धारा (9)** में यह निर्देश है कि इस नियम की धारा 6, 7 जम्मू कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होगी।

### (ख) राजभाषा अधिनियम (संशोधित 1967)

संक्षेप में राजभाषा अधिनियम एवं बुनियादी नियमावली की मुख्य बातें इस प्रकार हैं–

1. राजकीय काम काज में हिंदी और अंग्रेजी का प्रयोग साथ–साथ होगा।
2. जिन राज्यों ने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है उनके साथ पत्र व्यवहार अंग्रेजी में किया जाएगा अर्थात् जिन राज्यों ने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में अपने पत्र व्यवहार के माध्यम के रूप में अपना लिया है, उनके बीच पत्रादि हिंदी में ही लिखे जाएंगे।
3. हिंदी में पत्र व्यवहार निम्नलिखित कार्यालयों के बीच होगा–
   (क) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालयों को।
   (ख) एक विभाग या कार्यालय से दूसरे विभाग या कार्यालय को।
   (ग) उन कंपनियों या निगमों के बीच जिनको केंद्रीय सरकार ने अपना लिया है।
   (घ) केंद्रीय सरकार और हिंदी भाषी क्षेत्रों में स्थित राज्य सरकार के कार्यालयों या विभागों के बीच निम्नलिखित में हिंदी और अंग्रेजी का साथ–साथ प्रयोग अनिवार्य है–
      (i) संकल्प (Resolutions)
      (ii) सामान्य आदेश (General orderècircular)
      (iii) अधिसूचनाएं (Notifications)

(iv) नियम (Rules)

(v) प्रशासनिक और अन्य रिपोर्टें (Administrative and other Reports)

(vi) विज्ञापन (Advertisements)

(vii) प्रेस विज्ञप्तियां (Press Releases)

(viii) संविदा (Contracts)

(ix) करारनामे (Agreements)

(x) सूचनाएं (Notices)

(xi) निविदाएं (Tenders)

(xii) लाइसेंस (Licences)

(xiii) परमिट (Permits)

जब तक अहिंदी–भाषी राज्य अंग्रेजी को समाप्त कर देने का संकल्प नहीं करेंगे, तब तक हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी भी काम में लाई जाएगी।

4. संसदीय राजभाषा समिति– इस समिति के तीस सदस्य होंगे, लोकसभा के बीस और राज्यसभा के 10, यह समिति हिंदी के प्रयोग में की गई प्रगति का समय–समय पर निरीक्षण करेगी और अपनी सिफारिशें राष्ट्रपति के सामने रखेगी।

## (ग) राजभाषा अधिनियम, 1976

सन् 1963 के राज भाषा अधिनियम की धारा 3 उपधारा (4) तथा धारा 8 के अधीन प्राप्त शक्तियों का उपयोग करते हुए, भारत सरकार ने सन् 1976 ई. में 'राजभाषा नियम' लागू किया। सा. का. नि. 1052–राजभाषा अधिनियम 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 के अंतर्गत निम्नलिखित नियमों की संरचना की गई–

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और आरंभ**– (1) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 है।
   (i) इनका विस्तार तमिलनाडु राज्य के अतिरिक्त संपूर्ण भारत पर है।
   (ii) ये राजपत्र में प्रकाशित की गई तारीख को प्रवृत्त होंगे।

2. **परिभाषाएं**– इन नियमों में जब तक कि संदर्भ अन्यथा अपेक्षित न हो–
   (क) "अधिनियम" से राजभाषा अधिनियम 1963 (1963 का 19) अभिप्रेत है।
   (ख) "केंद्रीय सरकार के कार्यालय" के अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं अर्थात्
      (i) "केंद्रीय सरकार का कोई भी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय,
      (ii) केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किसी आयोग, समिति या अधिकरण का कोई कार्यालय, और
      (iii) केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या कंपनी का कोई कार्यालय
   (ग) "कर्मचारी" से केंद्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत है।

टिप्पणी

(घ) "अधिसूचित कार्यालय" से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय अभिप्रेत है।

(ङ) "हिंदी में प्रवीणता" से नियम 9 में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत हैं।

(च) "क्षेत्र क" से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के राज्य तथा दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं।

(छ) "क्षेत्र ख" से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तथा चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं।

(ज) "क्षेत्र ग" से खंड (च) और (छ) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं।

(झ) "हिंदी कार्यसाधक ज्ञान" से नियम 10 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत हैं।

3. **राज्यों आदि और केंद्र सरकार के कार्यालयों से भिन्न कार्यालयों के साथ पत्र व्यवहार**– राज्यों आदि का परस्पर तथा केंद्र सरकार के विभिन्न कार्यालयों से पत्र व्यवहार के संबंध में बनाए गए नियम निम्नवत् हैं–

(i) केंद्रीय सरकार के कार्यालय के क्षेत्र 'क' में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को या किसी ऐसे राज्य या संघ या राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि असाधारण दशाओं को छोड़कर हिंदी में होंगे और उनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिंदी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

(ii) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से–

(क) क्षेत्र "ख" में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) को पत्रादि सामान्यतः हिंदी में होंगे और यदि कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसके साथ उनका हिंदी अनुवाद भी भेजा जाएगा; परंतु यदि कोई राज्य या संघ राज्य क्षेत्र यह चाहता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि उसके किसी कार्यालय के लिए आशायित पत्रादि संबद्ध राज्य या संघ राज्य क्षेत्र की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि तक अंग्रेजी या हिंदी में भेजे जाएं और उसके साथ दूसरी भाषा में उसका अनुवाद भेजा जाए तो ऐसे पत्रादि उसी रीति में भेजे जाएंगे।

(ख) क्षेत्र 'ख' के किसी राज्य या संघ क्षेत्र में किसी व्यक्ति को पत्रादि हिंदी में या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं।

(iii) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'ग' में किसी राज्य या संघ क्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में होंगे।

(iv) उपनियम (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी क्षेत्र 'ग' में केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'क' या 'ख' में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि हिंदी में या अंग्रेजी में हो सकते हैं, परंतु हिंदी पत्रादि ऐसे अनुपात में होंगे जो केंद्रीय सरकार ऐसे

कार्यालयों में हिंदी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुसंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय समय पर अवधारित करे।

**4. केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में पत्र व्यवहार**

टिप्पणी

(क) केंद्रीय सरकार के किसी एक मंत्रालय या विभाग और किसी दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्र व्यवहार हिंदी में हो सकता है।

(ख) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और क्षेत्र 'क' में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिंदी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केंद्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिंदी का कार्य साधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिंदी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे संबंधित आनुसंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर अवधारित करे।

(ग) क्षेत्र 'क' में स्थित केंद्रीय सरकार के ऐसे कार्यालयों के बीच, जो खंड (क) या खंड (ख) में विनिर्दिष्ट कार्यालयों से भिन्न हैं, पत्रादि हिंदी में होंगे।

(घ) क्षेत्र 'क' में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों और क्षेत्र 'ख' या 'ग' में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिंदी या अंग्रेजी में हो सकते हैं।

(ङ) क्षेत्र 'ख' या 'ग' में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिंदी या अंग्रेजी में हो सकते हैं।

परंतु जहां ऐसे पत्रादि–

(i) क्षेत्र 'क' या क्षेत्र 'ख' में किसी कार्यालय को संबोधित हैं, वहां यदि आवश्यक हो, तो उनका दूसरी भाषा में अनुवाद पत्रादि प्राप्त करने के स्थान पर किया जाएगा।

(ii) क्षेत्र 'ग' के किसी कार्यालय को संबोधित है, तो वहां उनका दूसरी भाषा में अनुवाद उनके साथ भेजा जाएगा। परंतु यह और है कि यदि कोई पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को संबोधित है तो दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जाएगी।

**5. हिंदी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर**– नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी हिंदी में पत्रादि के उत्तर केंद्रीय सरकार के कार्यालय से हिंदी में दिए जाएंगे।

**6. हिंदी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग**– अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिंदी और अंग्रेजी दोनों का उपयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसे दस्तावेज हिंदी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार किए जाते हैं, निष्पादित किए जाते हैं और जारी किए जाते हैं।

**7. आवेदन, अभ्यावेदन आदि**

(i) कोई कर्मचारी आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिंदी या अंग्रेजी में कर सकता है।

टिप्पणी

(ii) जब उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिंदी में किया गया हो उस पर हिंदी में हस्ताक्षर किए गए हों तब उसका उत्तर हिंदी में दिया जाएगा।

(iii) यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि सेवा संबंधी विषयों (जिनके अंतर्गत अनुशासनात्मक कार्यवाहियां भी हैं) से संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिनका कर्मचारी पर तामील किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति, हिंदी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे असम्यक विलंब के बिना उसी भाषा में दी जाएगी।

**8. केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में टिप्पणी का लिखा जाना**

(i) कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पणी या कार्यवृत्त हिंदी या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे वह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करे।

(ii) केंद्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है, हिंदी में किसी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की तभी मांग कर सकता है जब वह दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का हो, अन्यथा नहीं।

(iii) यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विशिष्ट दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है या नहीं तो विभाग या कार्यालय का प्रधान उसको विनिश्चित करेगा।

(iv) उपनियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, केंद्रीय सरकार आदेश द्वारा ऐसी अधिसूचना कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है, जहां ऐसे कर्मचारियों द्वारा जिन्हें हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है, टिप्पण, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, केवल हिंदी का प्रयोग किया जाएगा।

**9. हिंदी में प्रवीणता**– यदि किसी कर्मचारी ने–

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिंदी माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है; या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिंदी को वैकल्पिक रूप में लिया गया था; या

(ग) यदि वह इन नियमों के उपाब; प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिंदी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है।

**10. हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान**

(क) यदि किसी कर्मचारी ने–

(i) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिंदी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है; अथवा

(ii) केंद्रीय सरकार की हिंदी प्रशिक्षण योजना के अंतर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या यदि उस सरकार द्वारा किसी विशष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में उस योजना के अंतर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, उस परीक्षा को उत्तीर्ण कर लिया है; या

टिप्पणी

(iii) केंद्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है; या

(ख) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

- यदि केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों में से अस्सी प्रतिशत ने हिंदी का ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतः यह समझा जाएगा कि उन्होंने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।
- केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारित कर सकता है कि केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय के कर्मचारियों ने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं।
- केंद्रीय सरकार के जिन कार्यालयों ने हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जाएंगे;

  परंतु केंद्रीय सरकार की राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों का प्रतिशत किसी तारीख में उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत में कम हो गया है, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकता है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रह जाएगा।
- मैनुअल संहिताएं, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री आदि।

  (i) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, हिंदी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में यथास्थिति, मुद्रित या प्रकाशित किया जाएगा

  (ii) केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के प्रारूप और शीर्षक हिंदी और अंग्रेजी में होंगे।

  (iii) केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी नामपट्ट, सूचनापट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें हिंदी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या उत्कीर्ण होंगी।

  परंतु यदि केंद्रीय सरकार ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह साधारण या विशेष आदेश द्वारा केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबंधों से छूट दे सकती है।

**11. अनुपालन उत्तरदायित्व**

(अ) केंद्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह–

(i) यह सुनिश्चित करे कि अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों और उपनियम (2) के अधीन जारी किए गए नए निर्देशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है; और

टिप्पणी

(ii) इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के लिए उपाय करे।

(ब) केंद्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों के सम्यक अनुपालन के लिए अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय–समय पर आवश्यक निर्देश जारी कर सकती है।

**अपनी प्रगति जांचिए**

1. भारतीय संविधान के किस भाग में राजभाषा संबंधी उपबंध है?

   (क) 5 (ख) 6

   (ग) 17 (घ) उपरोक्त सभी

2. किस राजभाषा अधिनियम की शक्तियों का उपयोग करते हुए राजभाषा अधिनियम 1976 लागू किया गया?

   (क) राजभाषा अधिनियम 1963 (ख) राजभाषा अधिनियम 1967

   (ग) उपरोक्त सभी (घ) इनमें से कोई नहीं

## 4.3 दूरभाष और मोबाईल

दूरभाषा और मोबाईल हमारे जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। इनके बिना आज सहज जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है।

### 4.3.1 दूरभाष : अर्थ, प्रकार, लाभ और नुकसान

टेलीफोन का आविष्कार अलेक्जेंडर ग्राहम बेल ने किया था। दूरभाष अथवा टेलीफोन एक वैज्ञानिक उपकरण है, जो आवाज को संचारित करता है। कोई भी व्यक्ति दूरभाष के माध्यम से दूर बैठे किसी दूसरे व्यक्ति के साथ बातचीत कर सकता है। टेलीफोन एक ऐसा उपकरण होता है, जो मानव आवाज को एक ऐसे रूप में रूपांतरित करता है, जो तार या रेडियो प्रौद्योगिकी के माध्यम से पारगम्य होता है, और एक श्रव्य प्रारूप में दूर जगह पर इसे पुनः प्रस्तुत करता है। यह एक गैजेट है, जिसका किसी दूसरे स्थान पर मौजूद किसी व्यक्ति से बात करने के लिए उपयोग कर सकते हैं। इसमें एक तरफ ट्रांसमीटर होता है, जिससे आप कोई भी नंबर डायल कर सकते हैं, और दूसरी तरफ रिसीवर होता है, जिससे आवाज सुनाई देती है।

इस प्रकार एक टेलीफोन एक आवाज इनपुट आउटपुट उपकरण है। यह माइक्रोफोन के माध्यम से एक व्यक्ति की आवाज प्राप्त करता है और इसे एक लंबी दूरी तक संचारित करता है, जहां रिसीवर की सहायता से आवाज को सुना सकता है। जब टेलीफोन का रिंग बजता है तो रिसीवर द्वारा फोन उठा कर हेलो बोला जाता है, जिससे आपका किसी भी दूरस्थ व्यक्ति से कम्युनिकेशन हो पाता है। यदि आपको किसी भी अन्य शहर, राज्य या विदेश में रह रहे व्यक्ति से बात करना हो, तो उसके लिये आपको सामने वाले व्यक्ति का टेलीफोन नंबर डायल करने से पहले उस स्थान का एसटीडी या आइएसडी कोड भी डायल करना पड़ता है।

टेलीफोन पर बातचीत तार के माध्यम से होती है तथा मोबाइल फोन को इसका एक अपग्रेटेड रूप कहा जा सकता है। मोबाइल में तार कनेक्शन नहीं होते हैं, इसलिये मोबाइल को अपनी जेब में रख कर आसानी से कहीं भी ले जाया जा सकता है। यही एक बहुत बड़ी वजह है कि आजकल सब लोग मोबाइल का अधिक उपयोग करने लगे हैं।

## दूरभाष के प्रकार

दूरभाष या टेलीफोन विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं, जिनमें फिक्स्ड लैंडलाइन, ताररहित टेलीफोन, मोबाइल फोन आदि शामिल हैं।

1. **फिक्स्ड टेलीफोन**– यह एक प्रकार का निश्चित टेलीफोन (लैंडलाइन टेलीफोन) है, जो तारों के एक सेट के माध्यम से जुड़ा हुआ है। यह एक स्थान पर स्थित होता है।
2. **ताररहित टेलीफोन**– एक ताररहित या वायरलैस टेलीफोन (पोर्टेबल टेलीफोन) एक वायरलेस हैंडसेट के साथ आता है, जो बेस स्टेशन के साथ संवाद करने के लिये रेडियो तकनीक का उपयोग करता है। बेस स्टेशन एक जगह पर तय किया जाता है और टेलीफोन तारों से जुड़े होते हैं। ये टेलीफोन पोर्टेबल हैं, लेकिन ये बहुत सीमित दूरी के भीतर, आमतौर पर बेस स्टेशन से एक निष्चित दूरी तक ही उपयोग में आते हैं।
3. **मोबाइल फोन**– एक मोबाइल फोन (सेल्यूलर फोन) एक वायरलेस हैंडसेट है, जो उपयोगकर्ताओं को विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के आसपास चलते हुए कॉल करने और संदेश भेजने में सक्षम बनाता है।
4. **स्मार्टफोन**– स्मार्टफोन एक मोबाइल फोन है, जो कंप्यूटर के साथ तुलनीय सुविधाओं को बढ़ाता है। इसमें स्मार्ट विशेषताएं हैं, जैसे ऑपरेटिंग सिस्टम, वेब ब्राउज़र, टचस्क्रीन, संगीत, गेम्स या खेल आदि।

टेलीफोन आधुनिक विज्ञान का एक युगांतरकारी आविष्कार है, जिसने आम लोगों के जीवन को आसान बना दिया है। इसके अलावा, मोबाइल फोन ने वायरलेस रेडियो टेक्नोलॉजी के उपयोग से आवाज और पाठ संचार की स्थिति को पूरी तरह से बदल दिया है।

## टेलीफोन के प्रमुख लाभ

टेलीफोन के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं–

**जीवन का अपरिहार्य हिस्सा**– यह टेलीफोन का आविष्कार ही था, जिसने वास्तव में संचार क्रांति के लिए रास्ता खोला था। आजकल यह वाणिज्यिक, औद्योगिक और घरेलू जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन गया है।

**दूर के व्यक्ति के साथ संचार**– इसके माध्यम से लोग दूर के लोगों से संवाद कर सकते हैं और टेलीफोन पर तुरंत प्रतिक्रिया प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिये, भारत में एक व्यक्ति इंग्लैंड में मौजूद किसी अन्य व्यक्ति से टेलीफोन पर बात कर सकता है।

**टिप्पणी**

**ताररहित संपर्क–** मोबाइल फोन का आविष्कार ऐतिहासिक महत्व का है। यह वायरलेस प्रौद्योगिकियों का उपयोग कर आवाज के प्रसारण में मदद करता है।

**समय और ऊर्जा की बचत–** एक टेलीफोन हमारे लिये सभी क्षेत्रों में एक ईमानदार सहायक की तरह कार्य करता है। यह हमारे बहुमूल्य समय और ऊर्जा को बहुत हद तक बचाता है।

**व्यापार सौदों में लाभ–** किसी व्यावसायिक व्यक्ति या डॉक्टर के लिये टेलिफोन का एक बड़ा लाभ होता है। एक व्यावसायिक व्यक्ति टेलीफोन पर व्यापारिक सौदे कर सकता है। पूरी बिक्री और खरीद टेलीफोन पर की जा सकती है।

**डॉक्टर और रोगियों के बीच बेहतर संचार–** मरीज टेलीफोन पर डॉक्टर की सलाह ले सकते हैं। डॉक्टर कहीं आने–जाने में समय खर्च किये बिना अपने मरीजों का इलाज कर सकते हैं।

**सुरक्षा–** बड़े शहरों में सुरक्षा और संरक्षा के मामले में टेलीफोन की अपनी उपयोगिता है। यदि कोई आवश्यकता है, तो टेलीफोन कर पुलिस या एम्बुलेंस को बुलाया जा सकता है।

**बेहतर अभिभावक–शिक्षक–छात्र संबंध–** यदि स्कूल में एक टेलीफोन है, तो छात्र किसी भी जानकारी के लिये प्रधानाचार्य या शिक्षकों से बात कर सकते हैं। दूर–दूर के स्थानों पर संदेश कॉल, एसएमएस आदि के माध्यम से किसी भी समय सूचनाओं से अवगत कराया जा सकता है। अगर टेलीफोन माता–पिता के घर में है, तो प्रिंसिपल या अध्यापकों को माता–पिता से संपर्क करना आसान लगता है और माता–पिता शिक्षकों से अपने बच्चों के बारे में जानकारी ले सकते हैं।

**आसान यात्रा–** रेलवे बुकिंग, स्टैंड से टैक्सी बुलाने जैसे काम टेलीफोन पर किये जा सकते हैं। विभिन्न टैक्सी ऑपरेटर के मोबाइल एप्लिकेशन डाउनलोड किये जा सकते हैं और उससे टैक्सी बुक किये जा सकते हैं। इसके लिये एक स्मार्ट फोन और इंटरनेट कनेक्शन की आवश्यकता होती है।

**उच्च गति इंटरनेट–** अधिकांश स्मार्टफोन हाई–स्पीड इंटरनेट फीचर्स के साथ सक्षम हैं। इंटरनेट कनेक्शन वाले स्मार्टफोन उपयोगकर्ताओं को वेबसाइटों को ब्राउज़ करने, वीडियो चलाने और ईमेल भेजने के लिए सक्षम बनाता है। इंटरनेट पर कॉल्स भी कर सकते हैं और कॉलिंग शुल्क से बच सकते हैं। हालांकि, इंटरनेट कॉल के मामले में डेटा शुल्क लागू हो सकते हैं।

**स्वस्थ संबंध–** टेलीफोन दोस्तों और रिष्तेदारों के बीच नियमित रूप से आवाज संचार को प्रोत्साहित करता है। यह स्वस्थ व्यावसायिक, सामाजिक एवं पारिवारिक संबंध बनाये रखने में मदद करता है।

**कम लागत–** टेलीफोन और मोबाइल फोन पर आवाज संचार की लागत पिछले कुछ वर्षों में काफी कम हो गयी है। इस प्रकार सामान्य लोग भी टेली–संचार प्रौद्योगिकी का पूर्ण उपयोग कर सकते हैं।

**टेलीफोन बैंकिंग–** लोग टेलीफोन पर बैंकिंग लेनदेन कर सकते हैं। वे अपने घर या ऑफिस में आराम से धन भेज सकते हैं और प्राप्त कर सकते हैं। बैंक की सहायता टीम को फोन करके बैंक स्टेटमेंट और चेक–बुक के बारे में भी पूछ सकते हैं।

**टेलीफोन साक्षात्कार**– कई बड़ी और छोटी कंपनियां टेलीफोन पर प्रारंभिक साक्षात्कार का संचालन करना पसंद करती हैं। साक्षात्कारकर्ता प्रासंगिक प्रश्न पूछता है और यदि जवाब संतोषजनक हैं, तो अंतिम साक्षात्कार के लिये उम्मीदवार को आमंत्रित किया जाता है।



**टेलीफोन विपणन**– टेलीफोन का सबसे बड़ा फायदा विपणन के क्षेत्र में देखा जा सकता है। कंपनियां अपने ग्राहकों को नये उत्पादों के बारे में जानकारी का संचार करती हैं। हालांकि, उत्पादों को बढ़ावा देने के लिये टेलीमार्केटिंग करने वाली कंपनियों द्वारा किये जाने वाले अनावश्यक कॉल से कई बार लोगों को परेशानी होती है।

## दूरभाष के प्रमुख नुकसान

दूरभाष के कुछ प्रमुख नुकसान इस प्रकार हैं–

दूरभाष की लाइनें आंधी तूफान, बरसात आदि में अकसर खराब रहती है। अगर कॉल के प्राप्तकर्ता अनुपलब्ध हैं या किसी और से बात करने में व्यस्त हैं, तो आप बात नहीं कर सकते। न ही कोई संदेश प्रेषित कर सकते हैं। अकसर वह लोग दूरभाष के बिल का भुगतान लंबे समय तक नहीं करते इसीलिए आज वे बंद के कगार पर है।

जब हमें टेलीफोन पर बहुत अधिक कॉल करने के लिए मजबूर किया जाता है, तो हमारी शांति भंग होती है।

टेलीफोन या मोबाइल उपकरणों पर बेकार की गपशप में समय अधिक बर्बाद हो सकता है। टेलीफोन का अक्सर टेली–मार्केटर्स द्वारा दुरुपयोग किया जाता है। बहुत बार टेलीमार्केटर अनावश्यक कॉल करता है और कार्यालय के घंटों के दौरान लोगों को परेशान करता है।

टेलीफोन के अत्यधिक उपयोग से सिरदर्द हो सकता है और स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। इस तरह हमारे जीवन में आपसी संचार में टेलीफोन और मोबाइल फोन के महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कभी–कभी इसका प्रबंधन करने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। दूसरी तरफ यह एक मुश्किल समय में हमारी मदद भी करता है। इस तरह देखा जाये तो टेलीफोन के नुकसान अवष्य हैं लेकिन इसके फायदे भी कई हैं, जिसके कारण यह हमारे दैनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण सहयोगी बना हुआ है।

अंग्रेजी का शब्द Mobile 'मॉडिफाइ ऑपरेशन बाइट इंटीग्रेशन लिमिटेड एनर्जी' (Modify Operation Byte Integration Limited Energy) का संक्षिप्त रूप है। पुराने समय में मोबाइल फोन बड़े आकार के होते थे और सिर्फ बात करने के लिये बनाये जाते थे, लेकिन आज के समय में ऐसा नहीं है। अब हम मोबाइल में इंटरनेट, टेक्स्ट मैसेज और वीडियो कॉलिंग भी कर सकते हैं। सबसे पहले जो मोबाइल फोन बनाया गया था, वह आज की तरह काम नहीं करता था। वह सिर्फ एक रेडियो की तरह संदेश भेजने के काम आया करता था।

दुनिया का सबसे पहला मोबाइल फोन 1973 में मोटोरोला कम्पनी के इंजीनियर जॉन एफ. मिषेल और मार्टिन कूपर द्वारा बनाया गया था। इसका वजन 2 किलोग्राम और कीमत 2 लाख रुपये थी। इसके पश्चात् 1983 में मोटोरोला का ही डायनाटेक 8000 मॉडल आया, जिसकी बैटरी को एक बार चार्ज कर करीब 35 मिनट तक बात की जा सकती थी।

**टिप्पणी**

मार्टिन कूपर ने मैनहट्टन स्थित अपने ऑफिस से न्यू जर्सी में स्थित बेल लैब्स के मुख्यालय में पहला कॉल किया था। मार्टिन कूपर ने आज के समय की अग्रणी मोबाइल कंपनी मोटोरोला के साथ मिल कर इस मोबाइल फोन का निर्माण किया था तथा बाद में वे इस कंपनी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी यानी सीईओ भी बने। मार्टिन कूपर को दुनिया के पहले मोबाइल फोन के निर्माण के लिये साल 2013 में संचार के क्षेत्र में किये गये विलक्षण कार्य के लिये दिये जाने वाले मार्कोनी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

विश्व में सर्वप्रथम ऑटोमेटेड अथवा स्वचालित सेल्युलर नेटवर्क जापान में सन 1979 में शुरू किया गया था। यह एक फर्स्ट जेनरेषन (1जी) सिस्टम था, जिसकी मदद से एक ही बार में कई लोग आपस में कॉल कर सकते थे। इसके बाद 1991 में 2जी टेक्नोलॉजी की शुरुआत फ़िनलैंड में रेडियोलिंजा द्वारा की गयी और 1997 में सर्वप्रथम कैमरे वाले मोबाइल की शुरुआत हुई।

2जी मोबाइल फोन आने के पूरे 10 वर्षों बाद सन 2001 में 3जी मोबाइल फोन का आगमन हुआ, जो जापान की कंपनी एनटीटी डोकोमो द्वारा शुरू किया गया। इन सभी के अलावा मोबाइल फोन के बारे में एक रोचक तथ्य यह भी है कि 1983 से 2014 तक दुनिया भर में लगभग 700 करोड़ मोबाइल फोन का उपयोग किया गया था तथा अब तक सबसे ज्यादा बिकने वाला फोन नोकिया 1100 है।

दुनिया की पहली कॉमर्शियल सेल्युलर फोन सेवा 1979 में एनटीटी नामक जापानी कंपनी ने टोक्यो में शुरू की थी। इसके बाद 1981 में डेनमार्क, फिनलैंड, नॉर्वे और स्वीडन में मोबाइल फोन सेवाएं शुरू हुई थीं, जिसका नाम नोर्दिक मोबाइल टेलीफोन या एनएमटी था। 1983 में अमेरिका के शिकागो शहर में अमेरिटेक नाम से 1जी टेलीफोन नेटवर्क की शुरुआत हुई थी। भारत में पहली मोबाइल फोन सेवा 15 अगस्त, 1995 को दिल्ली में गैर–व्यावसायिक तौर पर शुरू की गयी थी।

## 4.3.2 मोबाइल फोन : अर्थ–महत्व, लाभ एवं नुकसान

आज हमारे दैनिक जीवन में मोबाइल फोन का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है, जिसके बिना हमारे बहुत से कार्य रुक जाते हैं। वैसे तो यह इतनी छोटी चीज है कि हमारी जेब में भी आसानी से आ जाती है, परन्तु इसके द्वारा किये जाने वाले कार्य बहुत ही बड़े हैं। यह हमेशा एक सच्चे दोस्त की तरह हमारी मदद के लिये तैयार रहता है।

आज के समय में कुछ लोगों की जिन्दगी में तो मोबाइल का इतना महत्व हो गया है कि यदि यह उनसे एक पल के लिए भी दूर हो जाये तो वे बेचैनी महसूस करने लग जाते हैं। मोबाइल न सिर्फ हमें देश–दुनिया और परिवार वालों से जोड़ कर रखता है, बल्कि यह हमें हर सवाल के जवाब, मनोरंजन आदि भी उपलब्ध कराता है।

मोबाइल फोन को सेल फोन, सेल्युलर फोन या वायरलैस फोन जैसे बहुत से अलग–अलग नामों से भी जाना जाता है। यह एक ऐसा डिवाइस है, जिसके माध्यम से दो लोग एक–दूसरे से बहुत दूर होते हुए भी आसानी से बात कर सकते हैं। सूचनाओं, सन्दर्भों, तस्वीरों, पुस्तकों आदि का त्वरित आदान–प्रदान कर सकते हैं। अन्य शब्दों में कहा जाये तो यह एक लंबी दूरी का इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस है, जिसका उपयोग मूल रूप से ध्वनि के संचार के लिये किया जाता है।

टिप्पणी

आज के आधुनिक समय में मोबाइल का उपयोग बहुत बढ़ गया है। अब इसका उपयोग न सिर्फ बात करने के लिये किया जाता है, बल्कि संदेश भेजने के लिये, ईमेल, इंटरनेट के माध्यम से ऑनलाइन कार्यों के लिये और गेमिंग, ब्लूटूथ, वीडियो रिकॉर्डिंग, ऑडियो रिकॉर्डिंग के साथ तस्वीरें खींचने, एमपी3 संगीत और रेडियो सुनने, जीपीएस सुविधा का उपयोग करने इत्यादि के लिये भी प्रमुखता से होता है।

मोबाइल फोन आज के समय में एक लत बन गया है, तो दूसरी तरफ इसके उपलब्ध नहीं होने पर हमारे बहुत से कार्य भी रुक जाते हैं। नीचे मोबाइल के कुछ प्रमुख लाभों और नुकसानों के बारे में बताया रहा है।

## मोबाइल के प्रमुख लाभ

मोबाइल की सहायता से हम किसी भी व्यक्ति से घूमते–फिरते कभी भी किसी भी स्थान से बात कर सकते हैं। मोबाइल फोन कॉलिंग के साथ–साथ मैसेजिंग की सुविधा भी प्रदान करता है।

मोबाइल फोन के आने के बाद अलग से एक बड़ा कैमरा उपयोग करने और संभालने की आवश्यकता समाप्त हो गयी है। आज मोबाइल के रोज नये अपडेटेड वर्जन आ रहे हैं, जिनमें 32, 48 यहां तक कि 64 मेगापिक्सल की भी कैमरा आ गया है। ये मोबाइल कैमरा एक बेहतरीन तथा उच्च क्वालिटी के फोटो तथा वीडियो की सुविधा प्रदान करते हैं।

मोबाइल में हम इंटरनेट की सहायता से सोशल मीडिया एप्स जैसे– फेसबुक, इन्स्टाग्राम, वाट्सएप, टेलीग्राम और हाइक आदि का उपयोग कर अपने प्रियजनों से जुड़ सकते हैं।

मोबाइल फोन में कैलकुलेटर की सुविधा का भी उपयोग किया जा सकता है, तथा यह साइंटिफिक कैलकुलेटर होता है, जो अत्यधिक जटिल समस्याओं को भी पल भर में हल कर देता है।

मोबाइल ने समय देखते के लिए घड़ी पहनने की आवश्यकता को भी खत्म कर दिया है। मोबाइल एक छोटा सा गैजेट होता है, जिसे हम आसानी से अपनी जेब में रख कर कहीं भी ले जा सकते हैं तथा यह कंप्यूटर द्वारा किये जाने वाले सभी कार्यों को भी कर लेता है। अब मोबाइल की सहायता से हम कभी भी पैसों का लेन–देन कर सकते हैं तथा हमें बैंक या एटीएम जाने की जरूरत भी नहीं पड़ती है। इसके साथ ही हम मोबाइल से ऑनलाइन शॉपिंग व खाना भी ऑर्डर कर सकते हैं।

मोबाइल से हम गूगल के सभी एप्प जैसे– जीमेल, गूगल मैप, क्रॉम आदि का भी उपयोग कर सकते हैं। मोबाइल हमारे कई घंटों के कार्य को पल–भर में पूरा कर देता है।

## मोबाइल के दुष्परिणाम

अधिक देर तक मोबाइल का उपयोग करने से आंखें खराब होती है जिससे कम दिखायी देने की समस्या हो सकती है।

मोबाइल के अत्यधिक उपयोग से कार्य करने में मन नहीं लगता है और बार–बार ध्यान भटकता है।

मोबाइल के दुष्प्रभाव में याददाश्त का कमजोर होना भी है, क्योंकि हम कुछ भी याद करने की बजाय उसे मोबाइल में सेव कर लेते हैं।

टिप्पणी

मोबाइल नेटवर्क से निकलने वाला रेडियेशन न सिर्फ मनुष्य, बल्कि पशु–पक्षियों के लिये भी बहुत हानिकारक है।

कई लोगों को मोबाइल की लत इतनी ज्यादा होती है, कि वे सड़क पर चलते समय भी मोबाइल का उपयोग करते हैं, जिससे दुर्घटना की सम्भावना बढ़ जाती है। बहुत से युवा दिन भर तेज आवाज में इयरफोन पर गाने सुनते हैं, जिससे कम सुनाई देने की समस्या होने लगती है।

मोबाइल के खतरे में सबसे ऊपर गेम्स की लत है। आज के समय में न सिर्फ बच्चे और युवा, बल्कि उम्रदराज व्यक्ति भी दिन–भर मोबाइल में गेम खेलते रहते हैं।

इसे चलाने के लिए आपको अपने मोबाइल फोन की बैटरी लगभग हर रोज चार्ज करने की आवश्यकता पड़ती है। प्रौद्योगिकी बहुत तेजी से बदलती है। आपको अपने मोबाइल फोन के सॉफ्टवेयर को अद्यतन रखने की आवश्यकता हो सकती है।

एंड्राइड मोबाइल के आने के पश्चात् तो मानो दुनिया ही बदल गयी है। स्मार्टफोन ने आते ही पूरी टेक्नोलॉजी की दुनिया में चमत्कारी और क्रांतिकारी बदलाव कर दिये हैं। इसकी मदद से हम किसी भी ऑनलाइन कार्य को कहीं भी पल–भर में पूरा कर सकते हैं। मोबाइल के आने के बाद लैपटॉप जैसे बड़े गैजेट का भी उपयोग बहुत कम हो गया है।

**अपनी प्रगति जांचिए**

3. तारों से जुड़े, एक स्थान पर स्थित रहने वाले दूरभाष को क्या कहते हैं?

   (क) स्मार्ट फोन (ख) तार रहित टेलीफोन

   (ग) फिक्स्ड फोन (घ) मोबाइल फोन

4. विश्व के प्रथम मोबाइल फोन निर्माता जॉन एफ. मिशेल और मार्टिन कूपर किस कंपनी के इंजीनियर थे?

   (क) सैमसंग (ख) मोटोरोला

   (ग) नोकिया (घ) रिलायंस

## 4.4 हिन्दी की शब्द–संपदा

शब्द उसे ही कहा जाता है जिसका कोई अर्थ हो। निरर्थक शब्द 'शब्द संपदा' में शामिल नहीं होते। अतः शब्दावली का पारिभाषिक होना आवश्यक होता है

जिस प्रकार प्रत्येक समाज की अपनी अलग ही संस्कृति होती है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक भाषा या विषय की अपनी शब्दावली होती है। सभी भाषाओं में पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। भाषा के प्रतीकों और सांकेतिक चिह्नों से वही अर्थ प्रतिबिंबित होते हैं, जो उसे समाज से प्राप्त होते हैं। एक समाज से दूसरे समाज या एक विषय से दूसरे विषय का ज्ञान अर्जित करने के लिए स्रोत भाषा के पारिभाषिक शब्दों को संकल्पना की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए अपनाना ही पड़ता है।

संरचना की दृष्टि से सामान्य शब्द और पारिभाषिक शब्दों में भेद नहीं है, पर अर्थ के स्तर पर अनेक प्रकार से अंतर है। डॉ रघुवीर के शब्दों में, ''पारिभाषिक शब्द का सीधा सा अर्थ है– 'जिसकी परिभाषा दी गई हो या जिसकी सीमाएं बांध दी गई हों'' उदाहरण के लिए– अंग्रेजी शब्द है 'डैकॉइटी' (Dacoity), हिन्दी में उसके लिए 'डकैती' शब्द है, उसकी परिभाषा कर दी गई है कि चार या चार से अधिक व्यक्ति जब डाका डालने आएंगे तो उसे 'डकैती' कहेंगे। इस प्रकार जिन शब्दों की सीमा बांध दी जाती है, वे पारिभाषिक शब्द हो जाते हैं और जिनकी सीमा नहीं बांधी जाती, वे साधारण शब्द होते हैं।

## 4.4.1 शब्दों के प्रकार एवं शब्द–भंडार की संपन्नता

स्रोत या व्युत्पत्ति की दृष्टि से हिंदी में चार प्रकार के शब्द मिलते हैं– (1) तत्सम, (2) तद्भव, (3) देशज और (4) विदेशी।

### 1. तत्सम शब्द

तत्सम उन शब्दों को कहा जाता है जो हिंदी में उसी रूप में प्रचलित हैं, जिस रूप में वे संस्कृत में थे। पुस्तक, कवि, वृक्ष, मनुष्य, मुख, नयन, माता-पिता, जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, समुद्र, नदी आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। इनमें से कुछ शब्द ऐसे हैं जो हजारों वर्षों की विकास यात्रा में भी अपरिवर्तित रहे हैं, जैसे- जल, नदी, फल, देव, पति, गुरु आदि और कुछ ऐसे हैं जो प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं से गुजरते हुए नहीं आए अपितु सीधे संस्कृत से ग्रहण कर लिए गए हैं। जैसे मुख, वृक्ष, पुस्तक, अग्नि आदि। इसी कारण दूसरे वर्ग के शब्दों को तत्सम और तद्भव दोनों रूप मिलते हैं। इनके तद्भव रूप हमें परंपरा से प्राप्त हुए हैं और तत्सम रूप विद्वानों द्वारा सीधे संस्कृत से लिए गए हैं। मुख (मुंह), वृक्ष (रुख), पुस्तक (पोथी), अग्नि (आग), अन्न (अनाज), गृह (घर), क्षेत्र (खेत), जिह्वा (जीभ), हस्त (हाथ), अन्न (अनाज) आदि शब्द इस वर्ग में आते हैं। सामान्यतया इनका तद्भव स्वरूप दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होता है और तत्सम रूप साहित्य लेखन में।

तत्सम शब्दों की एक और भी जाति है। ये वे शब्द हैं जो संस्कृत भाषा में नहीं थे, जिन्हें नयी अभिव्यक्ति के लिए संस्कृत की धातुओं या शब्दों में उपसर्ग और प्रत्यय जोड़ कर आधुनिक काल में गढ़ा गया है। अभियंता (इंजीनियर), संगणक (कम्प्यूटर), लिपिक (क्लर्क), निर्देशक (डाइरेक्टर), वायुयान (हवाई जहाज), नगरपालिका (म्युनिसिपलिटी) आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। इस श्रेणी में वे क्रियाएं आती हैं, जो कृदंत शब्दों में करना, होना आदि जोड़ कर बनायी गयी हैं, जैसे स्वीकार करना, विरोध करना, प्रार्थना करना, निवेदन करना, प्रसन्न होना, मुक्त होना, क्रुद्ध होना, आश्रय देना, शरण लेना आदि।

हिंदी में प्रचलित तत्सम शब्दों की तीन जातियां हैं। कुछ शब्द मूल प्रतिपादित हैं, जैसे- फल, जाल, अग्नि, वस्त्र, कवि, रात्रि आदि। दूसरा वर्ग उन शब्दों का है जो अपने प्रतिपादक रूप में प्रचलित नहीं हैं अपितु प्रथमा विभक्ति के एक वचन के रूप में प्रयुक्त होते हैं, जैसे- माता (मातृ), पिता (पितृ), नेता (नेतृ), राजा (राजन), विद्वान (विद्वस), महान (महत्त), भगवान (भगवत), स्वामी (स्वामिन), मंत्री (मंत्रिन), तीसरा वर्ग उन शब्दों का है जिन्हें न तो मूल रूप में ग्रहण किया गया है और न प्रथमांत रूप में। इन शब्दों में या तो हिंदी की प्रकृति के अनुसार परिवर्तन किया गया है या मिथ्या सादृश्य या अज्ञान से वे परिवर्तित रूप में प्रचलित हो गए हैं, जैसे- चंद्रमा (चन्द्रमस), अप्सरा (अप्सरस्), यश (यशस), तेज (तेजस्), मन (मनस), आधीन (अधीन), प्रण (पण) आदि।

टिप्पणी

कुछ विद्वानों ने अर्द्धतत्सम नाम का भी एक भेद माना है। उन्होंने इस वर्ग में वे शब्द गिनाये हैं जिन्हें हिंदी ने अपनी प्रकृति के अनुसार अपने ढांचे में ढाल लिया है। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग मध्ययुगीन साहित्य में ब्रजभाषा और अवधी में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है। जैसे विरथा (वृथा), परीति (प्रीति), अमरित (अमृत), ग्यान (ज्ञान), जनम (जन्म), मूरख (मूर्ख), अरथ (अर्थ), रिसि (ऋषि) आदि। स्वर भक्ति के द्वारा संयुक्ताक्षरों का सरलीकरण ऋ का रि और ष श का स हो जाना। इन शब्दों को सामान्य प्रवृत्ति के रूप में देखा जाता है। आधुनिक बोलियों में मन्तर (मन्त्र), किरपा (कृपा), सास्तर (शास्त्र), कारज (कार्य), किरिया (क्रिया), अगन (अग्नि), परसाद (प्रसाद) आदि शब्दों में यह सरलीकरण पाया जाता है।

वैसे इन शब्दों की गणना भी तद्भव शब्दों में ही करनी चाहिए। वस्तुतः प्राकृतों और अपभ्रंशों में भी तो ध्वनि परिवर्तन सरलता के आग्रह से ही हुआ है। फिर ध्वनि परिवर्तन एक हो या अनेक, यह स्वरागम हो या स्वर लोप उसके लिए 'अर्द्धतत्सम' जैसा अलग नाम चलाना अवैज्ञानिक है।

### 2. तद्भव शब्द

तद्भव उन शब्दों को कहा जाता है जिनका मूल स्रोत तो संस्कृत ही है परंतु जो पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषा सोपानों से होते हुए हिंदी में आये हैं। इस लंबी यात्रा में उनका रूप-आकार काफी बदल गया है। फिर भी इतना नहीं कि उनके मूल को पहचाना न जा सके। जैसे आँख (< अक्खि < अक्षि), काम (< कम्म < कर्म), आँसू (< अस्सु < अश्रु) आदि।

हिंदी में सबसे अधिक संख्या तद्भव शब्दों की ही है। कुछ वर्गीकृत उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

1. सूरज (< सूर्य), चाँद (< चन्द्र), तारा (< तारक), आग (< अग्नि), पानी (< पानी), धुआँ (< धूम्र), बिजली (< विद्युत),।
2. भाई (< भातृ), बहन (< भगिनी), भतीजा (< भ्रातव्य), भानजा (< भागिनेय), जमाई (< जामातृ)।
3. घर (< गृह), दर (< द्वार), भीत (< भित्ति), गाँव (< ग्राम)।
4. कुम्हार (< कुम्भकार), चमार (< चर्मकार), सुनार (< स्वर्णकार)।
5. नींद (< निद्रा), भूख (< बुभुक्षा), प्यास (< पिपासा), लाज (< लज्जा)।

हिंदी में करना (कृ), जाना (या), हंसना (हस) खाना (खाद), पीना (पा), सुनना (श्रु), पढ़ना (पठ), सिखाना (शिक्ष) आदि ज्यादातर क्रियाएं संस्कृत क्रियाओं से विकसित हुई हैं। अव्ययों में आज (< अद्य), कल (< कल्प), परसों (< परश्वः) आदि में तद्भव शब्दों का आधिक्य है।

### 3. देशज शब्द

'देशज' शब्दों के स्रोत के संबंध में मध्य युग से ही विद्वानों में मतभेद रहा है। चंड ने उन शब्दों को 'देशी प्रसिद्ध' कहा है जो संस्कृत और प्राकृत से न लिए गए हों। रूद्रट ने अज्ञात व्युत्पत्ति मूलक शब्दों को देशज माना है। आचार्य हेमचंद्र ने तो देशी शब्दों का एक कोश भी तैयार किया था 'देसीनाममाला'। उसमें संगृहीत शब्दों के संबंध में वे लिखते

हैं- "मैंने यहां उन शब्दों को निबद्ध किया है जो संस्कृत व्याकरण से सिद्ध नहीं होते जो संस्कृत शब्द कोष में नहीं हैं और जिनकी व्युत्पत्ति लक्षणा से भी सिद्ध नहीं होती।"

पाश्चात्य विचारकों में भी यह मत भिन्नता विद्यमान है। जोन बीन्स ने परंपरागत मान्यता को स्वीकार करते हुए लिखा है, "देशज वे शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत से नहीं हुई जो देशी भाषाओं से ग्रहण किए हुए माने जाते हैं या जिन्हें आर्यों ने ही संस्कृतोत्तर काल में गढ़ा है।" उधर पिशेल की मान्यता है कि ये शब्द प्रादेशिक रहे होंगे और बाद में सार्वदेशिक प्राकृत में सम्मलित कर लिए होंगे।

पिशेल का मत अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। जिन शब्दों को हम संस्कृत के स्रोतों से नहीं जोड़ पाते, उन्हें देशज कह देना सर्वथा अवैज्ञानिक है। यह संभव नहीं कि हमारा संस्कृत के सभी शब्दों से परिचय हो या सभी तद्भव शब्दों के ध्वनि परिवर्तन को हम ठीक-ठीक समझ पाते हों।

सभी मतों को स्वीकार करते हुए हम देशज शब्दों को 4 वर्गों में बांट सकते हैं–

**(क) आर्येत्तर भारतीय भाषाओं से गृहीत शब्द–** भारत में आर्य, द्रविड़, आग्रेय आदि कई परिवारों के लोग रहते हैं। इन परिवारों की भाषाओं में बड़े पैमाने पर शब्दों का आदान-प्रदान हुआ है। हिंदी में इस प्रकार के शब्दों की संख्या उपेक्षणीय नहीं है। कुछ वर्गीकृत शब्द निम्नलिखित हैं–

- **द्रविड़ शब्द**- अनल, काजल, नीर, पंडित, माला, मीन, काक, कानन, चन्दन, चतुर, ताल, दण्ड, बक, बिडाल, मुकुट आदि।
- **आग्रेय शब्द**- केला, कपास, ताम्बूल, सरसों, नीम, गुड़, दाड़िम, नारियल आदि।

**(ख) अज्ञात व्युत्पत्तिमूलक शब्द** - जिन शब्दों का स्रोत अज्ञात है, उन्हें इस वर्ग में रखा जाता है। जैसे- कबड्डी, खादी, घूंट, चूहा, झगड़ा, टीस, ठेस, धब्बा, पेड़ आदि।

**(ग) अनुकरणात्मक शब्द**- ध्वनि, दृश्य आदि के अनुकरण पर गढ़े गये शब्द इस वर्ग में आते हैं, जैसे कांव-कांव, चूं-चपट, फुसफुसाहट, बकवास, फटकार, भोंपू, सीटी, फटफटी, जगमगाहट, झिलमिलाहट, चकाचौंध, चिपचिपा, लिचलिचा।

**(घ) संस्कृतोत्तर काल में गढ़े गए शब्द**- इस श्रेणी में कई प्रकार के शब्द आते हैं, जैसे-

- **पारिवारिक संबंधों के वाचक शब्द–** चाचा, काका, मामा, बाबा, दादा, नाना आदि।
- **सार्थक-निरर्थक युग्म–** खाना-वाना, चाय-वाय, रोटी-वोटी, उल्टा-सुल्टा, ताना-बाना, आमने-सामने आदि।

वस्तुत: शब्दों के स्रोतों का अध्ययन एक जटिल काम है। इसके लिए वैज्ञानिक दृष्टि और निर्दोष मानदंडों की जरूरत है। केवल अनुमान पर आधारित निष्कर्षों को प्रमाण नहीं माना जा सकता।

## 4. विदेशी शब्द

इस वर्ग में वे शब्द आते हैं जिन्हें हमने अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि विदेशी भाषाओं से लिया है। जब हिंदी अपभ्रंश की उत्तरवर्ती स्थिति को छोड़कर अस्तित्व में आने का प्रयास कर रही थी, तभी से विदेशी आक्रमणकारियों की टुकड़ियां पश्चिमोत्तर सीमाओं से भारत में प्रवेश करने लगी थीं। धीरे-धीरे मुसलमान शासकों ने यहां

अपनी सत्ता स्थापित कर ली और उनकी भाषा और संस्कृति व्यापक भारतीय भाषा और संस्कृत का अंग बन गई। शताब्दियों के इस संपर्क के कारण हिंदी में अरबी, फारसी और तुर्की के हजारों शब्द घुल मिल गए।

**टिप्पणी**

अत: विदेशी शब्दों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं– (1) फारसी-अरबी शब्द, (2) अंग्रेजी शब्द।

**1 (क) फारसी शब्द**- फारसी के साथ भारतीय भाषाओं का संबंध काफी पुराना है। दोनों एक ही परिवार की भाषाएं हैं और प्राचीन फारसी और संस्कृत में सैकड़ों समान शब्द मामूली से ध्वन्यात्मक अंतर के साथ विद्यमान हैं। मुसलमानों के शासन काल में भी फारसी के साथ हमारा घनिष्ठ संबंध रहा है। फलस्वरूप उसके शब्द हमारी शब्दावली में इस तरह घुल-मिल गए हैं कि खुशामद, शिकायत, मुफ्त, ताजा जैसे शब्दों के लिए हमें हिंदी शब्द सोचने की भी आवश्यकता नहीं होती। अरबी के शब्द भी हिंदी में फारसी के माध्यम से ही आये हैं। तुर्की आदि अन्य भाषाओं के भी इक्का-दुक्का शब्द अरबी-फारसी में मिल गए हैं। कुछ वर्गीकृत शब्द निम्नलिखित हैं–

- कमीज, सलवार (< शलवार), पायजामा, जुराब।
- शहर, मुहल्ला, देहात, तहसील, जिला।
- अनार, अंगूर, बादाम, तरबूज, खरबूजा, सेब।
- मकान, दरवाजा, दीवार, बरामदा।
- कम, ज्यादा, नरम, सख्त, परेशान, बेईमान, आसान।

**1 (ख) अरबी शब्द–** मुकदमा, इन्साफ, फैसला, किताब, कलम, हकीम, मरीज, नुस्खा, मजहब, कत्ल आदि शब्दों का स्रोत अरबी है। ये शब्द फारसी से होकर आये हैं। अत: अरबी और फारसी शब्दों की अलग-अलग पहचान कठिन है और अनावश्यक भी।

**2. अंग्रेजी शब्द–** अंग्रेजी शब्दों में से बहुत कम ऐसे हैं जिन्हें भारतीय भाषाओं ने सहजता से ग्रहण किया है। वैसे भी ऐसे शब्दों को हमने अपनी भाषा के ढांचे में ढाल लिया है और वे हिंदी के अपने शब्द बन गए हैं। लालटेन, अलमारी, ब्रुश, तिजोरी, कंपनी, स्कूल, स्टेशन, रपट, अपील, क्रिकेट, हॉकी, पेंट, कोट, बुशर्ट आदि शब्द इस वर्ग में आते हैं। परंतु बड़ी संख्या उन शब्दों की है जिन्हें शिक्षित वर्ग ने स्वातंत्र्योत्तर काल में अपनाया है। वस्तुत: पिछले दो-तीन दशकों में पाश्चात्य संस्कृति और जीवन शैली ने महानगरीय और नगरीय मध्यम वर्ग को बहुत गहराई तक प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप हजारों अंग्रेजी शब्द हमारी भाषा में मिल गए हैं, जैसे–

- शर्ट, पेंट, टाई, स्वेटर, कोट, सूट, बूट, सैन्डल, स्लीपर, ब्लाउज।
- बिस्कुट, केक, चाकलेट, कॉफी, आइसक्रीम।
- हॉल, रूम, किचन, गैलरी, बाल्कनी, बाथरूम।
- ड्राइवर, प्लम्बर, कंडक्टर, वेल्डर, वेटर, कुली, अफसर।
- मशीन, ट्रैक्टर, पंप, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, कैमरा।
- बस, रिक्शा, टैक्सी, ट्रेन, कार, स्कूटर, साइकिल, टैंकर।
- स्कूल, कॉलेज, पोलीटेक्नीक, यूनिवर्सिटी, प्रोफेसर, प्रिंसिपल।

कुछ अन्य यूरोपीय भाषाओं के शब्द भी हिंदी में आये हैं, जैसे- कूपन, कारतूस (फ्रेंच), पाव, पिस्तौल (पुर्तगाली), बम (घोड़ा गाड़ी का), (डच) आदि किंतु इस प्रकार के शब्दों की संख्या बहुत कम है। अत: स्रोत की दृष्टि से उनका कोई महत्व नहीं है।

विदेशी शब्दों के अतिरिक्त हिंदी में कुछ ऐसे शब्द भी प्रचलित हैं, जिन्हें 'संकर' या 'मिश्रित' शब्द कह सकते हैं। वे या तो तत्सम या तद्भव शब्दों के साथ विदेशी शब्दों के साथ विदेशी शब्दों के समास से बने हैं या उनमें प्रयुक्त प्रकृति (मूल शब्द) प्रत्यय और उपसर्ग भिन्न-भिन्न भाषाओं के हैं।

मोटर गाड़ी (अंग्रेजी + हिंदी) समास

यात्रा कंपनी (हिंदी + अंग्रेजी) समाज

रेल गाड़ी (अंग्रेजी + हिंदी) समास

बस चालक (अंग्रेजी + हिंदी) समास

बेनाम (फारसी + हिंदी) उपसर्ग + संज्ञा

घराना (हिंदी + फारसी) संज्ञा + प्रत्यय

चोर दरवाजा, जेबकतरा, छमाही, मच्छरदानी, रेलगाड़ी, कोचवान, दीवारघड़ी, चोरबाजारी, फूलदान, पायदान, थानेदार, सरपंच आदि अनेक शब्दों में इस प्रकार का संयोग देखने को मिलता है।

### शब्द भण्डार की संपन्नता

कोई भी भाषा अपने शब्द-भण्डार की विशालता के आधार पर समृद्ध कहलाती है। जिस भाषा का शब्द भण्डार जितना बड़ा होता है उतनी ही अधिक वह समृद्ध कही जाती है। इस दृष्टि से हिंदी भाषा का शब्द-भण्डार पर्याप्त समृद्ध है। कहने को तो कहा जाता है कि संसार की समृद्धतम भाषा है, अंग्रेजी। किंतु यह उस संकुचित दृष्टि के आधार पर कहा जाता है जो केवल अधोलंब (vertical) नजरिए से देखती है और क्षैतिज धरातल पर देखने की क्षमता से वंचित है। संभव है अधोलंब दृष्टि से अंग्रेजी में शब्दों का पहाड़ खड़ा किया जा रहा हो, किंतु उसमें एक शब्द का दूसरा पर्याय खोजना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में पानी को वॉटर (Water) कहा जाता है, किंतु इसका अर्थ जब अंग्रेजी के शब्द-भण्डार में खोजें तो विकल्प के अभाव में वहां मिलती है, केवल लंबी सी परिभाषा-

a clear liquid, without colour or taste, that falls from the sky as rain and is necessary for animal and plant life. (एक साफ बेरंग तरल पदार्थ जो आसमान से वर्षा के रूप में गिरता है व पशुओं और पौधों के जीवन के लिए अनिवार्य है।)

दूसरी ओर हिंदी में पानी के लिए-जल, वारि, नीर, सलिल, उदक आदि पर्यायवाची शब्दों का पर्याप्त भण्डार है। इस तरह की संसार की समृद्धतम कही जाने वाली अंग्रेजी भाषा क्षैतिज नजरिए से हिंदी के सामने बहुत दरिद्र है। जबकि समृद्ध पर्यायवाची भण्डार के बल से हिंदी में श्रेष्ठ साहित्य रचना के उदाहरण देखे जा सकते हैं। इस संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस में वह प्रसंग देखते ही बनता है, जब दसमुख रावण समुद्र पर सेतु बनने के समाचार को सुनकर व्याकुल होकर समुद्र के दस पर्यायवाचियों के नाम बोल उठता है-

*बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।*
*सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीसम*

(वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीश को क्या सचमुच ही बांध लिया?)6/5 रामचरितमानस।

**टिप्पणी**

इसी प्रकार कामायनी में जयशंकर प्रसाद द्वारा निम्नलिखित पंक्तियों में शब्द प्रयोग भी आकर्षित करता है-

*बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिंता तेरे हैं कितने नाम*
*अरी पाप है तू, जा, चल जा, यहाँ नहीं कुछ तेरा काम।*
*विस्मृति आ, अवसाद घेर ले, नीरवते बस चुप कर दे,*
*चेतनता चल जा, जड़ता से, आज शून्य मेरा भर दे।*

## शब्द भण्डार में अनेकार्थता

इतना ही हिंदी में कई शब्द अनेकार्थी भी हैं, जिनसे साहित्य में रोचक व चमत्कारिक प्रयोग देखने को मिलते हैं। ऐसा ही एक कवि के द्वारा किया गया प्रयोग देखने योग्य है-

*डारो कुरंग सुरंग में साही खरी बिलाय।*
*महिषी कुतिया लोमरी गज बकरो हरि गाय।।*

सामान्य अर्थ-सुरंग में हिरण, साही, गधी, बिलाव, भैंस, कुतिया, लोमड़ी, हाथी, शेर और गाय को डाला गया।

विशेष अर्थ को प्राप्त करने के लिए कुछ अंतरालों का परिवर्तन करके इस दोहे को पुनः इस प्रकार लिखना पड़ता है (हालांकि बोलने में अंतर नहीं आता)-

*डारो कुरंग सुरंग में साही खरी बिलाय।*
*महिषी कुतिया लो मरी गजब करो हरि गाय।।*

विशेष अर्थ- रंग में भंग डाल दिया, मानो साफ जगह पर स्याही बिखरा दी (सामान्य कार्य बाधित हो गए)। महारानी से लेकर कुतिया तक मर मिटीं, हरि (कृष्ण) ने गाकर गजब कर दिया (अर्थात कृष्ण की बांसुरी सुनकर लोगों ने सुध-बुध बिसराकर अपने सामान्य कार्य छोड़ दिए)।

## शब्द भण्डार की कोमलता व कठोरता

हिंदी के शब्द भण्डार के सौंदर्य की एक विशेषता यह भी है कि इसमें कठोर प्रसंगों के लिए जहां कर्कश शब्द उपलब्ध हैं, वहीं कोमल प्रसंगों के लिए कोमलकांत पदावली के भी कवियों ने मनमोहक प्रयोग किए हैं। कठोर पदावली की एक झलक युद्धभूमि में, निराला की पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

प्रतिपल - परिवर्तित - व्यूह - भेद कौशल समूह
राक्षस - विरुद्ध प्रत्यूह,-क्रुद्ध - कपि विषम हूह,
विच्छुरित वह्नि - राजीवनयन - हतलक्ष्य - बाण,
लोहितलोचन - रावण मदमोचन - महीयान,
राघव-लाघव - रावण - वारण - गत - युग्म - प्रहर,

टिप्पणी

उद्धत - लंकापति मर्दित - कपि - दल-बल - विस्तर,
अनिमेष - राम-विश्वजिद्दिव्य - शर - भंग - भाव,
विद्धांग-बद्ध - कोदण्ड - मुष्टि - खर - रुधिर - स्राव,
रावण - प्रहार - दुर्वार - विकल वानर - दल - बल,
मूर्च्छित - सुग्रीवांगद - भीषण - गवाक्ष - गय - नल,
वारित - सौमित्र - भल्लपति - अगणित - मल्ल - रोध,
गर्ज्जित - प्रलयाब्धि - क्षुब्ध हनुमत् - केवल प्रबोध,
उद्गीरित - वह्नि - भीम - पर्वत - कपि चतु:प्रहर,
जानकी - भीरु - उर - आशा भर - रावण सम्वर।

दूसरी ओर वसंत के वर्णन में लालित्य पदावली के उपासक सुमित्रानंदन पंत की कोमल शब्दावली भी दर्शनीय है-

*किसका पूजन करती पल पल*
*बाल-चपलता से अपनी?*
*मृदु-कोमलता से वह अपनी,*
*सहज-सरलता से अपनी?*

## शब्द भण्डार में नवीन शब्दों का प्रवेश

इसमें संदेह नहीं कि अंग्रेजी में नई-नई तकनीकी आवश्यकताओं के लिए नए-नए शब्दों का निर्माण हो रहा है किंतु उन्हीं शब्दों के पर्यायों का निर्माण हिंदी में भी हो रहा है और हिंदी के शब्द-भण्डार में निरंतर वृद्धि का समावेश हो रहा है। ये पारिभाषिक शब्द विद्वान मंडली द्वारा बनाए जाते हैं। हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली में प्राय: हिंदी के प्रचलित शब्दों का संकलन नहीं किया जाता। आवश्यकता के अनुसार नवीन उपकरणों, वस्तुओं व क्रियाओं के लिए जो अंग्रेजी शब्द प्रस्तुत होते हैं उनका इस तरह का अनुवाद बनाया जाता है कि वे उन नवीन उपकरणों, वस्तुओं व क्रियाओं के पर्याय के रूप प्रयोग किए जा सकें। अंग्रेजी भाषा-समाज से प्राप्त तकनीक के ग्रहण के कारण इसकी आवश्यकता का जन्म हुआ है। अपनी ही भाषा में नवीन उपकरणों, वस्तुओं व क्रियाओं के लिए उनके पर्यायों के अभाव को दूर करना भाषाशास्त्रियों का अनिवार्य कर्तव्य बन जाता है। उसी भाषा-समाज की शब्दावली के ग्रहण के बजाय अपनी भाषा की शब्दावली का विकास करना तभी संभव होता है जब भाषा में ऐसी क्षमता विद्यमान हो। इस दृष्टि से हिंदी पर्याप्त संपन्न है। हिंदी का आधार उसकी जननी संस्कृत भाषा है जिसमें चार हजार से अधिक ऐसे धातु-शब्द (Root Words) हैं जिनसे असंख्य असीम शब्दों का निर्माण संभव है। हिंदी के पारिभाषिक शब्द भण्डार पर दृष्टि डालने पर इस बात को सहज ही समझा जा सकता है कि पारिभाषिक शब्दावली में संस्कृत संजीवनी का काम कर रही है। इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए डॉ. रमाकांत शुक्ल ने कहा था, ''जब संस्कृत जननी के रूप में हिंदी की संजीवनी का भी काम कर रही है, तब उसे मृत भाषा कहना अज्ञान की पराकाष्ठा ही कहा जा सकता है।'' इस बात को समझने के लिए निम्नलिखित उदाहरणों को देखा जा सकता है, जिनमें संस्कृत के उपसर्गों, धातुओं व प्रत्ययों का प्रयोग करते हुए पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया गया है-

टिप्पणी

आकार ग्रहण प्रक्रिया (Structure Formation), आपेक्षिक/सापेक्ष घनत्व (Relative density), आयाम (amplitude), ऊर्जा संरक्षण (Energy Conversation), गुरुत्विय वक्रता (Gravitational lensing), तापमापी (Thermometer), यांत्रिक तरंग (Mechanical wave), तरंगदैर्घ्य (wave-length), प्रणोद (Thrust), बृहत एकीकृत सिद्धांत (Grand Unification Theory), महा विस्फोट केन्द्रीय संश्लेषण (Big Bang Ncleosynthesis), संसर्जक बल (cohesive force)।

इस प्रकार हिंदी में तकनीकी पर्यायों का निर्माण अभ्यास साध्य अवश्य है किंतु किसी भी दृष्टि से असंभव नहीं है। इस पर्याय भाषा-समाज से तकनीकी निर्माण की संकल्पना में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अनुवाद प्रक्रिया भी निहित है क्योंकि मौलिक विशेषज्ञ ज्ञान और अनुवाद पर्याय के बीच एक मध्यस्थ शब्दावली की स्थिति रहती है, जैसे भारत के संदर्भ में अंग्रेजी शब्दावली मध्यस्थ शब्दावली की भूमिका निभा रही है। इस प्रकार शब्दावली का निर्माण सरल-प्रक्रिया नहीं है। अनेक मत, सिद्धान्त, प्रयोग और उपयोगिता का आधार लेकर पारिभाषिक शब्दावली निर्मित की गई। दो अलग-अलग संस्कृति में शब्दों के पर्याय निश्चित करना अत्यंत कठिन कार्य रहा है किन्तु आधुनिक ज्ञान और विज्ञान के संप्रेषण के लिए सांस्कृतिक परम्परा का त्याग भी करना पड़ता है। भारतीय संविधान में राजभाषा के रूप में हिंदी की स्वीकृति के पश्चात् यह तय किया गया कि अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी की ज्ञान विज्ञान तथा प्रशासन की शब्दावली तैयार की जाए जिससे प्रशासनिक कार्यों, शिक्षा तथा न्याय के लिए विदशी भाषा के स्थान पर हिंदी का प्रयोग किया जा सके।

पारिभाषिक शब्दावली के द्वारा हिंदी के प्रयोजनीय पक्ष की आवश्यकता की पूर्ति के साथ हिंदी के शब्द भण्डार की वृद्धि-यात्रा सतत गतिशील दिशा व दशा में है।

## 4.4.2 शब्द संपदा के प्रमुख स्रोत

हिन्दी भाषा में पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता और अपरिहार्यता को देखते हुए इसके निर्माण के कई स्रोतों का उपयोग वांछित है। भारतीय विद्वानों ने इसके निमित्त निम्नलिखित स्रोतों के उपयोग पर बल दिया है– (क) संस्कृत, (ख) भारतीय भाषाएं, (ग) विदेशी भाषाएं, (घ) अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयुक्त शब्दावली।

(क) **संस्कृत–** संस्कृत भाषा में न केवल शब्दों का विशाल भंडार है, बल्कि इसमें नए शब्दों के निर्माण की अपार क्षमता है। पारिभाषिक शब्दावली की मांग नए शब्दों के निर्माण से ही पूरी हो सकती है। हर भाषा में नए-नए शब्दों के निर्माण की क्षमता नहीं होती। यह क्षमता सिर्फ चीनी, लैटिन तथा संस्कृत भाषा में निहित है। हमारे लिए संस्कृत से श्रेष्ठ कोई वैकल्पिक स्रोत नहीं है। इसलिए कई प्रमुख विद्वानों ने संस्कृत भाषा को ही शब्दावली निर्माण के लिए श्रेष्ठतम स्रोत की संज्ञा दी है। इनमें डॉ. रघुवीर का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वे संस्कृत व्याकरण एवं शब्द भंडार को हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के लिए उपयुक्त मानते हैं। उनकी मान्यता है कि संस्कृत के 600 धातुओं, 26 परसर्गों तथा 80 प्रत्ययों की सहायता से लाखों, करोड़ों शब्दों का मनोवांछित निर्माण संभव है। उन्होंने इससे किसी अन्य भाषा से शब्दों के ग्रहण से परहेज किया। उन्होंने बल देते हुए कहा, 'जो भाषा विजातीय हैं और जिनकी जड़ें हमारी धरती से नहीं उपजी हैं, उनके शब्द हमारे लिए उधार के शब्द होते हैं। उधार के शब्दों को अंगीकार करने में सश्रम प्रयत्न करना पड़ता है।

टिप्पणी

ऐसे शब्दों की अर्थवत्ता एवं प्रयोगधर्मिता से रू-ब-रू होना कोई सहज कार्य नहीं। उसमें श्रम एवं धन दोनों की बर्बादी है। अंग्रेजी के शब्द हमारे लिए ऐसे ही उधार के शब्द हैं क्योंकि इनकी जड़ें ग्रीक और लेटिन भाषाओं में हैं। इसके विपरीत संस्कृत हमारी अपनी भाषा है। लगभग सभी भारतीय भाषाओं में उसकी जड़ें फैली हुई हैं। इसके आधार पर बनाए गए शब्द हमारे लिए स्पष्ट एवं पारदर्शी होंगे। यदि किसी को संस्कृत व्याकरण का थोड़ा-सा भी ज्ञान हो जाए तो नए शब्दों के अर्थ उसके लिए सहज एवं सुबोध हो जाएंगे।' हिन्दी में संस्कृत भाषा को स्रोत मानकर डॉ. रघुवीर ने पारिभाषिक शब्दावली का जो बहुमूल्य उपहार हिन्दी को सौंपा है, उसके लिए हिन्दी भाषा सदैव उनकी ऋणी रहेगी।

(ख) **भारतीय भाषाएं–** अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी पयार्य के लिए अन्य भारतीय भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किए गए हैं। असमिया, बंगला, तमिल, तेलुगु, मराठी इत्यादि भाषाओं में उपलब्ध विकल्प जो राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित होने योग्य हैं, उन्हें पारिभाषिक शब्दावली में स्थान मिला है। उदाहरण के लिए Impersonation शब्द का अनुवाद 'रूपारोप' बंगला भाषा से 'Amateier' के लिए 'औत्साहिक' शब्द तेलुगु भाषा से लिया गया है। ये शब्द लगते ही नहीं कि हिन्दीतर शब्द हैं। इसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं से आयात किए गए शब्द भी हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली में अच्छी संख्या में उपलब्ध हैं।

संपूर्ण देश के हित में एक ही समान पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अनिवार्य है। यह केवल हिन्दी में ही संभव है। इसलिए अन्य भारतीय भाषाओं के बहु प्रचलित शब्दों को पारिभाषिक शब्दावली में शामिल तो किया गया है, लेकिन वैज्ञानिक शब्दावली निर्माण की प्रक्रिया हिन्दी भाषा में ही हुई और हो रही है। यह उचित भी था।

(ग) **विदेशी भाषाएं–** भारत देश काफी समय तक गुलाम रहा परंतु यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि समस्त भारत कभी गुलाम नहीं रहा साथ ही गुलामी के समय में भी निरन्तर स्वतंत्रता हेतु प्रयास निरंतर जारी रहे। यवनों, मुगलों और यूरोप की जातियों ने यहां शासन किया। परिणामत: यहां मुसलमानों के साथ फारसी, अरबी भाषाएं आईं तो अंग्रेजों के साथ पुर्तगाली और अंग्रेजी। इन विदेशी भाषाओं के शब्द हिन्दी भाषा में प्रचलित होते चले गए। इनमें से हजारों शब्द हिन्दी और उसकी विविध बोलियों में इतने घुल-मिल गए हैं कि लगते ही नहीं कि ये शब्द विदेशज हैं। इन विदेशज शब्दों को हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली के अंतर्गत स्थान मिला है। उदाहरणार्थ- मुआवजा, आबकारी, लाइसेंस, रॉयल्टी, पेट्रोल, डीजल इत्यादि शब्द विदेशज हैं, किंतु भारतीय जनता की जुबान पर चढ़कर बहुप्रचलित हो गए हैं।

(घ) **अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयुक्त शब्द–** हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयुक्त कई शब्दों को थोड़े परिवर्तन के साथ या फिर यथावत रूप में भी ग्रहण किया गया है। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेने की संस्तुति डॉ. शांति भटनागर, डॉ. जे.सी. घोष, डॉ. लूथरा, डॉ. बीरबल इत्यादि विद्वानों ने की थी। लेकिन यह संस्तुति आगे चलकर विवादों से घिर गई। इस वर्ग के समर्थक विद्वानों को 'ग्रहणवादी' या 'स्वीकारवादी' इत्यादि नामों से संबोधित किया जाता है। इस वर्ग के विद्वानों का

टिप्पणी

मत है कि इससे अनेक लाभ हैं, जैसे- "इससे शब्द निर्माण तथा प्राचीन साहित्य से शब्द तलाशने का श्रम नहीं करना पड़ेगा और सबसे बड़ी बात यह है कि इन शब्दों के ग्रहण से हम अंतर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली से जुड़े रहेंगे, इससे कार्यरत वैज्ञानिकों को सुविधा होगी और उन्हें नयी शब्दावली से परिचित होने के लिए अपना अतिरिक्त समय व्यय नहीं करना पड़ेगा।"

वस्तुत: हर देश का नागरिक अपने अनुकूल शब्दों का उच्चारण करने का अभ्यस्त होता है। एक ही शब्द अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग ढंग से उच्चारित होने लगता है। एक शब्द तक में स्वरूपगत और उच्चारणगत एकरूपता जब संभव नहीं है तो संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली का उपयोग करने पर भी अंतर्राष्ट्रीय एकता की बात कोरी कल्पना है। इसलिए भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के शब्दावली आयोग एवं केंद्रीय हिन्दी निदेशालय ने पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में मध्यम मार्ग का अनुसरण करना उचित समझा है। यही कारण है कि हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली में संस्कृत, लोक भाषाएं, अन्य भारतीय भाषाओं, विदेशज शब्द और अंग्रेजी भाषा के भी लोक प्रचलित शब्दों को स्थान मिला है। अंग्रेजी के कुछ शब्दों का अनुकूलन विधि द्वारा हिन्दीकरण किया गया है। इसके अतिरिक्त नए हिन्दी शब्दों का निर्माण भी किया गया है। आवश्यकतानुसार गृहीत शब्दों में उपसर्ग-प्रत्यय लगाकर नए पारिभाषिक शब्दों के निर्माण से हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली की यथेष्ट श्रीवृद्धि हुई है।

### अपनी प्रगति जांचिए

5. इनमें से क्या पारिभाषित शब्द निर्माणक प्रविधि नहीं है?
   (क) कल्पनात्मक विधि (ख) उपसर्ग विधि
   (ग) प्रत्यय विधि (घ) अनुवाद विधि
6. मूलतः संस्कृत से निःसृत लेकिन पालि, प्राकृत, अपभ्रंश जैसे भाषा सोपानों से होकर आने से अपने बदले रूप में हिन्दी में उपलब्ध शब्द क्या कहलाते हैं?
   (क) तत्सम (ख) तद्भव
   (ग) देशज (घ) विदेशी

## 4.5 अनुवाद : अर्थ, प्रकार एवं अभ्यास

अनुवाद की प्रक्रिया जटिल है। इसको परिभाषित करना भी उतना ही जटिल है। अनुवाद के अर्थ एवं परिभाषाओं के इस प्रकार समझा जा सकता है–

**डॉ. भोलानाथ तिवारी** के अनुसार, ''भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद हैं इन्हीं प्रतीकों का प्रति–स्थापन अर्थात एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा में निकटतम (कथनतः और कथ्यतः) समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग। इस प्रकार अनुवाद निकटतम, समतुल्य और सहज प्रति–प्रतीकन है।''

**ए.एच. स्मिथ** के अनुसार, "अर्थ को बनाए रखते हुए अन्य भाषा में अंतरण करना अनुवाद है।''

टिप्पणी

अनुवाद की कोई सर्वसम्मत निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती है। वास्तव में, अनुवाद मूल भाषा में अभिव्यक्त विचार, वक्तव्य रचना अथवा सूचना साहित्य को यथासंभव मूल भावना के समानांतर बोध एवं संप्रेषण के धरातल पर जिसमें अनुवाद किया जाए उसे अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया है।

**परिभाषा**– अनुवाद की प्रक्रिया जितनी जटिल है उसको परिभाषित करना भी उतना ही जटिल है। फिर भी अनेक मनीषियों, भाषाविदों तथा अनुवादकों ने इसे इस प्रकार से परिभाषित किया है–

**डॉ. स्टर्ट** के अनुसार, ''अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की वह शाखा है जिसका घनिष्ठ संबंध किसी एक सुनिश्चित प्रतीक समूह को दूसरे विन्यासगत प्रतीक समूह में अंतरित करने की प्रक्रिया अथवा समस्या से होता है।'' अनुवाद में अर्थ को प्रधानता देते हुए उन्होंने कहा था कि "अर्थ हमारे विचार में भाषा गुणधर्म है।'' किसी भी स्रोत भाषा के पाठ का अर्थ अपना होता है और लक्ष्य भाषा के पाठ का अर्थ भी अपना होता है।

**डॉ रवींद्रनाथ श्रीवास्तव** के अनुसार, "एक भाषा की पाठ सामग्री में अंतर्निहित तथ्य का समतुल्यता के सिद्धांत के आधार पर दूसरी भाषा में संगठनात्मक रूपांतरण अथवा सर्जनात्मक पुनर्गठन ही अनुवाद कहा जाता है।''

**डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर** के अनुसार, "अनुवाद की प्रविधि एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित करने तक सीमित नहीं है। एक भाषा के एक रूप के कथ्य को दूसरे रूप में प्रस्तुत करना भी अनुवाद है। छंद में बताई गई बात को छंद में उतारना भी अनुवाद है।''

**डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया** के शब्दों में, ''अनुवाद वह प्रविधि है जिसके माध्यम से एक भाषा में कही गई बात को/विचार को/सामग्री को दूसरी भाषा में उसी क्षमता के अनुसार कह दिया जाता है।"

The Oxford Universal Dictionary में भी कहा गया है– "The action of process of turning from one language into another, also the product of this, a version in a different language." अर्थात एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरण की कार्यवाही अथवा प्रक्रिया, साथ ही इसका उत्पादन जो अलग तरह की भाषा में होता है (अनुवाद है)।

विभिन्न विद्वानों द्वारा अनुवाद के संदर्भ में प्रस्तुत परिभाषाओं के अवलोकन के पश्चात अनुवाद की मूल परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है–

"मूल पाठ में निहित भावों, विचारों को अन्य (लक्ष्य) भाषा में अक्षुण्ण रूपांतरित करने एवं सौंदर्य उपकरणों को सहज रूप से अभिव्यक्त करने की संप्रेषण प्रक्रिया अनुवाद है।''

## 4.5.1 अनुवाद : सिद्धांत एवं व्यवहार

अनुवाद का प्रारंभ कब और किस प्रकार हुआ यह नहीं कहा जा सकता लेकिन यह अवश्य निश्चित किया गया है कि धन प्रचार के लिए अनुवाद की आवश्यकता हुई थी। अनुवाद के सिद्धांत एवं व्यवहारों के अनुसार उसे निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया गया है।

## अनुवाद के प्रमुख सिद्धांत

1. **प्रेरणावादी सिद्धांत**– इस सिद्धांत के अनुयायी इस बात के पक्षधर हैं कि लक्ष्य भाषा के वाक्य विन्यास को बहुत अधिक ध्यान में रखकर केवल अर्थ का अनुवाद किया जाए।
2. **भाषाशास्त्रीय सिद्धांत**– भाषा शास्त्र के प्रकांड पंडितों ने इस बात पर जोर डाला है कि प्रत्येक शब्द को मूल रचना के अनुसार ही अनूदित करना चाहिए। इनका मानना है कि मूल रचना के शब्दों के क्रम बदल देने से उसके वास्तविक अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।
3. **परंपरावादी सिद्धांत**–इसके समर्थकों का मानना है कि बाइबिल के संदेशों में ईश्वरीय वचन निहित है। इन वचनों के क्रम में परिवर्तन करने का अधिकार किसी को नहीं है क्योंकि शब्दों का क्रम और विन्यास बदल देनें से बाइबिल के उपदेशों की गरिमा में कमी आएगी।

### अनुवाद–व्यवहार

1. **शिक्षा**–ज्ञानार्जन के लिए एक देश के शिक्षार्थी दूसरे देश में और दूसरे देश के शिक्षार्थी किसी और देश में आते–जाते रहते हैं। आजकल शिक्षा दूर–शिक्षण (Distance Education) के आधार पर की जा रही है। इस पद्धति में उपग्रहों के द्वारा दूर–दराज में बैठे लोगों को शिक्षित करने का काम किया जाता है। इस कार्य में अनुवाद सबसे महत्वपूर्ण सहायक तत्व है।

   इसके अलावा अनूदित पुस्तकें शिक्षा के लिए सामग्री उपलब्ध करवाती हैं। भारतीय विद्वानों के शोध विदेशों में वहां की भाषाओं में अनूदित होकर ही उपलब्ध हो रहे हैं तथा विदेशों के विद्वानों के विचार हमारे यहां अनूदित होकर पढ़ाए जा रहे हैं। इस प्रकार शिक्षा अनुवाद का सबसे विशाल क्षेत्र है।
2. **अंतर्राष्ट्रीय संबंध**–आज कोई देश अकेले रहते हुए विकास नहीं कर सकता। अनेक आवश्यकताओं के लिए एक–दूसरे पर निर्भर होना पड़ता है। इस निर्भरता के परिणामस्वरूप भाषाओं के समीप आने से अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है तथा अनुवाद के लिए क्षेत्र बनता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को प्रगाढ़ बनाने के लिए प्रत्येक देश में दूतावासों की व्यवस्था की गई है। इन दूतावासों के माध्यम से सांस्कृतिक आदान–प्रदान के लिए काम होता है जो अनुवाद के सहारे ही संभव हो पाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रयोग होने वाली छह भाषाओं का है।
3. **विज्ञान**–आज का युग विज्ञान का युग है। मनुष्य प्रतिदिन प्रकृति के नए–नए रहस्य खोल रहा है। विज्ञान आधारित ज्ञान का आदान–प्रदान बिना अनुवाद के संभव नहीं है। विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के द्वारा स्थापित किए गए सिद्धांत पूरी दुनिया में अनुवाद के सहारे ही फैलाए जा रहे हैं। विज्ञान का क्षेत्र अनुवाद के लिए बहुत विस्तृत क्षेत्र है।
4. **संचार माध्यम**–यह सूचना क्रांति का समय है। सूचना के अधिकार की चर्चा पूरे विश्व में हो रही है। संसार में घटित घटनाओं का ब्यौरा दुनिया की सभी

भाषाओं में प्रचलित व प्रसारित किया जाता है। आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों एवं दूरदर्शन के सभी केंद्रों से खबरों का प्रसारण निरंतर होता है जो स्थानीय भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से ही संभव हो पाता है।

5. **विधि**—कानून का क्षेत्र भी अनुवाद की मांग करता है। आज हिंदी भले ही राजभाषा के रूप में स्थापित की गई हो लेकिन यह सच है कि भारत के सभी न्यायालयों में पूरा कामकाज अंग्रेजी के माध्यम से ही हो रहा है जिसका अनुवाद देश की भाषाओं में किया जाता है। भारत सरकार ने विधि संबंधी अनुवाद की व्यवस्था अलग से की है। हिंदी के मानकीकृत शब्दों की शब्दावली अलग से तैयार की गई है जो सरकार के प्रतिष्ठानों में काम आ रही है। अनुवाद के कामकाज के लिए "भारत सरकार विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय (विधायी विभाग), राजभाषा खंड" द्वारा तैयार शब्दावली बहुत महत्वपूर्ण दस्तावेज है। कानून के क्षेत्र में अनुवाद की अपार संभावनाएं हैं। आज भी प्रादेशिक भाषाओं में प्रकरण दर्ज होते हैं लेकिन इनकी सुनवाई केवल अंग्रेजी में ही होती है। अंग्रेजी में होने के कारण वकीलों, प्रार्थियों और कर्मचारियों को अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है।

   इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उभरने वाले घटनाक्रमों में भी अनुवाद के माध्यम से ही दस्तावेज तैयार कर प्रस्तुत किए जाते हैं।

6. **पत्राचार कार्यालय**—सरकार का पूरा कामकाज पत्राचार के सहारे ही चलता है। इसके अलावा सरकार के साथ जनता का पत्र व्यवहार भी होता है। देश के विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के लोग सरकार के साथ प्रांतीय भाषाओं में पत्राचार करते हैं जिसका अनुवाद किए बिना कार्य को अंतिम रूप नहीं दिया जा सकता।

   सरकार की राजभाषा नीति के अनुसार धारा 3 के अंतर्गत जारी किए गए सभी कागजात द्विभाषी रूप में ही होते हैं। इसके अलावा देश के 'क' व 'ख' क्षेत्रों से 'ग' क्षेत्रों को भेजे गए सभी पत्रों के साथ उनका अंग्रेजी अनुवाद भेजना आवश्यक होता है। इस काम की पूर्ति के लिए सरकार ने अपने सभी विभागों में अनुवादकों की नियुक्ति की है।

7. **बातचीत**— बातचीत ही अनुवाद की पहली मांग है। देश के विभिन्न प्रांतों के लोग जब आपस में मिलते हैं तो वार्तालाप के दौरान अनुवाद का सहारा लेते हैं। अनुवाद के लिए बातचीत ही सबसे बड़ा क्षेत्र है। इस क्षेत्र में किसी एक विषय विशेष पर नहीं बल्कि सभी विषयों पर चर्चा भी की जाती है। इसी प्रकार दुनिया के नागरिक एक— दूसरे के साथ विचार विनिमय अनुवाद के माध्यम से ही करते हैं।

8. **धर्म**— कहा जाता है कि धार्मिक प्रचार—प्रसार के लिए ही अनुवाद का जन्म हुआ था। ऐसा विश्वास है कि बाइबिल का अनुवाद हिब्रू से लैटिन और अन्य भाषाओं में केवल इसलिए किया गया था ताकि बाइबिल के आदेशों का प्रचार—प्रसार किया जा सके। भारत में ईसाई धर्म के प्रचार—प्रसार के लिए अनुवाद का सहारा लिया गया था। यह भी कहा जाता है कि हिंदी को पूरे राष्ट्र में फैलाने का काम ईसाई मिशनरियों ने किया था। यह प्रचार अपने प्रारंभिक समय में केवल अनुवाद के सहारे ही हुआ था।

9. **राजनीति**– राजनीति में अनुवाद की अपार संभावनाएं हैं। इन संभावनाओं में राजनीतिक उद्देश्यों से जब एक देश का शासनाध्यक्ष या राष्ट्राध्यक्ष दूसरे देश की यात्रा करता है तब वह अपने साथ पूरा शिष्टमंडल ले जाता है। वार्तालाप के दौरान राजनेता द्विभाषिया अनुवादकों के माध्यम से ही एक–दूसरे की आवश्यकताओं को समझते हैं तथा राष्ट्रों के बीच संबंधों को मजबूती प्रदान करते हैं। इस प्रकार अनुवाद विश्व स्तर पर बंधुत्व को बढ़ावा देने में अपनी अहम भूमिका का निर्वाह करता है।

   इन क्षेत्रों के अलावा मानवीय संबंधों के ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जो वैचारिक आदान–प्रदान के धरातल पर टिके हैं। यह विचार विनिमय बिना अनुवाद के संभव नहीं है।

10. **अन्य**
    - विधि/न्याय संबंधी निर्णयों की जानकारी के लिए
    - विश्व के विभिन्न देशों में वैचारिक स्तर पर आदान–प्रदान करने हेतु
    - अन्य देशों द्वारा किए गए शोध कार्य को जानने के लिए
    - व्यापारिक क्षेत्र में आदान–प्रदान के लिए
    - विश्व की प्रमुख संस्कृतियों का परिचय प्राप्त करने के लिए
    - विभिन्न कार्यालयों में द्विभाषिकता के कारण
    - सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए
    - विश्व पर्यटन के संदर्भ में
    - विश्व की श्रेष्ठ रचनाओं एवं कृतियों को जानने के लिए
    - भारतीय तथा अन्य देशों के साहित्य की जानकारी के लिए
    - अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए
    - संचार के विभिन्न माध्यमों में एक भाषा का दूसरी भाषा में रूपांतरण और उस भाषा के जनसंचार के विभिन्न आयामों को समझने के लिए।

## 4.5.2 अनुवाद : प्रकार एवं प्रक्रिया

अनुवाद निम्नांमिकत स्वरूपों में प्रयुक्त होता है–

1. **शाब्दिक अनुवाद**–अनुवाद में सबसे पहले आवश्यकता होती है– उचित शब्द भंडार का निर्माण और संग्रह। केवल एक भाषा के शब्द को दूसरी भाषा के शब्द में बदल देना ही शाब्दिक अनुवाद नहीं है वरन स्रोत भाषा के व्याकरणिक रूप के स्थान पर दूसरी (लक्ष्य) भाषा के व्याकरणिक रूप को भी रख लिया जाता है। मूल स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा में समानुपाती संबंध होता है।

   इस अनुवाद के अनुवादक का ध्यान मूल सामग्री के प्रत्येक शब्द के अनुवाद पर केंद्रित होता है। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक मूल सामग्री की हर शब्दाभिव्यक्ति का सामान्य रूप से उसी क्रम में अनुवाद करता है जिस क्रम में सामग्री दी जाती है। इसलिए अनुवाद के क्षेत्र में शब्दानुवाद को उच्च श्रेणी की

कोटि में नहीं रखा जा सकता लेकिन अनुवाद प्रक्रिया में कई बार ऐसे बिंदु आते हैं जब शब्दानुसार के अलावा कोई पर्याय नहीं होता है।

टिप्पणी

2. **भावानुवाद**– नाम से ही हम समझ सकते हैं कि अनुवादक मूल रचना की आत्मा को लक्ष्यभाषा में अभिव्यक्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है। उसकी संपूर्ण चेतना, संपूर्ण ज्ञान मूल भाषा में साहित्य की आत्मा में लगा रहता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि सामान्यतः मूल सामग्री यदि सूक्ष्म भावों वाली है, तो उसका भावानुवाद करते हैं और यदि वह तथ्यात्मक वैज्ञानिक या विचार प्रधान है तो उसका शब्दानुवाद करते हैं। अनुवाद के क्षेत्र में कभी–कभी ऐसी स्थितियां उत्पन्न होती हैं जब अनुवादक किसी पाठ या वाक्यांश का ठीक–ठीक शब्दानुवाद करने में असमर्थ होता है। तब ऐसी स्थिति में भावानुवाद ही करना पड़ता है। अनुवाद के क्षेत्र में अन्य सभी अनुवादों की अपेक्षा भावानुवाद को उत्तम कोटि का अनुवाद माना जाता है।

   शब्द केवल भाव के वाहक होते हैं। वे किसी वस्तु विशेष या भाव–विशेष को स्पष्ट करने के लिए संकेत मात्र हैं। भावानुवाद करते समय उस शब्द के अस्तित्व से अधिक उस भाव का ध्यान रखना चाहिए जो उसमें निहित है।

3. **पर्याय के आधार पर अनुवाद**–जिस प्रकार वाक्य किसी अनुच्छेद का सहज अंग होता है उसी प्रकार वाक्य में भी प्रत्येक 'शब्द' का महत्व उसमें निहित अर्थ से है। मूल लेखक के पास पर्याप्त पर्याय होते हैं जिनमें से छांटकर वह उपयुक्त शब्द रखने का प्रयास करता है।

   अनुवादक के पास भी अपनी भाषा में पर्याप्त पर्याय हो सकते हैं जिनमें से उसे चुनाव करना होता है। सभी भाषाओं में अनेक ऐसे शब्द होते हैं जिनको प्रायः पर्याय समझ लिया जाता है। मूल कृति में प्रयुक्त शब्द की मूल आत्मा को समझकर अनुवादक को उपयुक्त शब्द चुनना चाहिए। मूल कृति में प्रयुक्त शब्द के भाव को दूसरी भाषा में संप्रेषित करने की भरपूर कला अनुवादक में होनी चाहिए और उस भाषा में प्राप्त शब्दकोषों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म शब्दार्थों का विवेचन होना चाहिए, क्योंकि शब्द की वास्तविक शक्ति प्रयोग में ही निहित है।

4. **टीकानुवाद**–टीकानुवाद में मूल पाठ की व्याख्या तथा टीका के साथ अनुवाद किया जाता है। व्याख्या स्वाभाविक रूप से अनुवादक के व्यक्तित्व तथा चिंतन प्रणाली पर आधारित होती है। अनुवादक का महत्व उभरकर सामने आ जाता है। इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक मूल विचारों, भावों तथा संकल्पनाओं को अपनी शैली के अनुसार सविस्तार रूपायित करता है।

5. **सारानुवाद**–जब किसी लंबे वक्तव्य अथवा रचना को, उसके सारतत्व को पूर्ण तथा सुरक्षित रखते हुए, किन्हीं कारणों से संक्षिप्त किया जाता है तो उसे सारानुवाद कहते हैं। यह सामान्यतः समाचार–पत्रों के लिए विभिन्न एजेंसियों द्वारा किया जाता है। इस का सहारा मुख्यतः दुभाषिए, समाचार–पत्रों के संवाददाता तथा संसद अथवा विधानमंडलों की कार्यवाही के रिकॉर्डकर्ता आदि लेते हैं। इसमें पूरी रचना के कथ्य की आवश्यक जानकारी के साथ पाठक, श्रोता एवं अनुवादक के श्रम एवं समय की बचत होती है।

## • अनुवाद की प्रक्रिया

अनुवादक स्रोत भाषा के कथ्य एवं कथन भंगिमा को लक्ष्य भाषा में समतुल्य एवं निकटतम रूप में अभिव्यक्त करने के लिए जिस क्रिया विधि से गुजरता है उसे अनुवाद की प्रक्रिया कहते हैं। अनुवाद प्रक्रिया पर जिन विद्वानों ने गंभीरतापूर्वक चिंतन मनन किया है उनमें नायडा और न्यूयार्क के विचार अधिक चर्चित हैं। नायडा ने अनुवाद को एक वैज्ञानिक तकनीक के रूप में स्वीकार किया है। इनके अनुसार अनुवाद भाषा विज्ञान का एक अनुप्रयुक्त पक्ष है। इनके अनुसार अनुवाद प्रक्रिया के तीन सोपान हैं– 1. विश्लेषण 2. अंतरण 3. पुनर्गठन। इसको हम इस प्रकार समझ सकते हैं–

स्रोत भाषा

मूल पाठ

अनूदित पाठ

विश्लेषण

पुनर्गठन

अंतरण

अनुवादक सबसे पहले पाठ का विश्लेषण करता है, उदाहरण के लिए "Vimal frightens Asha" गहरे स्तर पर इसकी दो व्याकरणिक संरचना संभव है। एक में विमल कर्ता के रूप में, सक्रिय प्राणी के रूप में कार्य करता है और दूसरे में वह कारण के रूप में मात्रा क्रिया के साधन के रूप में प्रयुक्त होता है। इसी के अनुसार क्रिया के दो अर्थ भी संभव हो पाते हैं।

1. विमल आशा को डराता है और
2. आशा विमल से डरती है। विश्लेषण के बाद प्राप्त इन दोनों संदेशों के उपरांत ही अनुवादक पाठ के संदर्भ के अनुसार उनमें से किसी एक या दोनों संदेशों को अनूदित पाठ में संप्रेषित करने का निर्णय लेता है।
3. विश्लेषण से प्राप्त अर्थ बोध का लक्ष्य भाषा में अंतरण–अनुवाद प्रक्रिया का दूसरा सोपान है। प्रत्येक भाषा मूल संदेश को अपने ढंग से भाषित इकाइयों में बांधती है। अतः संदेश को एक भाषा से दूसरी भाषा में अंतरित करने का अर्थ ही अभिव्यक्ति के धरातल पर उसका पुनर्विन्यास करना है। जैसे हिंदी की लोकोक्ति ''नाच न जाने आंगन टेढ़ा'' के अंग्रेजी अनुवाद A bad carpenter quackels with his tools" में न तो नाच का प्रसंग है, न आंगन का और न ही उसके टेढ़े होने का, पर भाव या संदेश के धरातल पर दोनों अभिव्यक्तियां समतुल्य हैं।
4. अनुवाद प्रक्रिया का तीसरा सोपान है– पुनर्गठन। प्रत्येक भाषा की अपनी अभिव्यक्ति– प्रणाली और कथनरीति होती है। लक्ष्य भाषा में अनूदित पाठ का निर्माण अगर मूल रचना के संदेश को यथा रूप रखने के प्रयास से जुड़ा होता है, तो उसके साथ लक्ष्य भाषा की उस अभिव्यक्ति–संस्कार के साथ भी संबद्ध रहता है जो अनूदित पाठ को सहज, स्वाभाविक और बोधगम्य बनाता है।

## 4.5.3 अनुवाद के अभ्यास एवं जटिलताएं



अन्य किसी भी विषय की अपेक्षा विधि के अनुवादक को प्रारूपण करते समय मूल पाठ के प्रति विशुद्धता का अधिक ध्यान रखना पड़ता है। अधिनियम के किसी भी उपबंध अथवा उसके निर्वाचन को हिंदी में अनूदित करते समय अनुवादक का यह कर्तव्य होता है कि वह मूल विधि के प्रति पूर्णतः निष्ठावान बना रहे। मूल पाठ के अभिप्रेत अर्थ को घटाने–बढ़ाने की बात तो दूर रही उसे पिए पजए ंदल ंदक मअमतल आदि सामान्य–से–सामान्य शब्दों की महता और अर्थगर्भिता का पूर्णरूपेण ध्यान रखना पड़ता है। अभिप्राय यह है कि मूल के उपबंध से भी अर्थ अभिप्रेत हो वह रूपांतर के शब्दों द्वारा यथावत स्पष्टतः ध्वनित हो। प्रायः अनुवादकों का विचार है कि अंग्रेजी के वाक्य–विन्यास को हिंदी अनुवाद में ज्यों–का–त्यों उतार देना चाहिए। बल्कि कहीं–कहीं तो ऐसा होता है कि एक विचार को अनवरत अभिव्यक्ति प्रपत्र करना तथा उस पर बल देने के लिए हिंदी व्याकरण का सामान्य क्रम भी बदलना पड़ता है। उदाहरण के लिए कुछ अनुवादों के अभ्यास यहां दिए जा रहे हैं।

### मूल

"No person who is or has been married, shall be compelled to disclose any communication made to him during marriage by any person to whom he i s or has been married, nor shall he be permitted to disclose any such communication, unless the person who made it, or his representative in interest, consents, except in suits between married persons or proceedings in which one married person is procecuted for any crime committed agaist the other."

### अनुवाद :

"कोई भी व्यक्ति जो विवाहित है, या रह चुका है, किसी संसूचना को, जो किसी व्यक्ति द्वारा जिससे वह विवाहित है या रह चुका है, विवाहित स्थिति के दौरान उसे दी गई थी, प्रकट करने के लिए विवश न किया जाएगा और न वह किसी ऐसी संसूचना को प्रकट करने के लिए विवश किया जाएगा और न वह किसी ऐसी संसूचना को प्रकट करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा, जब तक कि वह व्यक्ति जिसने वह संसूचना दी है या उसका हित प्रतिनिधित्व सम्मत न हो सिवाय उन वादों में जो विवाहित व्यक्तियों के बीच हो, या उन कार्यवाहियों में जिनमें एक विवाहित व्यक्ति दूसरे के विरुद्ध किए गए किसी अपराध के लिए अभियोजित है।"

### • साहित्यिक अनुवाद

साहित्य की निम्नलिखित विधाओं के अनुवाद पर इस प्रकार चिंतन किया जा सकता है–

### (i) काव्यानुवाद

कविता किसी भी साहित्य की सबसे पैनी शैली में की गई अभिव्यक्ति होती है। इसमें अभिध, लक्षणा और व्यंजना शब्द की तीनों शक्तियों का प्रयोग होता है। संकेतों, व्यंग्यों तथा रस, छंद अलंकारों की बाहुल्यता कविता में ही होती है। कविता का अनुवाद असंभव माना गया है। असंभव शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि कविता अत्यंत सूक्ष्म भावों को

टिप्पणी

अभिव्यक्त करती है और इन भावों को पकड़ पाना सर्वदा संभव नहीं होता। कविता का अनुवाद करने से पूर्व अनुवादक को मूल कवि की रचनाधर्मिता के साथ स्वयं को एकाकार करना होता है। कविता का अनुवाद नहीं, पुनर्लेखन होता है और पुनर्लेखन या पुनर्सृजन करने के लिए अनुवादक का कवि होना अपरिहार्य योग्यता मानी जाती है। कविता के अनुवाद में इतनी कठिनाइयों के रहते हुए भी साहित्य में कविताओं के बहुत अनुवाद हुए हैं। डॉ. प्रभाकर माचवे ने कविता के अनुवाद के विषय में लिखा है—

'काव्यानुवाद सुगंध—शीशी के बदलने के बराबर है। एक शीशी की सुगंध दूसरी शीशी में उड़ेलने की प्रक्रिया में सुगंध का कुछ अंश हवा में विलीन हो जाता है।'

संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रंथों का अनुवाद हिंदी में हुआ है। राजा लक्ष्मण सिंह ने कालिदास की रचनाओं का सफल अनुवाद किया है।

### (ii) कहानी अनुवाद

साहित्य की सभी विधाओं में कहानी ही एकमात्र ऐसी विधा है जिसका विश्व की भाषाओं में सर्वाधिक अनुवाद हुआ है और आज भी हो रहा है। कहानियों के निरंतर अनुवाद से साहित्य परिमार्जित होता है तथा रचनाकारों के बीच विचारों का एक सेतु निर्मित होता है। बंगला के सभी चर्चित उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद उपलब्ध है। कविता की ही तरह यदि कहानी का अनुवादक स्वयं भी कहानीकार हो तो उसके कथ्य की स्वाभाविकता अक्षुण्ण बनी रहती है। बंगला के कई उपन्यास जो हिंदी में अनूदित हुए हैं, उनकी मांग बंगला से अधिक हिंदी में हुई। शरतचंद् के उपन्यास हिंदी पाठक ढूंढ़कर पढ़ते हैं। मराठी उपन्यासकार शिवाजी सावंत का उपन्यास 'मत्युंजय' का हिंदी अनुवाद हिंदी जगत में खूब जनप्रिय हुआ।

कथाओं के अनुवाद कविता की अपेक्षा सरल हैं किन्तु इसकी स्वाभाविकता और मूल प्रवाह को बचाए रखने के लिए अनुवादक को कठिन श्रम करने की आवश्यकता होती है।

### (iii) नाट्यानुवाद

साहित्य की किसी भी विधा का अनुवाद सरल नहीं होता। मानवीय संवेदनाओं की गहरी समझ और साहित्यिक सूक्ष्मताओं के चित्रण का अनुभव रखने वाला अनुवादक ही साहित्य का अनुवाद कर सकता है, अन्यथा नहीं।

नाटक में दो बातें महत्वपूर्ण हैं— एक संवाद और दूसरा मंचन, इसीलिए कहा जा सकता है ''नाटक संवादों पर आधारित मंचविद्या है।'' नाटक एक दृश्य विधा है इसलिए इसका अनुवाद अन्य साहित्य विधाओं से काफी भिन्न है। नाटक के दो रूप होते हैं—

1. मंचीय नाटक
2. साहित्यिक नाटक

मंचीय नाटक के अनुवाद के लिए अनुवादक को रंगमंच का व्यापक ज्ञान होना चाहिए। साहित्यिक नाटक मूल रूप से पढ़ने की दृष्टि से लिखे जाते हैं।

### • जनसंचार संबंधी सामग्री का अनुवाद

जनसंचार माध्यमों का क्षेत्र अनुवाद की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इसके अंतर्गत प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया में दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से संबंधित सामग्री का

अनुवाद सम्मिलित है। डॉ. सुरेश सिंहल के अनुसार–"जनसंचार माध्यमों से संबंधित सामग्री पर प्रायः अंग्रेजी का अत्यधिक प्रभाव होता है जिसके परिणामस्वरूप अनुवाद की भाषा में कृत्रिमता एवं नीरसता आ जाती है। इसका एक कारण इस सामग्री का शब्दानुवाद करना है। वास्तव में, जनसंचार के माध्यमों की सामग्री का अनुवाद आम आदमी से संबंध रखता है। इस कारण इसकी भाषा सरल, स्पष्ट और सहज ही होनी चाहिए। अटपटी, निरर्थक और बेजान अभिव्यक्तियों के लिए इस प्रकार के अनुवाद का कोई स्थान नहीं होता।" पत्रकारों और संपादकों को मीडिया के अनुवाद में समाचार और भाषा दोनों में संतुलन बनाए रखने का महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह करना होता है।

### अपनी प्रगति जांचिए

7. अनुवाद को 'अर्थ कायम रखते हुए अन्य भाषा में अंतरण' कहकर परिभाषित किया–

   (क) ए.एच. स्मिथ (ख) डॉ. स्टर्ट

   (ग) डॉ. भोलानाथ तिवारी (घ) डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया

8. इनमें से क्या साहित्यिक अनुवाद की श्रेणी में नहीं आता?

   (क) नाट्यानुवाद (ख) काव्यानुवाद

   (ग) विधि अनुवाद (घ) कहानी अनुवाद

## 4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. (घ) | 2. (क) | 3.(ग) | 4. (ख) |
| 5. (घ) | 6. (ख) | 7.(क) | 8. (ग) |

## 4.7 सारांश

संविधान के अनुच्छेद 347 में यह व्यवस्था की गई है– "यदि किसी राज्य के जन समुदाय का कोई भाग अपने द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध की मांग करता है और जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए और राष्ट्रपति को यह तसल्ली हो जाए कि यह मांग युक्तिसंगत है तो राष्ट्रपति यह निर्देश कर सकते हैं कि ऐसी भाषा को भी राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में प्रयोजनार्थ जिसे वे विनिर्दिष्ट करें, शासकीय मान्यता दी जाए।

हिंदी भाषा को संविधान में संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। विभिन्न हिंदी भाषी राज्यों के मध्य तथा केंद्र और कुछ राज्यों– पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र व केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के बीच संपर्क के लिए राजभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार किया गया है। हिंदी भाषी राज्यों की राजभाषा तो हिंदी है ही। अब अंडमान निकोबार भी 'क' क्षेत्र में है। प्रयोग की दृष्टि से हिंदी का व्यवहार क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया

है। राजभाषा की दृष्टि से कार्यालयों में फाइलों पर 'टिप्पणी' हिंदी में लिखी जाने लगी है जिसका सीधा संबंध 'आलेखन' से है।

टिप्पणी

भाषिक संरचना की दृष्टि से सामान्य शब्द और पारिभाषिक शब्द में भेद नहीं है, क्योंकि पारिभाषिक शब्दों में रचना प्रक्रिया के नियमों की मर्यादा से बाहर नहीं जाया जा सकता। लेकिन अर्थ संरचना की दृष्टि से पारिभाषिक शब्द और सामान्य शब्द के बीच महत्वपूर्ण भेद है। पारिभाषिक शब्द प्रायः अभिधार्थ में ही ग्रहण किए जाते हैं, लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ में ग्रहण नहीं किए जा सकते हैं।

स्वतंत्रता के बाद भारत के संविधन के निर्माताओं का ध्यान देश की सभी प्रमुख भाषाओं के विकास की ओर गया। संविधान में हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई और केंद्रीय सरकार को यह दायित्व सौंपा गया कि वह हिन्दी का विकास–प्रसार करे एवं उसे समृद्ध करे। तदनुसार भारत सरकार के केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने संविधन के अनुच्छेद 351 के अधीन हिन्दी का विकास एवं समृद्धि की अनेक योजनाएं आरंभ कीं। इन योजनाओं में हिन्दी में तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्यक्रम भी शामिल किया गया ताकि ज्ञान–विज्ञान की सभी शाखाओं में हिन्दी के माध्यम से अध्ययन एवं अध्यापन हो सके। शब्दावली निर्माण कार्यक्रम को सही दिशा देने के लिए 1950 में शिक्षा सलाहकार की अध्यक्षता में वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की गई।

जिस भाषा का शब्द भण्डार जितना बड़ा होता है उतनी ही अधिक वह समृद्ध कही जाती है। इस दृष्टि से हिंदी भाषा का शब्द–भण्डार पर्याप्त समृद्ध है। कहने को तो कहा जाता है कि संसार की समृद्धतम भाषा है, अंग्रेजी। किंतु यह उस संकुचित दृष्टि के आधार पर कहा जाता है जो केवल अधोलंब (vertical) नजरिए से देखती है और क्षैतिज धरातल पर देखने की क्षमता से वंचित है। संभव है अधोलंब दृष्टि से अंग्रेजी में शब्दों का पहाड़ खड़ा किया जा रहा हो, किंतु उसमें एक शब्द का दूसरा पर्याय खोजना कठिन हो जाता है।

अनुवादक मूल रचना की आत्मा को लक्ष्यभाषा में अभिव्यक्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है। उसकी संपूर्ण चेतना, संपूर्ण ज्ञान मूल भाषा में साहित्य की आत्मा में लगा रहता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी कहते हैं कि सामान्यतः मूल सामग्री यदि सूक्ष्म भावों वाली है, तो उसका भावानुवाद करते हैं और यदि वह तथ्यात्मक वैज्ञानिक या विचार प्रधान है तो उसका शब्दानुवाद करते हैं। अनुवाद के क्षेत्र में कभी–कभी ऐसी स्थितियां उत्पन्न होती हैं जब अनुवादक किसी पाठ या वाक्यांश का ठीक–ठीक शब्दानुवाद करने में असमर्थ होता है।

एक समय था जब अनुवादक को महत्व दिया ही नहीं जाता था। उसका नाम, उसका मानदेय, उसका योगदान नगण्य या गौण समझा जाता था और यह धारणा थी कि असफल साहित्यकार 'अनुवादक' बन जाता है। किंतु आज स्थितियां इससे ठीक विपरीत हैं। अनुवादकों के वेतनमान भी अब पहले की तुलना में सम्मानजनक हुए हैं। अनुवादकों को नाम भी मिलने लगा है। मानदेय की राशि भी अधिकांशतः अच्छी हो गई है। अनुवादकों का सामाजिक, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय महत्व भी बढ़ा है।

टिप्पणी

## 4.8 मुख्य शब्दावली

- **अनुच्छेद** – भाग/अध्याय
- **प्रवीण** – कुशल/दक्ष
- **विनिर्दिष्ट** – निर्देशित
- **परिप्रेक्ष्य** – संदर्भ
- **रूपांतरण** – बदलाव
- **अनुदित** – अनुवादित
- **व्याकरणिक** – व्याकरण सम्मत
- **मानवीकृत** – मनुष्य द्वारा किया गया
- **प्रयोजन** – मंतव्य, उद्देश्य

## 4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. किसी राज्य के जन समुदाय के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष संवैधानिक उपबंध क्या है?
2. दूरभाष से आप क्या समझते हैं?
3. तत्सम शब्द को सोदाहरण परिभाषित कीजिए।
4. वाणिज्यिक शब्द से क्या आशय है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
5. अनुवाद की विशेषताएं बताइए।

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. राजभाषा हिन्दी की संवैधानिक– व्यावहारिक स्थिति का विश्लेषण कीजिए।
2. दूरभाष और मोबाइल से संबंधित प्रासंगिक तथ्यों की विवेचना कीजिए।
3. हिन्दी शब्द संपदा से क्या आशय है? पारिभाषिक शब्दावली के स्वरूप, निर्माण विधि एवं सिद्धांत रेखांकित कीजिए।
4. शब्दों के प्रकार स्पष्ट करते हुए शब्द भंडार की संपदा पर प्रकाश डालिए।
5. अनुवाद के स्वरूप, प्रक्रिया एवं पद्धतियों का अवलोकन कीजिए।
6. अनुवाद के विविध प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

## 4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. सौन्दर्य की नदी नर्मदा, अमृतलाल वेगड़, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1992.
2. साइबर स्पेस और मीडिया–सुधीश पचौरी, प्रवीन प्रकाशन, दिल्ली, 2000.

**टिप्पणी**

3. जनसंचार : प्रकृति और परम्परा, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, ट्राईडेंट पब्लिशर्स, दिल्ली, 2009.
4. नया मीडिया : अध्ययन और अभ्यास, शालिनी जोशी, शिव प्रसाद जोशी, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2015.
5. मध्य प्रदेश की कला एवं संस्कृति, गोपाल भार्गव, कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2011.
6. मीडिया और हिन्दी : बदलती प्रवृत्तियां, सं. रविन्द्र जाधव, केशव मोरे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016.
7. प्रयोजनमूलक हिन्दी, सं. डॉ. रामप्रकाश, डॉ. दिनेश गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006.

# इकाई 5 नैतिक मूल्य

टिप्पणी

## संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 विश्व के प्रमुख धर्म (हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई एवं इस्लाम)
    5.2.1 हिन्दू धर्म
    5.2.2 जैन धर्म
    5.2.3 बौद्ध धर्म
    5.2.4 सिख धर्म
    5.2.5 ईसाई धर्म
    5.2.6 इस्लाम धर्म
5.3 सत्य के साथ मेरे प्रयोग : महात्मा गांधी
    5.3.1 जीवन वृत्तांत की आरंभिक पृष्ठभूमि
    5.3.2 स्कूली जीवन एवं विवाह
    5.3.3 आहार–विचार विषयक दृष्टिकोण एवं विलायती जीवन
    5.3.4 सत्याग्रह आश्रम की स्थापना, बिहार यात्रा एवं कांग्रेस में प्रवेश
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

## 5.0 परिचय

नैतिक मूल्य धर्म पर आधारित होते हैं। नैतिकता का संबंध संवैधानिक कानूनों से नहीं धार्मिक प्राविधानों से होता है। धर्म से तात्पर्य मनुष्य द्वारा स्वयं अपनाए गए सही आचरण के नियम और धर्मग्रंथों पर आधारित विचारधारा एवं सामाजिक संगठन से है। धर्म आपसी सद्भाव एवं एकता का प्रतीक है क्योंकि किसी धर्म विशेष को मानने वाले लोग एक ही प्रकार की जीवन पद्धति का पालन करते हैं। धर्म या मजहब अपने अनुयायियों को एकता के सूत्र में पिरोकर रखने का कार्य करता है।

सभी धर्मों का प्रादुर्भाव लोगों में एकता की भावना को बढ़ाने के लिए ही हुआ है। लोगों के बीच अगर एकता एवं सामंजस्य न हो तो वे किसी एक धर्म विशेष को नहीं अपना सकते। सभी धर्मों की स्थापना के पीछे एक प्रकार की जीवनशैली एवं वैचारिक सामंजस्य ही होता है जो सामूहिक एकता के रूप में प्रखर होकर समाज की स्थापना करते हैं। समाज में एकता को बनाए रखने में धर्म महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धर्म परायणता का पालन किसी भी समाज के विकास एवं उसके नागरिकों के कल्याण के लिए अनिवार्य है। धार्मिक एकता एवं समभाव की वजह से ही एक समुदाय बनता है जिससे अपने नागरिकों के प्रगति के लिए सामूहिक रूप से किए गए प्रयासों की अपेक्षा होती है।

यदि किसी देश में एक ही धर्म के अनुयायी बसते हैं, तो इस प्रकार की व्यवस्था नागरिकों के मध्य भेदभाव किए बिना संभव हो सकती है। परंतु यदि किसी देश में

टिप्पणी

भिन्न–भिन्न धर्मों के अनुयायी बसते हैं तो वहां ऐसी व्यवस्था में शासन द्वारा नागरिकों के मध्य भेद–भावपूर्ण अवश्य है। किसी के अधिकार कम होंगे, किसी के अधिक। धर्म आध्यात्मिक विश्वासों एवं अलौकिक धारणाओं की भी एक व्यवस्था के रूप में होता है। अपने इस रूप में यह प्रगतिवादियों की आलोचना का केंद्र बनाता है। पश्चिमी देशों में आध्यात्मिक विरोध की वजह से अनगिनत खूनी संघर्ष हुए हैं परंतु भारत में ऐसी एक भी घटना नहीं हुई है। धार्मिक सहिष्णुता की दृष्टि से भारत की ऐतिहासिक व वर्तमान छवि निश्चय ही अत्यंत मानवीय एवं अप्रियतम रही है। धर्म व्यक्ति की पहचान का भी एक अनुपेक्षणीय अंग है। कोई भी व्यक्ति चाहे उसकी धर्म में आस्था हो या न हो या वह अपने को नास्तिक या अधार्मिक घोषित करता है अपने पारिवारिक या सामाजिक संबंधों की वजह से किसी न किसी रूप में, किसी न किसी धर्म से संबंध हो ही जाता है। धर्म किसी भी व्यक्ति को व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी स्तरों पर प्रभावित करता है और साथ ही धर्म समाज मे एकजुटता का एहसास भी दिलाता है। धर्म की वजह से लोगों की विचारधाराओं में समानता होती है और एक धर्म के लोग विश्वस्तर पर एक–दूसरे से जुड़ाव महसूस करते हैं और सामूहिक उन्नति के लिए अग्रसर होते हैं।

इस इकाई में हम हिंदू, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई एवं इस्लाम धर्म की विवेचना करेंगे और साथ ही महात्मा गांधी द्वारा लिखित अपने जीवन वृत्तांत 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' का अवलोकन भी करेंगे।

## 5.1 उद्देश्य

- विश्व के प्रमुख धर्मों : हिंदू, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई एवं इस्लाम को समझ पाएंगे।
- गांधी जी के स्वलिखित जीवन–वृत्त 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' से अवगत हो पाएंगे।

## 5.2 विश्व के प्रमुख धर्म (हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई एवं इस्लाम)

धर्म मानव जीवन की आधारशिला है। कर्तव्य, अहिंसा, न्याय, सदाचरण, परोपकर जैसे तमाम पहलू धर्म से संबंधित हैं। धर्म का शाब्दिक अर्थ है– धारण करने योग्य। अर्थात सर्वोचित धारणा जिसे सबको धारण करना चाहिए। विश्व में अनेक धर्म हैं। पाठ्यक्रम हेतु निर्धारित धर्मों का अध्ययन यहां हम इस प्रकार कर सकते हैं–

### 5.2.1 हिन्दू धर्म

हिन्दू समाज में धर्म शब्द केन्द्रीय स्थान रखता है। अंग्रेजी शब्द Religion तथा उर्दू शब्द 'मजहब' इसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार धर्म सार्वभौम नियम के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। धर्म एक व्यापक शब्द है। इसके अन्तर्गत नैतिक नियम, कानून, रीति–रिवाज वैज्ञानिक नियम आदि धारणाएं आती हैं। धर्म का प्रयोग मूर्त तथा अमूर्त दोनों रूपों में किया जाता है। भागवत गीता तथा महाभारत धर्म के देवता के रूप में माने जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि

महाभारत में द्रौपदी के चीर–हरण के सभ्य धर्म ने ही द्रौपदी की लाज बचाई थी। सत्य, दया, तप तथा दान धर्म के चार पैर बताए जाते हैं।

टिप्पणी

सतयुग में धर्म चार पैरों पर, त्रेता युगे में तीन पैरों पर, द्वापर में दो पैरों पर और कलियुग में एक पैर पर खड़ा है। अमूर्त रूप में भी इसका प्रयोग अनेक रूपों में हुआ है। उदाहरणार्थ–वैदिक साहित्य में इसके लिए 'ऋत' शब्द का प्रयोग किया गया। ऋत को प्राकृतिक, नैतिक व सामाजिक सभी व्यवस्थाओं के मूल में माना गया है। प्राचीन वैदिक धर्म के विकसित एवं परिवर्तित रूप को ही धर्म कहा जाता है। इस धर्म में भगवान विष्णु को मुख्य रूप से पूजा की जाती है। हिन्दू धर्म में अनेकों देवी–देवताओं की पूजा की जाती है। शिव एवं शिव–शक्यिों की पूजा भी इस धर्म में सर्वाधिक प्रचलित है। गुप्त सम्राटों ने हिन्दू–वैष्णव–धर्म को संरक्षण प्रदान किया। कालान्तर में हिन्दू धर्म अनेक सम्प्रदाओं में विभाजित हो गया है। इन सम्प्रदाओं में वैष्णव तथा शैव सम्प्रदाय का महत्व सबसे अधिक है। हिन्दू धर्म में अवतारवाद को भी प्रमुखता दी गई है। श्री मद्भगवद् गीता को धर्म का पवित्र एवं प्रमुख ग्रंथ माना जाता है।

हिन्दू धर्म बहु–ईश्वरवादी धर्म है तथा विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्तियों के कर्तव्यों से सम्बन्धित है। वेद, उपनिषद्, गीता, स्मृतियां तथा पुराण हिन्दू धर्म के प्रेरणा स्रोत ग्रंथ हैं। कर्तव्यों का निर्धारण वर्णाश्रम धर्म के साथ–साथ सामान्य धर्म तथा आपद् धर्म के रूप में भी किया जाता है। हिन्दू धर्म शब्द का प्रयोग निष्काम भक्ति, नैतिक कर्तव्यों, तीनों प्रकार के धर्मों के साथ–साथ हिन्दू रीति–रिवाजों परम्पराओं, सामाजिक नियमों एवं हिन्दू कानून के रूप में किया गया है। हिन्दू धर्म आत्मा की शुद्धि पर जोर देता है तथा आत्म शुद्धि ही परम ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग है। आत्म शुद्धि द्वारा मनुष्य को मनोबल प्राप्त होता है। धर्म की अवधारणा में नरक और स्वर्ग के विचार होता है। तथा इस बात पर बल दिया गया है कि धर्म का पालन करके एक हिन्दू स्वर्ग को प्राप्त होता है जबकि अधर्म के रास्ते पर चलकर वह नरक को प्राप्त होता है। हिन्दू धर्म की उदारता तथा सहनशीलता के कारण ही यहां विभिन्न देशी तथा विदेशी धर्मों को पनपने का अवसर मिला है। इसी के परिणामस्वरूप विभिन्न धर्मो के अनुयाई बिना किसी भेदभाव के परस्पर मिलकर रहते आए हैं तथा आज हमारा देश एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है।

**वैचारिक पक्ष**– वैचारिक दृष्टि से हिन्दू धर्म निम्नलिखित प्रमुख सिद्धांतों में निहित है–

(क) मनुष्य की आत्मा एक रूप के समान है। इसी आत्मा के द्वारा अच्छे कर्म करके व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ– बल्ब के फ्यूज होने पर वह प्रकाश नहीं देता उसी प्रकार अस्वस्थ अथवा खण्डित शरीर में आत्मा कर्म नहीं करती है। इसलिए शरीर की रक्षा आवश्यक है। यद्यपि आत्मा और शरीर दोनों के अपने–अपने धर्म है फिर भी दोनों के बीच साधन और साध्य वाले सम्बन्ध हैं।

(ख) ईश्वर परम ब्रह्म, निराकार, अजन्मा, अगर सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान इस सृष्टि का रचियता एवं संहारकर्ता है। वह करुणानिधान एवं सृष्टि के चर–अचर प्राणियों का आराध्य है।

(ग) मनुष्य के शरीर में आत्मा ही यथार्थ है। आत्मा परमात्मा के आंशिक गुण से युक्त है क्योंकि वह भी अनश्वर है। वह शरीर के रूप में कार्य करती है। ये

तक कहा जा सकता है कि उसे न तो अग्नि जला सकती है और न ही तलवार काट सकती है।

(घ) भारतीय समाज पवित्रता एवं अपवित्रता के सिद्धांत में विश्वास रखता है। मानव वृत्तियों को इस आधार पर निम्नांकित तीन रूपों में देखा जाता है–

(i) सात्विक

(ii) राजसिक

(iii) तामसिक

सत्य और तम एक दूसरे के विरोधी होते हैं जैसे प्रकाश जहां पर है वहां अन्धकार भला कैसे हो सकता है। तामसिक शक्तियों का सम्पर्क हमेशा बुरे कर्मों तथा अपवित्रता से होता है। इसके विपरीत सात्विक शक्तियां अच्छे कर्म तथा पवित्रता को बढ़ावा देती हैं।

टिप्पणी

**सामाजिक–नैतिक पक्ष**– हिन्दू धर्मशास्त्र प्रत्येक व्यक्ति को उसके वर्ण एवं आश्रम के अनुसार दायित्वों की पूर्ति करने के लिए करते हैं। इसी कारण राजा का धर्म, पुत्र का धर्म, मित्र का धर्म, पिता का धर्म सभी अलग–अलग स्पष्ट किये गये हैं। हिन्दू धर्म में 'काल धर्म' तथा 'आपद् धर्म' का वर्णन भी किया है। अर्थात विपरीत परिस्थितियों में यदि व्यक्ति को कर्म करने की स्वतंत्रता न होने पर उसमें संशोधन भी किये जा सकते हैं। अपने प्राणों को बचाने के लिए प्राकृतिक विपत्तियों से छुटकारा पाने में तथा राष्ट्रीय विपत्ति के सभ्य उत्पन्न परिस्थिति में धर्म–कर्म पालन विषयक प्राविधानों में संशोधन किया जा सकता है।

**हिन्दू धर्म की श्रेणियां**– हिन्दू धर्म को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

1. मानव धर्म
2. विशेष धर्म
3. आपद् धर्म

सामान्य धर्म या मानव धर्म वह आचरण है जो मनुष्य मात्र का कर्तव्य है तथा जिसके पालन में मनुष्य से वर्ग, सम्प्रदाय, लिंग व आयु आदि की अपेक्षा नहीं होती। इसमें देश और काल का भी प्रभाव नहीं है। इनसानियत इसका मूल आधार है।

विशेष धर्म को वर्णाश्रम धर्म भी कहते हैं। इसमें व्यक्ति अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुसार कर्तव्यों का पालन करता है।

आपद् धर्म जैसा कि इसके नाम से ही विदित है, प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने आप को किसी भी तरह से सुरक्षित रखने का संदेश देता है।

**हिन्दू धर्म की मान्यताएं**– हिन्दू धर्म की निम्न मान्यताएं हैं–

1. **ईश्वरीय सत्ता**– हिन्दू धर्म में ईश्वर को विश्व की परम सत्ता माना जाता है। मनुष्यों को ईश्वर में आस्था रखने के साथ–साथ उसके अस्तित्व को भी स्वीकार करना चाहिए।

टिप्पणी

2. **त्रिदेव और अवतारवाद**– हिन्दू धर्म में तीन देवता ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश प्रमुख हैं। राम और कृष्ण भी विष्णु जी के अवतार माने जाते हैं।
3. **कर्म का सिद्धांत**– हिन्दू धर्म में आत्मा को अमर माना जाता है। मनुष्य का वर्तमान जीवन उसके अनेक जन्मों की कड़ियों में से एक है। कर्म सिद्धांत का तात्पर्य है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्यों के अनुसार कार्य करना चाहिए।
4. **वेद तथा मुक्ति प्राप्ति**– हिन्दू धर्म में वेद बहुत पवित्र ग्रन्थ माने गये हैं तथा मुक्ति के लिए वैदिक क्रियाओं एवं अनुष्ठानों का सम्पन्न करना अनिवार्य है। मोक्ष प्राप्ति हिन्दू धर्म का अन्तिम लक्ष्य माना गया है।
5. **वृद्ध, गो और नारी पूजा**– हिन्दू धर्म गो पूजा एवं नारी शक्ति को विशेष स्थान प्रदान करता है। हिन्दू धर्म यह मानता है कि गाय धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चारों पुरुषार्थों को देने वाली है।

## हिन्दू धर्म के लक्षण

हिन्दू धर्म के निम्न लक्षण हैं–

1. हिन्दू धर्म ईश्वर अलौकिक शक्ति है तथा बहुदेववाद तथा मूर्ति पूजा को विश्वास के साथ स्वीकार करता है।
2. आत्मा की अमरता इसका प्रमुख आधार है।
3. हिन्दू धर्म पुनर्जन्म में विश्वास रखता है।
4. अवतारवाद में हिन्दू धर्म का अटूट विश्वास है।
5. भक्ति एवं कीर्तन इसकी प्रमुख विशेषता है।
6. हिन्दू धर्म के प्रमुख अंग माने गये हैं–परोपकार, त्याग की भावना, सच्चरित्रता तथा सदाचरण
7. जप, तप, यज्ञ एवं हवन का विशेष महत्व है।
8. हिन्दू धर्म का कर्म का सिद्धांत विशेष स्थान रखता है।
9. हिन्दू धर्म के प्रमुख ग्रन्थ वेद, उपनिषद, भगवद् गीता, रामायण, महाभारत, पुराण आदि है।

## हिन्दू धर्म के प्रमुख सम्प्रदाय

हिन्दू धर्म में अनेकों सम्प्रदाय हैं क्योंकि यह बहुईश्वरवादी धर्म है। डॉ. एस. शर्मा ने शब्दों में–''हिन्दू धर्म, जिसने अपनी बांहों में न केवल वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदायों को वरन् शैववाद, शक्तिवाद और वैष्णववाद और आदिवासी धर्मों को भी समाए हुए हैं, एक निश्चित आस्था वाला धर्म नहीं, वरन् धर्मों का संघ है।'' हिन्दू धर्म के धार्मिक मतों तथा सम्प्रदायों का अपना–अपना लम्बा इतिहास है। सभी की अपनी–अपनी सामाजिक एवं आर्थिक विशेषताएं हैं। इसके प्रमुख सम्प्रदाय निम्न हैं–

टिप्पणी

1. **शक्ति सम्प्रदाय**– जो व्यक्ति शिव की उपासना करते हैं वह शक्ति कहलाते हैं। प्रारंभ में इस मार्ग की उपासना उमा, भवानी, अन्नपूर्णा, काली चण्डी और चामुण्डा देवी के नाम से की जाती है। वर्तमान में भी देश के अनेक भागों में शक्ति की उपासना लोकप्रिय मानी जाती है। इस सम्प्रदाय के दो मत हैं–माध्यमिका तथा योगाचार। इसी की एक मिश्रित शाखा वामन्मत्रि या तंत्रमार्ग है जो पंच मकारों–मांस–मदिरा, मैथुन, मीन तथा मुद्रा द्वारा अपनी उपासना के लिए प्रसिद्ध है। हिन्दू धर्म में तीन देवताओं–ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश को प्रमुख स्थान प्राप्त है। ब्रह्मा जी को सृष्टि का निर्माणकर्त्ता, विष्णु जी को सृष्टि का पालनकर्त्ता तथा महेश को सृष्टि का संहारक माना जाता है।

2. **वैष्णव सम्प्रदाय**– यह हिन्दओं का दूसरा सबसे लोक–प्रिय सम्प्रदाय है। इसमें विष्णु भगवान की पूजा होती है। कालान्तर में अवतारवाद के आधार पर विष्णु के दो अवतारों राम एवं कृष्ण की पूजा सर्वाधिक प्रचलित हुई है। इस सम्प्रदाय में शंकराचार्य, रामानुज, मध्याचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्य मिश्र निम्बार्क, कबीर, राधास्वामी जैसे आचार्यों एवं भक्तों द्वारा सृजित सम्प्रदाय है। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के लिए तीन मार्ग अपनाए जा सकते हैं– 1. कर्म मार्ग–इसमे कर्मकाण्ड एवं यज्ञ आदि ठीक प्रकार से करना 2. ज्ञान मार्ग–ज्ञान प्राप्त ही मोक्ष का साधन है तथा 3. भक्ति मार्ग–कृष्ण, राम या विष्णु की पूजा करके मोक्ष प्राप्त करना। यह सम्प्रदाय विष्णु के दशावतारों को स्वीकार करता है–मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, बुद्ध तथा मल्लिकार्जुन। वैष्णव सम्प्रदाय को मानने वाले भगवान कृष्ण को पूर्वावतार मानते हैं।

3. **शैव सम्प्रदाय**– यह हिन्दू धर्म की एक प्रमुख शाखा मानी जाती है। इसमें बहुत प्राचीन परम्परा से रुद्र या शिव को परमब्रह्म मानकर उसकी भक्ति में जीवन गुजारने वाले अनेक सम्प्रदाय हैं। इसमें 63 शैव–संतों के विचार आते हैं। इसका पाशुवत वर्ग शैव सम्प्रदाय का एक उपसम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आदि शंकराचार्य थे। इसके प्रमुख सिद्धांत हैं–

   (1) उपवास रखना तथा शरीर पर राख मलना

   (2) व्रत रखकर कठोर तपस्या करना

   (3) नृत्य गमन करना

   (4) भांग तथा मादक पदार्थों का सेवन करना

   (5) सामाजिक बुराइयों से दूर रहना

   (6) पागलों जैसा व्यवहार करना।

4. **हिन्दू पुनर्जागरण से सम्बन्धित सम्प्रदाय**– हिन्दू पुनर्जागरण में कुछ नए सम्प्रदायों से जन्म लिये हैं। इनमें ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन तथा श्री अरविन्द का सम्पूर्ण योग आदि शामिल हैं। कुछ ही वर्षों पहले सांई बाबा, आचार्य रजनीश और आनन्द

टिप्पणी

मूर्ति आदि मत समाज में प्रचलित हो गये हैं। यह हिन्दू धर्म की प्रमुख धारा में अपने चिन्तन और तपस्या की पुष्पमालाएं अर्पित कर रहे हैं। विदेशों में भी यह सम्प्रदाय काफी प्रचलन में हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्री कृष्ण चेतना समाज आन्दोलन जिसे हरे कृष्ण आन्दोलन भी कहते हैं : नए रूप में हिन्दू सम्प्रदाय के रूप में उभर रहा है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हिन्दू सामाजिक संगठन में धर्म का विशेष महत्व है। यहां तक कि हिन्दू धर्म में विवाह का आधार भी यौन संतुष्टि न मानकर धर्म का पालन माना जाता है। विवाह करके व्यक्ति अपने पिता के वंश को बढ़ाने में सहयोग करता है और पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है। हिन्दू हमेशा से ही धर्म से डरकर कार्य करते हैं। परोपकार, सत्य बोलना, सहानुभूति एवं सहनशीलता आदि नैतिक गुणों का विकास भी धर्म के साथ ही जुड़ा हुआ है।

## कर्म का सिद्धांत

भारतीय सामाजिक संरचना की मुख्य विशेषता है कर्म तथा पुर्नजन्म के सिद्धांतों को महत्व देना। साधारण शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत व्यक्ति को उसका वर्तमान उसके पिछले जन्म का फल है और इस जन्म में जैसे कर्म करेगा वैसा ही पुनर्जन्म प्राप्त करेगा। यानी मनुष्य करनी के अनुसार जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार कर्म तथा पुनर्जन्म की धारणाओं को दोहरे प्रतिमान की धारणा भी कहा गया है। पुनर्जन्म की कर्मों के आधार पर धारणा को सदियों से व्यक्ति जानते हैं और इसको मानते भी हैं। उसको इस बात का भी ज्ञान है कि सुकर्म मोक्ष का द्वार है। बी. जी. गोखले के शब्दों में–

''शायद भारतीय विचारधारा पर अन्य किसी भी अवधारणा का इतना व्यापक प्रभाव नहीं पड़ सका है जितना कि कर्म के सिद्धांत का।''

अच्छे कर्मों तथा बुरे कर्मों का जो कर्मवाद हमारे समाज में है वही हिन्दू समाज में शान्ति का मुख्य लक्षण है। इसी सिद्धांत के कारण गरीब एवं अमीर अपने आपको यह सोचकर संतुष्ट कर लेते हैं कि आज की जो भी परिस्थिति वह हमारे कर्मों के कारण ही है।

कर्म शब्द की उत्पत्ति 'कृ' धातु से हुई है जिसका अर्थ है–करना। व्यक्ति की प्रतिदिन की क्रियाएं जैसे–खाना–पीना, उठना–बैठना, सोना–जागना, इच्छा, अनिच्छा, दान–दक्षिणा देना, यज्ञ करना, पूजा–पाठ करना, ध्यान करना, लड़ना–झगड़ना आदि सभी गीता के अनुसार 'कर्म' की श्रेणी में रखे जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य जो कुछ भी करता है वह सब कर्म है।

कर्म शब्द संस्कृत भाषा के 'कर्मन' शब्द से बना है। कर्मन शब्द को अनेकों प्रकार से प्रयोग किया गया है यथा–क्रिया, कृति, निष्पादन, क्रिया पालन, व्यवहार, पद, कर्तव्य धार्मिक कर्मकाण्ड, कोई विशेष क्रिया, नैतिक कर्तव्य उत्पादन किसी क्रिया का उद्देश्य, गति या दैव। इस प्रकार कर्म का सम्बन्ध उन सभी क्रियाओं से है जो मनुष्य अपने दायित्वों के निर्वाह हेतु करता है अथवा जिनसे व्यक्ति के भाग्य का निर्माण होता है। स्वामी विवेकानन्द ने कर्म की व्याख्या इस प्रकार की है–

टिप्पणी

''आत्मा की आम्यान्तरिक अग्नि तथा अपनी शक्ति और ज्ञान को बाहर प्रकट करने के लिए जो मानसिक और मौद्रिक घात पहुंचाए जाते हैं, वही कर्म है। इस प्रकार हम सब प्रतिक्षण कर्म कर रहे हैं। हम जो कुछ करते हैं चाहे वह मानसिक कर्म या शारीरिक कर्म हो, वह हमारे ऊपर अपने चिन्ह अंकित कर जाता है। मैं तुमसे बातचीत कर रहा हूं यह भी कर्म है तुम सुन रहे हो यह भी कर्म है। हमारा सांस लेना या चलना भी कर्म है।''

गीता के अनुसार वचन, मन तथा वाणी से की गई सभी क्रियाएं कर्म ही हैं। व्यक्ति मन में जो कुछ विचार, इच्छा या संकल्प आदि करता है, दूसरों को अपने व्यवहार से जो कुछ प्रकट करता है, सभी कर्म की विभिन्न श्रेणी हैं। हमारे प्रत्येक कार्य के अन्तर्गत स्थूल कार्य के अतिरिक्त विचार की भी क्रिया होती है। अर्थात पहले हम किसी कार्य के बारे में सोचते हैं और उसके बाद ही विचार कोई क्रिया करता है। अर्थात ऐसा कोई भी विचार जो क्रियात्मक रूप धारण करे, कर्म कहलाता है। कर्म भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों से सम्बन्ध रखता है। यह केवल किसी कार्य का परिणाम ही नहीं बल्कि उसका एक मार्ग है। भूतकाल के किसी कार्य का परिणाम वर्तमान तथा भविष्य में भी निहित होता है।

कर्म में तीन तत्व कर्ता, परिस्थिति एवं प्रेरणा सम्मिलित है। कर्म को करन के लिए किसी व्यक्ति होना आवश्यक है। यही व्यक्ति कर्ता होता है। कर्ता के द्वारा की जाने वाली क्रिया किसी परिस्थिति के कारण ही की जाती है। परिस्थिति के अतिरिक्त कर्म के सम्पादन के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को कोई न कोई प्रेरणा प्राप्त हो। बिना प्रेरणा या कारण के कार्य नहीं हो सकता है। जब ये तीनों तत्व एक साथ मिल जाते हैं तभी कर्म होता है। भगवद् गीता में कर्म के तत्व बताए गए हैं—(1) कर्ता (2) साधन (3) कार्य का स्थान (4) प्रयत्न (5) भाग्य।

मनु ने कर्म के तीन भेद किये हैं—

1. कायिक कर्म (व्याभिचार, हिंसा, चोरी आदि)
2. वाचिक कर्म (झूठा भाषण, चुगली, निंदा आदि)
3. मानसिक कर्म (दूसरों के अहित को सोचना, दूसरों की चीजों की इच्छा रखना आदि)

स्मृतियों में भी कर्म को तीन भागों में विभाजित किया गया है—

1. सात्विक कर्म—फल की इच्छा रहित
2. राजसिक कर्म—फल की इच्छा से प्रेरित
3. तामसिक कर्म—लोभ, मोह, राग—द्वेष से प्रेरित होने वाले कर्म जिन्हें कर्त्ता शुभाशुभ का ध्यान रखे बिना केवल स्वार्थ पूर्ति के लिए करता है।

पंतजलि योग—सूत्र के अनुसार कर्म के चार प्रकार हैं—

1. कृष्ण—दुखस्वरूप पापकर्म
2. शुक्ल—सुखस्वरूप जप, तप, स्वाध्याय, दान आदि पुण्य कर्म
3. शुक्ल कृष्ण—सुख—दुख मिश्रित या पुण्य—पाप मिश्रित कर्म

अशुक्ल कृष्ण–जो न शुक्ल है और न ही कृष्ण तथा जो योगियों, संन्यासियों तथा भक्तों द्वारा किये जाते हैं। साधारण बोलचाल की भाषा में कर्म के दो प्रकार हैं–शुभ–अशुभ, पाप–पुण्य, पवित्र–अपवित्र, कुशल–अकुशल आदि।

टिप्पणी

कर्म की अवधारणा को समझने की दृष्टि से यह जानना आवश्यक है कि व्यक्ति अपने कर्मों का फल किस प्रकार प्राप्त करता है। बैजनाथ जी कहते हैं कि कर्म और कारण का नियम हर जगह व्याप्त है। प्रत्येक कारण का कोई न कोई परिणाम अवश्य होगा। विज्ञान का नियम है कि क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया समान बल की, किन्तु विपरीत दिशा की होती है। हमारे प्रत्येक कार्य में स्थूल कार्य के अतिरिक्त भाव तथा कवचार की भी क्रिया होती है। सबसे पहले हम किसी कार्य को करने की सोचते हैं तत्पश्चात् वह विचारणा क्रिया को जन्म देती है।"

इससे स्पष्ट होता है कि कर्म क्रिया के रूप में है तथा फल प्रतिक्रिया के रूप में। मनुष्य जो कुछ कर्म करता है उसका फल अवश्य मिलता है। इस प्रकार बैजनाथ ने कर्म और फल की विवेचना वैज्ञानिक आधार पर की है। व्यक्ति अपने कर्मों का फल केवल इसी जीवन में नहीं भुगतता। कर्मों का फल भुगतने के लिए उसे पुनर्जन्म लेना पड़ता है, क्योंकि कर्मों के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। इस दृष्टि से कर्म के तीन प्रकार बताए गए हैं–

1. **संचित कर्म**– संचित कर्म के अन्तर्गत वे कर्म आते हैं जो व्यक्ति द्वारा पूर्व जन्म में किए गए हैं।
2. **प्रारब्ध कर्म**– प्रारब्ध कर्म वे कर्म कहलाते हैं जो पूर्व कर्मों के कारण व्यक्ति को वर्तमान जीवन में भोगने पड़ते हैं।
3. **क्रियमाण कर्म**– वर्तमान जीवन में किए जाने वाले और फलित होने से रह जाने वाले कर्म क्रियमाण कर्म कहलाते हैं। व्यक्ति का अगला जन्म संचित एवम् क्रियमाण कर्म पर निर्भर करता है। इस विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि कर्म का सम्बन्ध केवल वर्तमान से न होकर भूत और भविष्य से भी होता है। ऐसा भी माना जा सकता है कि इसका सम्बन्ध तो पुनर्जन्म के सम्पूर्ण चक्र से रहता है।

## कर्म सिद्धांत की व्याख्या

कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धांतों की प्राचीन हिन्दू शास्त्रों में व्यापक रूप से चर्चा की गई है। ये दोनों पृथक सिद्धांत न होकर एक दूसरे पर निर्भर हैं जैसे– एक बीज पौधे का कारण बनता है उसी प्रकार व्यक्ति के कर्म आगे के जीवन का आधार है। मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगने के लिए कई योनियों में जन्म लेना पड़ता है। हिन्दू धर्म के अनुसार कर्म चक्र अनन्त है। इसके ही 'कर्म–विपाक' कहते हैं। अर्थात जहां एक बार की शुरू हुआ उसका व्यापार चक्र निरन्तर आखण्ड रूप से चलता रहता है। और संहार के सभ्य भी वह बीज के रूप में मौजूद रहता है तथा पुनः सृष्टि में उनके बीज अंकुरित होते हैं। कर्म के निम्न सिद्धांत हैं–

### 1. वेदों का सिद्धांत

वेद यह बताते हैं कि शरीर तो नाशवान है परंतु 'आत्मा' अजर–अमर है। इसलिए वेदों की ऋचाओं और मंत्रों में आत्मा के अमरतत्व की कामना की गई है। अगर

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि कर्म सिद्धांत का प्रतिपाद 'वैदिककाल' के अन्त में हुआ है। ऋग्वेद में 'ऋतु' की अवधारणा को विकसित किया गया है। इस शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थों में सीधी प्रत्यक्ष या सही रेखा के लिए किया गया है अर्थात यह प्रकृति के कानून की व्याख्या करता है। ऋग्वेद की एक प्रार्थना में अग्नि से अमरतत्व पाने की कामना की गई है। ऋतु एक ऐसी अवधारणा है जो हमारे अन्तःकरण की ईश्वरीय आवाज को व्यक्त करती है तथा हमें बताती है कि सही और गलत क्या है। गोखले के अनुसार–

''ऋग्वैदिक दर्शन में ऋतु सर्वोच्च नियम से बंधे हुए हैं और अपने इरादों या आचरणों की दृष्टि से स्वेच्छाचारी नहीं है।''

इससे स्पष्ट होता है कि 'ऋत' एक अन्तरिक्षीय कानून (Cosmic Law) के रूप में महत्वपूर्ण अवधारणा रही है। पी.एच. प्रभु (PH Prabhu) का कहना है कि वेदों में जो विचार आए हैं वही कालान्तर में कर्म सिद्धांत के आधार बन गए। वैदिक साहित्य नर्क की कल्पना नहीं करता है परन्तु पारलौकिक संसार की चर्चा जरूर करता है तथा पुनर्जन्म से बचने के लिए अच्छे कर्मों की व्याख्या करता है। इन विचारों के आधार पर ही ब्राह्मण ग्रंथों में कर्म–फल और कर्म सिद्धांत का उल्लेख किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि तप साधन के माध्यम से व्यक्ति स्वर्ग में अपनी सभी क्रियाओं के साथ जाता है। नचिकेता की कथा में यम द्वारा उन्हें वे लोक दिखाने की चर्चा की गई है। जहां इहलौकिक कर्मों का फल व्यक्ति भोगता है। गोखले का यह कहना है कि वैदिक काल में कर्म की धारणा प्रचलित थी परन्तु फिर भी कर्म सिद्धांत का सम्पूर्ण निरुपण वैदिक काल के अन्त में हुआ है।

### 2. उपनिषदों का सिद्धांत

कर्म सिद्धांत की सम्पूर्ण और विकसित व्याख्या सबसे पहले उपनिषदों में की गई। उपनिषदों में ही सर्वप्रथम कर्म तथा पुनर्जन्म की अवधारणाओं को एक सिद्धांत का रूप दिया गया। उपनिषदों में कर्म सिद्धांत की व्याख्या पुनर्जन्म के सिद्धांत द्वारा की गई है। वास्तव में वैदिक युग की धारणाओं को उपनिषदकाल की सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों में कर्मफल, भोग, आवागमन और पुनर्जन्म की धारणाओं के माध्यम द्व ारा एक क्रान्तिकारी रूप दिया गया है। इसमें बताया गया है कि व्यक्ति को अपने कर्मों के अनुसार केवल परलोक में ही सुख या दुख नहीं मिलता है बल्कि संसार में बार–बार जन्म भी लेना पड़ता है। उपनिषद यह भी बताते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा नया शरीर धारण करती है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि–''नश्वर प्राणी बीज की भांति गल जाता है और बाज की ही भांति पुनः उतपन्न होता है।'' वृहदाख्यक उपनिषद् में भी कहा गया है कि मृत्यु के बाद आत्मा नया शरीर त्याग देती है लेकिन इस जन्म के कर्मों का फल संचित रूप में उनके साथ जाता है। ये संचित कर्मफल है उसके अगले जन्म का निर्धारण करते हैं। इसी उपनिषद् में यज्ञवल्क्य ने इस प्रश्न के उत्तर में कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है कि–''मनुष्य का आगे का जीवन उसके कर्मों द्वारा निर्धारित होता है। शुभ कर्मों का परिणाम शुभ और अशुभ कर्मों का परिणाम सदैव अशुभ होता है। जिस प्रकार एक इल्ली (Caterpillar) घास का एक किनारा उसी समय छोड़ती है जब वह दूसरी पत्ती को पकड़ लेती है, उसी प्रकार

टिप्पणी

यह आत्मा भी शरीर का त्याग उसी समय करती है जब उसे अस्तित्व के किसी अन्य स्वरूप अर्थात किसी दूसरे शरीर का संबल प्राप्त हो जाता है। जैसे एक सुनार सोने के एक टुकड़े को अपनी इच्छानुसार किसी भी नवीन और अधिक सुन्दर आकृति में बदल देता है, ठीक उसी प्रकार यह आत्मा कर्मों के आधार पर अपने लिए नवीन और अधिक सुन्दर शरीर निर्मित कर सकती है।''

सतपथ ब्राह्मण में सबसे पहले कर्म के सिद्धांत का वर्णन मिलता है। इसके अन्तर्गत बताया गया है कि जो व्यक्ति पूर्व ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह ब्रह्मा में एकाकार होकर जन्म–मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है कि जो इच्छारहित हैं, यज्ञों को समुचित निर्वाह करते हैं और ज्ञान ही तृप्त है उन्हें आवागमन के इस चक्र से छुटकारा मिल जाता है।

इस उपनिषद में कर्म तथा जन्म–मरण के चक्र से छुटकारा प्राप्त करने के उपाय के सम्बन्ध में बताया गया है कि यह उसी सभ्य सम्भव है जब व्यक्ति पूर्वतः इच्छा रहित हो जाए। तभी व्यक्ति अमर एवं ब्रह्म में लीन हो सकता है। अच्छे आचरण से व्यक्ति का जन्म उच्च कर्म में और बुरे आचरण से निम्न क्रम में और यहां तक कि कुत्तों एवं सुअर के रूप में भी होता है।

इस सिद्धांत में यह भी स्पष्ट किया गया है कि वैदिक देवी–देवता मनुष्य के भाग्य विधाता नहीं हैं बल्कि वह स्वयं ही अपने भाग्य का विधाता है। कर्म का सिद्ध ांत भूत और भविष्य दोनों को देखकर चलता है। जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में कर्म के इस सिद्धांत का विशेष महत्व है।

### 3. महाभारत का सिद्धांत

महाभारत में कर्म सिद्धांत की वृहद् चर्चा की गई है। इसमें इसे जीवन–दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाभारत के वन पर्व में स्वर्ग में मिलने वाले सुखों का उल्लेख किया गया है। पृथ्वी (कर्म भूमि) कर्म करने के लिए है, जबकि दूसरा विश्व अर्थात स्वर्ग (फल भूमि) कर्म का सुख भोगने के लिए है। इस काल में चूंकि वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म रहा है अतः इसका प्रतिपादन वर्ण व्यवस्था के औचित्य के लिए किया गया है। महाभारत में कहा गया है कि व्यक्ति का स्वभाव, सुविधाएं तथा सामाजिक स्थिति पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर निर्धारित होती है। वनपर्व के अनुसार–

''पूर्व जन्म के संचित कर्म को लेकर व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है, उसके ही परिणामस्वरूप सुख–दुख, सम्पन्नता–विपन्नता का निर्धारण होता है और यह संचित कर्मों का ही परिणाम है कि सज्जन दुख उठाता है और दुर्जन सुख। मनुष्य के कर्म उसके साथ जाते हैं, कर्मफल कभी नष्ट नहीं होते, उसी के कारण आत्मा को बार–बार जन्म लेना पड़ता है। कर्म शुभ या अशुभ हो सकते हैं। जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। कोई भी अपनी इच्छानुसार प्रारब्ध का निर्माण नहीं कर सकता।''

महाभारत के 'अनुशासन पर्व' में भी आचार्य वृहस्पति ने युधिष्ठिर से कहा है कि–

''मृत्यु के साथ मानव के अच्छे–बुरे कर्म साथ जाते हैं और वे ही अगले जन्म से प्रारब्ध को निश्चित करते हैं।''

महाभारत में कर्म को देव माना गया है अर्थात कर्म का परिणाम इतना अवश्यम्भावी है कि कर्म सिद्धांत दैववादी हो गया है। महाभारत में कहा गया है कि–



''आत्मा अपने संचित कर्म के भार–सहित पुनः जन्म लेती है। जीवन में किए गए कर्मों के परिणामस्वरूप ही व्यक्ति सुख–दुख, समृद्धि और निर्धनता प्राप्त करता है, ज्ञान के द्वारा ही वह उस स्थिति में पहुंचता है। जिसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है, उसे कोई कष्ट, कोई मृत्यु, कोई पुनर्जन्म नहीं है।''

### 4. गीता का कर्म सिद्धांत

गीता में कर्म की सर्वाधिक विशद और वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। भारतीय जीवन–दर्शन, विशेष रूप से हिन्दुओं, में गीता का कर्मयोग ही अधिक प्रचलित है। गीता का सिद्धांत भी उपनिषदों की ही विचारधारा पर आधारित है। भगवत गीता में कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत को जीवन दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। गीता का कर्म सिद्धांत महाभारत के कर्म–सिद्धांत से अधिक प्रगतिशील एवं प्रेरणादायक है। भारतीय जनजीवन को संकट के समय जितनी प्रेरणा गीता से मिली है, सम्भवतः उतनी किसी अन्य धर्म ग्रंथ से नहीं। गीता कहती है कि मनुष्य का वर्तमान जीवन एक संक्रांति के समान है, पहले भी वह कई जीवन ले चुका है तथा भविष्य में भी अपने कर्मों के कारण कई जीवन और लेने हैं। आत्मा तो न जन्म लेती है और न ही मरती है। शरीर के मरने और जलने के बाद भी आत्मा अमर रहती है। बस, व्यक्ति द्वारा पुराने वस्त्रों को त्याग कर नए वस्त्र धारण किये जाते हैं उसी प्रकार आत्मा भी वस्त्र रूप पुराने शरीर को छोड़कर किसी नए शरीर में प्रवेश कर जाती है। जिसने जन्म लिया है वह एक दिन अवश्य ही मरेगा तथा जो मरेगा वह जन्म भी अवश्य लेना यह एक सर्वव्यापी नियम है। जन्म और मरण का यह एक चक्र उस सभ्य तक चलता रहता है जब तक कि वह मोक्ष न प्राप्त कर ले।

महाभारत में पुनर्जन्म के सम्बन्ध की चर्चा की गई है कि पूर्व जन्म के कर्मफल इस जन्म में साथ हैं लेकिन गीता यह कहती है कि वर्तमान में जो जैसा कर्म करेगा भविष्य में वैसा ही फल प्राप्त करेगा। गीता प्रवृत्ति के लिए प्रेरित करती है पर कोश कर्म केवल बन्धन मात्र है। इसलिए वही कर्म सच्चा है जिसका आधार ज्ञान और प्रवृत्ति है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान, प्रकृति और कर्म के समन्वय से ही मोक्ष मिलता है। ये ही निष्काम कर्मयोग कहलाता है। निष्क्रिय एवं भाग्यवादी विचारों को मानने वाले विचारकों में प्रो. वैकडोनल एवं ए.बी. की कीथ (कीथ) विशेष रूप से आते हैं परन्तु इनके निष्कर्ष पूर्णतः भ्रामक एवं अनुचित हैं। गीता में कहा गया है कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' यही पूरी गीता में वर्णित कर्म सिद्धांत का सार है।

स्पष्ट है कि कर्म करना व्यक्ति का अधिकार है और यह कर्म बिना किसी फल की आशा के करना चाहिए। स्वधर्म का पालन ही व्यक्ति का कर्म है। जन्म और मृत्यु की चिन्ता छोड़कर केवल कर्म ही करते रहना चाहिए। अर्जुन युद्ध के मैदान में एक सच्चे योद्धा के रूप में लड़ते हुए अपने सामने बहुत से ऐसे लोगों के मारे जाने के डर से वह कर्तव्य पथ से दूर हट जाते हैं। तब कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन अपने शस्त्र उठाओ और युद्ध के मैदान में एक योद्धा के रूप में अपने कर्तव्य का पालन करो तथा समझाते हैं कि मनुष्य को जीवन में अपनी प्रस्थिति के अनुसार दायित्व का पालन करना चाहिए, अपने कर्तव्य को निभाना चाहिए, परिणाम की चिंता नहीं करनी

चाहिए। इससे स्पष्ट है कि गीता यही कहती है कि कर्म ही सबसे ऊपर है, स्वधर्म का पालन करो तथा निष्क्रिय मत बनो। क्योंकि निष्क्रिय जीवन अनुचित होता है।

टिप्पणी

कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि अनादि काल से आत्मज्ञानी पुरुषों के जीवन बिताने के दो मार्ग हैं– (1) निवृत्ति मार्ग तथा (2) प्रवृत्ति मार्ग। जहां एक ओर शुक्र जैसे आत्मज्ञानी संसार छोड़ भिक्षा मांगते घूमते हैं वहीं दूसरी ओर जनक जैसे लोग स्वधर्म के अनुसार लोगों के कल्याणार्थ कर्म कर अपना समय व्यतीत करते हैं। यद्यपि संसार में दोनों मार्ग प्रचलित हैं परंतु कर्मयोग का मार्ग श्रेष्ठ है। आत्मा शाश्वत है वह बार–बार जन्म लेती है। कर्मफल व्यर्थ नहीं जाता है। व्यक्ति का कर्म पर अधिकार होता है फल पर नहीं। गीता के कर्मयोग की व्याख्या करते हुए लोकमान्य तिलक लिखते हैं–

''कर्म करना मात्र तेरा अधिकार है, फल पर तेरा अधिकार नहीं। इस प्रकार फलाशा रखकर कर्म मत कर और फलाशा से साथ–साथ फल को भी छोड़ दे परन्तु कर्म का आग्रह मत छोड़। अर्थात फल की आशा छोड़कर मनुष्य को कर्म अवश्य करना चाहिए। व्यक्ति को कर्म की आसक्ति में भी नहीं फंसना चाहिए और न कर्म का आग्रह ही छोड़ना चाहिए। कर्म करते सभ्य व्यक्ति को साम्य बुद्धि का सहयोग लेना चाहिए। फल की आशा पर दृष्टि रखकर कर्म करने वाला कृपण है।''

गीता के कर्मयोग में मुख्य जोर स्वधर्म के पालन एवं निष्काम कर्म पर दिया गया है। गीता में कर्मवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन करते सभ्य कहीं भी इसे भाग्य के साथ नहीं बांधा गया है। अतः हम स्वयं ही अपने भाग्य के रचयिता हैं।

## 5. मनुस्मृति का कर्म सिद्धांत

मनुस्मृति में कर्मों के विभिन्न फल बताए गये हैं तथा यह भी कहा गया है कि मनुष्य को कर्मों का फल अवश्य मिलता है वह कभी नष्ट होता है। मनु कहते हैं कि ''सभी कर्म मन, तन तथा वाणी से उत्पन्न होते हैं उसी के कारण अच्छे या बुरे फल मिलते हैं। कर्मों का फल प्राप्त करने के लिए ही उसे बार–बार जन्म लेना पड़ता है। जो व्यक्ति मन से पाप करता है उसे अगले जन्म में निम्न जाति में, वाणी द्वारा पाप करने पर पशु या पक्षी की योनि में तथा शरीर द्वारा पाप करने पर पेड़–पौधों के रूप में जन्म लेना पड़ता है। दूसरों का बुरा सोचना, किसी वस्तु को चुराने की इच्छा करना तथा व्यभिचार पूर्ण बातों का चिन्तन करना, मानसिक कर्म हैं। झूठ बोलना, निन्दा करना, दूसरों के लिए उचित शब्दों का प्रयोग करना वाणी के कर्म माने जाते हैं। दूसरों की वस्तु को चुराना, व्यभिचार पूर्ण जीवन बिताना, अन्य लोगों पर अत्याचार एवं हिंसा करना शरीर द्वारा किये गये कर्म माने जाते हैं। इसी कारण व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है। उसे उच्च या निम्न योनि प्राप्त होने का भी यही कारण है। इसीलिए व्यक्ति को अपना मन धर्म कार्यों में लगाना चाहिए।''

जन्म तथा मरण से व्यक्ति कैसे युक्त हो सकता है। इसके विषय में मनु कहते हैं कि–''यह उसी अवस्था में संभव है जब व्यक्ति आत्म–ज्ञान प्राप्त कर ले। इस संसार में यह ज्ञान की सभी श्रेष्ठ क्रियाओं में सर्वाधिक श्रेष्ठ है। इसी ज्ञान के द्वारा, अमरतत्व तथा जन्म–मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

वेद कहते हैं कि–''सभी सत्कर्म इस संसार में और आगे भी निश्चित रूप से आनन्द प्रदान करेंगे, क्योंकि उनमें सभी उत्तम कर्मों का उल्लेख है।''

टिप्पणी

अच्छे कर्मों से अगले जन्म में सुख एवं सृमद्धि प्राप्त कर सकते हैं लेकिन ऐसा करने से मोक्ष नहीं मिल सकता है। मोक्ष तो तभी प्राप्त हो सकता है जबकि आत्म–ज्ञान हो जाए। मोक्ष के लक्ष्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब व्यक्ति स्वयं की आत्मा के द्वारा अन्य सभी प्राणियों की आत्मा को पहचाने और सभी के प्रति समान व्यवहार करे। इसलिए बिना किसी को कष्ट दिए अपने स्वधर्म का निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए।

## 6. याज्ञवल्क्य स्मृति एवं शुक्रनीतिसार में कर्म

दोनों में मनुस्मृति के कर्म और पुनर्जन्म के सम्बन्ध में व्यक्त विचारों को ही प्रधानता दी गई है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि धर्म और अधर्म कर्म संग्रह के बीज हैं। इस कर्म से तीन परिणाम सामने आते हैं–

1. उच्च या निम्न जाति में जन्म
2. आयु की अवधि
3. व्यक्ति को मिलने वाले सुख अथवा दुख यानी भोग।

धर्म में सही कर्म ही प्रमुख है। याज्ञवल्क्य ने विभिन्न वर्गों एवं आश्रमों के धर्म निर्धारित किये हैं। मनुष्य के लिए सबसे बड़ा धर्म आत्मज्ञान अथवा आत्म दर्शन है।

**शुक्रनीतिसार**– शुक्रनीतिसार बताता है कि मनुष्य का अस्तित्व पिछले जन्मों के कर्मों द्वारा निर्धारित होता है। यह जीवन कर्म एवं भाग्य पर आधारित होता है। कर्म को दो भागों में बांटा जा सकता है– (1) पिछले जन्म के कर्म (2) वर्तमान जीवन के कर्म। यद्यपि शुक्रनीति जीवन में भाग्य को महत्व देती है परन्तु साथ ही यह भी कहती है कि कमजोर व्यक्ति ही निष्क्रिय जीवन व्यतीत करते हैं। इस जीवन में किये गये कर्म भावी भाग्य को बदलने की क्षमता भी रखते हैं। अतः अंत में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के स्वयं के कर्म ही उसके अच्छे और बुरे कर्मों के कारण भाग्य बनते हैं।

## 7. पंतजलि योगसूत्र में कर्म

यह योगसूत्र स्पष्ट करता है कि अविद्या तथा क्लेश कर्मों के पुनर्जन्म के लिए उत्तरदायी है। अविद्या ही क्लेशों को जन्म देती है। अविद्या के होने का तात्पर्य अशिक्षित होना नहीं है बल्कि सही ज्ञान के विपरीत मिथ्या ज्ञान का होना है। पंतजलि क्लेशों को पांच भोगों में विभाजित करते हैं–

1. अविद्या–पुरुष और प्रकृति को भ्रमवश एक मानना।
2. अस्मिता–शरीर और जीव को एक मानना।
3. राग–विषयों से लगाव होना।
4. द्वेष–दुख देने वाली वस्तुओं के प्रति घृणा और उनसे दूर रहने का भाव होना।
5. अभिनिवेश–जीवन से लगाव और मृत्यु से डर का भाव होना।

इन सभी में विद्या प्रमुख है और शेष उसके विभेद हैं। इसलिए विद्या ही व्यक्ति को जन्म–ऋण तथा सब प्रकार के बंधनों से मुक्त करा सकती है। इसी विद्या को प्राप्त करने के लिए पंतजलि ने योग की अवधारणा को स्वीकार किया है। योग 'युज' धातु से बना है जिसका अर्थ है–'जोड़ना'। इसलिए यह स्वीकार किया गया है कि

आत्मा और परमात्मा को यौगिक प्रक्रियाओं द्वारा जोड़ा जा सकता है। अतः योग आत्मा के परमात्मा से वियोग को दूर करने का प्रयास है। योग में आत्मा तथा परमात्मा के मिलन की अवस्था को समाधि नाम दिया गया है।

**टिप्पणी**

पंतजलि में कहा गया है कि साधारण व्यक्ति शुल्क कर्म (अच्छे कर्म), कृष्ण कर्म (बुरे कर्म) तथा शुल्क–कृष्ण कर्म (अच्छे एवं बुरे दोनों कर्म) करता है तथा उनके अच्छे और बुरे फलों को भोगता है। परन्तु सच्चे योगियों के कर्म इस प्रकार के नहीं होते हैं। उसके कर्म एक संन्यासी की भांति होते हैं। वह अपने कर्मों का कर्ता स्वयं को न मानकर ईश्वर को मानता है। वह ऐसा सोचता है कि ईश्वर की इच्छा से वह इन सब कार्यों को कर रहा है। जब सब प्रकार के क्लेश एवं कर्म पूर्वतः समाप्त हो जाते हैं तो व्यक्ति जन्म–मरण के बन्धन से छूटकर मोक्ष प्राप्त कर लेती है। इसीलिए कर्मों तथा पुनर्जन्म के अन्तहीन चक्र को खत्म करने का एक मात्र साधन ज्ञान प्राप्ति है।

कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धांत के साथ लोग स्वर्ग एवं नरक में भी विश्वास करने लगे तथा ऐसा सोचा जाने लगा कि भक्ति की शक्ति ईश्वर के पास जाने का माध्यम है। व्यक्ति की यही आध्यात्मिक दृष्टि उसे कर्म बन्धनों से मुक्त करती है।

## कर्म सिद्धांत में अन्तर्निहित तत्व

कर्म सिद्धांत में अन्तर्निहित निम्न तत्व हैं–

1. कर्म सिद्धांत हिन्दू जीवन–दर्शन में मनुष्य की वर्तमान स्थिति जन्म चक्र और मोक्ष से सम्बन्धित धारणा है।
2. मनुष्य का जन्म उसके भूतकालीन कर्मों के कारण होता है। इस जीवन में किये गये कर्म आगे आने वाले जीवन में भुगतने पड़ते हैं।
3. कर्म का तात्पर्य केल बाहय प्रारंभिक क्रियाओं से ही नहीं है; बल्कि मन, वचन और शरीर द्वारा जो क्रियाएं होती हैं वे सभी कर्म में शामिल होती हैं।
4. मनुष्य जो कर्म मन, वचन तथा शरीर से करता है उसके कारण उसे बार–बार जन्म लेना पड़ता है। बिना कर्म से छुटकारा लिए वह जन्म–मरण के बन्धन से नहीं छूट सकाता।
5. कर्म सिद्धांत के अनुसार कर्म का प्रभाव व्यक्ति पर अनिवार्य रूप ही पड़ता है।
6. कर्म से रिक्त होने का तात्पर्य कर्म न करना नहीं है क्योंकि पूर्ण निष्यिकता किसी प्रकार सम्भव नहीं है। जो जीव जीवन धारण करता है वह निश्चित रूप से कुछ न कुछ कार्य अवश्य करता है। अतः कर्म सिद्धांत कहता है कि व्यक्ति के द्वारा केवल सही कर्म ही किये जाने चाहिए अर्थात स्वधर्म का पालन करना चाहिए।
7. आत्मा का बार–बार जन्म लेना कर्मों का ही परिणाम होता है क्योंकि कर्म एक योनि में समाप्त नहीं हो पाते हैं। पूर्व जन्म के संचित और वर्तमान के कर्मफल सीमित रूप से आत्मा के अगले रूप को निर्धारित करते हैं।
8. व्यक्ति को जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त होने के लिए निष्काम करते हुए फल की इच्छा को त्याग देना आवश्यक है। व्यक्ति स्वधर्म का पालन करे,

अपने को कर्त्ता न माने, भक्ति के मार्ग पर चले तथा मन, वचन तथा शरीर से अच्छे कार्य करे।



9. व्यक्ति का वर्तमान सुख–दुख, समृद्धि और उसके प्रारब्ध का परिणाम है। ये कर्मफल हमारे संचित कर्मों के परिणाम हैं। सुख–दुख, यश–अपयश, लाभ–हानि, जीवन–मरण आदि के चरम–बिन्दुओं को ही प्रारब्ध निर्धारित करता है। उन चरम सीमाओं के बीच व्यक्ति को कर्म करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। यदि कर्म की स्वतंत्रता न होती तो फिर कर्म और फल की यह श्रृंखला निरर्थक हो जाती।
10. कर्म तथा भाग्य दोनों अलग–अलग विचार हैं। यदि पूर्व जन्म के कर्मफल के आधार पर वर्तमान को भाग्य समझा जाए और सुकर्म न किए जाएं तो आगामी जीवन और ज्यादा दुखमय हो जायेगा। इस प्रकार वर्तमान को भाग्य समझकर हाथ पर हाथ रखे बैठे रहें ऐसा नहीं है बल्कि आगामी जीवन को सुधारने के लिए सतकर्म करने चाहिए। PH Prabhu (पी.एच. प्रभु) के मत में दैव या भाग्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो बाहर से हम पर लाद दी गई हो, यह तो हमारे ही भूतकालीन कार्यों का संग्रहित प्रमाण है, हमारी ही क्रियाओं की प्रतिक्रिया है, और इस तरह हमारे ही द्वारा निर्मित है। यह भी कहा जा सकता है हम स्वयं ही अपने मौजुदा भाग्य के लिए उत्तरदायी हैं। कोई भी अन्य नहीं बल्कि व्यक्ति स्वयं ही अपने भविष्य को बना या बिगाड़ सकता है। अतः कर्म सिद्धांत द्वारा प्रभावित जीवन का दर्शन भाग्यवाद का किसी भी रूप में पोषक या समर्थक नहीं है।
11. कर्म का सिद्धांत निश्चित रूप से कार्य–कारण का नियम है परन्तु यह भौतिक जगत के कार्य–कारण नियम से कुछ अलग है। भौतिक तत्व जैसे– आग, पानी, हवा, मिट्टी स्वतंत्र नहीं है लेकिन व्यक्ति चेतना रखता है, विवेकशील है, इसलिए अगर वह चाहे तो जन्म–मरण से छूट सकता है।

## कर्म सिद्धांत का महत्व

कर्म सिद्धांत ने भारतीय जीवन को हर युग में अनेक प्रकार से प्रभावित किया है तथा प्रेरणा का स्रोत बना रहा है। इसकी आशावादी प्रेरणा ने भारतीय समाज को सदा ही प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति में विकास के अवसर प्रदान किए हैं और भाग्यवादी पक्ष ने सामान्य जीवन को संगठित रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसकी प्रभावशीलता एवं व्यापकता इतनी अधिक रही है कि हिन्दू धर्म के कट्टर आलोचक बौद्ध और जैम धर्मों ने भी इसे स्वीकार किया। कर्म सिद्धांत इन धर्मों में भी उतना ही महत्व रखता है जितना कि हिन्दू धर्म में। इस सिद्धांत के वर्तमान जीवन को सब कुछ मानकर अभी और इसी सभ्य प्राप्त कर लेने पर बल नहीं दिया है। यह जीवन अनेक जन्मों में से एक है। यह सिद्धांत स्वधर्म की धारणा और इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति का मौजूदा जीवन परिवार, जाति तथा वर्ण विशेष में जन्म, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा तथा सुख और दुख संयोग का फल नहीं है बल्कि उसी के पूर्व जन्मों के कर्मों का परिणाम है।

इस सिद्धांत के अनुसार पूर्वजन्म में भी व्यक्ति कर्म करने के लिए स्वतंत्र था और इस जीवन में भी। कुछ विद्वान इस सिद्धांत की आलोचना भी करते हैं। इन आलोचकों

टिप्पणी

के विचार हैं कि वर्तमान भारतीय समाज का पिछड़ापन और दुर्भाग्य कर्मवाद के कारण ही है। व्यक्ति अपने वर्तमान जीवन को अपना भाग्य मान लेता है जिसके कारण अच्छे कर्म करता है। इस सिद्धांत को अगर स्वीकार कर किया जाए तो देश में व्याप्त हर प्रकार का अन्याय न्याय में बदल जायेगा। कर्म सिद्धांत की इतनी अधिक व्याख्याएं दी गई हैं और इतने अर्थ लगाए गए हैं कि यह एक रहस्यात्मक सिद्धांत बन गया है।

डॉ. राधाकृष्णन कहते हैं कि–''यह सिद्धांत यह घोषणा करता है कि मानव अपने कर्मों के कारण ही शक्तिशाली है। जीवन एवं आचरण में कोई भी सिद्धांत इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि कर्म सिद्धांत। यह भविष्य के प्रति आशा और अतीत के प्रति विस्मृति पर बल देती है।''

आप आगे लिखते हैं कि–''कर्मवाद जीवन के लिए अमूल्य है क्योंकि यह भविष्य की आशा और भूत को भूल जाने में विश्वास करता है। वास्तव में कर्म वह शक्ति है जो हमारे नैतिक जीवन का आधार है और उसे नियंत्रित करती है।''

इस सिद्धांत से प्रभावित होकर मैक्स वेबर ने कहा है कि–''कर्म के सिद्धांत ने सारे संसार को एक लौकिक और नैतिक व्यवस्था में बदल दिया। यह सिद्धांत सम्पूर्ण इतिहास में सर्वश्रेष्ठ है तथा स्थित ईश्वरीय विश्वास का निदर्शन करता है।''

## पुरुषार्थ

पुरुषार्थ का अर्थ होता है प्रयत्न करना। यह कहा गया है कि 'पुषैथर्यते पुरुषार्थः' अर्थात अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए किये गये प्रयत्नै। पुरुषार्थ की श्रेणी में रखे जाते हैं। अभीष्ट यानी मोक्ष प्राप्त करना हर व्यक्ति के जीवन का ध्येय है। इसको प्राप्त करने के लिए धर्म, काम और अर्थ पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। इसलिए व्यक्ति लगातार प्रयत्न करता रहे और लक्ष्य प्राप्ति की तरफ कदम बढ़ाता रहे, यही पुरुषार्थ कहलाता है। पुरुषार्थ की इस धारा में जीवन के विभिन्न कर्तव्यों का बोध होता है। वेद उपनिषद्, गीता तथा स्मृतियां जीवन के चार आधारभूत कर्तव्यों के क्षेत्र में 'पुरुषार्थ' की व्याख्या करती हैं जिनको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के नाम से जाना जाता है। जब इन चारों पुरुषार्थों पर सफलता मिल जाती है तब व्यक्ति के लिए मोक्ष के द्वार खुल जाते हैं।

डॉ. के.एम. कपाडिया चारों पुरुषार्थों का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

1. **धर्म**– धर्म इस बात का विश्लेषण करता है कि 'काम और अर्थ' तो केवल 'साधन' मात्र है 'साध्य' नहीं हैं। जो व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति में अपने आपको समर्पित कर देते हैं वह उचित नहीं करते। इसलिए यह आवश्यक है कि जीवन का निर्देशन आध्यात्मिक आदर्श से होना चाहिए। धर्म के अंतर्गत यही सब करने की जरूरत है। पुरुषार्थ का सिद्धांत भौतिक इच्छाओं और आध्यात्मिक जीवन में संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।
2. **अर्थ**– हमेशा से ही मनुष्य की प्रवृत्ति धन संग्रह की रही है। वह उस संचित धन का उपभोग करता है। मानवीय जीवन में धन बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए हिन्दू विचारकों ने धन को जीवन में एक पुरुषार्थ के रूप में स्थान देकर उसे उचित मानवीय आकांक्षा माना है।

टिप्पणी

3. **काम**– काम मनुष्य के जीवन में भावुक क्षणों को उत्पन्न करता है। काम का अर्थ केवल व्यक्ति की मूल प्रवृत्ति सम्बन्धी जीवन से नहीं है बल्कि सौंदर्य तथा उद्देश्यपूर्ण जीवन भी इसमें सम्मिलित होता है। मनुष्य वस्तु को देखकर प्रसन्न होता है एवं उसकी प्रशंसा भी करता है। जीवन का सर्वोपरि आनन्द रचनात्मक प्रवृत्तियों में ही है। हिन्दू विचारकों ने माना है कि मनुष्य को आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की क्षमता तभी मिल सकती है जब उसकी धन और काम सम्बन्धी आवश्यकताएं पूर्ण हो जाएं।
4. **मोक्ष**– मोक्ष जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना जाता है। मनुष्य की वास्तविक प्रवृत्ति आध्यात्मिक है तथा जीवन का उद्देश्य उसे अभिव्यक्त करना है। इससे ज्ञान प्राप्त होता है तथा आनंद की अनुभूति होती है।

### 5.2.2 जैन धर्म

जैन दर्शन का प्रतिपादन वर्धमान महावीर ने किया था। वर्धमान महावीर का जन्म वैशाली में हुआ था। 30 वर्ष की आयु में इन्होंने गृहत्याग किया तथा 12 वर्ष तक लगातार तपस्या करने के बाद 42 वर्ष की आयु में उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हुई। 72 वर्ष की अवस्था में 468 ई.पू. में पावापुरी नामक स्थान में उनकी मृत्यु हुई थी। जैन धर्म के अनुयायी ये मानते हैं कि वर्धमान महावीर जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर थे। पहले तीर्थकंर ऋषभदेव तथा 23वें पार्श्वनाथ थे। जैन दर्शन भी वेद विरोधी है इसलिए इसे भी नास्तिक दर्शन कहते हैं। जैन दर्शन के अध्ययन के लिए आगम साहित्यों का सहारा लिया जाता है।

#### जैन दर्शन की तत्व मीमांसा

जैन दर्शन अनेकेश्वरवादी है। इसके अनुसार ईश्वर के अस्तित्व को न तो प्रत्यक्ष, न ही अनुमान विधि से अर्थात दोनों में से किसी के द्वारा भी अनुभूत नहीं किया जा सकता है।

- जैन दर्शन, ईश्वर की बजाए तीर्थंकर में विश्वास करने की बात करता है।
- जगत नित्य एवं अनित्य दोनों है, जो अनेक द्रव्यों से मिलकर बना है।
- आत्मा का बंधन कर्मों का परिणाम है। शरीर व आत्मा दोनों साथ–साथ चलते हैं।
- वस्तु अनंत धर्मक है।

जैन दर्शन में द्रव्य प्रमुख तत्व है। मनुष्य द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले स्वतंत्र रूप में प्रतिष्ठित पदार्थ ही द्रव्य है। इसके दो भेद हैं – जीव और अजीव। द्रव्य के ये दोनों भेद द्रव्य की पहली श्रेणी – 'अस्तिकाय' (शरीरवान पदार्थ) के अतंर्गत आते हैं। द्रव्य की दूसरी श्रेणी 'अमस्तिकाय' (शरीर–रहित पदार्थ) में सिर्फ 'काल' आता है।

जगत के सबसे ठोस व प्राथमिक तत्व को पुदगल कहा जाता है। जो द्रव्य पूरण और गलन के द्वारा विविध रूपों में परिवर्तित होता है, वो पुद्गल है। पुद्गलों में संयोग और विखंडन दोनों के गुण होते हैं। पुद्गल के सबसे छोटे भाग को परमाणु कहते हैं। दो या दो से अधिक परमाणु मिलकर संघात का निर्माण करते हैं।

जैन दर्शन के अनुसार, पुद्गल के 4 गुण होते हैं, जिनमें स्पर्श, रस, गंध एवं वर्ण शामिल हैं। पुद्गल के ये चारों गुण परमाणु एवं पदार्थों में भी पाये जाते हैं।

टिप्पणी

## जैन दर्शन की ज्ञान मीमांसा

जैन दर्शन के अनुसार, ज्ञान के पांच प्रकार बताये गए हैं –

1. मति ज्ञान (प्रत्यक्ष ज्ञान),
2. श्रुति ज्ञान (शब्द व लक्षण ज्ञान),
3. अवधि ज्ञान (अतीन्द्रिय ज्ञान),
4. मनः पर्याय ज्ञान (मनोभावों द्वारा अनुभूत ज्ञान), एवं
5. कैवल्य ज्ञान (सर्वज्ञ ज्ञान)।

जैन दर्शन के द्वारा वर्णित इन पांच प्रकार के ज्ञान को मुख्यतः दो प्रकारों में बांटा जा सकता है। पहला व्यावहारिक ज्ञान (मति ज्ञान एवं श्रुति ज्ञान) तथा दूसरा पारमार्थिक ज्ञान (अवधि ज्ञान, मनः पर्याय ज्ञान और कैवल्य ज्ञान)।

जैन दर्शन में ज्ञान को लेकर एक प्रचलित विचारधारा स्यादवाद है। स्यादवाद के अनुसार, वस्तु का स्वरूप अनेकात्मक होता है क्योंकि इनके अनेक गुण व धर्म होते हैं तथा समस्त ज्ञान नित्य व अनित्य दोनों प्रकृति का है। स्यादवाद सात भागों में विभक्त है –

1. स्याद् अस्ति (है);
2. स्याद् नास्ति (नहीं है);
3. स्याद् अस्ति च नास्ति (है भी और नहीं है);
4. स्याद् अव्यक्तव्यम् (अनिर्वचनीय);
5. स्याद् अस्ति व अव्यक्तव्यम् (है भी और अनिर्वचनीय भी है);
6. स्याद् नास्ति व अव्यक्तव्यम् (नहीं है और अनिर्वचनीय है); तथा
7. स्याद् अस्ति च नास्ति च अव्यक्तव्यम् (है भी नहीं भी और अनिर्वचनीय है)

## जैन दर्शन की मूल्य मीमांसा

जैन दर्शन में कर्म को बंधन का कारण माना गया है। बंधनों से मुक्ति ही मोक्ष है।

कषाय (काम, क्रोध, मद, लोभ) ये चार कर्म पुद्गल को बंधन की ओर धकेलते हैं।

जैन दर्शन यह मानता है कि जीव और पुद्गल का संयोग ही बंधन उत्पन्न करता है और जीव का पुद्गल से वियोग मोक्ष है। जैन दर्शन में मोक्ष प्राप्ति को एक निश्चित प्रक्रिया मानते हैं तथा इस प्रक्रिया के दो अंग है – संवर तथा निर्जरा।

संवर– पुद्गल कणों के जीव की ओर प्रवाह को रोकना।

निर्जरा– जीव में समाविष्ट पुद्गल कणों का उन्मूलन ही निर्जरा है।

मोक्ष की प्राप्ति के तीन सिद्धांत हैं, जिन्हें जैन धर्म के 'त्रिरत्न' की संज्ञा दी गयी है। ये त्रिरत्न निम्नलिखित हैं –

1. सम्यक दर्शन – यथार्थ ज्ञान के प्रति विश्वास श्रद्धा।
2. सम्यक ज्ञान – कषाय बंधन से मुक्ति पाने का ज्ञान ; तथा
3. सम्यक चरित्र – अकरणीय कर्मों का त्याग तथा करणीय कर्मों का अभ्यास।

टिप्पणी

पंच महाव्रतों का पालन करना जैन दर्शन में आवश्यक है। ये पंच महाव्रत निम्नलिखित हैं –

1. अहिंसा (मनसा, वाचा एवं कर्मणा हिंसा का त्याग);
2. सत्य;
3. अस्तेय;
4. ब्रह्मचर्य; तथा
5. अपरिग्रह।

## जैन दर्शन में शिक्षा

जैन दर्शन में शिक्षा के संप्रत्यय को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया हैः शिक्षा व्यक्ति को सत् जीवन की ओर अग्रसर करने तथा जीवन के अंतिम लक्ष्य तक पहुंचाने की प्रक्रिया है।

जैन दर्शन में शिक्षा का परम उद्देश्य, मोक्ष या निर्वाण की प्राप्ति तथा अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति बताया गया है। इस परम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जैन दर्शन में शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं–

- सम्यक ज्ञान अर्थात करणीय तथा अकरणीय ज्ञान की प्राप्ति में बालक की सहायता करना। दूसरे शब्दों में, इसे हम बालक का ज्ञानात्मक विकास करना कह सकते हैं।
- बालक का भावात्मक विकास करना क्योंकि उचित भावात्मक विकास ही बालक को ज्ञान प्राप्ति के पथ पर अग्रसर करता है।
- बालक का चारित्रिक विकास करना क्योंकि सशक्त चरित्र ही लक्ष्य–पूर्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

### (क) पाठ्यक्रम

जैन दर्शन, आध्यात्मिक व सांसारिक दोनों प्रकार की शिक्षा की बात करता है। अतः जैन दर्शन के पाठ्यक्रम में भी दोनों प्रकार के विषयों को सम्मिलित किया गया है।

**जीव का अध्ययन** – 'मुक्तात्मा' प्रकार के जीव का अध्ययन करने के लिए आध्यात्मिक विषयों तथा 'बद्धात्मा' प्रकार के जीव का अध्ययन करने के लिए मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, नक्षत्र विज्ञान, जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान आदि विषयों को शामिल किया जाता है।

**पुद्गल का अध्ययन** – इसके अध्ययन के लिए विभिन्न भौतिक विज्ञानों, यांत्रिकी विद्या, कला–कौशल व शिल्प को शामिल किया जाता है।

**अजीव के भेद का अध्ययन**– अजीव के अंतर्गत धर्म, अधर्म एवं आकाश का अध्ययन किया जाता है। इसके लिए जैन साहित्य में जैन दर्शन एवं अंतरिक्ष विज्ञान को शामिल किया जाता है।

टिप्पणी

### (ख) शिक्षण विधि

जैन दर्शन में निम्नलिखित शिक्षण विधियों की बात की गई है–

प्रत्यक्ष विधि, तर्क विधि, आगमनात्मक विधि एवं निगमनात्मक विधि द्वारा भाषा, गणित एवं विज्ञान जैसे विषयों का शिक्षण किया जाता है। इसके अलावा शब्द विधि, व्याख्यान विधि इत्यादि का भी प्रयोग किया जाता है।

### (ग) छात्र

जैन दर्शन के अनुसार, छात्र पांचों इंद्रियों से युक्त तथा चैतन्य आत्मा वाला प्राणी है। सब छात्रों में कर्म–जनित व्यक्तिगत विभिन्नता पाई जाती है। छात्र का जीवन संयम की आधारशिला पर टिका होता है। जैन दर्शन में शिक्षार्थियों को कुछ नियमों को पालन करने को कहा गया है। ये नियम निम्नलिखित हैं–

- गुरुजनों के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास रखना;
- दस गुण–धर्मों का पालन करना;
- पंच महाव्रतों का पालन;
- त्रिरत्न का अनुसरण करना ताकि कषाय बंधनों से मुक्ति पा सकें;
- चारित्रिक गुणों का विकास करने के लिए सद्व्यवहार का पालन करना।

### (घ) शिक्षक

जैन दर्शन में शिक्षक का स्थान सर्वोपरि है। शिक्षक दो प्रकार के होते हैं– आचार्य एवं उपाध्याय। शिक्षक को पांच महाव्रतों एवं दस गुण धर्मों का पालन करने वाला होना चाहिए। जैन दर्शन के अनुसार, शिक्षक की निम्नलिखित विशेषता होनी चाहिएः

- शिक्षक की अध्यापन शैली ऐसी होनी चाहिए, जिससे छात्र के संशय का निवारण हो सके;
- शिक्षक को समदर्शी होना चाहिए अर्थात सब छात्रों के साथ एक समान व्यवहार करने वाला होना चाहिए;
- शिक्षक का जीवन अनुशासित होना चाहिए;
- उसे अपने विषय का विशेषज्ञ होना चाहिए;

जैन दर्शन की उपरोक्त वर्णित अवधारणा पर ध्यान देने के उपरांत कहा जा सकता है कि जैन दर्शन एक अनीश्वरवादी दर्शन है। इसका आधार पुद्गल, कषाय, अन्नत, चतुष्टय, द्रव्य आदि जैसे कुछ तत्व है। इन्हीं तत्वों के आधार पर यह जीव–जगत आदि की व्याख्या करता है। स्याद्वाद जैन धर्म का प्रमुख सिद्धांत है, जो ज्ञान के नित्य एवं अनित्य दोनों होने का बोध कराती है। जैन दर्शन जीवन का परम लक्ष्य मुक्ति अर्थात मोक्ष को मानता है तथा उसकी ओर व्यक्ति को अग्रसर करने के लिए शिक्षा को आवश्यक मानता है। अतः, इसके अनुसार, व्यक्ति को सद्जीवन की ओर प्रेरित करने वाली क्रिया ही शिक्षा है। शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों

पर ध्यान देने से एक बात और स्पष्ट होती है कि जैन दर्शन में शिक्षा को जीवन की यथार्थता, तत्वज्ञान के आदर्श तथा संसार की निरंतरता व अनश्वरता से जोड़ा गया है ताकि बालक में मानवीय गुणों का विस्तार हो सके और बालक आत्मानुभव तथा चिंतन करने के लायक हो सके।

## 5.2.3 बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध का जन्म 566 ईसा पूर्व में शाक्य नामक क्षत्रिय कुल में कपिलवस्तु के निकट नेपाल की तराई में स्थिति लुंबिनी में हुआ था। उनका पारिवारिक नाम सिद्धार्थ था। बाल्यकाल से ही सिद्धार्थ का ध्यान आध्यात्मिक चिंतन की ओर था। उन्होंने 29 वर्ष की आयु में घर–परिवार को त्याग कर सन्यासी बन गए। बौद्ध धर्म की प्रारंभिक परंपराओं में ईश्वर का होना अथवा न होना अप्रासंगिक था। बुद्ध ने न ईश्वर के अस्तित्व को नकारा और न ही इसे स्वीकार किया। महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म का प्रचार संगठित रूप से करने के उद्देश्य से बौद्ध संघ की स्थापना की।

### बौद्ध धर्म का मूल तत्व

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में भारतीय समाज में प्रचलित यज्ञवाद, वेदवाद, बहुदेववाद, रुढ़िवादिता, आडम्बरयुक्त धार्मिक कर्मकांडों, ब्राह्मणों के नैतिक पतन और समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध आवाज बुलन्द करने वाले महापुरुष महात्मा बुद्ध हुए हैं। महात्मा बुद्ध ने राजसी जीवन एवं सुखी दाम्पत्य जीवन त्यागकर, सत्य की खोज में घोर कष्टों एवं कठिनाइयों का सामना किया। ज्ञानप्राप्ति के बाद उन्होंने ब्राह्मणों के यज्ञों, हवनों तथा तीर्थों की निस्सारता का प्रचार करते हुए शील, आचरण की शुद्धता, सत्य, धर्म, संयम, ब्रह्मचर्य आदि की महत्ता पर जोर दिया और भारतवासियों को एक सरल तथा शुद्ध धर्म दिया जो अपने मौलिक गुणों तथा राजाश्रय में देश–देशान्तरों में द्रुतगति से पफैला और जिसने संसार के विभिन्न देशों की संस्कृति तथा इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला। आज भी यह धर्म विश्व के एक तिहाई भाग में प्रचलित है। संघरक्षित भिक्षु लिखते हैं–''इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि यदि इस महान धर्म को प्रतिवूफल राजनीतिक परिस्थितियों का सामना न करना पड़ता तो यह अवश्य ही सारे संसार में पफैल जाता।'' आधुनिक बौद्ध जगत में तिब्बत, चीन, मंगोलिया, कोरिया, जापान, हिंदचीन, थाईलैण्ड, वर्मा और लंका मुख्य रूप से सम्मिलित हैं।

कार्न ने लिखा है–''बुद्ध ने संपूर्ण नैतिकता को जन्म दिया था। बुद्ध ने प्राचीन ऋषियों की नैतिकता और सद्‌गुणों को निरंतर दोहराया। बौद्ध धर्म ने बुद्धिमानी से ब्राह्मणों के नैतिक नियमों से नैतिकता और सत्कर्म के अनेक नियमों को ग्रहण किया।''

डॉ. ए. एल. बाशम ने लिखा है–''बुद्ध के जीवन समय में उसकी स्थिति कुछ भी रही हो परंतु 200 वर्ष के बाद बौद्ध धर्म एक पृथक धर्म था।''

### महात्मा गौतम बुद्ध

बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध का जन्म शाक्य कुल में हुआ था इसीलिए महात्मा बुद्ध को 'शाक्यमुनि' भी कहा जाता है। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। बुद्ध के

पिता शुद्धोदन शाक्य गणराज्य के प्रधान थे तथा माता कोलिय गणराज्य की राजकुमारी मायादेवी थीं। बौद्ध सूत्रों के अनुसार ईसा से 563 वर्ष पूर्व कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन की महारानी मायादेवी अपने पिता के घर आ रही थी कि रास्ते में लुम्बिनी वन में वैशाख मास की पूर्णिमा को उसने एक बालक को जन्म दिया जिसका नाम सिद्धार्थ रखा गया। सिद्धार्थ के जन्म के एक सप्ताह पश्चात ही उनकी माता का देहान्त हो गया। अतः उनका पालन–पोषण उनकी मौसी एवं विमाता प्रजापति ने किया। बाल्यावस्था से ही सिद्धार्थ विचारवान, करुणावान एवं एकांतप्रिय थे। संसार के कष्टों को देखकर उनका हृदय करूणा से भर जाता था।

**टिप्पणी**

उनके पिता ने उनकी सात्विक प्रवृत्ति को देखकर उन्हें समयानुकूल पुस्तकीय शिक्षा के साथ–साथ क्षत्रियोचित्त सामरिक शिक्षा भी दिलवाई। बहुधा वे अपने गृह से दूर एक जम्बूवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न अवस्था में बैठे मनन किया करते थे। इस निवृत्ति वृत्ति को देखकर शुद्धोधन ने सिद्धार्थ के लिए तीनों ऋतुओं के अनुरूप पृथक–पृथक तीन प्रासाद बनवाये थे एवं उनमें राजकीय वैभव और ऐश्वर्य की सभी प्रकार की सामग्री संग्रह की गई थी। परंतु सिद्धार्थ का मन सांसारिक विषयों में अनुरक्त नहीं हुआ। अंत में अपने पुत्र के हृदय में सांसारिक जीवन के प्रति गहरी उदासीनता देखकर शुद्धोद्धन ने सिद्धार्थ का विवाह सोलह वर्ष की अवस्था में रामग्राम के कोलिय गणराज्य की अत्यन्त सुंदर राजकुमारी यशोधरा से कर दिया। इस नवविवाहित दम्पत्ति के भवन को शुद्धोदन ने भोग विलास एवं आनंद की सर्वोत्कृष्ट सामग्री और साधनों से परिपूर्ण कर दिया। परंतु दुखी तथा विषादग्रस्त विश्व के बीच भोगविलास के इन उपकरणों से सिद्धार्थ के आकुल एवं चिन्तनशील हृदय को शान्ति नहीं मिली। इस वैभव और विलास के मध्य भी सिद्धार्थ के मन में जीवन की सुख–दुख की समस्याओं को लेकर निरंतर द्वन्द्व चलता रहता था। लगभग 12–13 वर्ष तक सामान्य गृहस्थ जीवन का सुख भोग लेने पर भी सिद्धार्थ का मन सांसारिक प्रवृत्तियों में नहीं लग सका। अपने गृहस्थ जीवन में सिद्धार्थ के 'राहुल' नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पन होने की सूचना जब सिद्धार्थ को प्राप्त हुई तो उनके मुंह से निकल पड़ा – ''राहुजातो बंधनं जातन्ति'' अर्थात राहु उत्पन्न हुआ बंधन उत्पन्न हो गया। उनके पुत्र का नाम राहुल था। संसार के सभी सुख उनको सुलभ होते हुए भी वे जीवन, मरण, दुख आदि प्रश्नों पर मनन ही करते रहते थे।

नगरदर्शन के लिए भिन्न–भिन्न अवसरों पर भ्रमण करते हुए सिद्धार्थ को मार्ग में पहले जर्जर शरीर वृद्ध, पिफर व्यथापूर्ण रोगी तत्पश्चात मृतक और अंत में वीरराग प्रसन्नचित्त संयासी के दर्शन हुए। उनके हृदय में सांसारिक सुख साधनों की निष्फलता और प्रवृत्ति मार्ग की निस्सारता तथा निवृत्ति मार्ग की सन्तोष भवना को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया। वे जीवन की अनन्त समस्याओं उसके कष्टों तथा मृत्यु की भावना से आक्रान्त हो गए, उनकी शांति भंग हो गई और वे एकांतवास की गम्भीर शान्ति की ओर अधिक आकर्षित हुए। इसी वैराग्य भावना ने उन्हें तृष्णा की जंजीर तोड़ने, अज्ञान का कोहरा दूर भगाने तथा अपनेपन की मिथ्या मति को मिटाने की प्रेरणा प्रदान की तथा एक रात्रि वह अपनी पत्नी, नवजात पुत्र एवं अपने पिता, संपूर्ण राज्य

वैभव को त्यागकर ज्ञान की खोज में निकल पड़े। उनके जीवन की इस घटना को बौद्ध धर्म और साहित्य में 'महाभिनिष्क्रमण' के नाम से जाना जाता है।

टिप्पणी

प्रो. कौशाम्बी के अनुसार सिद्धार्थ के इस प्रकार गृह त्यागने का एक राजनीतिक कारण भी था। शाक्यों के समीप कोलियों का राज्य था। शाक्य व कोलियों के बीच रोहिणी नदी के पानी को लेकर झगड़ा रहता था। इस पारस्परिक झगड़े के कारण सिद्धार्थ बड़े अप्रसन्न रहते थे। जब शुद्धोदन ने कोलियों पर आक्रमण करने का उत्तरदायित्व सिद्धार्थ को सौंपा तो उन्होंने इंकार कर दिया और यह सोचकर कि कदाचित राजाज्ञा की अवहेलना करने के कारण उसके पिता उसे राज्य से निष्कासित कर देंगे। सिद्धार्थ ने गृह त्याग दिया। उस समय सिद्धार्थ की आयु 29 वर्ष थी।

गृह त्याग कर सिद्धार्थ ज्ञान की खोज में पण्डितों एवं विद्वानों तथा साधु सन्यासियों के पास घूमने लगे। सन्यासी हो जाने के बाद सर्वप्रथम वे वैशाली के आलारकालाम नामक तपस्वी के पास गए जहां उनकी ज्ञान पिपासा समाप्त नहीं हो पाई अतः उसके बाद वे राजगृह के एक अन्य ब्राह्मण उद्रक रामपुत्र के पास गए परंतु वहां भी उनकी ज्ञान–पिपासा शांत न हो सकी। परंतु इन दोनों गुरुओं से सिद्धार्थ ने योग साधना एवं समाधिस्थ होना सीखा। तत्पश्चात वे उरुबेला आए और तपस्या में लीन हो गए। यहां उन्हें कौण्डिन्य आदि पांच ब्राह्मण साधक सन्यासी भी मिले। अतः इनके साथ मिलकर गया के पास उरुवेला की सुरम्य वनस्थली में मोहना और निरंजना नामक नदियों के संगम पर मुण्डेश्वर नामक छोटी सी पहाड़ी पर सिद्धार्थ ने ज्ञान प्राप्ति के लिए कठिन और घोर तपस्या प्रारंभ की। उनकी धारणा थी कि अन्न और जल का त्याग कर देने पर, योगाभ्यास और विविध तपस्या में रहने से, रक्त मांस के गल जाने पर उनकी बुद्धि शुद्ध हो जायेगी और संसार की मुक्ति के लिए सच्चा ज्ञान उपलब्ध हो सकेगा। परंतु ऐसा नहीं हुआ। छः वर्ष की निरंतर कठिन तपस्या से और आहार त्याग से उनका शरीर सूख कर अस्थिपंजर रह गया और तपस्या के पश्चात उन्हें ज्ञान भी नहीं मिला था। ऐसी जनश्रुति है कि एक दिन नगर की कुछ स्त्रियां गीत गाती हुई निकलीं जहां सिद्धार्थ तपस्या रत थे। वहीं सिद्धार्थ ने गीत सुना। जिसका भावार्थ था ''वीणा के तारों को ढीला मत छोड़ो। ढीला छोड़ देने से उनसे सुरीला स्वर न निकलेगा परंतु तारों को इतना कसो भी मत जिससे वे टूट जायें।'' अतः उन्होंने स्वीकार किया कि मनुष्य को मध्यम मार्ग अपनाना चाहिए। उन्होंने आहार ग्रहण करना शुरू कर दिया। सिद्धार्थ के तपोभंग तथा भिक्षाटन को देखकर सिद्धार्थ का साथ पांचों ब्राह्मणों ने छोड़ दिया और वे ऋषिपत्तन (सारनाथ) की ओर सिद्धार्थ को तप भ्रष्ट समझकर चले गए। उनकी धारणा थी कि सिद्धार्थ भोगवादी है और शरीर की सुख सुविधाओं के लिए पथभ्रष्ट हुआ है, किंतु इससे गौतम विचलित नहीं हुए और उन्होंने ध्यान लगाने का निश्चय किया। वे वहीं एक पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान की अवस्था में बैठ गए। सात दिन तक ध्यानमग्न रहने के पश्चात वैशाख पूर्णिमा की रात को जब सिद्धार्थ ध्यान लगाने बैठे तो उन्हें बोध (आंतरिक ज्ञान) हुआ। उन्हें साक्षात् सत्य का दर्शन मिला। तभी से वे बुद्ध के नाम से विख्यात हुए। उस समय उनकी आयु 35 वर्ष की थी। जिस वृक्ष के नीचे उन्हें बोध प्राप्त हुआ था उसका नाम

बोधिवृक्ष पड़ा और जिस स्थान पर यह घटना घटी उसका नाम बोधगया हो गया। इस घटना के बाद भी महात्मा बुद्ध चार सप्ताह तक उसी बोधिवृक्ष के नीचे रहे और धर्म के स्वरूप का चिन्तन करते रहे। ज्ञान प्राप्त करने की घटना को बौद्ध साहित्य में 'सम्बोधि' कहते हैं।

टिप्पणी

## ज्ञान का प्रचार

ज्ञान प्राप्ति के पश्चात सबसे पहले बोधगया में ही बुद्ध ने अपना ज्ञान उपदेश तपस्सु और भल्लिक नामक दो बंजारों को दिया। अपने उपदेशों को जनसाधारण तक पहुंचाने के उद्देश्य से वे सारनाथ पहुंचे। वहीं उन्होंने अपना प्रथम उपदेश दिया जो 'धर्मचक्र परिवर्तन' के नाम से प्रसिद्ध है। यहां से बुद्ध काशी गए और अपने धर्म का प्रचार किया। उन्होंने एक संघ की स्थापना की जिसकी सहायता से लगभग 45 वर्ष तक बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार किया। वह अपने उपदेश जनसाधारण की भाषा में ही देते थे। कोसल का राजा प्रसेनजित तथा मगध के बिम्बिसार, अजातशत्रु, वैशाली की सुविख्यात गणिका आम्रपाली, बुद्ध के पिता शुद्धोदन, माता गौतमी प्रजापति, पुत्र राहुल ने भी इनके धर्म को स्वीकार कर लिया।

पैंतालीस वर्ष बुद्ध संसार से मुक्ति पाने के लिए उपदेश देते रहे और अनवरत प्रचार करते रहे। अस्सी वर्ष की अवस्था में वे भ्रमण करते हुए मल्ल गणराज्य की दूसरी राजधानी पावापुरी आए। यहां वे चुन्दकुमार (स्वर्णकार) के यहां भोजन करने गए। भोजन में सुअर का मांस होने से उनके पेट में दर्द हुआ और उन्हें अतिसार रोग हो गया। पावा से वह कुशीनगर आए और यहीं पर साल वृक्ष के नीचे ईसा पूर्व 543 में वैशाख पूर्णिमा को उनका देहावसान हो गया। उनकी मृत्यु को महापरिनिर्वाण कहा जाता है। उनका अंतिम उपदेश था हे भिक्षुओं! तुम आत्मदीप बनकर विचरो, तुम अपनी ही शरण में जाओ, किसी अन्य का सहारा मत ढूंढो, केवल धर्म को अपना दीपक बनाओ, केवल धर्म की शरण में जाओ।

## बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धांत

महात्मा बुद्ध की शिक्षाएं बड़ी सरल हैं और याज्ञिक कर्मकांड तथा आडम्बरों के विरुद्ध हैं। इसके अतिरिक्त वे आचार प्रधान हैं और मानवीय अनुभव पर आधारित हैं। श्री आर.आर. दिवाकर लिखते हैं– ''बुद्ध के उपदेशों का मूल आधार वेद तथा आर्य धर्मशास्त्र नहीं थे बल्कि उनके आंतरिक अनुभव थे जिन्हें एक साधारण मनुष्य के लिए भी समझना कठिन नहीं।'' बौद्ध धर्म व्यवहारिक धर्म था यह मनुष्य की उन्नति का साधन था। यह धर्म अत्यंत बुद्धिवादी है और उसमें अन्धविश्वासों तथा अन्धपरंपराओं के लिए कोई स्थान नहीं है। उनका धर्म किसी यांत्रिक कर्मकांड, सूक्ष्म दार्शनिकता अथवा पौराणिक अन्धमान्यता के ऊपर आधारित न था। उसका आधार तो मात्र कल्याण था। बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार हैं–

1. **चार आर्य सत्य** – बौद्ध धर्म की आधारशिला उसके चार आर्यसत्य हैं। उसके अन्य सभी सिद्धांतों का विकास इन आर्य सत्यों के आधार पर हुआ है। ये आर्य सत्य निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

(क) **दुख**– संसार में सर्वत्र दुख ही दुख है। बुद्ध ने संपूर्ण मानवता को दुखी देखा। किसी को किसी बात का दुख है, किसी को अन्य किसी का दुख है। जन्म, वृद्धावस्था, मरण, शोक, रुदन, अप्रिय का संयोग, प्रिय का वियोग, इच्छित वस्तु की अप्राप्ति आदि दुःख हैं। संसार का कोई भी व्यक्ति इन दुखों से मुक्त नहीं है। समस्त मानव जीवन दुख से ओत प्रोत है।

(ख) **दुख समुदाय** – संसार में सर्वत्र दुख है यह वास्तविक सत्य है तब प्रश्न उठता है कि आखिर इन दुःखों का कारण क्या है? सांसारिक कष्टों और दुःखों के कारण हैं भौतिक वस्तुओं का सुख भोगने की वासना या तृष्णा। महात्मा बुद्ध की दृष्टि में इसका मूल कारण तृष्णा (इच्छा) है। उनका कहना था कि यह तृष्णा पुनर्भव को करने वाली, आसक्ति और राग के साथ चलने वाली और यत्र–तत्र रमण करने वाली है। काम तृष्णा (संसार के भोगों की तृष्णा), भव तृष्णा (जीने की तृष्णा), विभव तृष्णा (पुनर्जन्म प्राप्त करने की तृष्णा) आदि कष्टों एवं दुःखों के कारण हैं। परंतु इस तृष्णा का जन्म कैसे होता है? इसका उत्तर बुद्ध देते हैं और कहते हैं कि रूप, शब्द, गन्ध रस, स्पर्श तथा मानसिक वितर्क और विचारों से जब मनुष्य आसाक्ति करने लगता है तो तृष्णा का जन्म होता है। इनसे अहंकार ममता, राग, द्वेष, कलह, नाना प्रकार के स्वार्थ आदि उत्पन्न होते हैं और मनुष्य उनके बंधन में फंस जाता है। इन तृष्णाओं का विनाश किस प्रकार करना चाहिए, यही मनुष्य के सम्मुख वास्तविक समस्या है अर्थात दूसरे आर्य सत्य का अर्थ है– दुख का कोई न कोई कारण (समुदाय) अवश्य होता है।

(ग) **दुख निरोध**– जिस प्रकार संसार में दुःख है और दुःख के कारण हैं, उसी प्रकार दुःख निरोध (दुख से छुटकारा) भी संभव है। दुख के मूल कारण तृष्णा के मूलोच्छेदन से, दुःख से छुटकारा मिल सकता है। उनका कहना था कि संसार में जो कुछ भी प्रिय लगता है, संसार में जिसमें रस मिलता है, उसे जो दुख स्वरूप समझेंगे और उससे डरेंगे, वे ही तृष्णा को छोड़ सवेंफगे। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान का विरोध ही दुःख निरोध है। तृष्णाओं या वासनाओं के विनाश करने से मनुष्य सांसारिक दुःखों और जन्म मरण के बंधनों से मुक्त हो जाता है। दुःखों का निरोध करना ही बौद्ध धर्म का प्रमुख पराक्रम है। जब सब प्रकार की तृष्णाओं, वासनाओं का अंत हो जाएगा, उनके द्वारा उत्पन्न सभी दुःख और कष्ट नष्ट हो जाएंगे तब मनुष्य पुनर्जन्म से मुक्त हो जाएगा। यह अवस्था निर्वाण कहलाती है।

(घ) **दुख निरोध मार्ग**– दुखों पर विजय प्राप्त करने का मार्ग है। कोई भी व्यक्ति उस मार्ग का अनुसरण कर दुःखों पर विजय प्राप्त कर सकता है। बुद्ध के मतानुसार यौगिक क्रियाएं या तपस्या अथवा शारीरिक यातनाएं न तो तृष्णाओं का अंत ही कर सकती हैं और न ही पुनर्जन्म तथा उनके कष्टों से मुक्ति ही दिला सकती हैं। मस्तिष्क को वासनाओं और तृष्णा से विरक्त करने के लिए बार–बार प्रार्थना, यज्ञ या वेद मंत्रों का उच्चारण निष्फल और निरर्थक है। बुद्ध ने जो मार्ग बताया है वह दुःखनिरोधगामिनीप्रतिपदा के नाम से विख्यात है। जिसे अष्टांगिक मार्ग भी कहते हैं।

टिप्पणी

2. **अष्टांगिक मार्ग** – महात्मा बुद्ध ने बतलाया कि सांसारिक वस्तुओं को भोगने की तृष्णा या इच्छा ही सारे दुःखों का मूल कारण है। यह तृष्णा ही आत्मा को जन्म–मरण के बंधन में जकड़े रखती है। अतः निर्वाण अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिए तृष्णा को मिटा देना आवश्यक है। इसके लिए मनुष्य को अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। यह मार्ग जीवनयापन के बीच का रास्ता है इसीलिए इसे मध्य मार्ग भी कहा गया। अष्टांगिक मार्ग के 8 अंग हैं। अष्टांगिक मार्ग को तीन भागों में बांटा गया है– प्रज्ञा ज्ञान, शील समाधि एवं श्रद्धा और भावना से ओत प्रोत ज्ञान।

(क) **प्रज्ञा ज्ञान**– अत्यंत कल्याणकारक होता है। कोरा ज्ञान जड़ता का प्रतीक होता है प्रज्ञा ज्ञान में दो बातें हैं–

**सम्यक दृष्टि**– इससे तात्पर्य है सत्य विश्वास और सत्य दृष्टिकोण प्राप्त कर लेना। सत्य–असत्य, पाप–पुण्य, सदाचारा और दुराचार में भेद करना ही सही ज्ञान है। इसी से चार आर्य सत्यों का सही–सही ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान श्रद्धा और भावना से युक्त होना चाहिए।

**सम्यक संकल्प**– जो संकल्प का दृढ़ विचार हिंसा, प्रतिहिंसा कामना तथा राग आदि से मुक्त होता है वही सम्यक संकल्प है।

(ख) **शील**– इसका संबंध चारित्रिक श्रेष्ठता और सदाचारिता से है इसमें अधोलिखित तत्व हैं–

**सम्यक वचन**– इसका तात्पर्य है कि ऐसा सत्य वचन बोलना चाहिए जिसमें विनम्रता और मधुरता हो। हम सर्वदा, सत्य और प्रियवचन बोलें तथा अपने आपको असत्य भाषण, निन्दा, गाली–गलौच, कठोर शब्द, मिथ्या, चुगलखोरी आदि से दूर रखें।

**सम्यक कर्म** – इसका तात्पर्य सत्कर्मो से है। हिंसा, चोरी और व्यभिचार से रहित कर्म, दान, दया, सत्य, सेवा, अहिंसा, सदाचार आदि का पालन करें और अत्यधिक शारीरिक तथा सांसारिक विषय वासनाओं में लिप्त न रहें।

**सम्यक आजीव** – इससे अभिप्राय है कि जीविका उपार्जन का साधन अच्छा होना चाहिए। उसमें निषिद्ध कार्यों का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

(ग) **समाधि** – चित्त की एकाग्रता को समाधि कहते हैं इसमें निम्न बातें हैं–

**सम्यक व्यायाम**– इससे तात्पर्य है अच्छे प्रयत्न करना। सम्यक व्यायाम में विशुद्ध, विवेकपूर्ण और ज्ञानयुक्त प्रयत्न होते हैं । इसमें इन्द्रियों का संयम, बुरी भावनाओं का परित्याग, अच्छी भावनाओं के उत्पादन का प्रयत्न, उत्पन्न हुई अच्छी भावनाओं को सुस्थिर रखने के प्रयत्न, शुभ मंगलकारी परिस्थितियों के समुदन में सहयोग देना आदि सम्मिलित हैं।

**सम्यक स्मृति** – सम्यक स्मृति अर्थात मनुष्य को सदा स्मरण रखना चाहिए कि माया, वंदना, संज्ञा, चित्त और मन सभी नाश जन्मा तथा मलिन धर्मा हैं।

टिप्पणी

बौद्ध व्यवस्था में सम्यक स्मृति के चार रूप माने जाते हैं –

(अ) **काया में स्मृति** – शरीर के प्रत्येक संस्कार और चेष्टा के प्रति जागरुक रहना और उसे समझना।

(ब) **वेदना की स्मृति** – दुख और सुख दोनों की अनुभूतियों के प्रति सजग रहना।

(स) **चित्त की स्मृति** – चित्त के राग, द्वेष और अराग अद्वेष को पहचानते रहना।

(द) **धर्म की स्मृति** – शरीर मन और वचन की प्रत्येक चेष्टा को भली भांति समझते रहना।

अतः मनुष्य को सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने समस्त कार्य सावधानी से करे।

3. **सम्यक समाधि**– राग तथा द्वेष रहित होकर चित्त की एकाग्रता को बनाए रखना। इसमें मन के संपूर्ण विक्षोभ दूर होकर चित स्थिर हो जाता है। सम्यक समाधि के चार रूप या श्रेणियां हैं। सम्यक समाधि की प्रथम श्रेणी में मनुष्य अपने मन को शुद्ध रखकर विचार और वितर्क में संलग्न रखता है। इसमें ध्यान मात्र से आनन्द और सुख प्राप्त होता है।

सम्यक समाधि की दूसरी श्रेणी में मन के सभी प्रकार के संदेह दूर हो जाते हैं। चार आर्य सत्यों में दृढ़ विश्वास हो जाता है और ह्रदय को आंतरिक शांति और आनंद उपलब्ध होता है। तीसरी श्रेणी से मनुष्य ध्यानजनित आनंद और शांति की चिंता नहीं करता उनके प्रति वह अवहेलना से देखता है।

चौथी श्रेणी में मनुष्य को पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है और उसे निर्वाण उपलब्ध हो जाता है। इस प्रकार मन को समाधि में एकाग्र करने में आध्यात्मिक प्रगति होती है। धार्मिक ज्ञान का विकास होता है और निर्वाण प्राप्त होता है।

**मध्यमा प्रतिपदा** – दुख से छुटकारा पाने के लिए महात्मा बुद्ध ने जो अष्टांगिक मार्ग बतलाया था वह विशुद्ध आचार तत्वों पर आधारित था उसमें न तो शारीरिक कष्ट एवं क्लेश से युक्त कठोर तपस्या को उचित बतलाया गया और न ही अत्यधिक सांसारिक भोग विलास को। वस्तुतः वह दोनों अतियों के बीच का मार्ग था। इसी से उसे मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) भी कहा गया है। इसके पालन से मनुष्य निर्वाण पथ की ओर अग्रसर हो सकता है।

**दसशील आचरण** – अपनी शिक्षाओं में महात्मा बुद्ध ने शील या नैतिकता पर बहुत अधिक बल दिया। उन्होंने अपने अनुयायियों को मन, वचन, कर्म से पवित्र रहने को कहा। उन्होंने चरित्र की पवित्रता, सत्य, प्रेम एवं उदारता, माता–पिता की आज्ञा पालन, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, मधनिषेध, दान तथा प्राणिमात्र के प्रति दया का आदेश दिया। वे मिथ्या प्रशंसा का विरोध करते थे। उन्हें सदाचार के नियम भी कह सकते हैं। ये इस प्रकार हैं– (1) अहिंसा व्रत का पालन करना (2) सदा सत्य बोलना (3) अस्तेय अर्थात चोरी न करना (4) अपरिग्रह अर्थात वस्तुओं का संग्रह न करना (5) ब्रह्मचर्य अर्थात भोग–विलास से दूर रहना (6) नृत्य ज्ञान का त्याग (7) सुगन्धित वस्तुओं का त्याग

(8) असमय भोजन न करना (9) कोमल शैय्या का त्याग (10) कामिनी कंचन का त्याग।



सदाचार के इन नियमों में से प्रथम पांच नियम महावीर स्वामी के पांच अणुव्रतों के समान ही हैं। बुद्ध के अनुसार इन पांच नियमों का पालन करना गृहस्थी अनुयायियों तथा साधु उपासकों दोनों के लिए आवश्यक है। इनका पालन करते हुए संसार त्याग न करने पर भी मनुष्य सन्मार्ग की ओर बढ़ सकता है अर्थात बुद्ध ने गृहस्थ लोगों को भी उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन दिया। लेकिन जो व्यक्ति संसार की मोहमाया छोड़कर भिक्षु जीवन बिताता है उसके लिए शील के दस नियमों को पालन करना आवश्यक है। अंतःशुद्धि के लिए इन नियमों का पालन करना अनिवार्य है।

4. **कर्मवाद** – बौद्ध धर्म कर्म प्रधान है। मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। मनुष्य का इहलोक और परलोक उसके कर्म पर निर्भर है। बौद्ध धर्म मनुष्य की समस्त कायिक, वाचिक, मानसिक चेष्टाओं से संबंधित है। बौद्ध धर्म के अनुसार–प्राणी, कर्मदायक है और कर्म प्रतिशरण है। बुद्ध के कर्म का अर्थ वैदिक कर्मकांड नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता है जैसा वह कर्म करता है वैसा भोगता है यही कर्म, सुख–दुख का दाता है। इसीलिए उनका कहना था कि जाति मत पूछ, आचरण पूछ। निम्न जाति का व्यक्ति भी अच्छे कर्मों से ज्ञानवान और पापरहित मुनि हो सकता है और आचरणहीन ब्राह्मण शूद्र हो सकता है। अतः महात्मा बुद्ध ने अंतः शुद्धि और सम्यक कर्मों पर जोर देकर समाज में नैतिक आदर्शवाद स्थापित करने का प्रयास किया।

5. **पुनर्जन्मवाद** – बुद्ध कर्मवादी थे। उनका मानना था कि व्यक्ति कर्मों के अनुसार फल पाता है परंतु दूसरी तरफ उन्होंने आत्मा के अस्तित्व के विषय में कुछ नहीं कहा था। अब यह प्रश्न स्वाभाविक है कि फिर कर्मों का फल कौन भोगता है? पुनर्जन्म किसका होता है? महात्मा बुद्ध के अनुसार यह पुनर्जन्म आत्मा का नहीं अपितु अहंकार का होता है। जब व्यक्ति की तृष्णायें एवं वासनायें नष्ट हो जाती हैं तब वह पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाता है।

**क्षणिकवाद** – अंगुत्तर निकाय के अनुसार –''अनित्य, दुख अनात्म'' बु भगवान के संपूर्ण दर्शन का प्रतीक है। अनित्य उसके क्षणिकवाद का द्योतक है। भगवान बुद्ध ने तत्वों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त किया है– (1) स्कन्ध (2) आयतन (3) धातु स्कन्ध, इसके पांच उपभाग हैं– रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान। रूप में पृथ्वी के चारों महाभूत सम्मिलित हैं। सुख–दुख की अनुभूति ही वेदना है। चेतन एंव अभिज्ञान को संज्ञा कहते हैं। मन पर पड़ी छाप या वासना को संस्कार कहते हैं। चेतना एवं मन को विज्ञान कहते हैं। बुद्ध ने उन्हें नश्वर बताया है।

आयतन के बारह रूप है– छः इन्द्रियां– चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया, मन तथा छः विषय–रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पष्ट, द्रव्य तथा धर्म। धातु के भी 18 रूप हैं– उपरोक्त छः इन्द्रियां उनके छः विषय तथा उनके पारस्परिक सम्पर्क से जनित छः विज्ञान। महानिदान सुत्त तथा अंगुत्तर निकाय सुत्त में इन सारे तत्वों को अनित्य या क्षणिक कहा गया है।

प्रतीत्यसमुत्पाद वाद के सिद्धांत से ही क्षणिकवाद अथवा परिवर्तनवाद का जन्म हुआ है। संसार और जीवन दोनों में से कोई नित्य नहीं है। उनकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। दोनों परिवर्तनशील हैं इसीलिए नाशवान हैं। महात्मा बुद्ध का कहना था कि जगत, परिवर्तनशील है। इसकी प्रत्येक वस्तु प्रति क्षण बदलती रहती है यहां तक कि आत्मा व जगत भी निरंतर बदलता रहता है। परंतु संसार का यह परिवर्तन जनसाधारण को दिखाई नहीं पड़ता। ठीक वैसे ही जैसे कि नदी का प्रवाह प्रति क्षण बदलते रहने पर भी पूर्ववत ही प्रतीत होता है।

**प्रतीत्यसमुत्पादवाद** – एक वस्तु के विनाश के पश्चात दूसरे की उत्पत्ति होती है इसे ही प्रतीत्यसमुत्पाद वाद कहा जाता है। प्रतीत्य से अभिप्राय है–इसके होने से और समुत्पाद का अर्थ है 'यह उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में इसे कार्य कारण नियम भी कह सकते हैं। किसी भी घटना के लिए कोई भी कारण आवश्यक होता है। बिना कारण कुछ नहीं घटित होता इस कार्य–कारण परंपरा से इस सत्य की स्थापना हुई कि संसार में बारम्बार जन्म और उससे होने वाले दुःखों का संबंध किसी सृष्टिकर्त्ता (ईश्वर) ने नहीं किया है प्रत्युत उनके कुछ निश्चित कारण व प्रत्यय (शर्ते) होते हैं। इसी कारण बुद्ध को अनीश्वरवादी भी कहा जाता है।

**निर्वाण** – बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त करना है। निर्वाण शब्द से अभिप्राय है बुझना। बुद्ध का मानना था कि मन में पैदा होने वाली तृष्णा या वासना की अग्नि को बुझा देने पर निर्वाण प्राप्त हो सकता है। निर्वाण इसी लोक में प्राप्त किया जा सकता है। निर्वाण का अभिप्राय है कि बार–बार जन्म–मरण की स्थिति से मुक्ति। भगवान ने अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा था कि–भिक्षुओं। यह संसार अनादि है। तृष्णा से संचालित हुए प्राणी इसमें भटकते फिरते हैं। उसने संसार में बार–बार जन्म लेकर प्रिय वियोग और अप्रिय संयोग के कारण रो–रोकर अपार आंसू बहाये हैं। दीर्घकाल तक तीव्र दुख का अनुभव किया है। अब तो तुम सभी वैराग्य प्राप्त करो, मुक्ति प्राप्त करो।''

6. **दस अकथनीय** (अव्याकृत) – बुद्ध ने निम्नलिखित दस समस्याओं पर मौन रहने की अनुमति दी है–

   (अ) लोक–
   - (1) क्या लोक नित्य है?
   - (2) क्या लोक अनित्य है?
   - (3) क्या लोक अंतवाद है?
   - (4) क्या लोक अनन्त है?

   (ब) जीव एवं शरीर की एकता –
   - (5) क्या जीव और शरीर एक हैं?
   - (6) क्या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है?

(स) निर्वाण के बाद –

(7) क्या मृत्यु के पश्चात तथागत मुक्त होते हैं?

(8) क्या मृत्यु के पश्चात तथागत नहीं होते?

(9) क्या मृत्यु के पश्चात तथागत होते भी हैं और नहीं भी होते हैं?

(10) क्या मृत्यु के पश्चात तथागत होते ही हैं, नहीं ही होते हैं?

टिप्पणी

7. **आत्मावलंबन** – गौतम बुद्ध ने आत्मावलंबन को बहुत महत्व दिया है। बौद्ध धर्म का एक प्रमुख तत्व है करुणा। करुणा के तीन भेद कहे गए हैं– (1) स्वार्थ मूला करुणा–माता की पुत्र के प्रति करूणा (2) सहेतुकी करूणा–किसी को कष्ट में पड़ा हुआ देखकर ह्रदय द्रवित हो जाना और (3) अहेतुकी या महाकरुणा– इसमें न तो मनुष्य का स्वार्थ होता है और न वह पवित्रता का ही विचार करता है। वह सभी पर समान रूप से अपनी करूणा बिखेरता है। महात्मा बुद्ध ने स्वयं को अपना भाग्य विधाता माना है। उनका मानना था कि मनुष्य अपने ही प्रयत्नों से दुखों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। इसके लिए ईश्वरीय कृपा की आवश्यकता नहीं है।

8. **अनीश्वरवाद** – जब भी महात्मा बुद्ध से ईश्वर के संबंध में पूछा जाता था तो वे या तो बिल्कुल मौन हो जाते थे अथवा कुछ परिहासमय वचनावली में कहते थे जिसे परवर्ती मानव ने भ्रमवश ईश्वर मान लिया।

9. **विचार–स्वातन्त्रय** – गौतम बुद्ध ने लोगों को अन्धानुकरण के स्थान पर स्वयं उचित–अनुचित पर विचार करने की अनुमति दी। केरग्राम के कालामों ने भगवान बुद्ध से एक बार यह कहा कि विभिन्न श्रमण अपना–अपना मत बताते हैं और दूसरे के मत पर असंतोष प्रकट करते हुए नाराज होते हैं। ऐसी अवस्था में ''हमें संदेह होता है– कौन सच कहता है, कौन झूठ।'' इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया–कालामों। तुम्हारा संदेह... ठीक है, संदेह के स्थान में ही तुम्हें संदेह उत्पन्न होता हैं। ...जब कालामों तुम स्वंय ही जानो कि यह धर्म (काय या बात) अच्छे, अदोष आनंदित है, यह लेने, ग्रहण करने पर हित, सुख के लिए है, तो कालामों। तुम उसे स्वीकार करो।''

10. **अहिंसा** – महात्मा बुद्ध अहिंसा के समर्थक थे। वे किसी जीव की हत्या करना प्रेम भावना के विरुद्ध मानते थे इसीलिए उन्होंने यज्ञों में पशुबलि का विरोध किया और लड़ने भिड़ने तथा युद्ध की निन्दा की। इस संबंध में यह जानना आवश्यक है कि उन्होंने जैन धर्म वालों की तरह पौधों पत्थरों इत्यादि में जीव स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने अनुयायियों को विशेष परिस्थितियों में मांस खाने की भी आज्ञा दे दी। उनका प्रत्येक सिद्धांत व्यवहारिकता पर आधारित था।

11. **वेदों, यज्ञों तथा बलियों में अविश्वास**– बुद्ध की शिक्षाएं किसी धार्मिक ग्रंथ तथा शास्त्र पर आधारित नहीं थी वरन उनके अपने अनुभवों का परिणाम थीं। आत्मदीप के सिद्धांत का प्रचार करते हुए महात्मा बुद्ध ने लोगों को उपदेश दिया कि उन्हें किसी गुरू, ग्रंथ तथा अन्य बाहरी साधन का आश्रय नहीं लेना चाहिए। वे वेदों, बलियों और याज्ञिक कर्म कांडों में विश्वास नहीं रखते थे। उनका विश्वास था कि यज्ञ हवन बलियां इत्यादि सब व्यर्थ है।

12. **समानता की भावना पर बल** – महात्मा बुद्ध ने सदैव ही जातिप्रथा का विरोध किया। उनके अनुसार सभी मनुष्य समान हैं। ऐसा नहीं है कि उच्च जाति से संबंध होने के कारण केवल ब्राह्मण ही मोक्ष प्राप्त करने के लायक हैं वरन निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग सभी के लिए खुला है तथा समान है। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रयत्न द्वारा निर्वाण प्राप्त कर सकता हैं। उन्होंने समाजिक समानता पर बल देते हुए कहा कि बौद्ध धर्म का द्वार सभी जातियों के लिए खुला है।

## 5.2.4 सिख धर्म

सिख धर्म पंद्रहवीं शताब्दी में उपजा और सत्रहवीं शताब्दी में धर्म के रूप में परिवर्तित हुआ था। सिख धर्म उत्तर भारत में पंजाब राज्य में जन्मा था। इसके प्रथम गुरु थे गुरु नानक देव और फिर बाद में नौ और गुरु हुए। भारतीय धर्मों में सिख धर्म का अपना एक पवित्र एवं अनुपम स्थान है। गुरु नानक देव, जो सिखों के प्रथम गुरु माने जाते हैं वे सिख धर्म के प्रवर्तक थे। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, जर्जर रूढ़ियों और पाखंडों को दूर करते हुए जन साधारण को पंडों, पीरों आदि के चंगुल से मुक्त किया तथा प्रेम, सेवा, परिश्रम, परोपकार और भाईचारे की दृढ़ नींव पर सिख धर्म की स्थापना की। गुरु नानक का मुख्य उपदेश था कि ईश्वर एक है और उसी ने सबको बनाया है। हिंदू, मुसलमान सभी एक ही ईश्वर की संतान है और ईश्वर के लिए सभी एक समान है। उन्होंने लोगों को यह भी उपदेश दिया कि ईश्वर सत्य है और मनुष्य को अच्छे कार्य करने चाहिए ताकि परमात्मा के दरबार में उसे लज्जित न होना पड़े। सिख एक ईश्वर को मानते हैं जिसे वे एक ओंकार कहते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर अकाल और निरंकार है। श्री गुरुनानक जी ने भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वास तथा रूढ़िवादिता पर तो प्रहार किया ही साथ ही धर्म को लेकर लोगों के अंदर रहने वाले अहंकार भाव को भी रेखांकित किया।

सिख धर्म 15वीं सदी में गुरु नानक देव जी और दस सफल गुरुओं के उपदेशों पर संस्थापित हुआ था। सिख शब्द संस्कृत शब्द 'शिष्य' से लिया गया है जिसका अर्थ 'शिष्य', शिक्षा या 'अनुदेश' है।

### नियम, विचार और उपदेश

सिख धर्म का मुख्य नियम आस्था और न्याय है। सिख धर्म ने मोक्ष के लिए अनुशासन और व्यक्तिगत साधना पर जोर दिया। सिख धर्म के अनुयायी सिख कहलाते हैं, ये अपने गुरु या दिव्य नेता के उपदेशों का पालन करते हैं। सिख धर्म का पवित्र ग्रंथ गुरु ग्रंथ साहिब है। गुरु ग्रंथ साहिब में 6 सिख गुरुओं के उपदेश संचित हैं। इसमें विभिन्न सामाजिक–आर्थिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि के अन्य भक्तों के विचार भी शामिल हैं। सिख धर्म की परंपरा और उपदेश पंजाब की विभिन्न सामाजिक और ऐतिहासिक परंपराओं पर आधारित है।

सिख धर्म के अनुयायी वाहे गुरु की उपासना करते हैं जिसका अर्थ है ओंकार या एक ईश्वर।

हरिमंदर साहिब जिसे स्वर्णमंदिर के नाम से भी जाना जाता है, विश्व प्रख्यात पवित्र स्थल है। गुरु नानक जी के अनुसार ईश्वर हमारी समझ के बाहर हैं। सिख मत

का एक प्रमुख नियम यह है कि ईश्वर का कोई लिंग नहीं है। इनके अनुसार ईश्वर निरंकार यानि बिना किसी आकृति के हैं। 1496 में, इन्हें आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुआ, इसके बाद इन्होंने पूरे देश में प्यार और भाईचारे के संदेश को यात्रा करते हुए फैलाया। इनके साथी मुसलमान संगीतकार मरदानाजी एवं हिंदू किसान भाई बाला थे, इन्होंने गांव गांव यात्राएं करके अपना उपदेश सबको दिया। गुरु नानक, कीर्तन, भजन और रागों के द्वारा अपने उपदेश देते थे। इनके मंत्र और गीत आदिनाथ में संग्रहित हैं। इन्होंने संगत और पंगत यानि कि विभिन्न समुदायों को एक साथ बैठना और लंगर या सामूहिक रसोईघर में एक साथ मुफ्त खाने की स्थापना की।

टिप्पणी

गुरु नानक के जन्मस्थल को ननकाना साहिब के नाम से जाना जाता है।

## गुरु नानक देव के उपदेश

- एकेश्वरवाद अर्थात एक ही ईश्वर में भरोसा
- जाति प्रथा का तिरस्कार
- मूर्ति पूजा को हटाना
- मनुष्य की एकता पर बल दिया, इनका मानना था कि सभी मनुष्य एक ही हैं। इन्होंने सभी को उपदेश दिया।
- अंधविश्वास पर असहमति जताई और बताया कि अंधविश्वास पिछड़े लोगों की संस्कृति है। इन्होंने अंधविश्वास और धर्म के बीच के अंतर को स्पष्ट किया।
- विनम्रता, दया, क्षमा और सत्य को फैलाया
- सुमरन यानि ईश्वर भक्ति को महत्वपूर्ण बताया।

बुद्ध की तरह गुरु नानक देव भी मानते थे सांसारिक उपभोग ही सारे दुखों का मूल है। सिख धर्म के अनुसार पांच बुरी शक्तियां हैं, जो मोक्ष से इंसान को दूर करती हैं। वह शक्तियां निम्न हैं–

1. अहंकार
2. क्रोध
3. लालच
4. लगाव और
5. अभिलाषा

सिख धर्म के अनुसार गुरु जो हमें शिक्षित करता है वह ईश्वर की आवाज होता है।

सिख धर्म के दस गुरु निम्नलिखित थे–

1. नानक देव
2. अंगद देव
3. अमर देव
4. राम दास

5. अर्जुन देव
6. हर गोबिंद
7. हर राय

टिप्पणी

8. हर कृष्ण
9. तेग बहादुर
10. गोबिंद सिंह

मनुष्य के रूप में गुरु गोबिंद सिंह सिखों के अंतिम गुरु रहे। अपने देहावसान के पहले ही इन्होंने यह कह दिया था कि अब गुरु ग्रंथ साहिब (सिखों का धार्मिक ग्रंथ) ही गुरु होंगे। गुरु गोबिंद सिंह के अनुसार सिख धर्म के अनुयायियों को सिख धर्म के पांच संकेतों को धारण करना होगा–

1. केश
2. कंघा
3. कड़ा
4. कृपाण
5. कच्छा

इन वस्तुओं का व्यावहारिक और सांकेतिक महत्व है। गुरु ग्रंथ साहिब या आदिग्रंथ सिख धर्म के पवित्र ग्रंथ हैं। 1469 से 1708 के बीच में अवतरित गुरुओं के समय में यह लिखा गया था। इनमें ईश्वर के सबद, बानी या मंत्र संकलित हैं। सिख धर्म में आदि ग्रंथ की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

### 5.2.5 ईसाई धर्म

ईसाई धर्म एकेश्वरवादी है जिसमें ईसा को ईश्वर का अवतार समझा जाता है। फिर बताया जाता है कि ईश्वर करुणामय है और ईसा की उद्धारक क्रूशीय मृत्यु पर विश्वास करने पर ईश्वर के अनुग्रह के द्वारा भक्तों का पापमोचन संभव हो सकता है। ईसाई धर्म में ईश्वर की भक्ति और उसके अनुग्रह–दान की शिक्षा बहुत दृढ़ है। ईसाई धर्म में ईश्वर को मानव से परे और अतीत समझा जाता है। मावन और ईश्वर के मध्य नबी और अंत में ईसा के द्वारा मध्यस्थता स्थापित की जाती है। ईश्वर की बाह्यता तथा अतीतपन पर बल दिया जाता है। ईसाई धर्म में आरंभ से ही मानव कल्याण और दुःखनिवारण पर बल दिया गया है। ईसाई धर्म में बताया गया है कि ईसाई अगोचर ईश्वर से किस तरह प्रेम कर सकता है यदि वह अपने भाइयों से प्रेम न करे जिन्हें वह अपनी इंद्रियों से देख–सुन सकता है। ईसाई मानव को ईश्वर की छवि तथा सृष्टि की सर्वोच्च सत्ता मानकर उसके प्रति प्रेम और करुणा के व्यापार को सर्वोच्च मानते हैं।

ईसाई धर्म सेवा पर आश्रित था। अतः इसने मानव को सेवा–धर्म की शिक्षा दी। अपाहिजों तथा अनाथों के लिए प्रवृत्ति की भावना से ही उत्प्रेरित होकर अनेक संस्थाएं खोली गईं, दासों की दशा में सुधार लाने का प्रयत्न किया गया और गरीबों को मदद देने की शिक्षा दी गई।

टिप्पणी

ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह थे। उनके पिता जोज़ेफ एक बढ़ई थे तथा माता मेरी (मरियम) थीं। वे दोनों यहूदी थे। ईसाई शास्त्रों के अनुसार मेरी को उसके माता–पिता ने देवदासी के रूप में मंदिर को सौंप दिया था। ईसाई विश्वासों के अनुसार ईसा मसीह के मेरी के गर्भ में आगमन के समय मेरी कुंआरी थी। इसीलिए मेरी को ईसाई धर्मावलंबी 'वर्जिन मेरी (कुंआरी मेरी)' तथा ईसा मसीह को ईश्वर का पुत्र मानते हैं। ईसा मसीह के जन्म के समय यहूदी लोग रोमन साम्राज्य के अधीन थे और उससे मुक्ति के लिए व्यग्र थे। उसी समय जॉन द बैप्टिस्ट नामक संत ने ज़ोर्डन घाटी में भविष्यवाणी की थी कि यहूदियों की मुक्ति हेतु ईश्वर एक मसीहा भेजने वाला है। उस समय ईसा की आयु कम ही थी, किंतु वर्षों के एकांतवास के बाद उनमें कुछ विशिष्ट शक्तियों का संचार हुआ और उनके स्पर्श से अंधों को दृष्टि, गूंगों को वाणी तथा मृतकों को जीवन मिलने लगा। फलस्वरूप चारों तरफ ईसा को प्रसिद्धि प्राप्त होने लगी। यरूसलम में लगातार बढ़ती उनकी लोकप्रियता से पुरातनपंथी तथा सत्ताधारी वर्ग संशय में पड़ गया और ईसा को झूठे आरोपों में फंसाने का प्रयत्न किया। यहूदियों की धर्मसभा ने उन पर स्वयं को ईश्वर का पुत्र और मसीहा होने का दावा करने का आरोप लगाया और अंततः उन्हें सलीब (क्रास) पर लटका कर मौत की सजा दी गई। किंतु क्रास पर भी उन्होंने अपने विरुद्ध षयंत्र रचने वालों के ईश्वर से प्रार्थना की कि उन्हें माफ करें, क्यों उन्हें नहीं ज्ञात कि वे क्या कर रहे हैं। ईसाई धर्म के मतावलंबी मातने हैं कि मृत्यु के तीसरे दिन ही ईसा मसीह, पुनः जीवित हो उठे थे। ईसा मसीह के शिष्यों ने उनके द्वारा बताए गए मार्ग अर्थात इसाई धर्म का फिलीस्तीन में सबसे पहले प्रचार किया, जहां से वह रोम और फिर पूरे यूरोप में फैला। वर्तमान में यह विश्व का सर्वाधिक अनुयायियों वाला धर्म है। ईसाई लोग ईश्वर को पिता और मसीह को ईश्वर पुत्र मानते हैं।

## ईसाई धर्म का मूल सिद्धांत

ईसाई धर्म के अनुयायियों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है, यह नाजरथ के यीशु की शिक्षाओं पर आधारित है, जिन्हें 'मसीह' कहा गया। इस धर्म के अनुयायियों को ईसाई कहा जाता है। ईसाई धर्म के अनुसार, यीशु ईश्वर के पुत्र हैं। ईसाई धर्म के अनुसार यीशु मानवता के उद्धारक हैं।

ईसाई धर्म की कई मान्यताएं अन्य धर्मों जैसे कि यहूदी और इस्लाम धर्म के साथ मिलती हैं। इसमें यह विचारधारा शामिल है कि, एक ही ईश्वर है, जिसने संपूर्ण ब्रह्मांड को बनाया है। ईसाई मानते हैं कि ईश्वर ने संपूर्ण ब्रह्मांड की रचना की है। ईसाई मानते हैं कि यीशु ईश्वर के पुत्र हैं और यीशु इंसान की तरह जमीन पर रहे। इन्हें सूली पर चढ़ाया गया और इंसान के पापों की वजह से यह (यीशु) मर गए। ईसाई धर्म के मुख्य नियम निम्न हैं–

- ईश्वर में आस्था।
- इस बात में आस्था रखना कि यीशु ईश्वर के पुत्र हैं।
- यह मानना कि यीशु मृत्यु से उठे और स्वर्ग चले गए।

- अगर तुम उनके/ईश्वर के बताए गए रास्तों पर चलोगे तो स्वयं अपने किए गए पापों से मुक्त होकर स्वर्ग के अधिकारी बन सकोगे।
- ईश्वर ने अपने बेटे यीशु को सूली पर मरने के लिए भेजा, ताकि मानवता को तकलीफ से बचाया जा सके।
- जो यीशु को अपने संरक्षक के रूप में देखेगा वह अंत काल तक यीशु और ईश्वर के साथ स्वर्ग में रह पाएगा।

पहली सदी के मध्य, (प्रारम्भिक अवस्था) में, ईसाई धर्म यहूदी धर्म का ही एक भाग था। ईसाई धर्म, यहूदी धर्म से दो मुख्य कारणों के कारण अलग हुए–

1. ईसाइयों ने यह माना कि ईश्वर इंसान के रूप में, यीशु के रूप में, धरती पर विद्यमान हैं।
2. यहूदी धर्म की कुछ अपनी नैतिक और धार्मिक परंपराएं थीं। लेकिन अधिकांश ईसाई उन नियमों की, बजाय यीशु के विचारों को ज्यादा मानते थे।

**ग्रंथ और शाखाएं**

ईसाई धर्म का पवित्र ग्रंथ बाइबिल है। इसमें नए और पुराने दोनों ही टेस्टामेंट हैं। नए टेस्टामेंट में 27 किताबें हैं। ईसाई बाइबिल से दैवीय शक्ति को प्राप्त करते हैं।

ईसाई धर्म तीन महाभागों में बंटा हुआ है।

1. **रोमन कैथोलिक**– ईसाई धर्म की यह शाखा पश्चिमी यूरोप में स्थित चर्च की व्यवस्था के अनुसार चलती है। कैथोलिक मानते हैं कि पोप उनका नेतृत्व करते हैं। कैथोलिक रूपांतरण, शोधन और मदर मैरी में समर्पण और जपमाला के प्रयोग को मानते हैं। रूपांतरण से अर्थ लगाया जाता है कि ब्रेड और वाईन शरीर में मसीह के खून में परिवर्तित होता है। शोधन स्वच्छ होने की प्रक्रिया है, जिसके अनुसार शरीर छोड़ने के बाद आत्मा शुद्ध हो जाती है।
2. **पूर्वी कट्टरपंथी**– ग्रीक, रूसी और पूर्वी यूरोप की कुछ चर्च इस शाखा के अंतर्गत आते हैं। कैथोलिक की यह शाखा पोप के प्रति प्रतिबद्ध नहीं होती है। यह मूर्तिपूजा पर विश्वास रखती है। ईसा पश्चात 1054 में पूर्वी कट्टर पंथी एवं रोमन कैथोलिक विभाजित हो गए थे।
3. **प्रोटेस्टेंटवाद**– ईसाई धर्म की इस शाखा का उद्भव 16वीं शताब्दी में हुआ। यह शाखा ज्यादातर जर्मनी, स्वीट्जरलैंड और ब्रिटेन में प्रभावित हुई। प्रोटेस्टेंटवाद ने पोप की महत्वता को अस्वीकृत कर दिया। साथ ही वो कैथोलिक गिरजाघर की परंपराओं को भी नहीं मानते थे। उन्होंने बाइबिल के पढ़ने पर ज्यादा ध्यान दिया। उनके मत के अनुसार आस्था ही एक मात्र मोक्ष का मार्ग है। प्रोटेस्टेंटवाद भी आगे चलकर, लुथेरेन, बपतिस्मा, मेथोडिस्ट, एपिस्कोपेलियन, प्रेस्बाईटेरियन, पेन्टेकोस्टल और एवेन्जेलिकल प्रशाखाओं में बंट गया।

## 5.2.6 इस्लाम धर्म

इस्लामीकरण को एक समाज के क्रमिक विकास और इस्लामिक शासन में इसके रूपांतरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। अर्थात इस्लामीकरण जहां एक

ओर सामाजिक विकास की प्रक्रिया है वहीं इसे क्रमपूर्वक शासन पद्धति में बदलते भी देखा जा सकता है। एक ऐसा समाज जिसका धर्म पूरी तरह से भिन्न था और जो पूरी तरह से राजनीतिक और सामाजिक रूप से अलग प्रकार का था। इस्लामीकरण, मुस्लिमीकरण, अरबीकरण या मुहम्मदीकरण आदि सभी शब्द कमोबेश एक ही अर्थ की ओर संकेत करते हैं। इस्लामिक विचारधारा, उसके रस्मोरिवाज, परंपराएं और अंतर्निहित विचारधारा का समाज में प्रवेश ही इन सब शब्दों से प्रकट हो रहा है।

**टिप्पणी**

## इस्लाम के मूलभूत सिद्धांत

9वीं शताब्दी के अंत में इस्लामी प्रचारकों ने पहले–पहल इस्लाम दर्शन को भारत में प्रस्तुत किया। पूरे विश्व में मुसलमान इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं। यह भी एकेश्वर वाद को ही मानता है। इस्लाम धर्म के आखिरी पैगम्बर, पैगम्बर मुहम्मद के उपदेशों पर आधारित हैं। इस्लाम का अर्थ है अल्लाह के अधीन और आज्ञाकारी होना। एक मुसलमान को अपना जीवन अल्लाह के शब्दों के अनुरूप ही ढालना पड़ता है।

मुसलमान सिर्फ एक ही शक्ति अल्लाह में विश्वास रखते हैं। मक्का के सऊदी अरब में ईसा पूर्व 570 में पैगम्बर मुहम्मद का जन्म हुआ था। यही इस्लाम धर्म के संस्थापक थे। अल्लाह के द्वारा भेजे गए ये आखिरी पैगम्बर थे जबकि आदम प्रथम पैगम्बर थे।

पैगम्बर मुहम्मद के पहले आदम, नोह, अब्राहम (इब्राहिम), इश्माईल, इजाक, जैकोब, जोसेफ, जोब, मोसेस (मुसा), आरों, डेविड, सोलोमन, एलियास, जोना, बपतिस्म दाता जॉन और जीसस पैगम्बर थे। इस्लाम के अनुसार पैगम्बर मुहम्मद ब्रह्मांड के एकमात्र संप्रभु और शासक हैं।

## विचार, नियम और कर्तव्य

इस्लाम धर्म के छः मुख्य विचार निम्न हैं–

1. एक मात्र अल्लाह पर विश्वास करना
2. जन्नत के दूतों में विश्वास रखना
3. पवित्र पुस्तकों में विश्वास रखना
4. पैगम्बर में विश्वास रखना
5. न्याय के दिन में विश्वास रखना (वो दिन जब अल्लाह फैसला करेंगे कि, जन्नत जाना है या जहन्नुम)
6. पूर्वनियति में विश्वास करना (अल्लाह ने पहले से यह तय कर रखा है कि क्या होने वाला है)

इन छः नियमों के अलावा मुसलमानों को पांच नैतिक कर्तव्य भी निभाने होते हैं, ये कार्यवाहियां मुसलमानों के पांच स्तम्भ हैं जिससे उन्हें अपने धर्म पर विश्वास बनाए रखने में मदद मिलती है–

- शाहदाह–पूर्ण आस्था
- नमाज–नित्य प्रति पांच बार प्रार्थना

- ज़कात—गरीबों के लिए दान
- सौम—रमजान के महीने में व्रत करना
- हज—जीवन में एक बार मक्का धर्मस्थल की यात्रा

टिप्पणी

प्रत्येक वर्ष चंद्र मास के महीने में मुसलमानों को उपवास करना होता है। इस समय को रमजान कहते हैं। यह समय मन की शुद्धि के लिए होता है।

कुरान इस्लाम का पवित्र ग्रंथ है। मुहम्मद के अनुसार 23 वर्ष की आयु में देवदूत जिब्रिल या गैब्रियल के द्वारा इन्हें रहस्योद्‌घाटन प्राप्त हुआ था। आर्क देवदूत गैब्रियल ने पैगम्बर मुहम्मद को अल्लाह के सत्यवचन बताए थे। इसमें 114 अध्याय हैं। मुसलमान कुरान को बहुत आदर देते हैं क्योंकि वह मानते हैं कि खुद अल्लाह ने उन्हें कुरान दिया हुआ है। इसे पढ़ने के लिए वह कुरान को लकड़ी के एक तख्त पर रख कर ही पढ़ते हैं।

शरिया इस्लाम का दैवीय कानून है। मुसलमानों को अपना जीवन उसी के अनुसार व्यतीत करना होता है।

## मुसलमानों के कर्तव्य

मुसलमानों के कर्तव्य निम्नलिखित है–

- दिन के पांच पहर की नमाज (प्रार्थना) इसका समय सूर्योदय और चंद्रोदय के बीच नियत होता है।
- नमाज के पहले शुद्ध होना,
- नमाज के समय मक्का की तरफ मुंह रखना।

मेक्का या मक्का मुहम्मद पैगम्बर का जन्म स्थान है। मक्का के मस्जिद के केंद्र में, घनाकार इमारत है, जिसे काबा या कस्बा के नाम से जानते हैं। सभी मुसलमान धार्मिक प्रार्थना (सलत) करते समय काबा की तरफ अपना रुख रखते हैं।

मुसलमानों के अनुसार काबा विश्व का सबसे पवित्र स्थल है। माना जाता है कि इसे पैगम्बर इब्राहिम ने बनवाया है। सिर्फ इसी दिशा में प्रार्थना करने का अर्थ होता है कि अल्लाह के सभी बंदे एक हैं।

प्रार्थना के प्रत्येक चरण का एक विशेष नाम होता है एवं प्रत्येक चरण के बीच 2 घंटे का अंतराल होता है। यह महत्वपूर्ण चरण (समय) निम्न हैं–

1. प्रथम प्रकाश और सूर्योदय के ठीक पहले (फज्र)
2. सूरज के आसमान पर चढ़ने और मध्य दोपहर के बीच का समय (ज़ुहर)
3. मध्य दोपहर और सूर्यास्त के बीच के समय में (अस्र)
4. सूर्यास्त के बाद (मग़रीब)
5. रात के अंधेरे में (इशा)

इस्लाम दो भागों में बंटा है–

1. सुन्नी
2. शिया

इन दोनों के धार्मिक रीति रिवाज एक जैसे ही होते हैं। बस शिया मुख्य तौर पर इमाम के कहने के अनुसार चलता है।



- **सुन्नी**

सुन्नी संप्रदाय इस्लाम का सबसे बड़ा समुदाय है। सुन्नी मत कुरान और सुन्ना (मुहम्मद के जीवनकाल के उदाहरण) पर आधारित है। सुन्न हाडित (खबर) परंपरा पर आधारित है। शाहिह बुखरी और शाहिह मुस्लिम नामक दो हाडितों में ये परम्पराएं शामिल हैं।

- **शिया**

शिया इमाम के राजनैतिक और धार्मिक नेतृत्व पर आधारित है। इमाम का अर्थ संप्रदाय का मार्गदर्शक होता है। शिया मानते हैं कि इमाम को अल्लाह चुनते हैं। यह प्रत्येक अवस्था में मानवता का नेतृत्व करने के काबिल होते हैं। अली इब्न अबी तालिब जो मुहम्मद पैगम्बर के चचेरे भाई और दामाद थे। इन्हें ही पैगम्बर का उत्तराधिकारी माना गया था। इमाम इनके उत्तराधिकारी होते हैं। उन्हें प्रथम इमाम का दर्जा भी हासिल है।

## सूफी मत

सूफी धारा इस्लाम की एक प्रशाखा थी। ईसा पश्चात 11 वीं सदी में सूफी भारत आए थे। उनका मानना था कि ईश्वर एक ही है और हम सब उसी की संतान हैं। भक्ति धारा के संतों की तरह उन्होंने भी सभी जीवों के लिए समानता एवं प्यार की बात कही एवं त्योहार, उपवास एवं धार्मिक रीति रिवाजों को अस्वीकृत कर दिया। इन्होंने भी कहा, कि व्यक्ति प्यार और भक्ति से ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। भक्ति संगीत का एक रूप कव्वाली उभर कर सामने आई। यह हिंदुओं के साथ आराम से घुल मिल गए एवं धर्म और सहिष्णुता पर उपदेश दिया। सूफी 12 क्रम या सिलसिला में व्यवस्थित थे।

## मुईन–उद–दिन चिस्ती

सूफी संत ख्वाजा मुईन–उद–दिन चिस्ती ईसा पश्चात 1192 में भारत आए थे। कुछ दिनों के लिए लाहौर और दिल्ली में रहने के बाद वो अजमेर चले गए। इनकी ख्याति दूर दूर तक फैल गई थी। इनका देहावसान ईसा पश्चात 1235 में हुआ। प्रत्येक वर्ष पूरे देश और देश के बाहर से भी हजारों की संख्या में लोग इनकी दरगाह जो कि अजमेर में है, तीर्थयात्रा करते हैं।

## बाबा फरीद

बाबा शेख फरीद, चिस्ती सूफी क्रम के संस्थापकों में एक थे। ये ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, जो शेख मुईन–उद–दिन चिस्ती के शिष्य थे, के अनुयायी बन गए। इन्होंने हरियाणा और पंजाब में उपदेश दिए। इन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ईश्वर को प्रेम करने का एक मात्र रास्ता है, उसके द्वारा बनाए गए जीवों को प्रेम करना। इनके कुछ पद आदिग्रंथ में सम्मिलित किए गए हैं। हिंदू और मुस्लिम दोनों ही इनके अनुयायी बने।

## निजामुद्दीन औलिया और सलीम चिश्ती

दो अन्य सूफी संत जिन्हें बहुत अच्छी प्रसिद्धि मिली वो थे, दिल्ली के नसिरुद्दीन चिराग के हजरत निजामुद्दीन औलिया और सिकरी के सलीम चिस्ती। इन्होंने कहा

कि ईश्वर और अल्लाह एक ही शक्ति के दो विभिन्न नाम हैं। अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में निजामुद्दीन औलिया दिल्ली में ही रहे और इन्होंने धार्मिक सहिष्णुता एवं मानवता के लिए प्यार पर उपदेश दिया।



### अपनी प्रगति जांचिए

1. इनमें से क्या हिन्दू धर्म की तीन श्रेणियों में शामिल नहीं है?
   (क) मानव धर्म (ख) विशेष धर्म
   (ग) आपद् धर्म (घ) निरापद धर्म
2. जैन धर्म का प्रतिपादन किसने किया?
   (क) ऋषभदेव (ख) पार्श्वनाथ
   (ग) वर्धमान महावीर (घ) नेमिचंद जैन
3. बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्यों में, इनमें से क्या शामिल नहीं है?
   (क) दुख (ख) दुख समुदाय
   (ग) अष्टांगिक मार्ग (घ) दुख निरोध मार्ग
4. सिख धर्म के लोग किसकी उपासना करते हैं?
   (क) गुरुद्वारे की (ख) नानक की
   (ग) वाहे गुरु की (घ) स्वर्ण मंदिर की
5. ईसाई धर्म का मूल आधार क्या है?
   (क) सेवा (ख) कर्मकाण्ड
   (ग) ध्यान (घ) आर्थिक उन्नति
6. भारत में इस्लाम दर्शन का आगमन कब हुआ?
   (क) 19वीं सदी के आरंभ में (ख) 9वीं सदी के अंत में
   (ग) बीसवीं सदी के आरंभ में (घ) बीसवीं सदी के मध्य में

## 5.3 सत्य के साथ मेरे प्रयोग : महात्मा गांधी

मोहनदास करमचन्द गांधी अर्थात् मो.क. गांधी–उनके समग्र साहित्य का अध्ययन करने से जो एक बात सीधे–सीधे निकलकर आती है, वह यह है कि गांधीजी के पास जो मूल तत्त्व था, वह था सत्य। सत्य कहीं भी हो, उसका उसी रूप में चित्रण उस व्यक्तित्त्व और लेखन का लक्ष्य रहा था।

वैसे गांधीजी का मन कविता में कुछ अधिक ही रमता था। बचपन में उन्होंने जो कविताएं पढ़ी थी, उनकी गहरी छाप उनके भाषणों में यत्र–तत्र सर्वत्र देखने को मिलती है।

राष्ट्रीय आंदोलन के प्रखर नेता गांधीजी महाकवि तुलसीदास पर बराबर चिन्तन–मनन करते रहते थे। जिसे राष्ट्र से वास्तविक प्रेम होगा, वह राष्ट्र को सुखी और सम्पन्न देखना चाहेगा–उसके लिए हर सम्भव प्रयास करेगा। देश मात्र देश नहीं, अपितु नदी, पर्वत, झरने, पशु–पक्षी, वन, बाग–बगीचे सभी तो देश हैं। सभी के साथ का प्रेम ही देश–प्रेम कहलाता है और इस समग्र देश को अभिव्यक्ति देती है–भाषा।

टिप्पणी

गांधीजी ने केवल हिन्दी और गुजराती को ही मान–सम्मान नहीं दिया। उन्होंने तो राष्ट्र की सभी भाषाओं को हृदय से सदैव ही सराहा। इनमें बोलियां भी सम्मिलित रही हैं। सम्पूर्ण विश्व ने गांधीजी की सत्याग्रह संबंधी विचार धारा का अधिक लोहा माना है। उनके इसी नैतिक मल्य ने सभी को अधिक प्रभावित किया है।

मोहनदास करमचन्द गांधी ने साबरमती आश्रम से मार्गशीर्ष शुक्ल, 11, 1982 को अपने एक पत्र में लिखा था कि चार या पांच वर्ष पूर्व उनके निकटतम साथियों ने उनसे उनकी आत्मकथा लिखने का आग्रह किया था और उन्होंने इस आग्रह को मान भी लिया था। कुछ कारणों से वे अपनी आत्मकथा न लिख सके। हां, इसके बहाने उन्होंने अपना जीवन वृतांत लिख डाला, जो एक साथ तो नहीं, कछुवे की चाल से लिखा गया।

## 5.3.1 जीवन वृत्तांत की आरंभिक पृष्ठभूमि

....परन्तु यह निर्णय करते ही एक निर्मल साथी ने मेरे मौन दिन सोमवार को आकर मुझसे धीरे से कहा–''आप आत्मकथा क्यों लिखना चाहते हैं? यह तो पश्चिम की प्रथा है। पूर्व में तो किसी को अपनी जीवनी लिखने का पता नहीं मिलता। और आप क्या लिखेंगे? आज आप जिस चीज को सिद्धान्त रूप में मानते हैं, यदि कल वैसा न मानें तो? या सिद्धान्त रूप से जो आज आप कार्य कर रहे हैं, उनमें आगे परिवर्तन करना पड़े तो? आपके लिखे को बहुत–से लोग प्रमाण समझकर अपना आचरण गढ़ते हैं, वे गलत मार्ग पर चले जायें तो? इसलिए क्या यह उचित नहीं होगा कि अभी आप आत्मकथा जैसी कोई चीज न लिखें?''

इस दलील का मेरे मन पर थोड़ा–बहुत असर हुआ। परन्तु मुझे आत्मकथा कहां लिखनी है? मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य के जो अनेक प्रयोग मैंने किये हैं, उनकी कथा लिखनी है। यह अवश्य है कि उसमें मेरा जीवन ओत–प्रोत होने के कारण वह एक जीवन–वृत्तान्त बन जायेगी। परन्तु यदि उसके प्रत्येक पृष्ठ में मेरे प्रयोग की झलक मिले, तो इस कथा को मैं स्वयं निर्दोष मानूंगा। मेरा मानना है कि मेरे सब प्रयोग इकट्ठे जनता को मिलना लाभदायक होगा। इसे मेरा मोह भी कहा जा सकता है। मेरे राजनैतिक क्षेत्र के प्रयोगों को आज तो हिन्दुस्तान ही नहीं, बल्कि कुछ अंशों में 'सभ्य' जगत भी जानता है। मेरी दृष्टि में इसकी कीमत कम–से–कम है और इन प्रयोगों के कारण मुझे जो 'महात्मा' की पदवी मिली है, उसकी कीमत भी बहुत थोड़ी ही है। कई बार तो इस विशेषण ने मुझे बहुत अधिक दुःख भी दिया है। ऐसा एक पल भी मुझे याद नहीं कि इस विशेषण से मैं फूल गया होऊं। मुझे अपने आध्यात्मिक प्रयोगों को, जिन्हें मैं ही जान सकता हूं और जिनमें से मेरी राजनैतिक जीवन–सम्बन्धी शक्ति उत्पन्न हुई है, वर्णन करना अवश्य अच्छा लगेगा। यदि वे वास्तव में आध्यात्मिक हों, तो इनसे गर्वित होने की कोई जरूरत नहीं होनी चाहिए। इनसे तो केवल नम्रता की वृद्धि होती है। जैसे–जैसे मैं विचार करता हूं और अपने अतीत पर निगाह डालता हूं, वैसे–वैसे अपनी अल्पता मुझे स्पष्ट दिखाई देती है। मुझे जो करना है, जिसकी मैं तीस वर्षों से आतुर भाव से रट लगाये हूं, वह तो आत्मदर्शन है, ईश्वर का साक्षात्कार है, मोक्ष है। मेरे सारे काम इसी दृष्टि से होते हैं। मेरा सब लेखन भी इसी दृष्टि से है और राजनीति के क्षेत्र में मेरा पड़ना भी इसी वस्तु के अधीन है।

टिप्पणी

लेकिन भूल से ही मेरा यह मत रहा है कि जो एक के लिए सम्भव है, वह सबके लिए सम्भव है। इसलिए मेरे प्रयोग निजी नहीं हुए, न निजी रहे। मैं नहीं मानता कि उन प्रयोगों को सबके सामने प्रकट करने से उनकी आध्यात्मिकता कम होती है। ऐसी कुछ वस्तुएं अवश्य हैं, जिन्हें आत्मा ही जानती है और वे आत्मा में ही शान्त हो जाती हैं। परन्तु ऐसी वस्तु का देना मेरी शक्ति से बाहर है। मेरे प्रयोगों में तो आध्यात्मिक, अर्थात् नैतिक, धर्म, अर्थात् नीति, आत्मा की दृष्टि से अवलम्बन की हुई नीति धर्म है। अतएवं जिन वस्तुओं का निर्णय बालक, युवा और वृद्ध करते हैं और कर सकते हैं, उन्हीं वस्तुओं का समावेश इस कथा में होगा। यदि मैं ऐसी कथा तटस्थ रूप से निरभिमान रहकर लिख सकूं, तो उसमें से दूसरे प्रयोग करने वालों को कुछ सामग्री मिलेगी। इन प्रयोगों के सम्बन्ध में मैं किसी तरह की सम्पूर्णता का दावा नहीं करता। जिस प्रकार विज्ञान–शास्त्री अपने प्रयोग अत्यन्त नियम, विचारसहित और सूक्ष्मतापूर्वक करता है, फिर भी उससे उत्पन्न हुए नतीजों को वह अन्तिम नहीं मानता, या यह नहीं मानता कि यही सच्चे परिणाम हैं, इस सम्बन्ध में यह शंका नहीं, तटस्थ रहता है, वैसे ही अपने प्रयोगों के विषय में मेरा भी मानना है। मैंने बहुत आत्मनिरीक्षण कर प्रत्येक भाव को जांचा और उसका विश्लेषण किया है, परन्तु उससे प्राप्त परिणाम सबके लिए अन्तिम ही हैं अथवा यही सही है, ऐसा दावा मैं कभी नहीं करना चाहता। हां, एक दावा अवश्य करता हूं कि मेरी दृष्टि में ये उचित हैं और इस समय तो आखिरी से लगते हैं। यदि ऐसा न लगे, तो मुझे इनकी बुनियाद पर कोई इमारत नहीं खड़ी करनी चाहिए। मैं तो हर कदम पर जिन वस्तुओं को देखता हूं, उनके त्याग और ग्रहण, दो भाग कर लेता हूं और ग्रहण करने योग्य के अनुसार अपना आचरण बनाता हूं तथा जब तक इस प्रकार बना हुआ आचरण मुझे और आत्मा को सन्तोष दे, तब तक मुझे उसके शुभ परिणामों के विषय में अटूट विश्वास रखना ही चाहिए।

यदि मुझे केवल सिद्धान्तों, अर्थात् तत्त्वों का ही वर्णन करना हो, तो इस आत्मकथा को लिखने की आवश्यकता ही न रह जाये। परन्तु मुझे तो उनके ऊपर रचित कार्यों का इतिहास देना है और इसलिए मैंने इस प्रयास को पहला नाम 'सत्य के प्रयोग' दिया। इसमें सत्य से पृथक् समझे जाने वाले अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि के नियमों के प्रयोग भी आ जायेंगे। लेकिन मेरे मन में सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें असंख्य वस्तुओं का समावेश हो जाता है। यह सत्य स्थूल–वाचिक–सत्य नहीं है। यह तो वाणी की भांति विचार का भी है। यह सत्य हमारा कल्पित सत्य ही नहीं है, बल्कि स्वतन्त्र और चिरस्थायी सत्य है, अर्थात् परमेश्वर ही है। परमेश्वर की व्याख्याएं अनगिनत हैं; क्योंकि उसकी विभूतियां भी अनगिनत हैं। ये विभूतियां मुझे आश्चर्यचकित कर देती हैं। मुझे थोड़ी देर के लिए मोह भी लेती हैं। परन्तु मैं पुजारी तो सत्यरूपी परमेश्वर का ही हूं। वही एक सत्य है और अन्य सब मिथ्या है। यह सत्य मुझे मिला नहीं, लेकिन मैं इसका शोधक हूं। इसके शोध में मैं अपनी प्रिय–से–प्रिय वस्तु का त्याग करने के लिए भी तैयार हूं। ऐसा मेरा विश्वास है कि इस शोधरूपी यज्ञ में इस शरीर को भी होम करने की तैयारी और शक्ति है। परन्तु इस सत्य का साक्षात न कर लेने तक मेरी अन्तरात्मा जिसे सत्य समझती है, उस काल्पनिक सत्य को अपना आधार मानकर, अपना दीपस्तम्भ समझकर, उसके सहारे मैं अपना जीवन बीताता हूं।

यद्यपि यह मार्ग तलवार की धार पर चलने के समान है, तथापि मुझे यह सरल लगा। इस मार्ग पर चलकर अपनी भयंकर भूलें भी मुझे नगण्य–सी लगती हैं; क्योंकि ये भूलें करते हुए भी मैं बच गया हूं और अपनी समझ के अनुसार आगे भी बढ़ा हूं। दूर–दूर से विशुद्ध सत्य की–ईश्वर की–झांकी भी मैं कर रहा हूं। मेरा यह विश्वास दिन–प्रतिदिन बढ़ता जाता है कि एक सत्य ही है, इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी इस संसार में नहीं है। यह विश्वास किस प्रकार बढ़ता गया, यह मेरे संसार, अर्थात् 'नवजीवन' इत्यादि के पाठक जानकर, चाहें तो मेरे प्रयोग के साझेदार बनें और उसकी झांकी भी मेरे साथ–साथ करें। उसके सिवा जितना मेरे लिए सम्भव है, उतना एक बालक के लिए भी सम्भव है, यह मैं अधिकाधिक मानने लगा हूं और इसके लिए मेरे पास प्रबल कारण हैं। सत्य की शोध के साधन जितने मुश्किल हैं, उतने ही सरल हैं। यह अभिमानी को असम्भव लगते हैं और एक निर्दोष बालक को सम्भव लगते हैं। सत्य के शोधक को रजकण से भी छोटा होकर रहना पड़ता है। पूरा संसार रजकण को कुचलता है, परन्तु सत्य के पुजारी के लिए तो स्वतंत्र सत्य की झांकी तक दुर्लभ है, जब तक कि वह इतना छोटा न बन जाये कि रजकण उसे कुचल सके। यह वस्तु वशिष्ठ–विश्वामित्र के आख्यान में स्पष्ट रूप से बतायी गयी है। इसाई धर्म और इस्लाम भी इसी वस्तु को सिद्ध करते हैं।

टिप्पणी

मैं जो प्रकरण लिखने वाला हूं, उनमें यदि पाठक को अभिमान की बू आये, तो अवश्य समझ लेना चाहिए कि मेरे शोध में कोई दोष है और मेरी झांकी मृगतृष्णा के जल के समान है। भले ही मेरे समान अनेकों का क्षय हो, पर सत्य की जय हो। अल्पात्मा को मापने के लिए हम सत्य का गज कभी छोटा न करें। मैं चाहता हूं कि मेरे लेखों को कोई प्रमाणभूत न समझे, यह मेरी विनती है। मैं इतना ही चाहता हूं कि उनमें मैंने जिन प्रयोगों को लिखा है, उनको दृष्टान्त रूप मानकर अपने–अपने प्रयोग यथाशक्ति और यथामति करें। मेरा ऐसा मानना है कि इस संकुचित क्षेत्र में मेरी आत्मकथा के लेखों में से बहुत–कुछ मिल सकेगा; क्योंकि कहने योग्य एक भी बात मैं छिपाऊंगा नहीं। मैं पाठकों को अपने दोषों का पूरी तरह से ध्यान कराने की आशा करता हूं। मुझे सत्य के शास्त्रीय प्रयोगों का वर्णन करना है, अपने गुणों का वर्णन करने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है। जिस गज से स्वयं मैं अपने दोषों को मापना चाहता हूं और जिसका प्रयोग हम सबको अपने–अपने विषय में करना चाहिए, उसके अनुसार तो मैं अवश्य कहूंगा कि–

मो सम कौन कुटिल खल कामी?

जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसो निमकहरामी।

क्योंकि जिसे मैं सम्पूर्ण विश्वास के साथ अपने श्वासोच्छ्वास का स्वामी समझता हूं और जिसे मैं अपने नमक का देने वाला मानता हूं, उससे अब भी मैं दूर हूं, यह बात प्रत्येक क्षण सताती है। इसके कारणरूप अपने विकारों को मैं देख सकता हूं, पर उन्हें अभी निकाल नहीं पा रहा हूं।

परन्तु इसे अब यहीं समाप्त करता हूं। प्रस्तावना में मैं प्रयोग की कथा नहीं उतार सकता। वह तो कथा–प्रकरणों में ही मिलेगी।

आश्रम, साबरमती मोहनदास करमचन्द गांधी

मार्गशीर्ष शुक्ल 11, 1982

इस पूरे पत्र में गांधीजी की साफगोई के स्पष्ट दर्शन होते हैं, जो एक सच्चा और अच्छा निर्मल हृदय ही प्रकट कर सकता है।

टिप्पणी

तो इस वटवृक्ष रूपी पत्र की सघन शीतल छाया में गांधीजी के उन सत्य के प्रयोगों को देखते हैं, जो उन्होंने बचपन से लेकर जीवन की सांध्य वेला तक स्वयं स्वीकारे हैं।

## 5.3.2 स्कूली जीवन एवं विवाह

यह तो सर्वविदित ही है कि शुरू–शुरु में गांधीजी के उन सत्य के प्रयोगों को देखते हैं, जो उन्होंने बचपन से लेकर जीवन की सान्ध्य वेला तक स्वयं स्वीकारे हैं।

यह तो सर्वविदित ही है कि शुरू–शुरू में गांधीजी के पुरखे पन्सारी की दुकान चलाकर अपने घर–परिवार का भरण–पोषण किया करते थे। परन्तु बाद में उनके दादा उत्तमचन्द गांधी उर्फ ओता गांधी टेक वाले आदमी रहे होंगे–सो दादा जी से लेकर तीन पीढ़ियों से वह दीवान गिरी करते आए। किन्तु दरबारी षड़यंत्रों के चलते उन्हें पोरबन्दर छोड़ने पर विवश होना पड़ा। वहां से निकलकर उन्होंने जूनागढ़ में रहना शुरू किया। उन्होंने वहां के नवाब साहब को बांये हाथ से सलाम किया। किसी ने इसका कारण जानना चाहा तो उन्होंने कहा–दाहिना हाथ तो पोरबन्दर को दिया जा चुका है।

गांधीजी के दादा जी के दो विवाह हुए। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरा विवाह हुआ। पहली पत्नी से चार लड़कों ने जन्म लिया जबकि दूसरी पत्नी से दो पुत्र जन्में। लेकिन, गांधीजी ने कभी इनमें सौतेलेपन का भेदभाव नहीं देखा। इन छहों संतानों में पांचवें नम्बर पर करमचन्द गांधी थे। इन्हें कबा गांधी भी पुकारा जाता था। और छठे तुलसीदास गांधी थे। दोनों भाइयों ने पोरबन्दर की दीवानगिरी की। करमचन्द गांधी उर्फ कबा गांधी की संतान मोहनदास करमचन्द गांधी हुए।

गांधीजी के पिताजी करमचन्द गांधी कुटुम्ब प्रेमी, सच्चाई को पसंद करने वाले, शूर और उदार होने के साथ–साथ गुस्सैल भी थे। रिश्वत से उन्हें घृणा थी। शुद्ध न्याय करते थे। इसके लिए वे खासे प्रसिद्ध भी थे। राज्य के विश्वासपात्र थे। करमचन्द गांधी मात्र पांचवीं पास थे। किन्तु जीवन का अनुभव उनको काफी था। उन्होंने दैनिक जीवन में घटने वाली घटनाओं से ही बहुत कुछ सीखा और अपने जीवन को अनुकरण ीय बनाये रखा। धार्मिक शिक्षा उन्होंने ग्रहण नहीं की, किन्तु मन्दिरों में जा–जाकर कथा प्रवचन काफी सुनते थे। इससे उन्हें धर्म का ज्ञान भी काफी हो गया था। फिर उन्होंने एक विद्वान ब्राह्मण के कहने पर गीता–पाठ भी करना प्रारम्भ कर दिया। गीता के कुछ श्लोक वे प्रतिदिन पूजा घर में बैठकर ऊंचे स्वर में गाया करते थे।

गांधीजी की माता जी धार्मिक विचारों वाली थी। वे भावुक थी और बिना पूजा–पाठ किये वे भोजन न करती थी। गांधीजी के अनुसार, जब से मैंने होश सम्भाला, याद नहीं पड़ता कि उन्होंने चातुर्मास का व्रत कभी छोड़ा हो। वे कठिन–से–कठिन व्रत रखती थी।

घर के धार्मिक वातावरण का प्रभाव भी गांधीजी पर गहरा पड़ा।

टिप्पणी

गांधीजी की माता जी व्यवहार कुशल ग्रहणी थी। राजनीति में भी उनकी अत्यन्त रूचि थी। घर–परिवार के सभी जने उन्हें अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि वाली मानते थे। अपनी माताजी के साथ गांधीजी कभी–कभी दरबार–गढ़ जाया करते थे। ऐसे ही धर्म परायण अैर कर्तव्य परायण माता–पिता के यहां 2 अक्टूबर सन् 1869 को पोरबन्दर / सुदामापुरी में गांधीजी ने जन्म लिया। उनके माता–पिता के सु–संस्कारों का प्रभाव बालक मोहनदास करमचन्द गांधी पर गहरे तक खूब–ही–खूब पड़ा।

गांधीजी का बचपन पोरबन्दर में ही बीता। पढ़ने में कोई ज्यादा अच्छे नहीं थे। इसीलिए गुरुजी की मार दुत्कार भी सहनी पड़ती थी। ऐसे में मोहनदास को गुरु जी पर बड़ा क्रोध आता था। ऐसे में उनके संगी–साथी जो गाना गाया करते थे। वह गांधीजी को हमेशा याद रहा था।

एकड़े एक, पापड़ शेकः

पापड़ कच्चे, –मारो–

गांधीजी सात वर्ष के रहे होंगे तब उनके पिताजी राजस्थानिक कोर्ट के सदस्य बनकर पोरबन्दर से राजकोट चले गए थे। वहां गाधी जी को राजकोट की पाठशाला में प्रवेश दिला दिया गया। वे पढ़ने में साधारण ही रहे। बारह वर्ष के पहुंचते–पहुंचते गांधीजी हाई स्कूल कक्षा में आ गए थे। इस अवस्था तक उन्होंने कभी भी अपने गुरु जी को धोखा नहीं दिया। सदा सत्य ही बोलते रहे। गांधीजी अभी तक भी शर्मीले स्वभाव के रहे थे। वे अपने काम से काम रखते थे। घर से पाठशाला और पाठशाला से घर। ऐसे में कोई उनका मजाक न बनाये–इसलिए वे किसी भी संगी–साथी से अधिक मेल–जोल नहीं बढ़ाते थे। इस अवस्था तक वे डरपोक स्वभाव के भी रहे। वैसे वे अपने गुरुओं के प्रति सदा आदर–भाव रखने वाले रहे।

विद्यालय का निरीक्षण करने जब निरीक्षक महोदय विद्यालय में आए तब वे कक्षाओं में भी गए। जब वे गांधीजी की कक्षा में गए तब उन्होंने विद्यार्थियों से पांच शब्द लिखवाये। जिनमें (5) से एक शब्द उन्होंने 'केटल' (KETTLE) भी लिखने को कहा। बालक मोहनदास ने उसकी 'स्पेलिंग गलत' लिखी। गुरु जी ने देखा तो उन्होंने मोहनदास को अपने जूते की नोक की आहट से उसे ठीक लिखने को कहा। उनका संकेत पास बैठे लड़के की स्लेट से नकल करके मोहनदास को भी अपनी स्पेलिंग ठीक करने का संकेत था। उधर मोहनदास का मानना यह था कि गुरु जी वहां इसलिए खड़े हैं ताकि कोई विद्यार्थी किसी की नकल न कर सके। इसीलिए उन्होंने गुरु जी की बात को कोई महत्त्व न दिया। परिणाम, पूरी कक्षा में उन्हीं के शब्द की 'स्पेलिंग' गलत निकली। इससे पूरी कक्षा में वे मूर्ख सिद्ध हुए। तब गुरु जी ने मोहनदास की मूर्खता से उन्हें अवगत कराया। परन्तु फिर भी मोहनदास पर गुरु जी की बात और सीख का कोई प्रभाव न पड़ा। आगे भी पूरे जीवन उन्होंने किसी की नकल न की। इतना होने पर भी मोहनदास का अपने अध्यापक के प्रति आदर भाव कभी कम न हुआ। बड़ों के दोष न देखने का गुण उनमें स्वाभाविक रूप से था। उन अध्यापक के और भी दोष मोहनदास को ज्ञात हुए। परन्तु फिर भी उनका आदर भाव अपने अध्यापक के प्रति यथावत् ही बना रहा। उनका तो मानना था कि बड़ों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। उनकी बात माननी ही चाहिए। वे जो कहें उसे पूर्ण निष्ठा से करना चाहिए। उनके किए में दोष नहीं ढूंढ़ने चाहिएं।

टिप्पणी

बालक मोहनदास को केवल अपने कोर्स की पुस्तकें पढ़ने से ही मतलब था। शेष किताबों को पढ़ने में उनकी रूचि नहीं थी। गुरु जी की डांट से बचने के लिए वे कोर्स की किताबें पढ़ते थे। उनमें सहनशक्ति की भी कभी थी। गुरु जी को धोखा न देने के ध्येय से वे पढ़ते थे–उन्हें धोखा वे किसी भी कीमत पर नहीं देना चाहते थे। जबकि उनका मन पढ़ाई से कोसो दूर भागने की फिराक में रहता था। ऐसी मनः स्थिति में उनका कक्षा का कार्य पूरी तरह ठीक नहीं हो पाता था। ऐसे में उनके मन में भय भी सालता रहता था। इसी दौर में मोहनदास की दृष्टि अपने पिताजी द्वारा खरीदी हुई एक पुस्तक पर पड़ी। उस पुस्तक का शीर्षक था–'श्रवण पितृ–भक्ति'। वह एक नाटक की पुस्तक थी। उसे बालक मोहनदास ने बड़े ध्यान से पढ़ा। उन दिनों लकडी के बॉक्स में शीशे में चित्र दिखाने वाले भी गली–गली बच्चों को चित्र देखने के लिए आकर्षित करने वाली आवाज में बुलाते रहते थे। एक दिन उसी बक्से में युवा माहेनदास ने श्रवण कुमार को अपने माता–पिता को बहंगी में बैठाकर यात्रा कराते हुए चित्र भी बड़े ही ध्यान से देखे थे। पुस्तक और इन दृश्यों का प्रभाव मोहनदास के चरित्र पर बड़ा ही गहरा पड़ा। उनके मन में श्रवण कुमार जैसा ही बनने के भाव उभरने लगे। श्रवण कुमार की मृत्यु पर उसके माता–पिता के विलाप की कहानी ने मोहनदास को झकझोर कर रख दिया। वे इस घटना से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इस घटना को हारमोनियम पर बजाना भी सीख लिया। मोहनदास को बाजा बजाने में रूचि थी। सो, उनके पिताजी ने इस वाद्य को पहले से ही मोहनदास को दिला दिया था। वे उस पर अभ्यास भी करते रहते थे।

गांधीजी ने लिखा है कि उसी दौर में एक नाटक कम्पनी उनके शहर में आयी। नाटक देखने की अनुमति उनके पिताजी ने उन्हें सहर्ष दे दी। नाटक राजा हरिश्चन्द्र की कथा पर आधारित था। उसे एक बार देखकर मोहनदास की पिपासा शान्त न हुई। वह प्यासे–के–प्यासे ही रह गए। कारण, बार–बार नाटक देखने के लिए कहने का उनका साहस न हो पाता। फिर भी ऐसे में उनके मन ने उस नाटक को मन–ही–मन अनेकों बार खेला और मन को शान्त किया। उनके सपने में भी हरिश्चन्द्र नाटक खेला जाता था। यह सब घटते देख उनके मन में एक प्रश्न प्रायः उठा करता था–'राजा हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी सब क्यों नहीं हो जाते?' हरिश्चन्द्र पर जैसी विपत्तियां पड़ी और उन्होंने उनका डटकर सामना करते हुए उन पर विजय प्राप्त की। ऐसे ही सभी को भी कठिनाइयों में सत्य का पालन करना ही वास्तविक सत्य है। हरिश्चन्द्र की विपदाओं को देख–देख और पढ़कर मोहनदास बहुत ही व्यथित हो जाया करते थे। खूब ही रोया भी करते थे। गांधीजी ने लिखा है कि श्रवण कुमार और राजा हरिश्चन्द्र उनके जीवन में आज भी जीवित हैं। उनका तो कहना था कि यदि वे आज भी उन चारित्रिक नाटकों को पढ़ें अथवा देखें तो आज भी उनकी आंखों में आंसू बरबस ही आ जाएंगे।

अपने बाल–विवाह को लेकर गांधीजी खासे विचलित थे। उनका विवाह मात्र तेरह वर्ष की आयु में कर दिया गया। यह वह गांधीजी की इच्छा के विरुद्ध था, जैसा कि पहले ही गांधीजी ने स्वीकारा है कि बड़ों का मान–सम्मान करना उनका सिद्धान्त था। उनके समक्ष कुछ भी न बोलना, उन्हें रास आता था। ऐसा ही कुछ उनको अपने विवाह के सम्बन्ध में कडुवी घूंट के समान सहना पड़ा। बाल–विवाह के सम्बन्ध में उनको कोई भी दलील नहीं सूझती थी। बाल विवाह के सम्बन्ध को

लेकर गांधीजी ने स्वयं को सत्य का पुजारी माने जाने वाले की तुलना में रखा है। हिन्दु–विवाह में होने वाले बेहिसाब खर्चे, समय की बर्बादी और रीति–रिवाजों के विरूद्ध भी गांधीजी थे। उन्होंने इन सबसे, फिजूलखर्चियों से और समय की बर्बादी से बचने के लिए कुछ सुझाव भी दिए हैं।

टिप्पणी

अपने और अपने दोनों भाइयों के विवाह को लेकर गांधीजी का कहना था कि हम तीनों भाइयों ने विवाह की तैयारियां होती जानकर जाना था कि उन तीनों के विवाह होने वाले हैं। गांधीजी ने लिखा है कि उस समय अच्छे कपड़े पहनने, बाजे–गाजे, घोड़ी पर चढ़ने और बढ़िया भोजन मिलने और विनोद के लिए एक नयी कन्या पाने आदि की अभिलाषा के अतिरिक्त मन में और कोई बात रही हो, इसकी उन्हें कोई याद नहीं है।

गांधीजी के पिता जी दीवान थे। सो, नौकर तो थे ही। वे सबके प्रिय भी थे। सो, आखिर तक ठाकुर साहब उन्हें छुट्टी न देने के मूड़ में थे। काफी कहने–सुनने पर ठाकुर साहब ने उन्हें विवाह से मात्र दो दिन पहले घर जाने दिया। राजकोट से पोरबन्दर की दूरी लगभग 60 कोस है। बैलगाड़ी से पांच दिन का रास्ता था। फिर भी आनन–फानन में पिताजी तीन दिन में पहुंच गए। किन्तु पहुंचने से कुछ दूर पर तांगा उलट गया। पिताजी को काफी चोट आई। सो आनंद में खटास तो आ ही गई। फिर भी जैसे–तैसे विवाह तो सम्पन्न हुए ही। इतना करने पर भी गांधीजी ने लिखा है कि विवाह की खुशी में वे पिताजी के दुःख तक को भूल गए थे।

गांधीजी भावुक प्रवृत्ति के साथ–साथ पितृ–भक्त तो थे ही। किन्तु विषयों में भी उनकी आसक्ति थी। विषय की आसक्ति से तात्पर्य मात्र इन्द्रिय–भोग से ही नहीं है। बल्कि अन्य भोग–मात्र से भी है। इसी भोगेच्छा का दण्ड भी गांधीजी को मिला था।

गांधीजी ने निष्कुलानन्द के गीत की पंक्ति को दोहराते हुए लिखा है–

त्याग न टके रे वैराग बिना, करीए कोटि उपाय जी

और कहा है कि जब वे ये गीत सुनते हैं, तब–तब वह प्रतिकूल और कटु घटना उन्हें आकर विचलित कर देती है। वे लज्जा से पानी–पानी हो जाते हैं।

गांधीजी ने अपने पिताजी के विषय में लिखा है कि चोट लगने पर भी उन्होंने पूरे विवाह का भार उठाया और देखरेख रखकर विवाह सम्पन्न कराये। वह सारे दृश्य उनकी आंखों के सामने चलचित्र के समान घूमते नजर आने लगते हैं। किन्तु उस समय की बात याद करते हुए गांधीजी ने लिखा है कि विवाह करके अपनी ब्याहता पत्नी के साथ घर आये। तब भी रीति–रिवाजों को पूरा किया। उन्होंने लिखा है कि उस समय वे एक–दूसरे से खासे डरते भी थे। एक–दूसरे से शरमाते भी थे, लेकिन कहते हैं न कि प्रकृति सब सिखला देती है। अब पशु–पक्षियों और पेड़–पौधों को कौन सिखलाता है। यह सब प्रकृति–प्रदत्त बातें होती हैं। फिर समय, अवसर और उद्वेग सब सिखला–बतला देते हैं। यहां गांधीजी ने लिखा है कि जहां संस्कार बलवान है, वहां सिखावन फालतु चीज होती है। सो, वे दोनों भी धीरे–धीरे एक–दूसरे को पहचानने लगे, बोलने लगे। गांधीजी ने यहां इस सत्य को भी उजागर किया कि वैसे तो वे दोनों एक ही वय के थे किन्तु फिर भी उन्होंने अपना पति वाला अधिकार पत्नी पर जमाना शुरू कर दिया था। मेरी पत्नी कहां जाती है, यह मुझे हमेशा ज्ञात होना

टिप्पणी

चाहिए। इसलिए मेरी इच्छा और अनुमति के बिना उन्हें कहीं भी नहीं जाना चाहिए। यही विचार उनके और उनकी पत्नी के मध्य झगड़े की जड़ बन गया। अब इसी सन्दर्भ में गांधीजी लिखते हैं कि अनुमति के बिना कहीं न जा सकना तो एक तरह की कैद ही हुई। परन्तु ऐसी कैद को सहन करने वाली उनकी धर्मपत्नी कस्तूरबाई नहीं थी। अतः जहां जी चाहता वे गांधीजी से बिना पूछे अवश्य चली जाती। जितना गांधीजी उन्हें रोकने की कोशिश करते, उतना ही वह अधिक जाती। पत्नी के इस कृत्य से गांधीजी खासे चिढ़–से जाते थे। परिणाम दोनों में बातचीत बन्द हो जाती। दोनों बालक ही तो ठहरे। इस बात को लेकर गांधीजी बड़े होकर सोचते हैं कि कस्तूरबाई की इस स्वतंत्रता को वे गलत नहीं मानते। कारण, जिसके मन में कोई पाप नहीं है, उस पर इस प्रकार की परतंत्रता अथवा अंकुश लगाना न्यायोचित नहीं था। वह मन्दिर जाये या फिर किसी से भी मिलने जाए, इसमें कुछ उचित भी तो नहीं था। ऐसे में यदि वह धर्म पत्नी पर अंकुश रख सकते थे, तो फिर पत्नी भी ऐसा ही उनके साथ करे, तो क्या उन्हें अच्छा लगेगा। किन्तु इस सबके पीछे जो मुख्य कारण था अथवा रहस्य था वह तो पति का अधिकार स्थापित करना ही अधिक था। आगे भी गांधीजी अपने मन की सत्यता को प्रकट करते हुए कहते हैं कि ऐसा भी नहीं था कि आपस में हममें प्रेम न हो। अथवा हमारे गृहस्थ जीवन में मिठास न हो। मेरी विरोधता में भी प्रेम था। परन्तु वे अपनी पत्नी को आदर्श धर्म पत्नी बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि उनकी पत्नी स्वच्छ बने और स्वच्छता से रहे। जो वे सीखें, वह भी वही सीखे। वे जो पढ़ते हैं, वह भी वही पढ़े। अर्थात् सारांशतः, दो शरीर और एक आत्मा हो जाएं। दोनों हम विचार हो जाएं। इस प्रकार की अपने मन की सत्य को जग–जाहिर करते हुए गांधी ने अपनी आत्मकथा में आगे भी अपनी पत्नी के स्वभाव के विषय में लिखा है कि वे उसे अभी तक पूरी तरह समझ नहीं पाये थे कि वे उनके विचारों से सहमत थी भी या नहीं। परन्तु उनकी पत्नी अनपढ़ थी। स्वभाव से सीधी–साधी, महनती और उनके साथ कम बोलने वाली थी। वाचाल नहीं थी। मुंहजोरी करने वाली नहीं थी। यहां उनके जन्मजात और माता–पिता के संस्कारों ने उनका साथ दिया–उनका मानना था कि सवेरे उठकर नित्य प्रति के काम तो करने ही चाहिएं। उनकी धारणा थी कि छल किसी को ठग नहीं सकता। इन्हीं सद्विचारों ने उनकी जीवन–नैय्या को आगे बढ़ाया।

बालिका वधू कस्तूरबाई के विषय में और भी खुलासा करते हुए लिखते हैं कि वे कस्तूरबाई को स्वयं ही पढ़ाना चाहते थे। किन्तु दिन में तो ये काम हो ही नहीं सकता। कारण, परदा सिस्टम आड़े आता था। बड़ों के सामने हम दोनों एक साथ आ भी नहीं सकते थे। बात करने की बात तो सोची भी नहीं जा सकती थी।

गांधीजी भगवान में विश्वास रखने वाले थे। भगवान को मानने वाले थे। वे अपने अनेकों अनुभवों के आधार पर सार रूप में कहते हैं कि सच्ची निष्ठा रखने वाले की ईश्वर रक्षा करते हैं। हिन्दू समाज में बाल–विवाह का घातक रिवाज है तो उससे उबारने वाला रिवाज भी है। बालकपन में जो विवाह होते हैं उनमें वर–वधू को एक साथ अधिक दिन साथ नहीं रहने देते। बालिका–वधू का ज्यादातर समय अपने पीहर में ही बीतता है। यही हमारे सम्बन्ध में भी हुआ। 13 से 18 वर्ष की आयु तक हम कुल मिलाकर तीन वर्ष से अधिक एक साथ न रहे होंगे। पांच–सात महीने रहते–रहते कस्तूरबाई के घर से बुलाने के लिए संदेश आ जाता। गांधीजी मन की

टिप्पणी

बात बतलाते हुए कहते हैं कि उस समय यह सब बुरा लगता था। परन्तु उसी ने हमें बचा भी लिया। फिर 18 वर्ष की आयु में गांधीजी विलायत चले गए। जिससे दोनों पति–पत्नी लम्बे समय तक एक–दूसरे से दूर हो गए। विलायत से लौटने पर भी छः महीने ही साथ रहे। कारण वे राजकोट से मुम्बई अकसर आते–जाते रहते थे। उसी अवधि में दक्षिण अफ्रीका का बुलावा आ गया। तब तक समझ परिपक्व हो चुकी थी।

महात्मा गांधी ने स्वीकारा कि उन्हें हाईस्कूल में मन्दबुद्धि विद्यार्थी नहीं माना जाता था। विद्यालय से उस समय पढ़ाई के परिणाम के साथ–साथ माता–पिता को उनके बच्चे के व्यवहार और चाल–चलन आदि के विषय में भी बतलाया जाता था। ऐसे में कभी भी गांधीजी की शिकायत नहीं भेजी गई। उन्होंने बतलाया कि उन्हें छात्र वृत्ति भी मिली थी। वे मानते हैं कि इसमें उनकी होशियारी की अपेक्षा उनके भाग्य ने उनका अधिक साथ दिया था।

गांधीजी को कभी भी अपने होशियार होने का गर्व नहीं रहा था। उन्हें अपने आचरण की बड़ी चिन्ता रहती थी। आचरण में दोष आ जाने पर वे रोने लगते थे। एक बार उन्हें विद्यालय में दण्डित किया गया। उन्हें मार लगायी गई। ऐसे में वे लिखते हैं कि उन्हें इतना मार का दुःख नहीं हुआ जितना कि दण्ड का पात्र मानने का दुःख हुआ। इसी प्रकार की स्कूली बातों का जिक्र गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में काफी किया है, इससे उनके उजले और सच्चे अच्छे मन का पता चलता है। बाद में उन्हें समझ आया कि विद्या अध्ययन के साथ–साथ व्यायाम अर्थात् शारीरिक शिक्षा का मानसिक शिक्षा के बराबार ही स्थान होना चाहिए। उन्होंने खुली हवा में अपने घूमने और अच्छा लगने की बात की भी चर्चा की है।

गांधीजी की आत्मकथा से पता चलता है कि उनकी व्यायाम में अरुचि का कारण एक यह भी बना कि वे अपने पिताजी की सेवा करने के लिए समय निकालना चाहते थे। सो, विद्यालय बन्द होते ही वे तुरन्त ही घर पहुंचते और अपने पिताजी की सेवा में लग जाते। किन्तु विद्यालय में कसरत करना भी अनिवार्य था। सो वे दुविधा की स्थिति में आ गए। कसरत कराने वाले अध्यापक से काफी अनुनय–विनय भी की, किन्तु वे न मानें। फिर भी जब गांधीजी कसरत की कक्षा में न पहुंचे। तब गैर–हाजिर होने के आधार पर उन पर एक या दो आना जुर्माना लगाया गया। उन्होंने इस सन्दर्भ में भी झूठ बोला था। उसका उन्हें काफी दुःख हुआ। ऐसे में उन्हें इस कृत्य से सीख मिली कि सत्य बोलने और सत्य करने वाले को सन्देह में नहीं रहना चाहिए। यह सन्देह वाली बात गांधीजी के अध्ययन काल में पहली और आखिरी बार ही हुई थी। वे लिखते हैं कि जहां तक उन्हें याद है उन्होंने यह जुर्माना माफ भी करा लिया था।

आगे भी गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मुझे कहीं से ये विचार आया कि पढ़ाई में सुन्दर लिखत की आवश्यकता नहीं होती। यह विचार विलायत जाने तक बना ही रहा। किन्तु जब उन्होंने विशेषकर दक्षिण अफ्रीका में जाकर वहां के वकीलों की अतिसुन्दर लिखावट को देखा तो वे लज्जित हुए और पछताये भी। उन्होंने महसूस भी किया कि खराब अक्षर अधूरी शिक्षा की निशानी माने जाने चाहिए। इसी बात को लेकर उन्होंने अपनी लिखावट को सुन्दर बनाने का भरसक प्रयास भी किया किन्तु वे पूरी तरह सफल न हो सके। ऐसे में उन्होंने यह सीख आने वाले पढ़े–लिखों के लिए छोड़ दी। उन्होंने माना कि सुन्दर लेखन के लिए चित्रकला भी आवश्यक है।

टिप्पणी

गांधीजी ने स्वीकारा कि संस्कृत उनके लिए रेखा गणित से अधिक कठिन सिद्ध हुई। लेकिन इसके लिए संस्कृत के अध्यापक ने उन्हें समझाया और धर्म की भाषा सीखने की सीख दी। साथ ही यह भी बतलाया कि आगे चलकर तो संस्कृत में रस–ही–रस है। तुम्हें हिम्मत नहीं हारनी चाहिये। तुम फिर से मेरी कक्षा में आ जाओ। ये सुनकर गांधीजी संस्कृत की कक्षा में चले गए। अपने अध्यापक के प्रेम की अवहेलना न कर सके। उस समय जितनी भी संस्कृत सीखी। उसी के आधार पर उन्होंने संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन किया। ज्ञान प्राप्त किया। वे कहते हैं कि आगे चलकर मैं यह समझ पाया कि किसी भी हिन्दू बालक को संस्कृत के अच्छे अभ्यास के बिना नहीं रहना चाहिए। आज मैं यह मानता हूं कि भारतवर्ष के उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम में अपनी भाषा के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा हिन्दी, संस्कृत, फारसी, और अंग्रेजी को भी स्थान मिलना चाहिए। उन्होंने भाषा के सम्बन्ध में ही आगे भी लिखा है कि उर्दू को मैंने अलग भाषा नहीं माना है। क्योंकि उसके व्याकरण का समावेश हिन्दी में हो जाता है। अच्छी उर्दू जानने वाले के लिए अरबी और फारसी जानना जरूरी है। वैसे ही जैसे अच्छी गुजराती, हिन्दी, बंगला, मराठी जानने वाले के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है।

अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने अपनी मित्र मण्डली के विषय में प्रकाश डाला है। उन्होंने अपने डरपोक होने की बात भी स्वीकारी है। चोर, भूत, सांप आदि का डर उन्हें सदैव ही घेरे रहता था। रात में अकेले जाने में उनको डर लगता था। सोते समय भी उनके कमरे में दीपक जलता रहता था।

## 5.3.3 आहार–विचार विषयक दृष्टिकोण एवं विलायती जीवन

गांधीजी ने मांसाहार का लाभ और हानि भी जाने। ये सब भी मित्रों के साथ रहने पर ही जाना। मांसाहार पर वे सहमत हुए। और मांसाहार को अच्छी चीज समझने लगे। इससे बल और साहस का संचार होगा। उनको विचार आने लगा–यदि सारा देश मांसाहार करने लगे तो अंग्रेजों को हराया जा सकता है। लेकिन फिर घर–परिवार के परिवेश पर बात आयी–गांधी कुटुम्ब वैष्णव सम्प्रदायी था। कितने ही मन्दिर तो उन्हीं के परिवार के कहे जा सकते थे। इसके अतिरिक्त गुजरात में जैन सम्प्रदाय का बड़ा बोलबाला था। इसलिए मांसाहार की बात सिरे से समाप्त कर दी गई। माता–पिता का ध्यान आते ही गांधीजी सोचने लगे, यदि उन्हें मेरे मांसाहारी होने की बात पता लग जाएगी, तो वे तो, जीते जी तत्काल बेमौत मारे जाएंगे। वे आगे लिखते हैं कि मैं सत्य का सेवक तो था ही। लेकिन अंग्रेजों को भगाने के लिए बलिष्ठ तो होना आवश्यक था। स्वाद की दृष्टि से मांसाहार तो नहीं करना था। दूसरों को मांसाहारी बताकर देश से अंग्रेजों को भगाना ही मेरा एक मात्र उद्देश्य था। देश को स्वतंत्र कराना प्रमुख उद्देश्य था। गांधीजी ने लिखा है कि 'स्वराज्य' शब्द तो तब तक मेरे कान में पड़ा भी नहीं था। इस सुधार के जोश में मैं होश खो बैठा। सो उन्होंने चोरी–छुपे मांस खाना चाहा किन्तु उन्हें वह रूचा ही नहीं। उल्टी आने लगी। निगलना असम्भव हो गया। सो, उन्हें वह भटियारे के यहां की डबल रोटी और चमड़े–सा मांस छोड़ देना पड़ा। इस प्रकार गांधीजी ने मित्रों के कुसंग पर प्रकाश डाला है। उन्होंने एक मित्र द्वारा उन्हें 'चकले' में ले जाने की बात भी उजागर की है। लेकिन वे लिखते हैं कि भगवान जिसे बचाना चाहता है उसे येन–केन प्रकारेण बचा ही लेता है। उनके भगवान ने

उन्हें वहां भी बाल–बाल बचा ही लिया। यहां गांधीजी अपनी अनुभव सिद्ध बात को वर्णित करते हुए लिखते हैं। जैसे हम यह देखते हैं कि न गिरने का यत्न करते हुए भी मनुष्य गिर जाता है वैसे ही अनेक संयोगों के कारण वह गिरना चाहते हुए भी बच जाता है। अब इसमें कितना पुरुषार्थ का अंश होता है और कितना देव का और किन नियमों के अधीन होकर मनुष्य अंत में गिरता या बचता है–ये प्रश्न गूढ़ है।

टिप्पणी

गांधीजी अपने उस मित्र के बारे में लिखते हैं कि उस मित्र की अनिष्टता का ज्ञान मुझे अभी तक भी नहीं हुआ था। आगे पता नहीं अभी क्या कुछ होना शेष था। वे कहते हैं–मेरी आंखें तो तब खुली, जब मैंने उसमें वे दोष प्रत्यक्ष देखे, जिनसे मैं उसे अलिप्त मानता था। आगे भी गांधीजी सत्य को उदघाटित करते हुए लिखते हैं हम दम्पत्ति के बीच होने वाले मतभेद और कलह का कारण यह मित्रता भी थी। गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि मैं जितना प्रेमी पति था। उतना ही बहमी भी था। मेरा शक बढ़ाने वाली यह मित्रता ही थी, क्योंकि मित्र की सच्चाई में मुझे थोड़ा–सा भी सन्देह न था। वे आगे भी सत्य को प्रकाश में लाते हुए लिखते हैं कि इस मित्र की बात मानकर मैंने अपनी धर्म पत्नी को कितने ही कष्ट पहुंचाए हैं। उस हिंसा के लिए मैंने स्वयं को कभी भी माफ नहीं किया। ऐसे दुःख हिन्दू स्त्री ही सह सकती है और इसीलिए मैंने सदा स्त्री को सहनशीलता की मूर्ति माना है। इतना ही नहीं गांधीजी ने पत्नी पर प्रत्येक दृष्टि से विचार किया है। उन्होंने माना है कि पत्नी पति को छोड़कर जाये भी तो आखिर कहां जाए। उच्च माने जाने वाले वर्ण की हिन्दू स्त्री अदालत में जाकर तलाक भी नहीं दे सकती।

गांधीजी आगे भी लिखते हैं कि इस संशय वृत्ति का सर्वथा नाश तो मुझे अहिंसा का सूक्ष्म ज्ञान होने पर ही हुआ। अर्थात् जब मैंने ब्रह्मचर्य की महिमा को समझा और यह जाना कि पत्नी पति की दासी नहीं, बल्कि उसकी सहचारिणी, सहधर्मिणी है। दोनों एक–दूसरे के सुख–दुःख में बराबर के हिस्सेदार हैं और जितनी स्वतंत्रता भला–बुरा करने की पति को है, उतनी ही पत्नी को भी है। गांधीजी इस प्रसंग पर विराम लगाते हुए लिखते हैं कि इस सन्देह काल की याद आने पर तो मुझे अपनी मूर्खता और विषयान्ध निर्दयता पर क्रोध आता है और मित्रता–विषयक अपने मोह पर दया आती है।

अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने चोरी और फिर प्रायश्चित करने पर भी प्रकाश डाला है। मांसाहार के समय के और उसके पहले के भी कुछ दोषों का वर्णन उन्होंने पूर्ण सत्यता के साथ किया है। इसी प्रकरण में उन्होंने एक बार आत्महत्या करने तक की ठान ली थी। इसमें उन्होंने धूम्रपान तक की लत का वर्णन भी किया है और फिर उससे छुटकारा पाने की बात भी लिखी है। प्रायश्चित के आंसुओं को उन्होंने प्रेम–बाण की उपमा तक भी दे डाली है। उन्होंने लिखा कि मेरे लिए यह अहिंसा का पाठ था। उन्होंने पितृ–प्रेम का अच्छा नक्शा खींचा है। अपने पिताजी की शान्त प्रवृत्ति का भी उन्होंने वर्णन किया है। उसे मन की सत्यता से सराहा है।

जब वे 16 साल के थे तब उनके पिताजी को भगन्दर की बीमारी ने आ दबोचा था। उस समय उनकी माताजी, एक पुराना नौकर और वे स्वयं पिताजी की तिमारदारी में तन, मन से लगे रहे थे। सोलहवें साल में ही उन्होंने अपनी पत्नी के गर्भवती होने का भी खुलासा किया है। इससे वे पति–पत्नी लज्जित भी स्वयं को अनुभव कर रहे थे। उधर लम्बी बीमारी के बाद उनके पिता जी ने इस नश्वर संसार से इसी वर्ष विदा ली।

गांधीजी ने उन मित्रों के साथ गीता पढ़ी समझी। उसका प्रभाव उन पर अत्यन्त गहरा और प्रभावी पड़ा। इसी प्रकार गांधीजी ने वहां के धर्म संबंधी प्रसंग भी लिखे हैं। इन सबमें भी गांधीजी के सत्य के प्रयोगों के दर्शन भलीभांति होते रहते हैं।



गांधीजी ने वहां अपने घुमक्कड़पने की बातें भी लिखी हैं। इसी दौरान पेरिस में उन्होंने एक शाकाहारी भोजनालय होने की बात भी पढ़ी थी। उन्होंने लिखा है कि एफिल टॉवर में उन्हें कोई सौन्दर्य दिखलायी नहीं दिया।

आगे भी गांधीजी ने लिखा है कि बैरिस्टर तो बने, लेकिन आगे क्या? इसकी चर्चा भी उन्होंने विस्तार से की है। उन्होंने बतलाया कि बैरिस्टर कहलाना तो आसान लगा, लेकिन बैरिस्टरी करना कठिन लगा। कानून पढ़ा, लेकिन वकालत करना न सीखा। कानून में कई सिद्धांत पढ़े। वे अच्छे लगे। लेकिन, पेशे में उनका प्रयोग कैसे किया जाएगा। यह समझ में न आया। अपना जो कुछ हो उसका इस प्रकार उपयोग करो, जिससे दूसरे की मिलकियत को हानि न पहुंचे। यह तो धर्म वचन है। किन्तु, वकालत का पेशा करते हुए मुवक्किल के मामले में उसका किस प्रकार उपयोग हो सकता है, यह बात बुद्धि में न आयी। जिन मुकदमों में इस सिद्धान्त का उपयोग हुआ था, उन्हें पढ़ा गया था। पर उनमें इन सिद्धान्तों को काम में लाने का उपाय मुझे न सूझा। इसके अलावा हिन्दुस्तान के कानूनों का तो मेरे पढ़े कानूनों में नाम तक न था। हिन्दू शास्त्र, इस्लामी कानून कैसे होते हैं, मैंने यह तक न जाना। अर्जी दावा बनाना न सीखा। इन सब चक्करों से गांधीजी घबरा गए और उन्होंने स्वयं को वकील के लायक न समझा। फिर भी कोशिश में लगे रहे। हाथ–पैर मारते रहे। वे लिखते हैं कि के. और मैलेसन की किताब तो वे न पढ़ सके। परन्तु समय मिलते ही उसे पढ़ने की मन में ठान ली। यह मुराद उनकी दक्षिण अफ्रीका में पूरी हुई। इस प्रकार निराशा में थोड़ी–सी उम्मीद की चमक लेकर वे कांपते पैरों से असाम स्टीमर में बम्बई बन्दरगाह पर उतरे।

इस समय तक गांधीजी सुधारक वृत्ति के बन चुके थे। अतः वे इसके लिए चिन्तित रहते थे। जैसे वे घर पहुंचे तो उन्हें उनकी माताजी के स्वर्ग सिधारने का पता चला। अब तक गांधीजी के माता–पिता स्वर्ग सिधार चुके थे। इससे उनका मन छलनी हो रहा था। फिर भी वे अपने कार्य में लग गए।

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में अपने पहले मुकदमे का विस्तार से वर्णन किया है। इसके लिए उनके भाई ने भी उनके लिए मुकदमे जुटाने के यत्न किए। यहां रहते हुए उन्होंने मुफ्त में अर्जियां लिखनी शुरू कर दी। तो मुफ्त में अर्जी लिखाने वालों का तांता ही लग गया। सो, दाल–रोटी की चिन्ता सताने लगी। तभी गांधीजी को अध्यापन का विचार आया। उन्होंने अध्यापक के लिए प्रयास भी किए। यहां बी.ए. न होना अडचन बन गया। सो, वे निराश होकर बम्बई से राजकोट आ गए। यहां आकर फिर से उन्होंने अर्जी दावे लिखने का काम शुरू कर दिया। इससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो गया। यहां रहकर उन्होंने एक सीख ली–इस तरह किसी की सिफारिश न करूंगा। उन्होंने इस नियम का कभी उल्लंघन न किया।

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में दक्षिण अफ्रीका जाने का वर्णन किया है। वहां उनको एक वर्ष के लिए काम मिल गया। फर्स्ट क्लास से आने–जाने का किराया

टिप्पणी

और रहने–सहने के खर्च के अतिरिक्त 105 पौंड दिए जाएंगे। गांधीजी ने सोचा कि यह तो वकालत नहीं है। हां नौकरी जरूर है। परन्तु उनको तो अपने देश से बाहर जाकर नये देश को देखने की सनक थी। सो, उन्होंने यह नौकरी कर ली। सो, कुछ रुपये घर भेजने की सोचकर उन्होंने सेठ अब्दुल करीम का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए तैयार हो गए। यहां उन्हें अनेक अनुभव भी हुए।

गांधीजी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि सन् 1897 से 1899 के बीच उन्हें अनेक अनुभव हुए। ऐसे में उन्होंने बोअर–युद्ध का वर्णन किया है। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब यह युद्ध हुआ, उस समय मेरा झुकाव बोअरों की ही ओर था। परन्तु मैं मानता था कि ऐसे मामले में व्यक्तिगत विचारों के अनुसार काम करने का अधिकार अभी मुझे प्राप्त नहीं हुआ है। इस बारे में जो मन्थन–चिन्तन गांधीजी के अन्दर चल रहा था। उसका सूक्ष्म निरीक्षण उन्होंने 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास' नामक पुस्तक में लिखा है। अतः जिज्ञासु पाठकों को इस पुस्तक को पढ़कर अपनी जिज्ञासा को शान्त करना चाहिए। यहां इस सम्बन्ध में गांधीजी ने यही कहा है कि ब्रिटिश राज्य के प्रति उनकी राज–भक्ति उन्हें इस युद्ध में भाग लेने के लिए जबरन घसीट कर ले गयी। गांधीजी ने सोचा कि जब मैं ब्रिटिश प्रजा होने के नाते अधिकार की मांग करता हूं तो ब्रिटिश प्रजा के रूप में ब्रिटिश राज्य की रक्षा करने में भाग लेना उनका भी धर्म हो जाता है। उस समय गांधीजी का मानना था कि हिन्दुस्तान की समूची उन्नत्ति ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहकर ही हो सकती है।

गांधीजी ने फिर नगर सफाई आंदोलन और अकाल फन्ड़ का भी वर्णन किया है, जो कुछ इस प्रकार है–गांधीजी लिखते हैं, समाज का एक भी अंग अनुपयोगी रहे, यह उन्हें सदैव अखरा है। जनता के दोषों पर परदा डालकर उसका बचाव करना या दोष दूर किए बिना अधिकार प्राप्त करना, गांधीजी को सदा अरूचिकर लगा। इसलिए दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले हिन्दुस्तानियों पर लगाये जाने वाले आरोपों को, जिनमें कुछ सही भी थे, दूर करने की बात अपने वहां रहने के समय से ही उन्होंने सोची हुई थी। हिन्दुस्तानियों पर जब–जब आरोप लगाया जाता था कि वे अपने घर–बार साफ नहीं रखते। बहुत मैले रखते हैं। इस आरोप को दूर करने के लिए शुरू में हिन्दुस्तानियों में मुखिया माने जाने वाले लोगों के घरों में तो सुधार आरम्भ हो गया था, परन्तु घर–घर घूमने का काम तो डरबन में प्लेग के फैलने का भय होने पर आरम्भ हुआ। इसमें मयुनिसिपैलिटी के अधिकारियों का भी सहयोग और सम्मति थी। हमारी मद्द मिल जाने से उनका काम हलका हो गया और हिन्दुस्तानियों को कम कष्ट उठाने पड़े। उसका कारण ये है कि साधारण रूपेण ऐसा होता है कि प्लेग आदि बिमारियों के फैलने पर अधिकारियों में घबराहट पैदा हो जाती है। सो, उपाय करने में वे सीमा से अधिक आगे बढ़ जाते हैं। ऐसे में उनकी दृष्टि में जो लोग खटकते हैं, उन पर उनका दबाव असहनीय हो जाता है। भारतीय समाज ने अपने आप प्रभावकारी उपायों से काम लेना शुरू कर दिया। इसी कारण इन सख्तियों से वे बच गए।

गांधीजी अपने अनुभव इस विषय में बतलाते हुए लिखते हैं कि ऐसे में उन्हें भी कुछ कटु अनुभव हुए। उन्होंने देखा कि नेटाल सरकार से अधिकारों की मांग करने में जितनी आसानी से वे समाज की सहायता पा सकते थे। उतनी आसानी से वे लोगों

टिप्पणी

से उनके कर्त्तव्य पालन नहीं करा सकते थे। ऐसे में कितनी ही जगह गांधीजी को इसी बात को लेकर अपमान भी सहना पड़ा था। कितनी ही जगह प्यार से काम कराने पर भी काम नहीं किए जाते थे। काम करने में लापरवाही बरती जाती थी। गंदगी को साफ करने का काम कठिन लगता था। पैसा खर्च करने की तो बात बहुत दूर की थी। लोगों से प्यार और धीरज से ही काम कराया जाता था। यह पाठ गांधीजी ने उस समय भली–भांति सीख लिया था। सुधार लाना तो सुधारने जैसा ही होता है। इस बात को लेकर गांधीजी ने विचार रखे कि जिस समाज में सुधार कराना चाहते हैं। वही समाज विरोध भी करता है, तिरस्कार भी करता है। ऐसे में प्राणों का खतरा भी आने की संभावना बन जाती है। ऐसा होने की उम्मीद भी रखनी चाहिए। सुधारक जिसे सुधार मानता है, समाज उसे वैसा नहीं मानता और वैसा न भी माने तो भी उसके प्रति वह उदासीन भाव तो रखता ही है।

गांधीजी इस नगर–स्वच्छता सफाई के आंदोलन का परिणाम यह बतलाते हैं कि भारतीय समाज ने घर–बार को साफ रखने की जरूरत को थोड़ा–बहुत मान भी लिया। ऐसे में अधिकारियों की दृष्टि में गांधीजी की साख बन गई। उनकी निगाहों में गांधीजी की इज्जत बढ़ गई। ऐसे में गांधीजी के बारे में वे सोचे लगे कि ये शिकायत ही नहीं करते। अधिकारों की ही बात नहीं करते, बल्कि शिकायतों और अधिकारों के लिए वे जितने सजग रहते हैं, उतना ही भीतरी सुधारों के करने में भी उनका उतना ही उत्साह और तत्परता रहती है।

गांधीजी अपनी इस मुहिम की बात करते हुए लिखते हैं कि अभी भी वे अपने समाज को एक ओर दिशा में जगाने की आवश्यकता महसूस कर रहे थे। और वह यह था कि यहां रहने वाले उपनिवेश वासी हिन्दुस्तानियों को हिन्दुस्तान के प्रति भी अपना धर्म अवसर आने पर समझने की और उसका पालन करने की आवश्यकता थी। गांधीजी का कहना था कि भारत तो कंगाल है। लोग पैसा कमाने विदेश जाते हैं। उनकी कमायी का कुछ भाग तो भारत देश को भी मिलना ही चाहिए। गांधीजी इसका पुख्ता उदाहरण देते हुए लिखते हैं कि सन् 1897 में भारत में अकाल पड़ा था। सन् 1899 में फिर अकाल पड़ा था। इन दोनों अकालों के समय दक्षिणी अफ्रीका से अच्छी सहायता भारत को दी गई थी। पहले अकाल की अपेक्षा दूसरे अकाल के पड़ने पर उससे भी कई गुना अधिक रकम दक्षिणी अफ्रीका से सहायता के तौर पर भारत भेजी गई थी। गांधीजी उस समय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस समय भारत ने अंग्रेजों के सामने भी हाथ फैलाया था। सो, उस समय अंग्रेजों ने भी अच्छी सहायता भेजी थी। गिरमिटियों ने भी अपनी ओर से भारत को सहायता भेजी थी। इस प्रकार की सहायता की प्रथा जब चली थी, वह आगे भी समय–समय पर की जाती रही है। ऐसे में गांधीजी का कहना था कि दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की सेवा करते हुए भी उन्होंने एक–एक करके बहुत–सी बातें सीखी थी। उनका मानना था–सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यों–ज्यों सेवा की जाए, त्यों–त्यों उसमें अनेक फल आते दिखलायी देते हैं। उसका अन्त ही नहीं होता। जैसे–जैसे उसकी गहराई में उतरते हैं, वैसे–वैसे उसमें अनेक रत्न मिला करते हैं। सेवा के अवसर मिलते हैं।

लड़ाई के काम से मुक्त होने के बाद गांधीजी को लगा कि अब उनका यहां का काम समाप्त हो चुका है। अब हिन्दुस्तान में ये काम करना है। सो, सन् 1896 में

टिप्पणी

गांधीजी अपने देश लौट आए। यहां आकर उन्होंने कुछ समय देश में घूमने–फिरने में लगाया। सन् 1901 की कांग्रेस अधिवेशन कलकत्ता में होने वाली थी। दीनशा एदल जी वाच्छा उसके अध्यक्ष थे। गांधीजी को कांग्रेस में तो जाना ही था। सो, कांग्रेस में यह उनका पहला अनुभव था। कांग्रेस में होने की अवधि में जो उन्होंने वहां वास्तविकता देखी तो वे दंग रह गए। फिर भी गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका के अपने प्रस्ताव को वहां के उपस्थित अधिकारियों की आज्ञा से पढ़ा। पढ़ने के बाद गोखले ने उस प्रस्ताव का समर्थन भी कर दिया। फिर बाकी सभी भी एक स्वर में बोल उठे–सर्वसम्मति से पास। इस अपने प्रस्ताव में गांधीजी ने भी दक्षिण अफ्रीका के दुःखों की कुछ कथा प्रकट की थी। यह सब पढ़ने के लिए गांधीजी को अध्यक्ष वाच्छा महोदय की ओर से 5 मिनिट की अनुमति ही दी गई थी। खैर, परिणाम में और प्रस्तावों के साथ–साथ गांधीजी का प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पास हुआ–यही बात उस समय गांधीजी के लिए प्रसन्नता वाली हो गई। इस प्रकार जब कांग्रेस की मुहर लग गई, तब मानो उस समय पूरे देश की ही मुहर लग गयी–ऐसा ही माना जाता था।

गांधीजी की सत्यता की पराकाष्ठा उनकी इस छोटी–सी बात में भी भरी–पूरी मिलती है–कांग्रेस अधिवेशन में गांधीजी तो पहली ही बार भाग ले रहे थे–पहली ही बार उनको अपना प्रस्ताव रखने का भी मौका मिल रहा है। ऐसे में धुरंधरों को आध–आध, पौन–पौन घंटा बोलते देखा। तब भी उनको प्रस्ताव समाप्त करने के संकेत की घंटी नहीं बजी। परन्तु गांधीजी को तो अध्यक्ष महोदय ने 5 मिनट का ही समय दिया था–ऐसे में प्रस्ताव समाप्त करने की घंटी 5 मिनट से एक–दो मिनट पहले ही बजी तो वे घंटी बजते ही आनन–फानन में अपने प्रस्ताव को समेट कर तुरन्त ही बैठ गए थे। परन्तु उस काव्यात्मक शैली के उनके प्रस्ताव से फिरोजशाह को उत्तर मिल ही गया था–ऐसे में गांधीजी के मन से सत्य की जो आवाज उठी वह थी–वह मेरी छोटी अकल ने उस समय मान लिया।

उसके बाद गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लार्ड कर्जन के दरबार का वर्णन किया है तो आगे भी गोखले के साथ एक माह तक रहने के अपने संस्मरण लिखे हैं। ये संस्मरण तीन भागों में दिए गए हैं। फिर काशी की बात लिखते हुए वे बम्बई में आकर बसने की बात पर आ गए। वहां की भी उन्होंने अपनी आप बीती ही लिखी है। वे अपने धर्म–संकट की बात करते हैं। अनुभव करते हैं कि ईश्वर ने उन्हें कहीं भी, कभी भी चैन से न बैठने दिया। उन्होंने स्वयं को सदैव ही राष्ट्र के, समाज के, अपने–परायों के कार्यो में ही उलझाये रखा। परन्तु, इन सबसे गांधीजी को कष्ट न होता था। बल्कि इस तरह उनको जरूरत मंदों की सेवा करके अपार सुख और शान्ति मिलती थी। फिर वे ये सब करते हुए अपने सत्य के प्रयोग भी करते रहते थे। ऐसे में वे अनेकों बार धर्म संकटों में भी घिरे–लेकिन, उन्होंने डरकर कभी भी अपने कदम पीछे न हटाये।

गांधीजी के कदम फिर दक्षिण अफ्रीका में जा पहुंचे। वहां उनको अपनी आवश्यकता महसूस होती थी।

इस अपनी यात्रा में गांधीजी अपने कुटुम्ब परिवार से जब–तब मिलते भी रहे। उन्हें अनिश्चित जीवन जीने की आदत सी पड़ गई थी। ऐसे में उनके विचार कुछ

टिप्पणी

इस प्रकार थे—इस संसार में जहां ईश्वर कहिये या सत्य कहिये—उसके अतिरिक्त और कुछ भी निश्चित नहीं है। वहां अनिश्चितता का विचार भी करना भी गलत लगता है। यह सब जो अपने आसपास दिखलायी पड़ता है, और घट रहा है—वह सब क्षणिक ही है। उसमें जो एक परम तत्त्व निश्चित रूप से अन्तर्निहित है, उसके दर्शन हो जाएं, उस पर श्रद्धा रहे, तभी जीवन सार्थक सिद्ध हुआ माना जा सकता है। उसकी खोज ही बड़ा पुरुषार्थ है। सारांश में सत्य को ही गांधीजी ने ईश्वर माना है। वे सत्य के ही हिमायती कदम—कदम पर रहे हैं।

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में यह भी स्पष्ट लिखा है कि मिस्टर चेम्बरलेन दक्षिण अफ्रीका से साढ़े तीन करोड़ पौण्ड लेने आए थे तथा अंग्रेजों के और भी अधिक अपने हो सकें, तो कह सकते हैं कि वे बीमारों का मन जीतने आए थे। इसलिए भारतीय प्रतिनिधियों को उन्होंने ठण्डा जवाब कुछ यूं दिया—'आप तो जानते हैं कि स्वराज्य भोगी उपनिवेशों पर साम्राज्य सरकार का अंकुश नाम भर के लिए ही है। आपकी शिकायतें तो उचित लगती हैं। सो, जो मुझसे हो सकेगा। वह करूंगा। परन्तु आपको जैसे भी बन पड़े, यहां के गोरों को प्रसन्न रखते हुए ही रहना है। यह सुनकर गांधीजी ने आशा ही छोड़ दी। 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' की कहावत यहां भी चरितार्थ हो गई।

गांधीजी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि सन् 1900 के वर्ष में उनके विचारों में काफी परिवर्तन आए। जिनका स्पष्ट प्रभाव 1906 में सामने आने लगा। सारांश में वे इस संदर्भ में लिखते हैं कि जैसे—जैसे वे निर्विकार होते गए, तैसे—तैसे उनकी गृहस्थी शान्त, निर्मल और सुखी होती गयी। यह सिलसिला अभी भी जारी है। इस सिलसिले में वे फिर इस सत्य को प्रकट करते हैं कि इन सब बातों से ये न समझ लेना चाहिए कि वे आदर्श दम्पत्ति हैं या फिर मेरी पत्नी में कोई दोष ही नहीं है। अथवा हम दोनों के आदर्श अब एक हैं। पति—पत्नी और घर—गृहस्थी की बातें गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में पूरी सत्यता से रखी हैं। और माना है कि उनकी पत्नी ने उनकी अनुगामिनी बनने में ही अपनी सार्थकता को स्वीकारा है। वे कभी मेरे कार्य में बाधक नहीं बनी। ऐसे में उनका मानना रहा कि फिर भी उनका मन कहता है कि उनका जीवन संतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी रहा है।

गांधीजी ने गीता (भागवत गीता) को अपने जीवन में मार्गदर्शक के रूप में चुना था।

'दक्षिण अफ्रीका के इतिहास' नामक पुस्तक में जो बात न आ सकी, उसमें 'शिक्षक' के विषय में भी रह गया था। उसका भी वर्णन अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने किया है। इसमें उन्होंने प्रत्येक प्रकार की शिक्षा की बात रखी है। और तो और अक्षर ज्ञान पर भी विचार लिखे हैं। भले—बुरे के मिश्रण पर भी प्रकाश डाला है। प्रायश्चित रूप में उपवास की बात भी रखी है। फिर वे गोखले जी से मिलने की बात को बतलाने में लग जाते हैं। लड़ाई में हिंसा के पुट को स्पष्ट करने लगते हैं।

गांधीजी अपनी आत्मकथा में धर्म—संकट की बातें भी लिखते हैं। साधारण सत्याग्रह को भी स्पष्ट करते हैं। गोखले की उदारता के भी वे कायल दिखायी पड़ते हैं। अपने दर्द के लिए उन्होंने क्या किया—इसका भी खुलासा करके लिखते हैं।

गांधीजी ने अपने मित्र मिस्टर केलन बैंक के बारे में लिखा है कि जब वे हिदुस्तान आने वाले थे तब उनके मित्र की भी इच्छा उनके ही साथ आने की थी, किन्तु वह पूरी न हो सकी। इससे जितना दुःख उनके मित्र को हुआ उतना ही गांधीजी को भी हुआ था। वे लिखते हैं कि यदि वे यहां आते तो एक सुन्दर किसान और बुनकर का जीवन यहां बीताते। मिस्टर केलन बैंक विलायत में गांधीजी के साथ ही रहा करते थे। वे उनके हम विचार जो थे।

यहां यह भी गांधीजी ने खुलासा किया है कि मिस्टर रॉबर्ट्स ने उन्हें भारत लौट जाने का आग्रह किया था। उन्होंने उनसे कहा था–आप इन हालातों में नेटली कभी न जा सकेंगे। कड़ी सर्दी और आगे भी पड़ने की भी उन्होंने बात करते हुए कहा था कि मेरा अनुरोध है कि अब आप अपने देश जाएं और वहां अच्छे हों। तब तक लड़ाई चलती रही तो सहायता करने के और भी अवसर आएंगे। आपको मिलेंगे। आपने जो यहां किया है, उसे मैं कम नहीं मानता। तभी गांधीजी ने उनकी बात को उचित ठहराते हुए अपने देश हिन्दुस्तान आने का मन बनाया था। इसका प्रमुख कारण उनकी जानलेवा बिमारी थी। उसी को ध्यान में रखते हुए मिस्टर रॉबर्टस ने उनको देश लौटने की सलाह दी थी। ऐसे में भी गांधीजी डॉक्टर मेहता से सदा ही यह कहने से बाज नहीं आते थे–मेरा इलाज कीजिए तो सभी बातें अभी अच्छी कर दूं।

गांधीजी के सत्य को सभी जानते थे–सो, कोई भी उनको धोखा देने से पहले अनेक बार सोचता था। सत्य ही उनकी ढ़ाल था।

अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने स्वीकारा है कि कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्रद्धानंद जी और सुशील रूद्र को मैं एंड्रयूज की त्रिमूर्ति मानता था। वे बतलाते हैं कि दक्षिणी अफ्रीका में एंड्रयूज महोदय इन तीनों महापुरुषों की प्रशंसा करते थकते नहीं थे।

गांधीजी बतलाते हैं कि बंबई में अभिनन्दन स्वीकार करने में ही उन्हें एक छोटा–सा सत्याग्रह करना पड़ गया था। बम्बई में एक–दो दिन ठहरकर गांधीजी गोखले जी के संग फिर पूना चले गए। गांधीजी ने अधिकारियों द्वारा तीसरे दर्जे की रेल–सवारियों के साथ अभद्र व्यवहार का भी बखान किया है। गांधीजी धमकी को लोक शिक्षा का नाम देते थे। उनका कहना था कि लोगों को अपने दुःख–कष्ट दूर करने के सब वास्तविक उपाय बतलाना मुझ जैसों का धर्म है। इसके बाद अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने शान्ति निकेतन के विषय में अपने अनुभव साझा किये हैं। वे वहां राजकोट से गए थे। वहां के अध्यापकों और विद्यार्थियों के प्रेम की प्रशंसा गांधीजी ने मुक्त कंठ से की है। उन्होंने वहां किए गए स्वागत की विधि में सादगी, कला और प्रेम का सुन्दर संगम महसूस किया था। वहीं उनकी पहली मुलाकात काकासाहब कालेलकर से हुई थी। उन्होंने यह भी जाना कि कालेलकर 'काकासाहब' क्यों कहे जाते थे।

अपने आत्मकथा में गांधीजी ने कुम्भ मेले का भी वर्णन किया है। वहां के अपने अनुभव भी पाठकों से साझा किए हैं। लक्ष्मणझूले का भी वर्णन किया है। साथ ही शान्ति निकेतन और हरिद्वार के वातावरण को भी लिखा है। ऋषिकेश में गांधीजी से मिलने अनेकों सन्यासी भी आए। उनमें से एक सन्यासी उनसे खासे प्रभावित हुए थे। वहां उन्होंने धर्म की चर्चा भी की। यहां उन्होंने अपने अनुभव और उनके प्रयोग करने की चर्चा की है।

## 5.3.4 सत्याग्रह आश्रम की स्थापना, बिहार यात्रा एवं कांग्रेस में प्रवेश

टिप्पणी

सत्याग्रह आश्रम की स्थापना 1915 ई. की 25 मई को हुई थी। श्रद्धानंदजी की इच्छा थी कि गांधीजी हरिद्वार में ही बसें। कलकत्ता के कुछ मित्र चाहते थे कि गांधीजी वैद्यनाथ धाम में बसेरा करें तो कुछ की प्रबल मंशा थी कि गांधीजी राजकोट में ही रहें। कुछ मित्र चाहते थे कि अहमदाबाद में रहा जाए। गांधीजी की भी मंशा कई कारणोंवश अहमदाबाद में ही बसने की थी। विशेष कारण धन का जुगाड़ था। धनी व्यक्ति अहमदाबाद में होने के कारण यहीं रहना सम्भव था। वह कहते हैं न कि 'बिन पैसे सब सूना' था। गांधीजी को यह भी पता था कि अहमदाबाद पहले हाथ की बुनाई का केन्द्र रहा था। इसलिए चरखे का काम अच्छी तरह से चलने की भी सम्भावना प्रबल थी। और कई कारणों को देखते हुए गांधीजी ने भी अहमदाबाद में ही बसने का मन बना लिया। गांधीजी ने यह भी खुलासा कर दिया कि कोई भी योग्य अन्त्यज भाई आश्रम में प्रवेश करना चाहेगा तो मैं उसे अवश्य कराऊंगा। छुआछूत की यहां बात न होगी। बाद में कुछ ऐसे अन्त्यज परिवार आश्रम में आकर रहे भी।

गिरमिटिया की प्रथा की बात लिखते हुए गांधीजी ने स्पष्ट लिखा है कि गिरमिटिया उसे कहते हैं जो पांच वर्ष या इससे कम की मजदूरी के इकरारनामें पर हस्ताक्षर करके हिन्दुस्तान के बाहर मजदूरी करने के लिए गया हो।

फिर गांधीजी अपनी आत्मकथा में चम्पारन की बात करने लगते हैं। चम्पारन राजा जनक की जन्म भूमि थी। चम्पारन में जैसे आम के बागीचे हैं। वैसे ही चम्पारन में सन् 1917 में नील की खेती होती थी। इस खेती का और गोरों के अमानुषिक व्यवहार का जिक्र भी गांधीजी ने विस्तारपूर्वक किया है। तनिक उसका भी जायजा ले लें—

चम्पारन के किसान अपनी ही जमीन के 3/20 भाग में नील की खेती उसके वास्तविक मालिक के लिए करने को कानूनन बंधे थे। इस प्रथा को 'तीन कठिया' बोला जाता था। बीस कट्ठे का वहां एक एकड़ होता था। उसमें तीन कट्ठे की बुआई का नाम था—'तीन कठिया की प्रथा।'

गांधीजी ने स्वीकारा है कि वहां जाने से पहले वे चम्पारन का नाम भी नहीं जानते थे। नील की खेती के विषय में भी उनको जानकारी नहीं थी। वे बतलाते हैं कि उन्होंने नील की गोटियां तो देखी थी, किन्तु वे चम्पारन में बनती है—यह ज्ञात नहीं था। साथ ही यह भी ज्ञान नहीं था कि उसी कारण वहां के हजारों किसानों को कष्टमय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ता था।

गांधीजी आगे लिखते हैं कि राजकुमार शुक्ल भी चम्पारन के एक किसान थे। उन पर दुःख पड़ा। यह उन्हें अच्छा नहीं लगा। इसलिए उन्होंने इस नील के धब्बे को मिटाने की ठान ली। उन्होंने समझ लिया कि यह कष्ट उनके लिए ही नहीं था, बल्कि वहां के बाकी किसानों के लिए भी था।

गांधीजी ने लिखा है कि वे भी लखनऊ की महासभा में गए थे। वहां किसान भी थे। सो, उन्होंने गांधीजी को अपने साथ हो रहे अन्याय के विषय में विस्तार से सब कुछ बतला दिया। और साथ ही वहां की वस्तुस्थिति का जायजा लेने के लिहाज से उन्हें चम्पारन आने का मौखिक निमंत्रण भी दे दिया। साथ ही यह भी बतला दिया

टिप्पणी

कि वे शायद अपनी बात पूरी तरह उनको समझा नहीं पाएंगे। इसलिए वे बोले कि वकील बाबू आपको सब कुछ बतला देंगे। गांधीजी ने यहां स्पष्ट किया है कि उनका वकील बाबू से मतलब गांधीजी के चम्पारन के प्रिय साथी और बिहार के वन–जीवन के प्राण वकील ब्रजकिशोर बाबू से था। गांधीजी ने आगे लिखा है कि राजकुमार शुक्ल वकील बाबू को उनके तम्बू में ले आए। ब्रजकिशोर जी ने काले आलपाका की अचकन, पतलून आदि पहन रखी थी। सो, गांधीजी के मन पर उनकी कोई खास अच्छी छाप न पड़ी। ऐसे में गांधी जी ने सोचा कि ये तो भोले–भाले किसानों का लूटने वाले कोई वकील लगते हैं।

फिर भी गांधीजी ने उनसे थोड़ी बहुत चम्पारन की जानकारी मालूम की। फिर अपनी आदत के अनुसार गांधीजी बोले–स्वयं देखे बिना मैं इस विषय पर अपनी कोई राय जाहिर नहीं कर सकता। आप महासभा में बोलियेगा। मुझे तो फिलहाल छोड़ ही दीजियेगा। उधर गांधीजी ने फिर लिखा है कि राजकुमार शुक्ल को तो महासभा की आवश्यकता थी ही। चम्पारन के विषय में ब्रजकिशोर बाबू बोले और सहानुभूति सूचक प्रस्ताव पेश हुआ। यह देखकर राजकुमार शुक्ल प्रसन्न हुए, किन्तु उन्हें पूरी संतुष्टि न प्राप्त हो सकी। वे तो स्वयं गांधीजी को चम्पारन की हकीकत से अवगत कराना चाहते थे। किसानों का दुःख–दर्द दिखलाना चाहते थे। ये सब समझकर गांधीजी ने उन्हें आश्वासन दिया–अपने दौरे में मैं चम्पारन को भी शामिल कर लूंगा। एक–दो दिन दूंगा भी। तिस पर राजकुमार शुक्ल कहने लगे–एक दिन ही काफी होगा। बस, आप अपनी दृष्टि से देखिए तो सही।

गांधीजी ने इसी प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए लिखा है कि, वे लखनऊ से कानपुर गए। वहां भी राजकुमार शुक्ल उन्हें हाजिर पाए। सो, वे बोले–यहां से चम्पारन बहुत ही पास है। एक दिन दे दीजिए। तिस पर गांधी जी ने उनको आश्वासन दिया–अभी मुझे माफ करें, परन्तु मैं आऊंगा, यह वचन देता हूं। वे ऐसा लिखते हुए कहते हैं–ये कहकर मैंने अपने आपको अधिक बंधा हुआ सा महसूस किया। गांधीजी लिखते हैं कि जब वे आश्रम पहुंचे–तब भी राजकुमार शुक्ल उनका पीछा करते हुए वहां पहुंच गए। बोले अब तो दिन निश्चित कर लीजिए। तिस पर गांधी जी ने उनसे कहा–जाइए, मुझे उस तारीख में तो कलकत्ता जाना है। वहां आइएगा और मुझे वहां से ले जाइएगा। इस विषय में गांधीजी लिखते हैं कि उन्होंने उन्हें कलकत्ता से ले जाने के लिए इसलिए कहा, क्योंकि उन्हें चम्पारन का कुछ भी पता नहीं था। फिर वहां जाकर भी कहां जाना है, क्या करना है, क्या देखना है, इस बारे में भी गांधीजी पूर्ण अनजान थे। खैर, जब गांधीजी कलकत्ता में भूपेन बाबू के यहां पहुंचे तो उन्होंने देखा कि राजकुमार शुक्ल ने वहां पहले से ही डेरा डाला हुआ था। ये देखा तो गांधीजी ने उनके बारे में लिखा–यह सब देखकर गांधीजी ने मान लिया कि इस अनपढ़ परन्तु निश्चयवान किसान ने उन्हें जीत लिया है। गांधीजी ने आगे लिखा है कि सन् 1917 के आरम्भ में वे दोनों कलकत्ता से रवाना हुए। दोनों एक से ही किसान लगते थे। राजकुमार शुक्ल जिस गाड़ी में ले गए। उसमें वे सवार हुए और सुबह पटना पहुंच गए। गांधीजी ने बतलाया कि वह पटना की उनकी पहली यात्रा थी। वहां कोई परिचित भी गांधीजी का नहीं था। ऐसे में गांधीजी के मन में आया कि राजकुमार शुक्ल भले

टिप्पणी

ही अनपढ़ किसान ठहरे। किन्तु उनका कोई वसीला तो होगा ही। ट्रेन में गांधीजी ने उनके विषय में कुछ अधिक जानने की कोशिश की। सफल भी हुए। रहा–सहा उनका परदा पटना में खुल गया। गांधीजी लिखते हैं कि शुक्ल जी बिल्कुल भोले थे। उन्होंने जिन्हें अपना मित्र मान रखा था, वह उनके मित्र भी न थे। बल्कि वे उन पर आश्रित से लगते थे। गांधीजी यहां लिखते हैं कि किसान मुवक्किल और वकीलों के बीच तो चौमासे की गंगा के चौड़े पाट के जितना अन्तर था।

खैर, आगे गांधीजी ने लिखा है। कि राजकुमार शुक्ल उन्हें राजेन्द्र बाबू के यहां ले गए। उस समय राजेन्द्र बाबू पुरी या कहीं गए हुए थे। बंगले पर एक–दो नौकर ही थे। गांधीजी बतलाते हैं कि उनके पास कुछ खाने को था। उन्हें खजूर की आवश्यकता थी। सो, बेचारे राजकुमार शुक्ल बाजार गए और खजूर ले आए।

गांधीजी ने अपनी बिहार यात्रा का जिक्र करते हुए वहां के छुआछूत का भी वर्णन किया है और कुछ उदाहरण भी दिए हैं। फिर भी गांधीजी ने स्वीकारा कि इन मनोरंजक अनुभवों से राजकुमार शुक्ल के लिए उनके मन में काफी सम्मान बढ़ा। साथ ही, उनके बारे में और भी कुछ पता चला। फिर गांधीजी बतलाते हैं कि पटना से उन्होंने लगाम अपने हाथों में थाम लीं। फिर गांधीजी ने इस विषय में जो योजना तैयार की और किसानों की समस्याओं का समाधान कैसे–कैसे किया। उन सबका भी खुलासा गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में किया है।

इस तरह से भी पटना की सरलता का अनुभव गांधीजी ने किया है। साथ ही, ब्रजकिशोर बाबू के ठंड़े दिमाग की बात भी उन्होंने लिखी है।

नील की खेती से सम्बन्धित नील के मालिकों (निलहों) के विरूद्ध जो शिकायतें थी–उनकी सच्चाई को भी देखने के लिए गांधीजी कमिश्नर से मिले। इस मामले में उन्हें अहिंसा देवी का साक्षात्कार भी हुआ था। इसीसे सम्बन्धित मुकदमा वापिस लेने का जिक्र भी गांधीजी ने किया है।

गांधीजी ने ब्रजकिशोर बाबू और राजेन्द्र बाबू की जोड़ी को अद्वितीय बतलाया है। उन दोनों पर गांधीजी अत्यन्त निर्भर रहने लगे थे। उनके बिना वे एक कदम भी नहीं उठाते थे। उनके कुछ और साथियों में शम्भू बाबू, अनुग्रह बाबू, धरणी बाबू और रामनवमी बाबू के नाम भी गिनाये हैं। ये सभी वकील साथ–साथ ही रहते थे। इसको उन्होंने बिहारी संघ का नाम दिया। इस संघ का कार्य लोगों के बयान लेना होता था। अध्यापक कृपलानी भी इनमें ही थे। वे सिन्धी होते हुए भी बिहारी से भी बढ़कर बिहारी सिद्ध होते थे। वे जिस भी प्रान्त में जाते थे–उसी में घुल–मिल जाते थे–ये उनकी विशेषता थी।

अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने विद्यालय खोलने की बात भी लिखी है। प्रत्येक स्कूल में एक महिला और एक पुरुष रखे जाते थे। यहां भी उन्हें अनेकानेक अनुभव हुए। इनमें उजले पक्ष की बात भी गांधीजी ने लिखी है। गांधीजी चाहते थे कि चम्पारन में और भी रचनात्मक कार्य किये जाएं। किन्तु ईश्वर की इच्छा के चलते ये सम्भव न हो सका। चम्पारन में गांधीजी मजदूरों के बीच भी अपना प्रभाव छोड़ने में अच्छे खासे सफल रहे थे। ये सब कुछ करते–कराते गांधीजी अहमदाबाद के अपने आश्रम

टिप्पणी

के प्रति भी सजग रहते थे—जब समय मिलता तभी वहां का निरीक्षण कर आते थे। वहां के कार्यों पर भी वे पूरी नजर रखते थे।

गांधीजी ने उपवास को एक माध्यम के रूप में स्वीकारा था। खेड़ा में सत्याग्रह का वर्णन भी किया है। गांधीजी ने प्याज की चोरी की बात भी इस आत्मकथा में लिखी है। खेड़ा की लड़ाई के अन्त पर भी गांधीजी ने प्रकाश डाला है।

गांधीजी ने लिखा है कि जिस समय खेड़ा प्रकरण चल रहा था—उसी समय यूरोप में महायुद्ध भी चल रहा था। उसके सम्बन्ध में वाइसराय ने दिल्ली में नेताओं को बुलाया था। अपनी मित्रता चेम्सफोर्ड के साथ की बात भी गांधीजी ने लिखी है। गांधीजी भी अन्य नेताओं के साथ दिल्ली गए। वहां जो हुआ उसका वर्णन भी गांधीजी ने किया है। रंगरूटों की भरती की बात भी गांधीजी ने कुछ इस प्रकार बतलायी—वाइसराय की बड़ी इच्छा थी कि मैं सिपाही देकर सरकार की सहायता करने के प्रस्ताव का समर्थन करूं। वे बतलाते हैं कि मैंने हिन्दी—हिन्दुस्तानी में बोलने की मांग की। वाइसराय ने उसे मान लिया। परन्तु साथ ही अंग्रेजी में बोलने के लिए भी कहा। सो, गांधीजी ने वहां संक्षेप में इतना ही बोला—मुझे अपनी जिम्मेदारी का पूरा ख्याल है और उसे समझते हुए भी मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

गांधीजी ने इसी प्रकरण में अपने दुर्बल होने की बात भी लिखी है। कारण, रंगरूटों की भरती को लेकर उन्होंने तन, मन से भारी जिम्मेदारी उठायी थी। आगे अपनी बिमारी और कमजोरी को लेकर भी गांधीजी ने काफी कुछ लिखा है। गांधीजी आश्रम में अपनी पीड़ा से पीड़ित थे ही। यहां उन्होंने जल चिकित्सा करने की बात भी बतलायी है। उन्होंने यहां अण्डे के विषय में भी अपनी जानकारी साझा की है।

गांधीजी अपनी आत्मकथा में आगे रौलर एक्ट और अपने धर्म संकट की बात भी लिखना नहीं भूले हैं। दक्षिण की अपनी यात्रा की बात भी गांधीजी ने लिखी है। 4 अप्रैल को गांधीजी बंबई पहुंचे। तभी श्री शंकरलाल बैंकर का तार आया कि 6 तारीख की हड़ताल मनाने के लिए आपको बंबई में हाजिर होना चाहिए। परन्तु इससे पहले दिल्ली में हड़ताल 30 मार्च को मना ली गई थी। उस समय दिल्ली में स्वर्गीय श्रद्धानन्द जी और स्वर्गीय हकीम साहब अजमल खां की दुहाई फिरती थी। 6 अप्रैल तक हड़ताल की अवधि बढ़ाने की सूचना दिल्ली में देरी से जा पायी थी। दिल्ली में उस दिन जैसी हड़ताल कभी नहीं हुई थी। उसमें हिन्दू—मुसलमानों की एकता देखने वाली थी। इसी सिलसिले में आगे का ब्यौरा भी गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में ब्यौरेवार ही दिया है।

गांधीजी ने अपनी पहाड़ जैसी भूल का भी खुलासा किया है जिसका आभास उन्हें अहमदाबाद में ही हो गया था। इस विषय में वे खुलासा करते हुए लिखते हैं—जब वे अहमदाबाद की सभा के बाद तुरन्त नड़ियाद गए तभी उन्होंने विचार किया, खेड़ा जिले के बहुत से आदमियों के गिरफ्तार हो जाने की बात सुनकर, जिस सभा में गांधीजी भाषण कर रहे थे, वहीं उनके मन में आया कि खेड़ा जिले के तथा ऐसे दूसरे लोगों को कानून का सविनय भंग करने के लिए आह्वाहन करने में मैंने जल्दबाजी की गलती की थी। वहीं भूल मुझे अपनी पहाड़ जैसे गलती महसूस हुई।

टिप्पणी

देशभर में उस दौरान शान्ति रक्षा का आंदोलन जोर पकड़ रहा था। दूसरी ओर सरकार की दमन नीति भी उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी। पंजाब में फौजी कानून लगा दिया गया। नेताओं और जनता की पकड़–धकड़ का खुलासा भी गांधीजी ने किया है। साथ ही, पंजाब की उस समय की विकट परिस्थिति पर भी प्रकाश डाला है। खिलाफत के बदले गौ–रक्षा के प्रश्न पर सभा में तो चर्चा नहीं हुईं परन्तु मौलाना अब्दुलबारी साहब ने फरमाया–'खिलाफत में हिन्दुओं की मद्द हो या न हो। हम एक मुल्क के हैं। इसलिए मुसलमानों को हिन्दुओं की भावना की खातिर गोवध बन्द कर देना चाहिए। इस पर भी अलग–अलग जो मत सामने आए उनका जिक्र भी आत्मकथा में आया है। उसके बाद अमृतसर की कांग्रेस की बात भी गांधीजी ने स्पष्ट कर रखी है।

कांग्रेस में प्रवेश को लेकर भी गांधीजी ने अपनी अलग–अलग राय रखी–सो भी आत्मकथा में है। इसके अनुसार–

गांधीजी लिखते हैं–कांग्रेस में मुझे हिस्सा लेना–इसे मैं अपना कांग्रेस में प्रवेश नहीं मानता। उन्होंने लिखा है कि उसके पहले की कांग्रेस की बैठकों में जो मैं गया, वह केवल निष्ठा के निर्देशन स्वरूप ही था। छोटे–से–छोटे सिपाही के अलावा मेरा कोई वहां दूसरा काम भी हो सकता है–दूसरी सभाओं में मुझे ऐसा आभास नहीं हुआ, न ऐसी इच्छा ही हुई।

गांधीजी ने आगे लिखा है कि अमृतसर के अनुभव ने उन्हें चेताया कि उनकी शक्ति का उपयोग कांग्रेस के लिए है। वे लिखते हैं कि पंजाब की जांच कमेटी के काम से लोकमान्य, मालवीय जी, मोतीलाल जी, देशबन्धु आदि को खुशी हुई थी, यह गांधी ने समझ लिया था। इसीलिए उन्होंने गांधीजी को अपनी बैठकों में बुलाना शुरू कर दिया था।

**अपनी प्रगति जांचिए**

7. 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग किस विधा की पुस्तक है?
   (क) जीवनी (ख) आत्मकथा
   (ग) यात्रा–वृत्तांत (घ) निषेध
8. गांधी जी ने अपने जीवन के मार्गदर्शक रूप में किसे चुना?
   (क) रामचरित मानस (ख) कुरान
   (ग) गीता (घ) बाइबिल

## 5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. (घ) | 2. (ग) | 3. (ग) | 4. (ग) |
| 5. (क) | 6. (ख) | 7 (ख) | 8. (ग) |

## 5.5 सारांश

टिप्पणी

हिन्दू धर्म शब्द का प्रयोग निष्काम भक्ति, नैतिक कर्तव्यों, तीनों प्रकार के धर्मों के साथ–साथ हिन्दू रीति–रिवाजों परम्पराओं, सामाजिक नियमों एवं हिन्दू कानून के रूप में किया गया है। हिन्दू धर्म आत्मा की शुद्धि पर जोर देता है तथा आत्म शुद्धि ही परम ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग है। आत्म शुद्धि द्वारा मनुष्य को मनोबल प्राप्त होता है। धर्म की अवधारणा में नरक और स्वर्ग के विचार होता है। तथा इस बात पर बल दिया गया है कि धर्म का पालन करके एक हिन्दू स्वर्ग को प्राप्त होता है जबकि अधर्म के रास्ते पर चलकर वह नरक को प्राप्त होता है। हिन्दू धर्म की उदारता तथा सहनशीलता के कारण ही यहां विभिन्न देशी तथा विदेशी धर्मों को पनपने का अवसर मिला है।

जैन दर्शन एक अनीश्वरवादी दर्शन है। इसका आधार पुद्गल, कषाय, अन्नत, चतुष्टय, द्रव्य आदि जैसे कुछ तत्व है। इन्हीं तत्वों के आधार पर यह जीव–जगत आदि की व्याख्या करता है। स्याद्वाद जैन धर्म का प्रमुख सिद्धांत है, जो ज्ञान के नित्य एवं अनित्य दोनों होने का बोध कराती है। जैन दर्शन जीवन का परम लक्ष्य मुक्ति अर्थात मोक्ष को मानता है तथा उसकी ओर व्यक्ति को अग्रसर करने के लिए शिक्षा को आवश्यक मानता है। अतः, इसके अनुसार, व्यक्ति को सद्जीवन की ओर प्रेरित करने वाली क्रिया ही शिक्षा है।

महात्मा बुद्ध की शिक्षाएं बड़ी सरल हैं और याज्ञिक कर्मकांड तथा आडम्बरों के विरुद्ध हैं। इसके अतिरिक्त वे आचार प्रधान हैं और मानवीय अनुभव पर आधारित हैं। श्री आर.आर. दिवाकर लिखते हैं– ''बुद्ध के उपदेशों का मूल आधार वेद तथा आर्य धर्मशास्त्र नहीं थे बल्कि उनके आंतरिक अनुभव थे जिन्हें एक साधारण मनुष्य के लिए भी समझना कठिन नहीं।'' बौद्ध धर्म व्यवहारिक धर्म था यह मनुष्य की उन्नति का साधन था। यह धर्म अत्यंत बुद्धिवादी है और उसमें अन्धविश्वासों तथा अन्धपरंपराओं के लिए कोई स्थान नहीं है। उनका धर्म किसी यांत्रिक कर्मकांड, सूक्ष्म दार्शनिकता अथवा पौराणिक अन्धमान्यता के ऊपर आधारित न था। उसका आधार तो मात्र कल्याण था।

सिख धर्म का मुख्य नियम आस्था और न्याय है। सिख धर्म ने मोक्ष के लिए अनुशासन और व्यक्तिगत साधना पर जोर दिया। सिख धर्म के अनुयायी सिख कहलाते हैं, ये अपने गुरु या दिव्य नेता के उपदेशों का पालन करते हैं। सिख धर्म का पवित्र ग्रंथ गुरु ग्रंथ साहिब है। गुरु ग्रंथ साहिब में 6 सिख गुरुओं के उपदेश संचित हैं। इसमें विभिन्न सामाजिक–आर्थिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि के अन्य भक्तों के विचार भी शामिल हैं। सिख धर्म की परंपरा और उपदेश पंजाब की विभिन्न सामाजिक और ऐतिहासिक परंपराओं पर आधारित है।

ईसाई धर्म में ईश्वर की भक्ति और उसके अनुग्रह–दान की शिक्षा बहुत दृढ़ है। ईसाई धर्म में ईश्वर को मानव से परे और अतीत समझा जाता है। मावन और ईश्वर के मध्य नबी और अंत में ईसा के द्वारा मध्यस्थता स्थापित की जाती है। ईश्वर की बाह्यता तथा अतीतपन पर बल दिया जाता है। ईसाई धर्म में आरंभ से ही मानव

कल्याण और दुःखनिवारण पर बल दिया गया है। ईसाई धर्म में बताया गया है कि ईसाई अगोचर ईश्वर से किस तरह प्रेम कर सकता है यदि वह अपने भाइयों से प्रेम न करे जिन्हें वह अपनी इंद्रियों से देख–सुन सकता है।

टिप्पणी

पूरे विश्व में मुसलमान इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं। यह भी एकेश्वर वाद को ही मानता है। इस्लाम धर्म के आखिरी पैगम्बर, पैगम्बर मुहम्मद के उपदेशों पर आधारित हैं। इस्लाम का अर्थ है अल्लाह के अधीन और आज्ञाकारी होना। एक मुसलमान को अपना जीवन अल्लाह के शब्दों के अनुरूप ही ढालना पड़ता है।

मुसलमान सिर्फ एक ही शक्ति अल्लाह में विश्वास रखते हैं। मक्का के सऊदी अरब में ईसा पूर्व 570 में पैगम्बर मुहम्मद का जन्म हुआ था। यही इस्लाम धर्म के संस्थापक थे। अल्लाह के द्वारा भेजे गए ये आखिरी पैगम्बर थे जबकि आदम प्रथम पैगम्बर थे।

गुरु नानक ने भारतीय जनता, समाज तथा देश की हीन दशा को देखा। उन्होंने पंडितों, मौलवियों, फकीरों तथा सूफी दरवेशों की संगति करके उनके विचारों, सिद्धांतों तथा जीवनियों का अध्ययन किया और अपनी ज्ञान–वृद्धि की।

गुरु नानक द्वारा प्रतिष्ठित इस धर्म के उपदेश अत्यंत महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। इस धर्म में निर्गुण एकेश्वरवाद पर बल दिया गया है। ईश्वर एक वास्तविकता है और हम अपनी आत्मा के द्वारा उससे संबंध स्थापित कर सकते हैं।

आत्मकथा लिखने की हिम्मत जुटाना हरेक का कार्य नहीं है। यह तो कोई विराट ह्रदय वाला ही, सत्य का पुजारी ही लिख सकता है। कारण, आत्मकथा में अन्दर–बाहर की, व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, देश की, विदेश की, सारी–की–सारी अपनी गुप्त से गुप्त बातें भी, घटनाएं भी उजागर करने का साहस जुटाना पड़ता है। यह कार्य सत्य के पुजारी महात्मा गांधी ने करके दिखाया है। उन्होंने इस पूरी कथा में अनुभव के आधारों पर अनेकानेक सत्य के प्रयोग किए हैं। सत्यवादी निडर और निर्भीक होता है–उसमें स्वयं को सार्वजनिक करने का साहस होता है। क्षमता होती है। ऐसा ही साहस जुटाकर महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा लिखी है।

## 5.6 मुख्य शब्दावली

- **खालसा** : शुद्ध।
- **संग्रहित** : एकत्र किया हुआ, संकलित।
- **संप्रदाय** : परंपरा से चली आ रही प्रथा या रीति।
- **खंडहर** : गिरे हुए मकान का अवशेष।
- **एकेश्वर** : एक ईश्वर।
- **सदावर्त** : नित्य भोजन बांटना।
- **दत्तक** : गोद लेना।
- **कैवल्य** : पूर्ण सत्य ज्ञान।

- **जिन** : विजेता।
- **अहर्त** : पूज्य या योग्य।
- **प्रव्रजन** : स्थानांतरण, देशांतरण।

टिप्पणी

## 5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म शब्द से क्या आशय है?
2. हिन्दू धर्म के आधारभूत ग्रंथों का नामोल्लेख कीजिए।
3. जैन धर्म के तीन तीर्थकर बताइए।
4. बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग क्या है?
5. सिख धर्म का अविर्भाव कहा और किसके द्वारा हुआ?
6. ईसाई धर्म का उद्भव कब और किस देश में हुआ?
7. इस्लाम धर्म कब और कहां से भारत आया?
8. सत्य के साथ मेरे प्रयोग से क्या आशय है? यह किस विधा में लिखित है?

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हिन्दू धर्म के वैचारिक–सामाजिक पक्ष पर प्रकाश डालते हुए कर्म–सिद्धांत का विश्लेषण कीजिए।
2. जैन एवं बौद्ध धर्म का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
3. बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्यों का परिचय होते हुए इसकी प्रमुख शाखाओं का रेखांकन कीजिए।
4. सिख धर्म कैसे अस्तित्व में आया? इसकी शिक्षाओं का उल्लेख कीजिए।
5. ईसाई धर्म के मूल सिद्धांतों एवं शाखाओं का उल्लेख कीजिए।

## 5.8 सहायक पाठ्य सामग्री


1. सौन्दर्य की नदी नर्मदा, अमृतलाल वेगड़, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1992.
2. साइबर स्पेस और मीडिया–सुधीश पचौरी, प्रवीन प्रकाशन, दिल्ली, 2000.
3. जनसंचार : प्रकृति और परम्परा, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, ट्राईडैंट पब्लिशर्स, दिल्ली, 2009.
4. नया मीडिया : अध्ययन और अभ्यास, शालिनी जोशी, शिव प्रसाद जोशी, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2015.

5. मध्य प्रदेश की कला एवं संस्कृति, गोपाल भार्गव, कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2011.
6. मीडिया और हिन्दी : बदलती प्रवृत्तियां, सं. रविन्द्र जाधव, केशव मोरे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2016.
7. प्रयोजनमूलक हिन्दी, सं. डॉ. रामप्रकाश, डॉ. दिनेश गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006.